प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर बी. ए.
स्वाध्याय मंडल
पोस्ट- स्वाध्याय मंडल (पारडी)
पारडी [जि. सूरत]

*

शक १८८२ संवत् २०१७ ई. स. १९६०

*

प्रथम बार

*

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर बी. ए.,
भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल
पोस्ट- स्वाध्याय-मंडल (पारडी)
पारडी (जि. सूरत)

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

उन्नीसवां काण्ड

अथर्ववेदके १८ वें काण्डमें पितृमेध या अन्त्येष्टि कर्म होनेके पश्चात् यहां अठारहवें काण्डकी समाप्तिके साथ ही वास्तविक अथर्ववेद समाप्त होता है। पिप्पलाद संहिता अथर्ववेदकी अठारहवें काण्डसे ही समाप्ति होती है। बीसवां काण्ड तो ऋग्वेदके इन्द्र सूक्तोंका ही संग्रह है और उन्नीसवां काण्ड कुछ फुटकर रहे अथर्ववेदके सूक्तोंका संग्रह दीखता है। वास्तवमें अथर्ववेद अठारहवें काण्डसे ही समाप्त होना चाहिये था।

यजुर्वेद वाजसनेयी संहितामें ३९ वें अध्यायमें अन्त्येष्टि कर्म होते ही यजुर्वेदका कर्म काण्ड समाप्त हुआ है। ४० वां अध्याय ब्रह्मविद्या प्रकरणका अध्याय है और वह परा विद्या है। ३९ वें अध्यायतक अपराविद्या समाप्त होनेपर ४० वें अध्यायमें परा विद्या आ गयी यह ठीक ही है। परन्तु अथर्ववेदमें वैसा नहीं है।

अथर्ववेदके उन्नीसवें काण्डमें सूक्तक्रम ऐसा है—

१ यज्ञः २ आपः ३ जातवेदाः ४ आकूतिः ५ जगतो राज्यं, ६ सहस्रशीर्ष पुरुषः ७-८ नक्षत्राणि ९-११ शान्तिः १२ उषा १३ एकवीरः १४-१६ अभयं १७-१८ सुरक्षा १९ शर्म २० सुरक्षा २१ छंदांसि २२ ब्रह्मा २३ अथर्वाणः २४ राष्ट्रं २५ अश्वः २६ हिरण्यधारणं २७ सुरक्षा २८-३० दर्भमणिः ३१ औदुम्बरमणिः ३२-३३ दर्भः, ३४-३५ जङ्गिडमणिः ३६ शतवारो मणिः ३७ बलप्राप्तिः ३८ यक्ष्म नाशनं ३९ कुष्ठनाशनम् ४० मेधा ४१ राष्ट्रं बलं ओजश्च ४२ ब्रह्मयज्ञः ४३ ब्रह्म ४४ भेषजम् ४५ आञ्जनम् ४६ अस्तृतमणिः ४७-५० रात्रिः ५१ आत्मा ५२ काम ५३ ५४ काल ५५ रायस्पोषप्राप्तिः ५६-५७ दुःस्वप्ननाशनम् ५८-५९ यज्ञः ६० अङ्गानि ६१ पूर्णायुः ६२ सर्वप्रियत्वम् ६३ आयुर्वर्धनं ६४ दीर्घायुष्यम् ६५ भावनं ६६ असुरक्षयणम् ६७ दीर्घायुत्वम् ६८ वेदोक्तं कर्म ६९ आपः ७० पूर्णायुः ७१ वेदमाता ७२ परमात्मा।

यह अथर्ववेदके उन्नीसवें काण्डमें सूक्तक्रम है। यह विषयवार नहीं है। इसका विषयवार संग्रह किया जाय तो ऐसा बनेगा—

यज्ञ—

१ यज्ञः ५८-५९ यज्ञः ४२ ब्रह्मयज्ञः

आपः—

२ ६९ आपः

सुरक्षा—

१४-१६ अभयं १७-१८ १९ २० २७ सुरक्षा ६५ भवनम्

शान्तिः—

९-११ शान्तिः

दीर्घायुः—

६१ पूर्णायुः, ६३ आयुर्वर्धनं ६४ दीर्घायुष्यं ६७ दीर्घायुत्वं ७० पूर्णायुः

मणिधारणम्—

२६ हिरण्यधारणं २८-३० दर्भमणिः ३२-३३ दर्भः ३१ औदुम्बरमणिः ३४-३५ जङ्गिडः ३६ शतवारो मणिः ४६ अस्तृतमणिः, ४५ आञ्जनम्

रोगनाशनम्—

३८ यक्ष्मनाशनं ३९ कुष्ठनाशनं ५६-५७ दुःस्वप्न नाशनं ४४ भेषजम्

राष्ट्रम्—

२४ राष्ट्रं ४१ राष्ट्रं बलं ओजश्च ६६ असुरक्षयणं ५ अश्व १३ एकवीरः ३७ बलप्राप्तिः ५५ रायस्पोषः

ईश्वरः—

१ जातवेदाः ५ जगती राजा ६ जनवीराः पुरुषः, २१ ४३ ब्रह्म ५१ आत्मा ७२ परमात्मा

मेधा—

४ मेधा २ धाम १९ धर्म

कालः—

१२ तथा ४७ ५ रात्रिः ५३– ४ कालः ७ ८ नक्षत्राणि

वेद—

२१ छन्दांसि २२ अथर्वाणः ६८ वेदोक्त कर्म, ७१ वेदमाता

सर्वप्रियत्व—

६२ सर्वप्रियत्वं

अंगानि—

६ अंगानि ४ आकूति ।

इस तरह वर्गीकरण किया जाय तो एक तत्त्व विचारके सूक्त एक स्थानपर मिल सकते हैं और एक स्थानपर एक विषयके सूक्त मिलनेसे अर्थ भी ठीक तरह हो सकता है। अध्ययन भी शीघ्र हो सकता है।

यह केवल उन्नीसवें काण्डके विषयमें ही है ऐसी बात नहीं पर अथर्ववेदके १३ से १८ तथा २० वाँ काण्ड ये सब काण्ड छोड दिये जाय तो बाकीके कांडोंके सूक्तोंको विषयवार ही बांटना चाहिये। यह अत्यंत आवश्यक बात है। पाठक इसपर अधिक विचार करें ॥

१९ वें काण्डके सुभाषित

अभय

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां (१९।१४।१)— इस कल्याणके अवसान में पहुंचा हूं।

शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्— मेरे लिये द्यावा-पृथिवी कल्याण करनेवाले हों।

असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु— दिशा उपदिशाएं मेरे लिये शत्रुरहित हों।

न वै त्वा द्विष्मः— हम तेरा द्वेष नहीं करते।

अभयं नो अस्तु— हमारे लिये अभय हो।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि (१९।१५।१)— हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय लगता है वहांसे हमारे लिये निर्भयता कर।

इन्द्र त्वं ऊतिभिः वि द्विषो वि मृधो जहि— तू अपनी रक्षाके सामर्थ्योंसे हमारे द्वेषियों और शत्रुओंका नाश कर।

वयं अनुराधं इन्द्रं हवामहे (१९।१५।२)— हम अनुकूल सिद्धि देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

अनुराध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा— हम द्विपादों और चतुष्पादोंसे अनुकूलता प्राप्त करें।

मा नः सेना अररुषीरुपगुः— अनुदार सेनाएं हमारे पास न आ जांय।

विषूचीरिन्द्र द्रुहो विनाशय— हे इन्द्र ! द्रोहकर्ताओंको चारों ओरसे विनष्ट कर।

इन्द्रस्त्राता उत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः (१९।१५।३)— इन्द्र रक्षक, शत्रुनाशक, अनुमोदक और श्रेष्ठ है।

स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु— वह हमारा दूरसे मध्यसे पीछेसे आगेसे रक्षक हो।

उरुं लोकमनुनेषि विद्वान् (१९।१५।४)— तू जानता हुआ हमें विशाल कार्यस्थानमें ले जाता है।

स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति— जहां आत्मज्योति और निर्भयता है।

उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू— तुझ समर्थके बाहू बडे उग्र हैं।

उप क्षयेम शरणा बृहन्ता— हम तेरे बडे आश्रयमें रहेंगे।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षं (१९।१५।५)— अन्तरिक्ष हमें निर्भय करे।

अभयं द्यावापृथिवी उभे इमे— ये दोनों द्यावापृथिवी हमें निर्भय करें।

अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु— पीछेसे आगेसे ऊपरसे नीचेसे हमें अभय हो।

अभयं मित्रादभयममित्रात् (१९।१५।६)— मित्रसे और अमित्रसे हमें अभय हो।

अभयं ज्ञातादभयं पुरो यः— जाने हुएसे और जो सामने है उससे अभय हो।

अभयं नक्तमभयं दिवा नः (१९।१५।६)— रात्रीमें तथा दिनमें अभय हो।

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु— सब दिशाएं मेरे मित्र हों।

असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम् (१९।१६।१)- आगेसे और पीछेसे हमें शत्रुरहित अभय हो ।

दिवो मादित्या रक्षन्तु (१९।१६।२)— द्युलोकसे आदित्य मेरी रक्षा करें ।

भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म— भूतोंको बनानेवाले सब ओरसे मेरा कवच बनें ।

स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे (१९।१७।१-१)— वह मेरा रक्षण करे वह मेरा पालन करे उसके पास मैं अपने आपको देता हूं ।

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् (१९।१८।१-१)— वसुमान् अग्निको वे प्राप्त हों जो पापी पूर्व दिशासे हमें दास बनाते हैं । इस तरह सब दिशाओंके विषयमें है ।

सा मा शर्म च वर्म च यच्छतु (१९।१९।१-११)— वह आपको सुख और सुरक्षा देवे ।

अप न्यधुः पौरुषेयं वधम् (१९।२०।१)— पुरुषसे प्राप्त होनेवाला वध दूर हो ।

पूषास्मान् परिपातु मृत्योः— पूषा हमें मृत्युसे रक्षा करें ।

तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु (१९।२०।२)— वे कवच मेरे लिये बहुत हों ।

इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान्पातु विश्वतः (१९।२०।३)- इन्द्रने जो कवच किया है वह हमें चारों ओरसे सुरक्षित रखे ।

वर्म मे द्यावापृथिवी (१९।२० ।४)— द्यावा पृथिवी मेरा कवच बनें ।

मा मा प्रापत्प्रतीचिका— मुझे विरोधी प्राप्त न हो ।

पूषा त्वा पातु प्राणेभिः (१९।२७।१)— बलवान् बलवालोंके साथ तेरी रक्षा करें ।

गोप्तृम् कल्पयामि ते (१९।२७।४)— तेरे लिये मैं रक्षक करता हूं ।

मा प्राप्त माभिमो दभन् (१९।२७।५)— कपटी शत्रु मेरे प्राणका न दबावें ।

आयुष्पायुं कृतां जीव (१९।२७।८)- आयु बढानेवालोंकी आयुसे जीवित रह ।

आयुष्मान् जीव मा मृथाः— दीर्घायु होकर जीवित रह मत मर जा ।

प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम्— आत्मवालोंके प्राणसे जीवित रह मृत्युके वशमें न जा ।

यद्धिरण्यं तेनास्मै कृण्वन्वीर्याणि— जो सुवर्ण है उससे यह बल बनाता है ।

असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम् (१९।२७।१४)- आगेसे और पीछेसे हमारे लिये निःशत्रुता तथा अभय हो ।

यत्र तां अग्नि हरसा (१९।६५।१)— अग्निसे अपने तेजसे सुरक्षित रख ।

अविरुयथुमोऽर्चिषा— न डरता हुआ अपने तेजसे दूर कर ।

उषा

अया देवहितं वाजं सनेम (१९।१२।१)— इस उषासे देवोंका हित करनेवाला बल प्राप्त करेंगे ।

मदेम शतहिमाः सुवीराः— उत्तम वीर बनकर सौ हिम काल आनन्दसे रहेंगे ।

अपनी शक्ति

ओज चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्तु (१९।५८।१)— कान आंख और प्राण हमारा छिन्नविच्छिन्न न हो ।

अच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः— हम आयुष्य और तेजसे अविच्छिन्न रहें ।

प्राणः अस्मान् उपह्वयताम् (१९।५८।२)— प्राण हमारा आदर करे ।

उप वयं प्राणं हवामहे— हम प्राणोंका आदर करें ।

वर्चो गृहीत्वा पृथिवीं अनु सं चरेम (१९।५८।३)— तेज प्राप्त करके पृथिवीपर संचार करेंगे ।

ईश्वर

रयिमस्मासु धेहि (१९।३।२)— धन हमें दे ।

यतो भयमभयं तन्नो अस्तु (१९।३।४)— जहांसे भय है वहांसे हमें निर्भयता हो ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनां अधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति (१९।५।१)— जो कुछ विविध रूपवाला इस पृथिवीपर है उसका तथा स्थावर जंगम सबका इन्द्र ही राजा है ।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् (१९।६।१)-

हजारों बाहुओं आंखों और पांवोंवाला एक पुरुष है वह पृथिवीके चारों ओर व्यापक दशांगुल विश्वसे बाहर भी है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येश्वरः (१९।६।४)— जो भूतकालमें हुआ जो वर्तमान कालमें है, और जो भविष्यमें होगा वह सब पुरुष ही है वही अमृतत्वका अधिपति है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्योऽभवत्। मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत (१९।६।६)— ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र उसके सिर बाहु पेट और पांव हैं।

अयुतोऽहं अयुतो म आत्मा (१९।५१।१)— मैं पूर्ण हूं, मेरा आत्मा पूर्ण है।

अयुतं मे चक्षुः अयुतं मे श्रोत्रं— मेरा आंख और कान पूर्ण है।

अयुतो मे प्राणो अयुतो मेऽपानः— मेरा प्राण और अपान पूर्ण है।

अयुतो मे व्यानो अयुतोऽहं सर्वः— मेरा व्यान पूर्ण है मैं सब पूर्ण हूं।

वेद

यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् (१९।७२।१)— जिस पेटीसे हमने वेद बाहर निकाले उस पेटीमें हम फिर उनको रखते हैं।

कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण— मन्त्रोंके वीर्यसे यह कर्म किया।

तेन मा देवास्तपसावतेह— उस तपसे सब देव मेरी रक्षा करें।

ब्रह्म

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि (१९।२२।२१)— ज्ञानके श्रेष्ठत्वसे पराक्रम करनेकी शक्ति बढती है।

उद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे (१९।६८।१)— वेदको उठाकर हम कर्म करते हैं।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् (१९।७१।१)— आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति धन ब्राह्मण वर्चस मुझे दो और ब्रह्मलोकको जा।

सर्वप्रियत्व

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये (१९।६२।१)— मुझे देवोंमें प्रिय कर, राजाओंमें मुझे प्रिय कर सबके मैं प्रिय बनूं, शूद्र और आर्योंमें मैं प्रिय बनूं।

अंगानि

अरिष्टानि मे सर्वा आत्मानिभृष्टः (१९।६०।२)— मेरे सब अंग अटूट हों मेरा आत्मा उत्साहयुक्त हो।

काम

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् (१९।५२।१)— प्रारंभमें काम उत्पन्न हुआ वह मनका पहिला वीर्य था।

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सखा आ सखीयते (१९।५२।२)— हे काम! तू बलके साथ मनमें रहता है, तू व्यापक पराक्रमी और मित्रवत् आचरण करनेवालेके साथ मित्र बन कर रहता है।

त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि (१९।५२।२)— तू उग्र वीर युद्धोंमें साहस बतानेवाला यजमानके लिये सामर्थ्य और शक्ति दे।

शर्म (सुख)

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः, तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु (१९।१९।११)— प्रजापालक प्रजाओंके साथ ऊपर उठा हुआ उस नगरीमें मैं तुमें ले जाता हूं उसमें जाओ उसमें प्रवेश करो वह आपको सुख और संरक्षण देवे।

काल

कालो भूतिमसृजत (१९।५३।५)— कालने सृष्टि बनायी है।

कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः (१९।५३।७)— योग्य काल आनेपर सब प्रजा आनन्दित होती है।

कालो ह सर्वस्येश्वरः (१९।५३।८)— काल सबका स्वामी है।

कामः प्रजा असृजत (१९-५२-१)— काम प्रजाको उत्पन्न करता है।

नक्षत्राणि

मह्यमेतानि शिवानि सन्तु (१९-८-१)— मेरे लिये ये नक्षत्र कल्याण करनेवाले हों।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे (१९-८-२)— अठारह नक्षत्र मेरे लिये कल्याणकारी और शुभ हों। और मेरे साथ उत्तम सहयोग करें।

स्वस्ति नो अस्तु अभयं नो अस्तु (१९-८-७)— हमारा कल्याण हो हमारा अभय हो।

कवच

वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि (१९-५८-४)— कवच बहुत और बडे सीओ।

अयाम धाम देवहितं सनेम (१९-१२-१)— इससे देवोंका हित करनेवाला बल हम प्राप्त करें।

कीले

पुरः कृणुध्वं आयसीरधृष्टाः (१९-५८-४)— अमर लोहेके कीलेके शत्रुके अधीन न होनेवाले बनाओ।

मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् (१९-५८-४)— तुम्हारे बर्तन न चूवें उनको दृढ बनाओ।

गोशाला

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः (१९-५८-४)— गोशाला बनाओ और वह तुम्हारे मानवोंका दूध पीनेका स्थान हो।

जल

ता अपः शिवाः (१९-२-५)— यह जल कल्याण करने वाला है।

अपोऽयक्ष्मं करणीः— जल रोग दूर करनेवाला है।

यथैव तृप्यते मयः तास्त आ दत्त भेषजीः— जिससे सुख होगा वैसा यह जल तुम्हें औषधी रूप बनेगा।

भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपः (१९-२-३)— वैद्योंसे अधिक यह जल अधिक रोग नाश करनेवाला होता है।

जीवा स्थ (१९-६९-१)— जल जीवन देनेवाला है।

उपजीवा स्थ— करीब करीब जीवन देनेवाला जल है।

संजीवाः स्थ— सम्यक्तया जीवन देनेवाला जल है।

जीवला स्थ— जीवन शक्तिसे युक्त जल है।

जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्— हम जीवेंगे पूर्ण आयु तक जीवित रहेंगे।

पुष्टि

औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या (१९-३१-१)- औदुम्बर मणि बलवान है वह मुझे पुष्टि देवे।

औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे (१९-३१-१)- औदुम्बर मणिके तेजसे धाता मुझे पुष्टि देवे।

पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् (१९-३१-५)— पशुओंसे दूध और औषधियोंका रस ज्ञानपति सविताने मुझे दिया है।

तेजोऽसि तेजो मयि धारय (१९-३१-१२)— तू तेज है मुझमें तेज धारण कर।

रयिरसि रयिं मे धेहि— तू धन है मुझे धन दे।

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि (१९-३१-११)— तू पुष्टि है मुझे पुष्ट कर।

रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् (१९-३१-१४)— सब वीर पुत्रोंके साथ धन हमें दे।

मेधा

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम (१९-४०-१)— जो मेरे मनमें और वाणीमें दोष है क्रोधी पुरुषके पास गयी है (इससे यह दोष हुआ है)।

विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः— सब देवोंकी सहायतासे बृहस्पति सब दोषको दूर करे।

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन (१९-४०-२)— हमारी मेधाको तथा ज्ञानको जल विनष्ट न करे।

अहं सुमेधा वर्चस्वी— मैं उत्तम बुद्धिवान् और तेजस्वी बनूं।

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः (१९-४०-३)— मेरी मेधा दीक्षा और जो तप है उसका नाश न हो।

शिवा नः सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः— यह जल हमारी आयुके लिये कल्याणकारी हो। जल माताएं हमें सुख दें।

दीर्घ आयु

सर्वमायुरशीय (१९।६९।१)— मैं पूर्ण आयुको प्राप्त करूं।

आयुः प्राणं प्रजां ... वर्धय (१९।६३।१)— मेरी आयु प्राण और प्रजाको बढ़ा।

आयुरस्मासु धेहि (१९।६४।४)— हमें आयुष्य दे।

जीवेम शरदः शतं (१९।६७।२)— हम सौ वर्ष जीवें।

भूयसीः शरदः शतात् (१९।६७।८)— सौ वर्षोंसे भी अधिक जीवें।

जीव्यासमहं— (१९।७०।१)— मैं जीवित रहूं।

सर्वमायुर्जीव्यासं— संपूर्ण आयु तक जीवित रहूं।

जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति (१९।२६।१)— जो [शरीर पर सुवर्णको] धारण करता है उसको वृद्धावस्थाके पश्चात् मृत्यु होता है।

आयुष्मान् भवति यो बिभर्ति (१९।२६।२)— जो सुवर्ण धारण करता है वह दीर्घायु होता है।

आयुषे त्वा वर्चसे त्वा ओजसे च बलाय च (१९।२६।१)— दीर्घायु, तेज सामर्थ्य और बलके लिये (सुवर्णको) धारण करता हूं।

तत् आयुष्यं भुवत् तत्ते वर्चस्यं भुवत् (१९।२६।४)– वह सुवर्ण तुम्हें आयु बढानेवाला हो तेज बढानेवाला हो।

इदं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे (१९।२८।१)— इस मणिको तेरे शरीर पर दीर्घायु और तेजके लिये बांधता हूं।

तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः (१९।२४।४)– सब देव उस तुझे वृद्धावस्था तक भरण-पोषणके लिये देते हैं।

त्वया सहस्रकाण्डेन आयुः प्रवर्धयामहे (१९।३२।१)– तुझ सहस्र काण्डवालेके द्वारा हम अपनी आयु बढाते हैं।

देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः (१९।३३।१)— दिव्य मणि हमें दीर्घ आयु देवे।

यज्ञ*

इमे यज्ञं गिरः वर्धयन्तु (१९।१।१)— इस यज्ञका वर्णन हमारी वाणियां करें।

[illegible]

रूपं रूपं वयो वयः संरभ्य एनं परिष्वजे (१९।१।३)— रूप और वयके अनुसार इस यज्ञको हम सुरक्षित रखते हैं।

यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशः वर्धयन्तु (१९।१।३)— इस यज्ञको चारों दिशाएं बढावें।

नमसा सदेम (१९।५८।१)— हम विचारवाले दिव्य भावनासे यहां बैठें।

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च (१९।५८।५)— यज्ञकी यह आंख तथा उत्तम मुख है।

वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि— वाणी कान और मनसे हवन करता हूं।

इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा (१९।५८।५)— इस यज्ञका विश्वकर्माने विस्तार किया।

देवा यन्तु सुमनस्यमानाः— उत्तम प्रसन्न मनवाले देव इस यज्ञके पास आंय।

इमं यज्ञं सहपत्नीभिरेत्य (१९।५८।६)— इस यज्ञके प्रति पत्नीके साथ आओ।

त्वं व्रतपा असि (१९।५९।१)— तू व्रतका पालक है।

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां (१९।५९।२)— यदि हमने आप विद्वानोंके व्रत तोडे हैं।

अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु— अग्नि वह दोष दूर करे।

आ देवानामपि पन्थामगन्म (१९।५९।३)— हम देवोंके मार्गपर आ गये हैं।

यच्छक्नवाम तदनु प्रवोढुम्— यदि समर्थ हुए तो उस यज्ञ मार्गको आगे चलावेंगे।

सोऽध्वरान् स ऋतून् कल्पयाति— वह अहिंसक कर्मोंको और ऋतुओंको वह चलाता है।

ब्रह्म यज्ञस्य तत्वं (१९।४२।२)— ज्ञान ही यज्ञमें मुख्य तत्त्व है।

अंहोमुचे प्र भरे मनीषां (१९।४२।३)— पापसे छुडाने वालेकी प्रशंसा करते हैं।

सुत्राम्णे सुमतिं आवृणानः— उत्तम रक्षा करनेवालेके विषयमें उत्तम बुद्धि धारण करते हैं।

सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः (१९।४२।१)— यजमानकी कामनाएं सत्य हों।

रात्री

अरिष्टासस्त शर्वरि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि (१९।४७।२)— न विनष्ट होते हुए हम हे बडी अन्धेरी रात्रि! हम पार होंगे।

तमिमां अद्य पायुभिः नु पाहि (१९।४७।५)— आज रक्षकोंसे हमारा रक्षण हो।

रक्षा माकिः (१९।४७।६)— हमारी रक्षा कर।

मा नो अघशंस ईशत— पापी हमारे ऊपर स्वामित्व न करे।

मा नो दुःशंस ईशत— दुष्ट कीर्तिवाला हमपर स्वामित्व न करे।

परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः (१९।४७।७)— बडे मार्गसे चोर और डाकू दौड जाय।

परेणामायुरेयतु— पापी दूरसे भाग जाय।

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि (१९।४७।९)— हे रात्री तेरे अन्दर हम रहेंगे सोयेंगे तू जागती रह।

त्वं रात्रि पाहि नः (१९।४८।२)— हे रात्रि! तू हमारी रक्षा कर।

गोपाय नो विभावरि (१९।४८।४)— हे तेजस्विनी रात्रि! हमारी रक्षा कर।

सा नो चित्तेऽधि जागृहि— वह तू हमारे मनके लिये जागती रह।

अस्माँ त्रायस्व नर्याणि जाता (१९।४९।३)— हमारी रक्षा कर मानवोंका हित करनेके लिये तू उत्पन्न हुई है।

असाम सर्ववीरा मदाम सर्ववेदसः (१९।४९।६)— सर्व वीरोंसे और सर्व धनोंसे युक्त हम हों।

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः। रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् (१९।४९।९)— जो आज पापी शत्रु आ रहा है रात्री उसका गला और सिर काटे।

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत्। यो मलिम्लुरुपायति सम्पिष्टो अपायति (१९।४९।११)— पावोंसे और हाथोंसे तोड दे जो पापी हमारे समीप आ जाय वह पीसा जाकर भाग जाय।

रात्रिं रात्रिं अरिष्यन्त स्तरेम तन्वा वयं (१९।५०।३)— प्रत्येक रात्रीमें विनष्ट न होते हुए हम अपने शरीरसे सुरक्षित रहेंगे।

गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः— गंभीर जलको पापी न पार हो जैसे शत्रु। नौकाके [लोग पार नहीं होते।]

अधा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति (१९।५०।४)— हे रात्रि! जो हमपर बाधा करता है उसको गिरा दे।

राष्ट्र

तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन (१९।२४।१)— हे ब्रह्मणस्पते! उस शक्तिसे इसको राष्ट्रके लिये धारण कर।

आयुषे महे क्षत्राय धत्तन (१९।२४।२)— दीर्घायु तथा बडे क्षात्रबलके लिये धारण करो।

एनं जरसे नयात्— इसको वृद्धावस्था तक ले जावे।

यथेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः (१९।२४।४)— जैसे इसको जराके पश्चात् मृत्यु आजाय, इसको दीर्घायु करो।

जरां गच्छ (१९।२४।५)— वृद्धावस्थाको प्राप्त हो।

अभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ— प्रजाओंको विनाशसे बचानेवाला हो।

शतं च जीव शरदः पुरूचीः वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् (१९।२४।६)— अति दीर्घ ऐसे सौ वर्ष जीवित रह और जीवित रहनेपर धनोंको बांट।

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व (१९।२४।८)— सुवर्ण जैसा रंगवाला जरारहित उत्तम वीर जराके पश्चात् मृत्युवाला होकर अपनी प्रजाके साथ रहकर आराम कर।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षामुपसेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सं नमन्तु (१९।४१।१)— जनताका कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले ऋषियोंने पहिले तप किया और दीक्षा ली। उससे राष्ट्र बल और ओज हुआ इस लिये सब ज्ञानी इस राष्ट्रके सामने झुक जांय।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति। तांस्ते रन्धयामि हरसा। (१९।६६।१) जो असुर लोहेके जाल और लोहेके पाश लेकर संचार करते हैं उनको मैं विनष्ट करता हूं।

सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन्पाहि वज्रः— हजार नोकवाला वज्र शत्रुओंको मारे और हमारा रक्षण करे।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् (१९।१३।२)— स्वरायुक्त तीक्ष्ण बैलके समान भयंकर शत्रुको मारनेवाला मनुष्योंको हिलानेवाला वीर है।

संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्— गर्जना करनेवाला पलक भी न झपकनेवाला अद्वितीय वीर सौ सेनाओंको जीतता है।

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः (१९।१३।५)— अपने और शत्रुके बलको जाननेवाला, युद्धमें स्थिर रहनेवाला बड़ा वीर साहसी बलिष्ठ उग्र शूर और शत्रुका पराजय करनेवाला है।

अभिवीरो अभिषत्वा सहोजित्— विशेष वीर बलवान् और सबसे शत्रुको जीतनेवाला शूर होता है।

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रं (१९।१३।६)— इस उग्रवीरका हर्ष बढाओ।

ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा (१९।१३।६)— ग्रामका विजेता गौओंको जीतनेवाला वज्रबाहु विजयी और अपनी शक्तिसे शत्रुको मारनेवाला वीर है।

दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु (१९।१३।७)— जो हिलानेके लिये अशक्य शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है वह युद्धोंमें हमारी सेनाकी रक्षा करे।

रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः (१९।१३।८)— राक्षसोंको मारनेवाला शत्रुको बाधा पहुंचाता है।

प्रभञ्जन् शत्रून् प्रमृणन्नमित्रान् अस्माकमेध्यविता तनूनाम् (१९।१३।९)— शत्रुका नाश करता हुआ अमित्रोंका वध करके हमारे शरीरोंका रक्षक हो।

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु (१९।१३।११)— हमारे वीर ऊंचे हो जांय।

अस्मान् देवासोऽवता हवेषु— देव युद्धोंमें हमारी रक्षा करें।

पर्व मा धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् (१९।३७।२)— मेरे शरीरमें तेज सामर्थ्य पराक्रम शक्ति और बल स्थापन कर।

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा। अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय (१९।३७।३)— बल बल सामर्थ्य शत्रुपराजय राष्ट्रसेवा और सौ वर्षोंकी आयुके लिये तुझे मैं पहनता हूं।

सभ्य! सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः (१९।५५।५)— हे सभ्य! मेरी सभाका रक्षण कर और सभ्य सभासद हैं वे भी सभाकी रक्षा करें।

रोगनाशन

न तं यक्ष्मा अरुन्धते (१९।३८।१)— रोग उसको रोकता नहीं।

विष्वञ्चस्तस्माद्यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते (१९।३८।२) जैसे मृग और घोडे भाग जाते हैं वैसे रोग उससे भाग जाते हैं।

तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः (१९।३९।१) सब रोगोंका नाश कर, यातना देनेवालोंका नाश कर।

स कुष्ठो विश्वभेषजः (१९।३९।५)— वह कुष्ठ सब औषधि गुण है।

यथा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि (१९।५७।१)— इस तरह सब दुष्ट स्वप्न अप्रियके पास ले जाते हैं।

स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः (१९।५७।२)— जो मेरेमें पाप है वह द्वेष करनेवालेके पास भेजते हैं।

आयुषोऽसि प्रतरणं (१९।४४।१)— तू आयुष्यका बढानेवाला है।

प्राण प्राणं त्रायस्व (१९।४४।४)— हे प्राण! प्राणकी रक्षा कर।

निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च— हे दुर्गते! दुर्गतिके पाशोंसे हमें छोड।

मुञ्च न पर्यंहसः (१९।४४।८)— पापसे हमें बचाओ।

शत्रुनाश

दर्भः सपत्नदम्भनो द्विषतस्तपनं हृदः (१९।२८।१)— यह दर्भमणि शत्रुको दबानेवाला और द्वेष करनेवालोंके हृदयको तपानेवाला है।

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः (१९।२८।२)- द्वेष करनेवालोंके हृदयोंको ताप देता है, और शत्रुओंके मनको तपाता है।

दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभि संतापयन्— दुष्ट हृदयवाले सब शत्रुओंको हे दर्भ! गर्मीके समान ताप दे।

दर्भ इवाभितपन् दर्भ द्विषतः (१९।२८।१)— दर्भके समान, हे दर्भ ! द्वेष करनेवालोंको तपा ।

हृदः सपत्नानां भिन्धि— शत्रुओंके हृदयोंको तोड ।

भिन्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे (१९।२८।४) हे दर्भमणे ! शत्रुओं और द्वेष करनेवालोंके हृदय तोड दे ।

शिरः एषां विपातय— इन दुष्टोंका सिर गिरा दे ।

भिन्धि दर्भ सपत्नान् (१९।२८।५)— हे दर्भ ! शत्रुओंको तोड दे ।

भिन्धि मे पृतनायतः— मुझपर सैन्य भेजनेवालेको तोड दे ।

भिन्धि मे सर्वान् दुर्हार्दः— सब दुष्ट हृदयवालोंको तोड दे ।

भिन्धि मे द्विषतो मणे— हे मणे ! द्वेष करनेवालोंको तोड दे । ऐसे ही ६-९ मंत्रमें वाक्य हैं । ऐसे ही १९।२९ में वाक्य हैं ।

तेजसा वर्मिणं कृत्वा सपत्नान् जहि वीर्यैः (१९।३०।१) इस शक्तिसे इसको कवचवाला करके अपने वीर्योंसे शत्रुका पराभूत कर ।

त्वं राष्ट्राणि रक्षसि (१९।३१।१२)— तू राष्ट्रोंका रक्षण करता है ।

मणिः क्षत्रस्य वर्धनः (१९।३१।१४)— यह मणि क्षात्र तेजको बढाता है ।

तनूपानं कृण्मोमि ते— मैं तेरे शरीरका रक्षक (इस मणिको) बनाता हूं ।

त्वमसि सहमानः अहमस्मि सहस्वान् (१९।३२।१५)– तू साहस युक्त हो मैं साहस करनेवाला हूं ।

उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि— हम दोनों बलवान् होकर शत्रुओंका पराभव करेंगे ।

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व नो पृतनायतः (१९।३२।१६)— हमारे शत्रुका और हमपर सैन्य भेजनेवालेका पराभव कर ।

सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः— सब दुष्ट हृदयवालोंका पराभव कर ।

सुहार्दो मे बहून् कृधि— उत्तम हृदयवाले मेरे बहुत मित्र कर ।

स नोऽयं दर्भः परिपातु विश्वतः (१९।३२।९)— यह दर्भमणि हमारी सब ओरसे रक्षा करे ।

तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः— उससे हमपर सेना भेजनेवालोंका पराभव करूंगा ।

स नोऽयं मणिः परिपातु विश्वतः (१९।३३।१)— वह यह मणि हमारी चारों ओरसे रक्षा करे ।

दुष्मन्तमपराधमपरांश्च कृण्वन् (१९।३३।१०)— शत्रुओंको दूर कर और उनको नीचे कर ।

त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् । (१९।३३।३)— तू हमसे पापोंको दूर करके हमें पवित्र करो ।

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः (१९।३३।४)— यह मणि वीर राजा राक्षसोंका वध करनेवाला शत्रुका पराभव करनेवाला और सब मनोंका हित करता है ।

ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् ते बध्नामि जरसे स्वस्तये यह देवोंका उग्र बल है इसको तेरे शरीरपर बांधता हूं । इससे तू वृद्धावस्थातक कल्याण प्राप्त करके जीवोगे ।

दर्भेण त्वं कृणवद्वीर्याणि (१९।३३।५)— दर्भमणिसे तू अनेक पराक्रम करेगा ।

दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः— दर्भमणिको धारण करनेसे तू अपनी शक्ति बढनेके कारण दुःखी न होगे ।

सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः— सूर्यके समान चारों दिशाओंमें प्रकाशित होता रहे ।

सर्वं रक्षतु जङ्गिडः (१९।३४।१)— जांगडमणि सबकी रक्षा करे ।

अयं अरातिदूषणः (१९।३४।४)— जंगिडमणि शत्रुका विनाश करता है ।

जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्— जंगिडमणि हमारे दीर्घ आयुष्य करे ।

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः (१९।३४।५)— वह जंगिडमणिका महिमा सब ओरसे हमारी रक्षा करे ।

जङ्गिडः परिपाणः सुमंगलः (१९।३४।७)— जंगिडमणि चारों ओरसे रक्षा करनेवाला और मंगल करनेवाला है ।

अमीवाः सर्वाश्चातयन् जहि रक्षांसि ओषधे (१९।३४।९)— सब रोग दूर कर तथा सब राक्षसोंका नाश कर हे ओषधे !

स नो रक्षतु जङ्गिडः (१९।३५।१)— जंगिडमणि हमारी रक्षा करे ।

परिपाणमरातिहम् — यह ओषधिमणि सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला तथा शत्रुको दूर करनेवाला है।

परिपाणोऽसि जंगिडः (१९।३५।१) — तू जंगिडमणि रक्षक है।

शतवारो अनीनशद्यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा (१९।३६।१) — शतवारमणि यक्ष्मरोग और राक्षसोंका तेजसे नाश करता है।

वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः — तेजके साथ यह मणि बुरे नामवाले रोगोंको दूर करता है।

शतं वीरानजनयत् — सौ वीरोंको जन्म देता है।

शतं यक्ष्मानपावपत् — सैकड़ों रोगोंको दूर करता है।

दुर्णाम्नः सर्वान्हत्वाव रक्षांसि धूनुते — बुरे नामवाले सब रोगोंको नष्ट करके सब राक्षसोंको कंपाता है।

तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु (१९।४६।१) — अस्तृतमणि तेरे शरीरपर दीर्घायु, तेज, ओज, बलके लिये बांधता हूं, वह तेरी रक्षा करे।

अस्मिन्मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते (१९।४६।५) — इस अस्तृतमणिमें सौ वीर्य हैं और हजार प्राण रहते हैं।

दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन (१९।४५।१) — हे अञ्जन! दुष्ट हृदयवालोंकी पसलियां तोड़।

आञ्जन दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते (१९।४५।३) — यह अञ्जन दिशा-उपदिशाएं तेरे लिये कल्याण करनेवाली कर।

सर्वा दिशोऽभयास्ते भवन्तु (१९।४५।४) — इस अञ्जनसे तेरे लिये सब दिशाएं निर्भय हों।

शान्ति

शान्ता नः सन्त्वोषधीः (१९।९।१) — सब औषधियां हमें शान्ति देनेवाली हों।

शं नो अस्तु कृताकृतम् (१९।९।२) — किया और न किया सब हमें शान्ति देनेवाला हो।

यथैव ससृजे घोरं तथैव शान्तिरस्तु नः (१९।९।३) — जिससे भयंकर परिणाम होता है वह हमें शान्ति देवे।

इन्द्रो मे शर्म यच्छतु (१९।९।१२) — इन्द्र मुझे सुख देवे।

ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु — ब्रह्मा सुख देवे।

सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु (१९।९।१२) — सब देव मुझे सुख देवें।

शं मे अस्तु अभयं मे अस्तु (१९।९।१३) — सुख हो, निर्भयता मुझे प्राप्त हो।

सर्वमेव शमस्तु नः (१९।९।१४) — सब कुछ सुख देनेवाला हो।

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः (१९।१०।९) — हमारी प्रजाके लिये पर्जन्य सुख देवे।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु (१९।११।१) — सत्यके पालक हमें सुख देनेवाले हों।

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः (१९।११।५) — तुम सदा हमें कल्याण साधनोंसे सुरक्षित रखो।

सर्वप्रिय

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च (१९।३२।८) — हे दर्भ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंको मैं प्रिय बनूं ऐसा कर।

इस तरह इस काण्डमें सुभाषित हैं। कई सूक्तोंमें सुभाषित अधिक हैं। समान सुभाषितके वाक्य होनेसे उनमेंसे एक ही वाक्य लिया है। पाठक यहांके अन्य सुभाषित स्वयं देखें।

पाठक इस काण्डका अच्छी तरह अध्ययन करके लाभ उठावें।

अनुवादकर्ता
श्री दा. सातवलेकर
अध्यक्ष स्वाध्याय मण्डल

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

उन्नीसवां काण्ड।

विषयानुक्रमणिका

॥ उन्नीसवां काण्ड समाप्त ॥



ॐ

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

एकोनविंश काण्डम्।

(१) यज्ञः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — यज्ञः, चन्द्रमाश्च।)

सं सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥
इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥
रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥ (१)

---

(१) यज्ञः।

अर्थ— (नद्यः सं सं स्रवन्तु) नदियां बहती रहें (वाताः सं) वायु बहते रहें, (पतत्रिणः सं) पक्षी उड़ते रहें। (इमं यज्ञं गिरः वर्धयत) इस यज्ञको हमारी वाणियां बढावें। (संस्राव्येण हविषा जुहोमि) सुखको प्रवाहित करनेवाले हविसे मैं हवन करता हूं ॥ १ ॥

मनुष्यकी वाणियां यज्ञका भाव समाजमें या राष्ट्रमें बढावें। इससे सबका कल्याण होगा। जैसा नदियोंका प्रवाह चलता रहा वायु चलता रहा तो मनुष्योंका सुख बढता है उसी तरह यज्ञ होते रहें तो मनुष्योंका कल्याण होता रहता है। यज्ञमें (१) विद्वानोंका सत्कार (देवपूजा) (२) संगतिकरण अर्थात् एकता और (३) दान अर्थात् दीनोंकी सहायता ये तीन कर्मोंके भाव मुख्य हैं। इससे राष्ट्रका कल्याण होता है।

हे (होमाः) यज्ञो ! (इमं यज्ञं अवत) इस यज्ञकी रक्षा करो। हे (संस्रावणाः) प्रवाहो ! (उत इमं) और इस यज्ञकी सुरक्षा करो। हमारी वाणियां इस यज्ञका संवर्धन करें। मैं सुखको प्रवाहित करनेवाले हविसे हवन करता हूं ॥ २ ॥

सब यज्ञकी सुरक्षा करें क्यों कि यज्ञसे सबका कल्याण होता है।

(रूपं रूपं वयोवयः) प्रत्येक रूप और प्रत्येक आयुके अनुसार (संरभ्य) देखकर (एनं परिष्वजे) इस यज्ञ कर्मको चारों ओरसे सुरक्षित रखता हूं। (इमं यज्ञं चतस्रः प्रदिशः वर्धयन्तु) इस यज्ञको चारों दिशाएं संवर्धित करें। मैं सुखको बढानेवाले हविसे हवन करता हूं ॥ ३ ॥

रूप और आयुके अनुसार यजमानको सुरक्षित रखता हूं। चारों दिशाओंमें रहनेवाले लोग यज्ञ करनेकी इच्छा मनमें बढावें।

(२) आपः ।

(ऋषिः — सिन्धुद्वीपः । देवता — आपः ।)

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः । शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥
शं त आपो धन्वन्याः३ शं ते सन्त्वनूप्याः । शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः । भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥
अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् । अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः । यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥(८)

(३) जातवेदाः ।

(ऋषिः — अथर्वाङ्गिराः । देवता — अग्निः ।)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥

---

(२) आपः ।

अर्थ— (हैमवतीः आपः ते शं) हिमवान पर्वतसे आनेवाले जलप्रवाह तेरे लिये सुखदायी हों । (उत्स्याः ते शं उ सन्तु) स्रोतोंसे बहनेवाले जलप्रवाह तेरे लिये सुखदायी हों (सनिष्यदा आपः ते शं) वेगसे आनेवाले प्रवाह तुम्हें सुखदायक हों (वर्ष्याः ते शं उ सन्तु) वर्षासे आये जलप्रवाह तेरे लिये सुखदायक हों ॥ १ ॥

(धन्वन्या आपः ते शं) मरुदेशमें होनेवाले जलप्रवाह तुम्हें आनन्द देनेवाले हों । (अनूप्याः ते शं सन्तु) देशमें बहनेवाले जलप्रवाह तेरे लिये सुखदायी हों (खनित्रिमाः आपः ते शं) खोदकर प्राप्त किये जल तेरे लिये सुखकारक हों । (याः कुम्भेभिः आभृताः शं) जो जल घडोंमें भरकर रखा है वह तुम्हें सुखकारक हो ॥ २ ॥

(अनभ्रयः खनमानाः) कुदालके बिना खोदे हुए (गम्भीरे अपसः) गंभीर जलके द्वारा (विप्राः) ज्ञानीयोंके समीप (आपः) जल (भिषग्भ्यः भिषक्तराः) वैद्योंके लिये अधिक रोगनाशक होते हैं । इन जलोंके विषयमें (अच्छा वदामसि) हम उत्तम बोलते हैं ॥ ३ ॥

जलचिकित्सा जो जानते हैं वे जलका उपयोग करके रोग दूर करते हैं । इसलिये जलके विषयमें हम उत्तम ही बोलते हैं।

(दिव्यानां अपां अह) आकाशसे बरसनेवाले जल (स्रोतस्यानां अपां) स्रोतोंसे मिलनेवाले जलोंके विषयमें (अपां प्रणेजने) इन जलोंके प्रयोगके विषयमें (अश्वाः वाजिनः भवथ) घोडे अधिक बलवान् होते हैं ॥ ४ ॥

जलका योग्य उपयोग और प्रयोग करनेसे घोडे अधिक बलवान् होते हैं । मनुष्य भी जलप्रयोगसे नीरोग और बलिष्ठ होते हैं ।

(ताः आपः शिवा) वह जल कल्याण करनेवाला है । (आपः अयक्ष्म-करणीः अपः) वह जल रोगोंको दूर करनेवाला है । (यथा एव मयः तृप्यते) जिस तरह सुख बढ सकता है, (ताः ते भेषजीः आ दत्त) वे जल तेरे लिये रोग दूर करनेवाले हैं उनका स्वीकार करो ॥ ५ ॥

जलचिकित्सासे रोग दूर होते हैं । इसलिये मनुष्य जलोंसे योग्य प्रयोग द्वारा आरोग्य प्राप्त करे ।

(३) जातवेदाः ।

(दिवः) द्युलोकसे (पृथिव्याः) पृथिवीसे (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्षसे (वनस्पतिभ्यः ओषधिभ्यः) वनस्पतियों और ओषधियोंसे (यत्र यत्र जातवेदाः विभृतः) जहां जहां अग्नि भरा रहता है (ततः स्तुतः) वहांसे प्रशंसित होकर (जुषाणः) सबका प्रेमी होकर (नः एहि) हमारे समीप आवे ॥ १ ॥

इन सब स्थानोंमें अग्नि है, द्युलोकमें सूर्य अन्तरिक्षमें विद्युत पृथ्वीपर आगके रूपमें ओषधिवनस्पतियोंमें अनेक रूपसे अग्नि रहता है । वह हमारा सहायक बने ।

यस्ते॑ अ॒प्सु म॑हि॒मा यो वने॑षु॒ य ओष॑धीषु प॒शुष्व॒प्स्व॒१॒॑न्तः ।
अग्ने॒ सर्वा॑स्त॒न्वः॒३॒॑ सं र॑भस्व॒ ताभि॑र्न॒ एहि॑ द्रविणो॒दा अज॑स्रः ॥ २ ॥
यस्ते॑ दे॒वेषु॑ महि॒मा स्व॒र्गो या ते॑ त॒नूः पि॒तृष्वा॑वि॒वेश॑ ।
पु॒ष्टिर्या ते॑ मनु॒ष्ये॑षु पप्र॒थेऽग्ने॒ तया॑ र॒यिम॒स्मासु॑ धेहि ॥ ३ ॥
श्रुत्क॑र्णाय क॒वये॒ वेद्या॑य॒ वचो॑भिर्वा॒कैरुप॑ यामि रा॒तिम् ।
यतो॑ भ॒यमभ॑यं॒ तन्नो॑ अ॒स्त्वव॑ दे॒वानां॒ यज॒ हेडो॑ अग्ने ॥ ४ ॥ (१२)

(४) आकूतिः ।

(ऋषिः — अथर्वाङ्गिराः । देवता — अग्निः ।)

यामाहु॑तिं प्रथ॒माम॑थ॒र्वा या जा॒ता या ह॒व्यमकृ॑णोज्जा॒तवे॑दाः ।
तां त॑ ए॒तां प्र॑थ॒मो जो॑हवीमि॒ ताभि॑ष्टु॒प्तो व॑हतु ह॒व्यम॒ग्निर॒ग्नये॒ स्वाहा॑ ॥ १ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! (यः ते अप्सु महिमा) जो तेरा जलोंमें महिमा है, (यः वनेषु) जो वनोंमें (यः ओषधीषु पशुषु अप्सु अन्तः) जो औषधियों पशुओं और जलोंमें है, (सर्वाः तन्वः संरभस्व) तुम्हारे वे सब शरीर उत्तम रीतिसे एकत्रित करके (ताभिः नः एहि) उनके साथ हमारे पास आओ और हमारे लिये (द्रविणोदाः अजस्रः) धन देनेवाला अविनाशी हो ॥ २ ॥

(यः ते देवेषु स्वर्गः महिमा) जो तेरा देवोंमें सुखदायी महिमा है (या ते तनूः पितृषु आविवेश) जो तेरा शरीर पितरोंमें पालकोंमें रहा है (या ते पुष्टिः मनुष्येषु पप्रथे) जो तेरी पोषक शक्ति मानवोंमें फैली है हे अग्ने ! (तया अस्मासु रयिं धेहि) उससे हमारे अन्दर धन स्थापन कर ॥ ३ ॥

(श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय) सुननेवाले कान जिसके हैं जो कवि और जानने योग्य है उसके पास (वचोभिः वाकैः) वचनों और वाक्योंसे (रातिं उप यामि) दान मांगता हूं । (यतः भयं) जहांसे भय होना संभव हो (तत् नः अभयं अस्तु) वहांसे हमें अभय हो । हे अग्ने । (देवानां हेडः यज) देवोंके क्रोधको दूर कर ॥ ४ ॥

सुभाषित — प्रार्थना करनेवालोंका कहना सुनना योग्य है । कविः–ज्ञानी । वेद्यः– जानने योग्य । उपासक अपने भावके दान मांगता है । जहांसे भयकी संभावना हो वहांसे निर्भयता प्राप्त हो । जहांसे भय दूर हो । देवोंका क्रोध अपने ऊपर न हो ऐसा अपना आचरण रहना चाहिये ।

(४) आकूतिः ।

(अथर्वा) अथर्वाने (यां प्रथमां आहुतिं) जिस प्रथम आहुतिको (अकृणोत्) हवन किया (या जाता) जो आहुती बनी और (जातवेदाः या हव्यं अकृणोत्) जातवेद अग्निने जिसका हवन किया (तां एतां प्रथमः ते जोहवीमि) उसको मैं पहिले तेरे लिये हवन करता हूं (ताभिः स्तुतः अग्निः हव्यं वहतु) उनसे प्रशंसित हुआ अग्नि हवन किये हुएको ले जाय ऐसे (अग्नये स्वाहा) अग्निके लिये समर्पण करता हूं ॥ १ ॥

अथर्वाने प्रथम अग्नि उत्पन्न करके उसमें प्रथम आहुति दी । अग्निने उसकी पहिला हव्य करके स्वीकार किया । यहांसे यज्ञ शुरू हुआ ।

अग्निर्जातो अथर्वणा । ऋ. १०।२१।५। अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने । वा. य. ११।३२ यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते । ऋ. १।८३।५ अथर्वाने अग्नि प्रथम उत्पन्न किया जिससे यज्ञ शुरू हुआ ।

*

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥ २ ॥
आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥
बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम्।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥ ४ ॥ (११)

(५) जगतो राजा।

(ऋषिः — अथर्वाङ्गिराः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १ ॥ (१२)

अर्थ— (सुभगां आकूतिं देवीं) सौभाग्यवाली इच्छा देवीको (पुरः दधे) आगे धर देता हूं। वह (चित्तस्य माता) चित्तकी माता (नः सुहवा अस्तु) हमारे लिये सुगमतासे बुलाने योग्य हो। (यां आशां केवली एमि) जिस दिशामें मैं उस कामनाकी ओर जाता हूं (सा मे अस्तु) वह मेरी हो। (एनां मनसि प्रविष्टां विदेयं) इसको मनमें प्रविष्ट हुई प्राप्त करूं ॥ २ ॥

मनकी इच्छा बड़ी मुख्य है। उससे सब कर्म शुरू होते हैं। इसलिये यह मनकी इच्छा मुख्य है उससे चित्त कार्य करने लगता है। जिस उत्तम कार्य करनेकी इच्छा मैं करता हूं वह सिद्ध हो जाय।

हे बृहस्पते! (आकूत्या आकूत्या नः नः उपागहि) प्रबल इच्छा शक्तिके साथ तू हमारे पास आ। (अथो भगस्य नः धेहि) और भाग्य हमें दे। (अथो नः सुहवः भव) और सुगम रीतिसे बुलाने योग्य हो ॥ ३ ॥

ज्ञानीके साथ प्रबल इच्छा हो जिससे भाग्य प्राप्त होगा।

(आंगिरसः बृहस्पतिः) आंगिरस कुलका बृहस्पति (मे आकूतिं एतां वाचं) मेरी इस प्रबल इच्छावाली वाणीको (प्रति जानातु) जाने। (यस्य देवा देवताः सं बभूवुः) जिसके साथ देव और देवता रहते हैं, (सः सुप्रणीताः कामः) वह उत्तमरीतिसे प्रयोगमें लाया काम (अस्मान् अन्वेतु) हमारे समीप आ जावे ॥ ४ ॥

प्रबल इच्छासे प्रेरित हुई वाणी शक्तिवाली होती है। उसके साथ दिव्य शक्तियां रहती हैं ऐसी इच्छा हमारी सफल होती रहे।

(५) जगतो राजा।

(इन्द्रः) इन्द्र, प्रभु (जगतः चर्षणीनां) पशु, पक्षि आदि जंगमोंका मनुष्योंका (अधि क्षमि विषुरूपं यद् अस्ति) पृथिवी पर जो भी अनेक रंगरूपवाले पदार्थ हैं उन सबका (राजा) एक अद्वितीय राजा है। (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) वहांसे वह दाताको अनेक प्रकारके धन देता है। (उपस्तुतः चित्) उसकी स्तुति करनेपर (अर्वाक् राधः चोदत्) वह इधर धन भेजता है ॥ १ ॥

स्थावर जंगमका एक अद्वितीय राजा परमेश्वर ही है। जो भी यहां वस्तुमात्र है उसपर उसीका अधिकार है। वह दाताको धन देता है। स्तुति करनेवालेके पास वह धन भेजता है। उसके गुणोंको जाननेसे मनुष्य धन्य होता है।

(१) जगद्बीज पुरुष ।

(ऋषिः — नारायणः । देवता — पुरुषः ।)

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत्पादस्येहाभवत्पुनः । तथा व्यक्रामद्विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥ २ ॥
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह ॥ ४ ॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्योऽभवत् । मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥

---

(१) जगद्बीजः पुरुषः ।

अर्थ— (सहस्र बाहुः) हजारों बाहुवाला (सहस्र-अक्षः) हजारों आंखोंवाला (सहस्रपात्) हजारों पांववाला एक (पुरुषः) पुरुष है (सः भूमिं विश्वतः वृत्वा) वह भूमिको चारों ओरसे घेर कर (दशांगुलं अत्यतिष्ठत्) दस अंगुल विश्वको व्याप कर रहा है ॥ १ ॥

हजारों मनुष्योंके बाहु आंख पांव आदि अवयव जिसके अवयव हैं ऐसा मानवसमाजरूपी विराट् पुरुष पृथिवीके चारों ओर है । सब मानवोंके सब अवयव इसके अवयव हैं । दस अंगुल रूप विश्वको घेर कर वह रहा है । पृथिवीके चारों ओर जो मानवसमाज है वह मिलकर एक पुरुष है ।

(त्रिभिः पद्भिः द्यां अरोहत्) तीन अंशोंसे द्युलोक पर चढा है और (अस्य पात् इह पुनः अभवत्) इसका एक अंश यहां पुनः पुनः होता है । (तथा विष्वङ् अशन-अनशन अनु व्यक्रामत्) तथा चारों ओर खानेवाले और न खानेवाले चेतन और जड इसने व्याप रहा है ॥ २ ॥

इसके तीन अंश द्युलोकको व्याप रहे हैं और एक अंश यहां जड और चेतन रूपमें दीख रहा है । यहां यह वारंवार बनता है ।

(तावन्तः अस्य महिमानः) इसके इतने महिमा हैं । यह (ततो ज्यायान् च पूरुषः) पुरुष तो बहुत बडा है । (अस्य पादः विश्वा भूतानि) इसका एक अंश ये सब भूत हैं और (अस्य त्रिपात् दिवि अमृतं) इसके तीन अंश द्युलोकमें अमर हैं ॥ ३ ॥

(यद् भूतं यत् च भाव्यं) जो बना है और जो बनेगा (इदं सर्वं पुरुष एव) यह सब पुरुष ही है । (उत अमृतत्वस्य ईश्वरः) और वह अमरत्वका स्वामी है (यत् अन्येन सह अभवत्) जो दूसरे- अन्नके- साथ रहता है ॥ ४ ॥

जो भूतकालमें हुआ और जो भविष्यमें होगा वह सब यह पुरुष ही है । यह अमरत्वका स्वामी है जो अन्नके साथ रहता है ।

(यत् पुरुषं व्यदधुः) जो विद्वान् इस पुरुषका वर्णन करते हैं उन्होंने इसकी (कतिधा व्यकल्पयन्) कितने प्रकारसे कल्पना की है ? (अस्य मुखं किं) इसका मुख क्या है (किं बाहू) इसके बाहु क्या हैं (किं ऊरू) जांघें कौन हैं और (पादा उच्येते) पांव कौन कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

पुरुष वर्णन जिसका वर्णन किया जाता है उसके मुख बाहु उदर और पांव कौन हैं ?

(अस्य मुखं ब्राह्मणः) इस पुरुषका मुख ब्राह्मण ज्ञानी- है (राजन्यः बाहू अभवत्) क्षत्रिय इसके बाहु हुए हैं (मध्यं तत् अस्य यत् वैश्यः) इसका मध्यभाग वैश्य है (पद्भ्यां शूद्रः अजायत) पांवके लिये शूद्र हुआ है ॥ ६ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये इस पुरुषके मुख बाहु मध्यभाग और पांव हैं अर्थात् चार वर्ण ये इस पुरुषके चार अंग हैं ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ ७ ॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥
विराडग्रे समभवद्विराजो अधि पूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥
तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रशः । तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥

अर्थ— (मनसः चन्द्रमाः जातः) इसके मनसे चन्द्रमा हुआ है, (चक्षोः सूर्यः अजायत) आंखसे सूर्य हुआ। (मुखात् इन्द्रः च अग्निः च) इसके मुखसे इन्द्र और अग्नि हुए हैं। (प्राणात् वायुः अजायत) इस पुरुषके प्राणसे वायु हुआ है ॥ ७ ॥

इस पुरुषके (नाभ्याः अन्तरिक्षं आसीत्) नाभीसे अन्तरिक्ष हुआ (शीर्ष्णः द्यौः सं अवर्तत) सिरसे द्युलोक हुआ। (पद्भ्यां भूमिः) पांवोंसे भूमि हुई (दिशः श्रोत्रात्) कानसे दिशाएं (तथा लोकान् अकल्पयन्) और इस प्रकार अन्य लोकोंकी कल्पना– प्रजापतिके शरीरके अंगोंपर– की गई है ॥ ८ ॥

(अग्रे विराट् समभवत्) प्रथम विराट् उत्पन्न हुआ (विराजः अधि पूरुषः) विराट्के ऊपर अधिष्ठाता पुरुष हुआ। (सः जातः अति अरिच्यत) वह उत्पन्न होते ही फैल गया (भूमिं अथो पश्चात् पुरः) प्रथम भूमिपर और पश्चात् नाना शरीरोंमें फैल गया ॥ ९ ॥

(यत् पुरुषेण हविषा) जब पुरुषरूप हविसे (देवाः यज्ञं अतन्वत) देवोंने यज्ञ किया (वसन्तः अस्य आज्यं आसीत्) वसन्त ऋतु इसका घी था (ग्रीष्मः इध्मः) ग्रीष्म ऋतु काष्ठ था और (शरत् हविः) शरद ऋतु हवि था ॥ १० ॥

देवोंके यज्ञमें इन ऋतुओंसे होनेवाले पदार्थ ही यज्ञकी सामग्री थी।

(तं अग्रशः जातं) उस प्रथम उत्पन्न हुए (यज्ञं पुरुषं) यजनीय पुरुषको (प्रावृषा प्रौक्षन्) वर्षाके जलसे सिंचन किया (तेन) उससे (साध्याः वसवः च ये देवाः) साध्य और वसु नामके जो देव हैं वे (अयजन्त) यज्ञ करते रहे ॥ ११ ॥

(तस्मात् अश्वाः अजायन्त) उससे घोडे उत्पन्न हुए (ये च के च उभयादतः) जिनके दोनों ओर दांत होते हैं। (गावः जज्ञिरे तस्मात्) उससे गौवें उत्पन्न हुईं (तस्मात् अजावयः जाताः) उससे बकरियां और भेडियां उत्पन्न हुईं ॥ १२ ॥

(तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात्) उस सर्वस्वकी आहुति देनेके यज्ञसे (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋचाएं और साम गान उत्पन्न हुए। (तस्मात् छन्दः ह जज्ञिरे) उस यज्ञसे छन्द अर्थात् अथर्ववेद उत्पन्न हुआ (तस्मात् यजुः अजायत) उस यज्ञसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥

(तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात्) उस सर्व हवन करनेके यज्ञसे (पृषत् आज्यं संभृतं) दही और घी उत्पन्न हुआ। (तान् वायव्यान् पशून्) उन वायव्य पशुओंसे (आरण्याः ग्राम्याः च ये) आरण्य पशु और ग्राम्य पशु ऐसे पशु उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥

सुप्तास्यासन्परिधयुस्त्रिः सुप्त सुमिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सुप्त सुप्ततीः । राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६॥ (११)

(७) नक्षत्राणि।

(ऋषिः — गार्ग्यः। देवता — नक्षत्राणि।)

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥

अर्थ—(देवाः यत् यज्ञं तन्वानाः) देव जो यज्ञ कर रहे थे (अस्य सप्त परिधयः आसन्) उस यज्ञके सात परिधि थे (त्रिः सप्त समिधः कृताः) तीन गुणा सात समिधाएं की थीं और (पुरुषं पशुं अबध्नन्) परमेश्वररूपी पुरुषको ध्यानके लिये चित्तमें बांधा था। उस पर ध्यान वे लगाते थे ॥ १५ ॥

(बृहतः देवस्य) बडे देवके अर्थात् (सोमस्य राज्ञः) सोम राजाके (मूर्ध्नः) सिरसे (सप्ततीः सप्त) सत्तर वार सात (अंशवः) किरणें (अजायन्त) उत्पन्न हुए (जातस्य पुरुषात् अधि) जब वह पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥
ये किरण सूक्ष्म प्रकाशमय तत्त्व हैं जिनसे यह सृष्टी बनी है। बडा देव सोम राजा–सर्वाधार शान्त प्रभु है। जिससे ये तत्त्व प्रकट होकर सब सृष्टि बनी है।

सब मानव समाज जो इस पृथिवी पर चारों ओर है वह सब मानव समाज इस पुरुषका शरीर है। हजारों मुख हजारों बाहु हजारों उदर और हजारों पांव इस पुरुषके हैं यह वर्णन इस तरह देखना और समझना चाहिये।

(७) नक्षत्राणि।

(चित्राणि) चित्रविचित्र (साकं दिवि रोचनानि) साथ साथ द्युलोकमें प्रकाशित होनेवाले (सरीसृपाणि) सदा गतिशील (भुवने जवानि) भुवनमें वेगवान् (अ-हानि) विनष्ट न होनेवाले नक्षत्रोंकी (तुर्मिशं सुमतिं इच्छमानः) तथा शान्तिप्रद उत्तम बुद्धिकी इच्छा करता हुआ मैं (गीर्भिः नाकं सपर्यामि) अपनी वाणियोंसे सुखपूर्ण स्वर्गलोककी प्रशंसा गाता हूं ॥ १ ॥

हे अग्ने! (कृत्तिका रोहिणी सुहवा च अस्तु) कृत्तिका और रोहिणी ये नक्षत्र मेरे लिये शुभसे भावना करने योग्य हों। (मृगशिरः भद्रं) मृगशिर नक्षत्र कल्याण करनेवाला हो (आर्द्रा शं) आर्द्रा नक्षत्र शान्ति देनेवाला हो। (पुनर्वसू सूनृता) पुनर्वसु नक्षत्र उत्तम वाक्शक्ति देनेवाला हो (पुष्यः चारु) पुष्य नक्षत्र मेरे लिये उत्तम हो। (आश्लेषा भानुः) आश्लेषा नक्षत्र प्रकाश देवे (मघा मे अयनं) मघा नक्षत्र मेरे लिये प्रगति करनेवाला हो ॥ २ ॥

(पूर्वा फल्गुन्यौ पुण्यं) पूर्वा फाल्गुनीके दो नक्षत्र पुण्यकारक हों (अत्र हस्तः चित्रा शिवा) यहां हस्त और चित्रा कल्याणकारी हों। (स्वाति मे सुखः अस्तु) स्वाती नक्षत्र मेरे लिये सुखदायी हो (राधे विशाखे) हे राधे और विशाखे! तुम दोनों (सुहवा) उत्तम भावना करने योग्य हो। (अनुराधा ज्येष्ठा मूलं अ-रिष्टं) अनुराधा ज्येष्ठा और मूल ये नक्षत्र विनाशक न हों ॥ ३ ॥

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥ (१८)

(८) नक्षत्राणि।

(ऋषिः — गार्ग्यः। देवता — नक्षत्राणि ब्रह्मणस्पतिः।)

यानि नक्षत्राणि दिव्य१न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥ १ ॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ २ ॥
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।
सुहवमग्ने स्वस्त्य१मर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्। सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान्परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥

अर्थ — (पूर्वा अषाढा मे अन्नं रासतां) पूर्वा अषाढा नक्षत्र मुझे अन्न देवे। (उत्तरा देवी ऊर्जं आ वहन्तु) उत्तरा अषाढा नक्षत्र उत्तम बल देवे। (अभिजित् मे पुण्यं रासतां एव) अभिजित नक्षत्र मुझे पुण्य देवे। (श्रवणः श्रविष्ठाः सुपुष्टिं कुर्वतां) श्रवण और श्रविष्ठा मुझे उत्तम पुष्टि देवें ॥ ४ ॥

(महत् शतभिषक्) बडा शतभिषक् नक्षत्र (मे वरीयः आ) मेरे लिये धन देवे। (द्वया प्रोष्ठपदा मे सुशर्म आ) दोनों प्रोष्ठपदा नक्षत्र मुझे उत्तम सुख देवे। (रेवती अश्वयुजौ च) रेवती और अश्वयुज नक्षत्र (मे भगं आ) मेरे लिये धन देवें और (भरण्यः मे रयिं आ वहन्तु) भरणी नक्षत्र मेरे लिये ऐश्वर्य ले आवें ॥ ५ ॥

(८) नक्षत्राणि।

(यानि नक्षत्राणि) जो नक्षत्र (दिवि अन्तरिक्षे) द्युलोकमें अन्तरिक्षमें (अप्सु भूमौ) जलोंमें भूमीपर (यानि नगेषु दिक्षु) जो पर्वतोंपर तथा दिशाओंमें हैं। (चन्द्रमा यानि प्रकल्पयन् एति) चन्द्रमा जिनको शोभित करता हुआ जाता है। (सर्वाणि एतानि मम शिवानि सन्तु) सब ये नक्षत्र मेरे लिये कल्याणकारी हों ॥ १ ॥

(अष्टाविंशानि) अठाईस नक्षत्र (शिवानि शग्मानि) कल्याण और सुखदायी हों। (मे सह योगं भजन्तु) मेरे साथ योग प्राप्त करें। (योगं प्र पद्ये) लाभ प्राप्त हो (क्षेमं प्र पद्ये) क्षेम प्राप्त हो। (क्षेमं च प्र पद्ये योगं च) क्षेम और योग प्राप्त हो। (अहोरात्राभ्यां नमः अस्तु) दिन और रात्रीके लिये मैं नमन करता हूं ॥ २ ॥

(मे सु स्वस्तितं) मेरे लिये सदाकाल कल्याण करनेवाला हो (सुप्रातः) सुखदायी प्रातःकाल हो (सुसायं) सायंकाल सुखदायी हो। (सुदिवं) दिन सुखदायी हो (सुमृगं) मृग सुखकारक हों (सुशकुन मे अस्तु) पक्षी सुखदायी हों। हे अग्ने! (सुहवं स्वस्ति) प्रार्थना सुखदायक हो। (अमर्त्यं गत्वा) अमरत्वको प्राप्त होकर तू (पुनः अभिनन्दन्) पुनः सबको प्रसन्न करता हुआ (आ अय) आओ ॥ ३ ॥

हे (सवितः) सविता सर्व प्रेरक प्रभो! (अनुहवं) स्पर्धा (परिहवं) घमंड (परिवादं) निंदा (परिक्षवं) घृणा या और आदि (सर्वैः मे रिक्तकुंभान्) सबके साथ मेरे खाली घडे (तान् परा सुव) इन सबको दूर कर ॥ ४ ॥

अपपाप परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥५॥
इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते। सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥६॥
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ७ ॥ (४५)

(९) शान्तिः।

(ऋषिः — ब्रह्मा (शन्तातिः ?)। देवता — शान्तिः बहुदैवत्यम्।)

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २ ॥
इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता। ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥
इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्। येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४ ॥

अर्थ — (अपपाप परिक्षवं) पाप और छींक दूर हों। (पुण्यं क्षवं भक्षीमहि) पुण्यकारक अन्न हम भक्षण करेंगे। हे पाप! (शिवा पुण्यगः च) कल्याण करनेवाली और पुण्य मार्गसे चलनेवाली (ते नासिकां अभि मेहतां) तेरी नाक पर मूत्र करें। तेरा अपमान करें ॥ ५ ॥

शिवा— कल्याण करनेवाली गाय।

हे (ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञानपते! (इमाः याः विषूचीः) इन नाना दिशाओंमें (वातः ईरते) वायु चलता है हे इन्द्र! (ताः सध्रीचीः कृत्वा) उनको नीचे मार्गसे चलनेवाले करके (मह्यं शिवतमाः कृधि) मेरे लिये सुखदायी कर ॥ ६ ॥

(नः स्वस्ति अस्तु) हमारा कल्याण हो (नः अभयं अस्तु) हमें निर्भयता प्राप्त हो। (अहोरात्राभ्यां नमः अस्तु) दिन रात्रीके लिये नमस्कार हो ॥ ७ ॥

(९) शान्तिः।

(द्यौः शान्ता) द्युलोक शान्ति देवे। (पृथिवी शान्ता) पृथिवी शान्ति देवे। (इदं उरु अन्तरिक्षं शान्तं) यह बड़ा अन्तरिक्ष शान्तिकारक हो। (उदन्वतीः आपः शान्ताः) लहरोंवाले जल शान्ति देवें। (ओषधीः नः शान्ताः सन्तु) औषधियां हमारे लिये शान्ति देनेवाली हों ॥ १ ॥

(पूर्वरूपाणि शान्तानि) पूर्व समयके रूप शान्ति देवें। (नः कृतं अकृतं शान्तं अस्तु) हमने किये या न किये कार्य हमारे लिये शान्ति देनेवाले हों। (भूतं भव्यं च शान्तं) भूत और भविष्य शान्तिकारक हों (सर्व एव नः शं अस्तु) सब हमारे लिये शान्ति देनेवाला हो ॥ २ ॥

(इयं या परमेष्ठिनी) यह जो परमस्थानमें स्थित (ब्रह्मसंशिता वाक् देवी) ज्ञानसे तेजस्वी बनी वाचा देवी है (यया घोरं एव ससृजे) जिससे भयंकर कार्य होते हैं (तया एव नः शान्तिः अस्तु) उससे हमें शान्ति प्राप्त हो ॥ ३ ॥

(इदं यत् परमेष्ठिनं) यह जो परमस्थानमें स्थित (वां ब्रह्मसंशितं मनः) आप दोनोंका ज्ञानसे तेजस्वी बना मन है जिससे घोर परिणाम होता है वह हमारे लिये शान्ति देवे ॥ ४ ॥

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७ ॥
शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥ ८ ॥
नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥१०॥
शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥११॥

अर्थ— (इमानि यानि पञ्च इन्द्रियाणि) जो ये हमारे पांच इन्द्रिय हैं, (मनःषष्ठानि) मन जिनमें छठा है (ब्रह्मणा संशितानि मे हृदि) ज्ञानसे तेजस्वी बने मेरे हृदयमें रहते हैं। जिनसे भयंकर कर्म होते हैं उनसे हमें शान्ति प्राप्त हो ॥५॥

मित्र हमारे लिये सुखदायी हो वरुण हमें सुखदायक हो विष्णु और प्रजापति हमें सुखदायी हों इन्द्र बृहस्पति और अर्यमा हमें शान्ति देनेवाला हो ॥ ६ ॥

मित्र हमारे लिये शान्ति दे। वरुण हमें शान्ति दे (विवस्वान् अन्तकः शं) विवस्वान् हमें शान्ति दे और अन्त करनेवाला देव हमें शान्ति दे। (पार्थिवा अन्तरिक्षाः उत्पाताः) पृथिवी और अन्तरिक्षमें होनेवाले उत्पात और (दिविचराः ग्रहाः नः शं) द्युलोकमें संचार करनेवाले ग्रह हमें शान्ति देवें ॥ ७ ॥

(वेप्यमाना भूमिः नः शं) भूकम्प होनेवाली भूमि हमें शान्ति दे (उल्का शं) उल्का शान्ति देवें (यत् निर्हतं) जो पृथिवीपर गिरा है वह भी शान्तिकारक हो। (लोहित-क्षीराः गावः शं) रक्तके समान दूध देनेवाली गौवें भी हमें शान्ति देवें। (अवतीर्यती भूमिः शं) फट जानेवाली भूमि भी शान्ति देनेवाली हो ॥ ८ ॥

(उल्काभिहतं नक्षत्रं नः शं अस्तु) उल्कासे पीडा गया नक्षत्र हमें शान्ति देवे। (अभिचाराः नः शं) अनुष्ठान भी हमें शान्ति देनेवाला हो (कृत्याः शं उ सन्तु) घातक क्रियाएं भी शान्ति देनेवाली हों। (निखाताः नः शं) गाडे हमारे लिये शान्ति दें। (वल्गाः शं) हिंसाके कार्य हमें शान्ति दें। (देशोपसर्गाः उल्का नः उ शं भवन्तु) देशमें उपसर्ग पहुंचानेवाले उल्का आदि हमें शान्ति दें ॥ ९ ॥

(चान्द्रमसाः ग्रहाः नः शं) चंद्रमा संबंधी ग्रह हमें शान्ति देवें। (राहुणा आदित्यः शं) राहुके साथ सूर्य हमें शान्ति देवे। (धूमकेतुः मृत्युः नः शं) धूमकेतु मृत्यु हमें शान्ति देनेवाला हो (तिग्मतेजसः रुद्राः शं) तीक्ष्ण तेजवाले रुद्र हमें शान्ति देवें ॥ १० ॥

(रुद्राः शं) रुद्र हमें शान्ति दें। (वसवः शं) वसु हमें शान्ति दें। (आदित्याः शं) आदित्य हमें शान्ति दें। (अग्नयः शं) अग्नि हमें शान्ति दें। (देवाः महर्षयः नः शं) देव और महर्षि हमें शान्ति दें। (देवाः शं) देव हमें शान्ति दें। (बृहस्पतिः शं) बृहस्पति हमें शान्ति दे ॥ ११ ॥

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः।
सर्वाणि च भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३॥
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः।
ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं
यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ १४॥ (५१)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अर्थ— ब्रह्म, प्रजापति, धाता (लोकाः) सब लोक (वेदाः) ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद सप्त ऋषि अग्नि (तैः मे स्वस्त्ययनं कृतं) इन सबने मेरा स्वस्त्ययन अर्थात् सुखदायक कर्म किया है। (इन्द्रः मे शर्म यच्छतु) इन्द्र मुझे सुख देवे। (ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु) ब्रह्मा मुझे सुख देवे। (विश्वे देवाः मे शर्म यच्छन्तु) सब देव मुझे सुख देवें। (सर्वे देवाः मे शर्म यच्छन्तु) सब देव मुझे सुख देवें ॥ १२ ॥

(यानि कानि चित् शान्तानि) जो कुछ शान्तिदायक हैं ऐसा (लोके सप्तऋषयः विदुः) जिनको सप्त ऋषि जानते हैं (सर्वाणि मे शं भवन्तु) वे सब मेरे लिये सुखशान्तिदायक हों (मे शं अस्तु) मेरे लिये शान्ति हो (मे अभयं अस्तु) मेरे लिये निर्भयता हो ॥ १३ ॥

पृथिवी शान्ति दे अन्तरिक्ष शान्ति दे द्युलोक शान्ति दे (आपः) जल शान्ति देवे (ओषधयः वनस्पतयः) औषधि-वनस्पतियां शान्ति दें सब देव शान्ति दें (सर्वे देवाः मे शान्तिः) सब देव मेरे लिये शान्ति दें। (शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः) शान्तियोंके साथ शान्ति सभी शान्ति हो। (ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः अहं शमयाम) उन शान्ति पूर्ण सब शान्तियोंसे हम शान्तिको प्राप्त हों। (यत् इह घोरं) जो यहां घोर है (यत् इह क्रूरं) जो यहां क्रूर है (यत् इह पापं) जो यहां पापमय है (तत् शान्तं) वह शान्त हो (तत् शिवं) वह कल्याणकारी हो। (नः सर्वं एव शं अस्तु) हमें सब शान्तिदायक हो ॥ १४ ॥

॥ यहां प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

(१०) शान्तिः ।

(ऋषिः — वसिष्ठः । देवता — बहुदैवत्यम् ।)

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

---

(१०) शान्तिः ।

अर्थ— (इन्द्र-अग्नी अवोभिः नः शं भवतां) इन्द्र और अग्नि अपने रक्षणके साधनोंके साथ हमारे लिये शान्तिदायक हों । (रात-हव्या इन्द्र-वरुणा नः शं) अन्नका दान करनेवाले इन्द्र और वरुण हमारे लिये शान्तिदायक हों । (इन्द्रा-सोमा सुविताय शं योः) इन्द्र और सोम सुखके लिये हमें शान्ति दें और भयको दूर करें । (इन्द्रा-पूषणा वाजसातौ नः शं) इन्द्र और पूषा अन्नके दानके समय हमें शान्ति देवें ॥ १ ॥

(भगः नः शं) भग देव हमें शान्ति दे (शंसः नः शं उ अस्तु) प्रशंसनीय देव हमें शान्ति दे । (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें शान्ति देवे । (रायः शं उ सन्तु) ऐश्वर्य हमें शान्तिदायक हों । (सुयमस्य सत्यस्य शंसः नः शं) उत्तम नियमयुक्त सत्यका प्रशंसक हमें शान्ति देवे । (पुरुजातः अर्यमा नः शं अस्तु) बहुत प्रसिद्ध अर्यमा हमें शान्ति देवे ॥ २ ॥

(धाता नः शं) धारणकर्ता देव हमें शान्ति देवे (धर्ता नः शं उ अस्तु) आधारदाता हमें शान्ति देवे । (स्वधाभिः उरूची नः शं भवतु) अपने धारक शक्तियोंके साथ यह फैली हुई पृथिवी हमें शान्ति देनेवाली हो । (बृहती रोदसी शं) बडी द्यु और अन्तरिक्ष हमारे लिये शान्त हों । (अद्रिः नः शं) पहाड हमारे लिये शान्ति देवे । (देवानां सुहवानि नः शं सन्तु) देवोंकी प्रार्थनाएं हमें सुखदायक हों ॥ ३ ॥

(ज्योतिः अनीकः अग्निः नः शं अस्तु) तेजस्वी ज्वाला युक्त अग्नि हमें शान्ति देनेवाला हो । (मित्रा-वरुणौ नः शं) मित्र और वरुण हमें सुखदायी हों (अश्विना शं) अश्विनी हमें शान्ति दें । (सुकृतां सुकृतानि नः शं) अच्छे कर्म करनेवालोंके अच्छे कर्म हमारे लिये सुखदायी हों (इषिरः वातः नः शं अभि वातु) गतिमान वायु हमारे लिये शान्तिदायक बहे ॥ ४ ॥

(पूर्वहूतौ द्यावापृथिवी नः शं) प्रथम प्रार्थनामें द्यु और पृथिवी हमें शान्ति देनेवाले हों । (अन्तरिक्षं नः दृशये शं अस्तु) अन्तरिक्ष हमारे देखनेके लिये शान्तिदायक हो । (वनिनः ओषधीः नः शं भवन्तु) वनमें बढनेवाली औषधियां हमारे लिये शान्तिदायक हों । (जिष्णुः रजसः पतिः नः शं अस्तु) जयशील लोकोंका पालक हमारे लिये शान्ति देनेवाला हो ॥ ५ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०॥ (६१)

अर्थ— (वसुभिः देवः इन्द्रः नः शं अस्तु) वसुओंके साथ इन्द्र देव हमारे लिये शान्तिदाता हो। (आदित्येभिः सुशंसः वरुणः शं) आदित्योंके साथ प्रशंसनीय वरुण हमें शान्ति देवे। (रुद्रेभिः जलाषः रुद्रः नः शं) रुद्रोंके साथ जलरूपी रुद्र हमें शान्ति देवे। (ग्नाभिः त्वष्टा इह नः शं शृणोतु) स्त्रियोंके साथ त्वष्टा यहां हमें शान्तिसे सुने ॥ ६ ॥

(सोमः नः शं भवतु) सोम हमारे लिये शान्तिदायक हो। (ब्रह्म नः शं) ब्रह्म हमारे लिये शान्ति देवे (ग्रावाणः नः शं) पत्थर हमारे लिये शान्ति दें। (यज्ञाः नः शं सन्तु) यज्ञ हमारे लिये शान्ति दें। (स्वरूणां मितयः नः शं) यूपोंकी स्थितियां हमारे लिये शान्ति दें। (प्रस्वः नः शं) उत्पन्न होनेवाले पदार्थ हमें शान्ति दें। (वेदिः शं अस्तु) वेदि हमें शान्ति देवे ॥ ७ ॥

(उरुचक्षाः सूर्यः नः शं उदेतु) विशेष प्रकाशवाला सूर्य हमारे लिये शान्ति देता हुआ उदित हो। (चतस्रः प्रदिशः नः शं भवन्तु) चारों दिशाएं हमारे लिये सुखदायिनी हों। (ध्रुवयः पर्वताः नः शं भवन्तु) स्थिर पर्वत हमें शान्ति दें। (सिन्धवः नः शं) नदियां हमें सुखदायी हों (आपः उ शं सन्तु) जल हमारे लिये शान्ति देवे ॥ ८ ॥

(अदितिः व्रतेभिः नः शं भवन्तु) पृथिवी अपने अनेक व्रतोंसे हमें शान्ति देनेवाली हो। (स्वर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम शक्तिवाले वायु हमारे लिये शान्ति दें। (विष्णुः नः शं) विष्णु हमें शान्ति देवे (पूषा नः शं अस्तु) पूषा हमें शान्ति देवे। (भवित्रं नः शं अस्तु) उत्पत्ति स्थान हमें शान्ति देनेवाला हो (वायुः शं उ अस्तु) वायु शान्ति देनेवाला हो ॥ ९ ॥

(त्रायमाणः सविता देवः नः शं) रक्षण करनेवाला सविता देव हमें शान्ति देवे। (विभातीः उषसः नः शं भवन्तु) तेजस्वी उषाएं हमें शान्तिदायक हों। (पर्जन्यः नः प्रजाभ्यः शं भवतु) पर्जन्य हमारी प्रजाओंके लिये शान्ति देनेवाला हो (शंभुः क्षेत्रस्य पतिः नः शं अस्तु) सुखदायक क्षेत्रका पति हमें शान्ति देनेवाला हो ॥ १० ॥

(११) शान्तिः ।

(ऋषिः — वसिष्ठः । देवता — बहुदैवत्यम् ।)

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ २ ॥
शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ ३ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ ४ ॥
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ६ ॥ (७४)

---

(११) शान्तिः ।

अर्थ— (सत्यस्य पतयः नः शं भवन्तु) सत्यके पालक हमें शान्ति देनेवाले हों । (अर्वन्तः नः शं) घोडे हमें शान्ति दें (गावः शं उ सन्तु) गौवें शान्तिदायक हों । (सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः नः शं) उत्तम काम करनेवाले कुशल कारीगर हमें शान्तिदायक हों । (पितरः हवेषु नः शं भवन्तु) पितर प्रार्थनाके समय हमें शान्ति देनेवाले हों ॥ १ ॥

(विश्वदेवाः देवाः नः शं भवन्तु) सब देव हमें शान्ति देनेवाले हों । (धीभिः सह सरस्वती शं अस्तु) बुद्धियोंके साथ सरस्वती हमें शान्ति देनेवाली हो । (अभिषाचः शं) चारों ओरसे आनेवाले सुखदायक हों । (रातिषाचः शं उ) दान देनेके लिये आनेवाले शान्तिदायक हों । (दिव्याः नः शं) द्युलोकमें रहनेवाले हमें शान्ति दें (पार्थिवाः अप्याः नः शं) पृथिवीपर होनेवाले जलमें होनेवाले हमें शान्ति देनेवाले हों ॥ २ ॥

(अजः एकपाद् देवः नः शं अस्तु) अजन्मा एकपाद् देव हमें शान्ति देवे । (बुध्न्यः अहिः शं) जडमें रहनेवाला अहि शान्ति देवे । (समुद्रः शं) समुद्र शान्ति देवे (पेरुः अपां नपात् नः शं अस्तु) दुःखोंसे पार करनेवाला जलोंको न गिरानेवाला देव हमें शान्ति देवे । (देवगोपा पृश्निः नः शं भवतु) देवोंके द्वारा सुरक्षित पृथिवी हमें शान्ति देनेवाली हो ॥ ३ ॥

(इदं नवीयः क्रियमाणं ब्रह्म) यह नवीन किया स्तोत्र आदित्य रुद्र और वसु सेवन करें । (दिव्याः पार्थिवासः) जो द्युलोकमें जो पृथ्वीपर (गोजाताः) जो गौवें उत्पन्न और (उत ये यज्ञियाः) जो यज्ञके लिये योग्य हैं वे सब (नः शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ४ ॥

(ये देवानां यज्ञियासः ऋत्विजः) जो देवोंके यज्ञके योग्य ऋत्विज हैं (मनोः अमृताः ऋतज्ञाः यजत्राः) मननशील अमर सत्यज्ञानी याजक हैं (ते अद्य नः उरुगायं रासन्ताम्) वे आज हमें विशेष कीर्ति देवें । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणोंके साथ सदा हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥

हे मित्र और वरुण ! हे अग्ने (तत् अस्तु) वह सब हमें शान्तिदायक हो । (शं योः अस्मभ्यं इदं शस्तं अस्तु) सुख शान्ति और दुःख दूर होना यह सब हमारे लिये प्रशस्त रीतिसे प्राप्त हो । (गाधं उत प्रतिष्ठां अशीमहि) ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा हमें प्राप्त हो । (बृहते सादनाय दिवे नमः) बडे आश्रय स्थानरूप द्युलोकके लिये नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥

(१२) शान्तिः ।

(ऋषिः — वसिष्ठः । देवता — उषा ।)

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १ ॥ (७१)

(१३) एकवीरः ।

(ऋषिः — अप्रतिरथः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥ १ ॥
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ २ ॥
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३ ॥

---

(१२) उषा ।

अर्थ— (उषा) उषा (सुजातता) उत्तम रीतिसे प्रकट होनेके कारण (वर्तनिं सं वर्तयति) मार्गको सम्यक् रीतिसे बताती है और (स्वसुः तमः अप) अपनी बहिन रात्रीके अन्धकारको दूर करती है । (अया देवहितं वाजं सनेम) इस उषासे हम देवोंके लिये हितकारक बल प्राप्त करेंगे । (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर सौ हिमऋतुतक आनन्द प्राप्त करेंगे ।

(१३) एकवीरः ।

(इन्द्रस्य बाहू) इन्द्रके बाहू (स्थविरौ वृषाणौ) स्थिर और बलवान् (चित्रा इमा वृषभौ) विलक्षण तथा दुःखोंसे पार करनेवाले (योगे आगते) समय आनेपर (प्रथमः तौ योक्षे) पहिले मैं उनको जोडता हूं । (याभ्यां जितं यत् असुराणां स्वः) जिनकी सहायतासे जीत लिया जो प्राप्त अर्पण करनेवालेका भी स्वर्ग है ॥ १ ॥

इन्द्र (आशुः) शीघ्र कार्य करनेवाला (शिशानः) तीक्ष्ण (वृषभः न भीमः) बैलके समान भयंकर (घनाघनः) शत्रुको मारनेवाला (चर्षणीनां क्षोभणः) मनुष्योंमें हलचल करनेवाला (संक्रन्दनः अनिमिषः) गर्जना करनेवाला और आंखोंकी पलकें भी न लगानेवाला अर्थात् सतत कार्यकर्ता (एकवीरः इन्द्रः) अद्वितीय वीर इन्द्रने (साकं शतं सेनाः अजयत्) साथ सैकडों शत्रुसेनाओंको जीत लिया ॥ २ ॥

(संक्रन्दनेन) गर्जना करनेवाले (अनिमिषेण जिष्णुना) निमेषरहित जागरूक जयशील (अयोध्येन) युद्ध करनेके लिये जिसके साथ असमर्थ हैं, (दुश्च्यवनेन धृष्णुना) स्थानभ्रष्ट करनेके लिये अशक्य और शत्रुओंका धर्षण करनेवाले (इषुहस्तेन वृष्णा) बाण हाथमें धरनेवाले बलवान् (इन्द्रेण) इन्द्रकी सहायतासे हे (युधः नरः) युद्ध करनेवाले वीर नेताओ ! (तत् जयत) उस अभिलषितको जीतो । (तत् सहध्वं) उस शत्रुको पराजित करो ॥ ३ ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ४ ॥
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदम् ॥ ५ ॥
इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ६ ॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून्प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥ ८ ॥
इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥ ९ ॥

अर्थ— (स इषु हस्तैः) वह बाण हाथमें धरनेवाले वीरोंके साथ (सः निषङ्गिभिः) वह तर्कशवाले वीरोंके साथ रहनेवाला (वशी) वशमें रखनेवाला (युधः संस्रष्टा सः) युद्धोंको करनेवाला (गणेन इन्द्रः) समूहोंके साथ वह इन्द्र (संसृष्टजित्) सेनाओंको जीतनेवाला (सोमपाः) सोमरस पीनेवाला (बाहुशर्धी) बाहुबलसे युक्त (उग्रधन्वा) भयंकर धनुष्य धरनेवाला (प्रतिहिताभिः अस्ता) शत्रुसेनाके बीच बाणोंको छिन्न भिन्न करनेवाला वीर है ॥ ४ ॥

(बलविज्ञायः) अपने और शत्रुके बलको जाननेवाला (स्थविरः) युद्धमें स्थिर रहनेवाला (प्रवीरः) उत्तम वीर (सहस्वान्) बलवान् (वाजी) शक्तिमान् (सहमानः उग्रः) शत्रुको दबानेवाला उग्र वीर (अभिवीरः) जिसके चारों ओर वीर रहते हैं (अभि-सत्वा) चारों ओर बलवान् वीरोंसे युक्त (सहोजित्) बलसे शत्रुको जीतनेवाला तू है। हे इन्द्र ! हे (गो विदम्) भूमिको अपने वशमें रखनेवाले वीर ! (जैत्रं रथं आ तिष्ठ) विजयी रथपर बैठ ॥ ५ ॥

हे (सखायः) मित्रो ! (इमं उग्रं वीरं इन्द्रं) इस उग्रवीर इन्द्रको (अनु हर्षध्वं) आनन्दित करो और (अनु सं रभध्वं) उसके अनुकूल प्रयत्न करो। वह (ग्रामजितं) शत्रुके ग्रामोंको जीतनेवाला (गोजितं) भूमियोंको जीतनेवाला (वज्रबाहुं) वज्रके समान बाहुवाला (अज्म जयन्तं) युद्ध जीतनेवाला (ओजसा प्रमृणन्तं) और वेगसे शत्रुको दूर करनेवाला है ॥ ६ ॥

(गोत्राणि सहसा अभि गाहमानः) गोत्रक शत्रुओंको अपने बलसे भेदनेवाला (अ-दायः) शत्रुपर दया न करनेवाला; (उग्रः शतमन्युः) तेजस्वी सैकडों उत्साहोंसे युक्त (दुश्च्यवनः) स्थानभ्रष्ट करनेके लिये अशक्य (पृतनाषाट्) शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला (अयोध्यः इन्द्रः) जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है ऐसा वह इन्द्र (युत्सु अस्माकं सेनाः प्र अवतु) युद्धोंमें हमारी सेनाओंका रक्षण करे ॥ ७ ॥

हे बृहस्पते ! (अमित्रान् अपबाधमानः) शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाला (रक्षो हा) राक्षसोंका नाश करता हुआ (रथेन परि दीयाः) रथसे शत्रुको घेर। (शत्रून् प्रभञ्जन्) शत्रुओंको कुचलता हुआ और (अमित्रान् प्रमृणन्) अमित्रोंका नाश करता हुआ और (अस्माकं तनूनां अविता) हमारे शरीरोंका रक्षण करता हुआ (एधि) आगे बढ ॥ ८ ॥

(इन्द्रः एषां नेता) इन्द्र इनका नेता है, (बृहस्पतिः दक्षिणा) बृहस्पति दक्षिण हाथकी ओर रहे (यज्ञः सोमः पुरः एतु) यज्ञीय सोम आगे चले। (अभि भञ्जतीनां) शत्रुको तोडनेवाली (जयन्तीनां) जीतनेवाली (देवसेनानां) देवसेनाओंके (मध्ये) मध्यमें (मरुतः अभि यन्तु) मरुत् आगे बढें ॥ ९ ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१०॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान्देवासोऽवता हवेषु ॥११॥ (८०)

अर्थ— (वृष्णः इन्द्रस्य) बलवान् इन्द्रका (वरुणस्य राज्ञः) वरुण राजाका (आदित्यानां मरुतां) आदित्यों और मरुतोंका (उग्रं शर्धः) प्रबल सामर्थ्य प्रकट हो रहा है। (महा-मनसां) बडे मनवाले (भुवनच्यवानां देवानां) भुवनोंको हिलानेवाले देवोंका (जयतां) जीतनेके समय (घोषः उदस्थात्) जयका शब्द ऊपर उठ रहा है ॥ १० ॥

(समृतेषु ध्वजेषु) ध्वज इकट्ठे होनेपर (अस्माकं इन्द्रः) हमारा इन्द्र विजय करे। (अस्माकं याः इषवः ताः जयन्तु) हमारे जो बाण हैं वे जीतें। (अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु) हमारे वीर श्रेष्ठ रहें। (हवेषु अस्मान् देवासः अवत) युद्धोंमें हमें सब सुरक्षित रखो ॥ ११ ॥

इस सूक्तमें विजय पानेके लिये क्या करना चाहिये यह उपदेश है। इन्द्रके समान जो बनेंगे वे विजय प्राप्त करेंगे। इस दृष्टिसे इस सूक्तमें इन्द्रके गुणोंका जो वर्णन आया है वह मननपूर्वक देखने योग्य है—

१ बाहू स्थविरा वृषाणौ— बाहु सुदृढ और बलवान् हों।
२ वृषभो पारयिष्णू— बैलके समान बलिष्ठ और दुःखसे छुडानेमें समर्थ।
३ असुराणां बलं क्षितं— असुरोंका सर्वथा नाश। प्राण दान करनेवालोंको प्राप्त होनेवाला लाभ प्राप्त किया।
४ आशुः शिशानः— त्वरासे कार्य करनेवाला और तीक्ष्ण स्वभाव होना
५ भीमः घनाघनः— भयंकर आघात करके शत्रुका नाश करनेवाला
६ चर्षणीनां क्षोभणः— मानवोंको क्षोभकारक हलचल करनेवाला
७ संक्रन्दनः अनिमिषः एकवीरः— गर्जना करनेवाला आंखकी पलकें न झपकनेवाला अद्वितीय वीर
८ साकं शतं सेना अजयत्— एक साथ सौ सेनाओंको जीतनेवाला,
९ जिष्णु अयोध्यः दुश्च्यवनः धृष्णु— विजयी जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है जिसको स्थानभ्रष्ट करना कठिन है और जो शत्रुको धर्षण करता है।
१० इषुहस्तः वृष्णः— बाण हाथमें धरनेवाला बलवान् वीर
११ जयत सहध्वं— विजय करो शत्रुका पराभव करो।
१२ निषङ्गी वशी— कवचधारी तरकसधारी सबको वशमें रखनेवाला

१ (अथर्व भाष्य काण्ड १९)

१३ युधः सत्कर्ता— युद्धोंको सम्यक् रीतिसे करनेवाला,
१४ संसृष्टजित् बाहुशर्धी— युद्ध जीतनेवाला बाहुबल जिसमें विशेष है
१५ उग्रधन्वा अस्ता— उग्र धनुष्य धरनेवाला धनुष्य बाण फेंकनेवाला
१६ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः— अपने और शत्रुके बलको यथावत् जाननेवाला, युद्धमें स्थिर रहनेवाला विशेष वीर।
१७ सहस्वान् वाजी सहमानः उग्रः— शत्रुका पराभव करनेवाला बलवान्, सामर्थ्यवान् उग्रवीर
१८ अभिवीरः अभि-सत्वा सहोजित्— वीरोंके साथ रहनेवाला बलशाली अपने बलसे शत्रुका जीतनेवाला
१९ जैत्रं रथं आ तिष्ठ— विजयी रथपर चढ।
२० वीरं अनु हर्षध्वं— वीरका उत्साह बढाओ।
२१ उग्रं अनु सं रभध्वं— उग्र वीरको प्रोत्साहन दो।
२२ ग्रामजितं गोजितं— ग्रामको जीतनेवाला, गौओंको जीतनेवाला
२३ वज्रबाहुं जयन्तं— वज्रके समान बाहुवाला, विजयी वीर,
२४ ओजसा प्रमृणन्— बलसे शत्रुका वध करनेवाले
२५ गोत्राणि सहसा गाहमानः— गौरक्षणके स्थान बलसे प्राप्त करनेवाला
२६ दासमन्युः— बडी भारी शत्रुपर क्रोध करनेवाला
२७ दुश्च्यवनः पृतनाषाड् अयोध्यः— स्थानभ्रष्ट करनेके लिये अशक्य शत्रुसेनाको जीतनेवाला। जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है।

(१४) अभयम्।

(ऋषिः— अथर्वा। देवता— द्यावापृथिवी।)

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ १ ॥ (८८)

(१५) अभयम्।

(ऋषिः— अथर्वा। देवता— इन्द्रः मन्त्रोक्ताः।)

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १ ॥
इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥

---

२८ पुरस्तु अस्माकं सेना भवतु— पुरोंमें हमारी सेनाओंका रक्षण करे।
२९ रक्षोहा अमित्रहा अपबाधमानः— राक्षसोंका नाशक शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाला।
३० शत्रून् प्रमृणन् अमित्रान् प्रमृणन्— शत्रुओंका नाश करके दुःखको कुचलनेवाला
३१ अस्माकं तनूनां भविता— हमारे शरीरोंका रक्षक
३२ अभिभञ्जतीनां अपघ्नतीनां देवसेनानां— शत्रुका विनाश करके जय पानेवाली देवसेना।
३३ महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानां घोषः उदस्थात्— बड़े मनवाले भुवनोंको हिलानेवाले जय करनेवाले देवोंका जयघोष हो रहा है।
३४ अस्माकं ध्वजाः जयन्तु— हमारे ध्वज जय प्राप्त करें।
३५ अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु— हमारे वीर ऊंचे हों
३६ अस्मान् देवासः हवेषु अवत— हमें देव युद्धोंमें सुरक्षित रखें।
ये वचन विचारसे अनेक पता लग सकता है कि किस युद्धमें जय होता है। इससे विरुद्ध दुर्भावसे पराभव होता है।

---

(१४) अभयम्।

अर्थ— (इदं श्रेयः अवसानं उत् अगाम्) इस श्रेष्ठ स्थानतक मैं पहुंच गया हूं। (द्यावा पृथिवी मे शिवे अभूतां) द्युलोक और भूलोक मेरे लिये सुख देनेवाले हों। (प्रदिशः मे असपत्नाः भवन्तु) दिशाएं मेरे लिये शत्रुरहित हों। (त्वा न द्विष्मः वै) तेरा हम द्वेष नहीं करते। (नः अभयं अस्तु) हमारे लिये अभय हो ॥ १ ॥

न वै त्वा द्विष्मः — हम तेरा द्वेष नहीं करते। यह वचन सुबोध है। हम स्वयं किसीका द्वेष नहीं करेंगे। पर दूसरे द्वेष करने लगे तो हम उनको रहने नहीं देंगे क्योंकि चारों दिशाओंमें निर्भयता और शान्ति स्थापन करना है।

(१५) अभयम्।

(हे इन्द्र) हे इन्द्र! (यतः भयामहे) जहांसे हमें भय होता है (ततः) वहांसे (नः अभयं कृधि) हमें निर्भय कर। हे (मघवन्) इन्द्र! (त्वं शग्धि) ऐसा करनेमें तू समर्थ है। (त्वं तव ऊतिभिः) तू अपने रक्षण सामर्थ्योंसे (द्विषः वि जहि) द्वेष करनेवालोंको जीत और (मृधः वि जहि) हिंसकोंका नाश कर ॥ १ ॥

(वयं अनुराधं इन्द्रं हवामहे) हम अनुकूल सिद्धि करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं। (द्विपदा चतुष्पदा अनु राध्यास्म) दो पांववालों और चार पांववालोंसे हम अनुकूल सिद्धि प्राप्त करें। हे इन्द्र! (अररुषीः सेनाः नः मा उप गुः) कंजूस शत्रु सेनाएं हमारे पास न आ जांय। (विषूचीः द्रुहः वि नाशय) सब द्रोहियोंकी सेनाओंका नाश कर ॥ २ ॥

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात्स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३ ॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥ ४ ॥
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ६ ॥ (१४)

(१६) अभयम् ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — मन्त्रोक्ताः ।)

असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ २ ॥ (१५)

अर्थ— (इन्द्रः त्राता) इन्द्र रक्षक है (उत वृत्रहा) और वह शत्रुनाशक है। वह (परस्फानः वरेण्यः) शत्रुनाशक और सब श्रेष्ठ है। (सः) वह (चरमतः स मध्यतः) अन्तसे मध्यसे (स पश्चात् स पुरस्तात्) पीछेसे और आगेसे (नः रक्षिता अस्तु) हमारा रक्षक हो ॥ ३ ॥

तू विद्वान् है इसलिये तू (उरुं लोकं नः अनु नेषि) हमें विशाल लोकमें ले जा। (यत् स्वः ज्योतिः) जहां सुखमय ज्योति है और (अभयं स्वस्ति) हमारे लिये निर्भयता और सुख है। हे इन्द्र! (ते स्थविरस्य बाहू उग्रा) तेरे जैसे स्थिर रहनेवालेकी दोनों भुजाएं उग्र हैं (बृहन्ता शरणा उप क्षयेम) हम तेरे बड़े आश्रयस्थानमें रहेंगे ॥ ४ ॥

(अन्तरिक्षं नः अभयं करति) अन्तरिक्ष हमें निर्भय करे। (उभे इमे द्यावापृथिवी अभयं) ये दोनों द्युलोक और पृथिवी हमें निर्भय करें। (पश्चात् अभयं पुरस्तात् अभयं) पीछेसे और आगेसे अभय हो (उत्तरात् अधरात् नः अभयं अस्तु) ऊपरसे और नीचेसे हमें अभय हो ॥ ५ ॥

(मित्रात् अभयं अमित्रात् अभयं) मित्रसे और शत्रुसे हमें अभय हो (ज्ञातात् अभयं यः पुरः अभयं) ज्ञात पुरुषसे अभय हो, जो आगे है उससे अभय हो। (नः अभयं नक्तं अभयं दिवा) रात्रीमें और दिनमें हमारे लिये अभय हो। (सर्वाः आशाः मम मित्रं भवन्तु) सब दिशाएं हमारा मित्र बनें ॥ ६ ॥

(१६) अभयम् ।

(पुरस्तात् असपत्नं) आगेसे शत्रु न रहें (नः पश्चात् अभयं कृतं) हमें पीछेसे अभय हो। (सविता मा दक्षिणतः) सविता मुझे दक्षिणसे और (शचीपतिः मा उत्तरात्) शक्तिका स्वामी इन्द्र [illegible] ॥ १ ॥

(आदित्याः दिवः मा रक्षन्तु) आदित्य द्युलोकसे मेरी रक्षा करें (अग्नयः भूम्याः रक्षन्तु) अग्नियां भूमिसे रक्षा करें। (इन्द्राग्नी पुरस्तात् मा रक्षतां) इन्द्र और अग्नि आगेसे रक्षण करें (अश्विनौ अभितः शर्म यच्छतां) अश्विनौ चारों ओरसे सुख देवें। (अघ्न्या तिरश्चीन् रक्षतु) गौ तिरछी रक्षा करे। (भूतकृतः जातवेदाः) भूतोंको बनानेवाला जातवेद [illegible] (मे सर्वतः वर्म सन्तु) मेरे सब ओरसे कवच हों ॥ २ ॥

(१७) सुरक्षा ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — मन्त्रोक्ताः ।)

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात्तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १ ॥
वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ २ ॥
सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ३ ॥
वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥
सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ५ ॥
आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि ।
ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ६ ॥
विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ७ ॥

---

(१७) सुरक्षा ।

अर्थ— (वसुभिः पुरस्तात्) वसुओंके साथ आगेसे (अग्निः मा पातु) अग्नि मेरी रक्षा करे। (तस्मिन् क्रमे) उसमें मैं चलता हूं। (तस्मिन् श्रये) उसमें आश्रय लेता हूं। (तां पुरं प्रैमि) उस नगरीमें मैं जाता हूं। (स मा रक्षतु) वह मेरी रक्षा करे। (स मा गोपायतु) वह मुझे बचावे। (तस्मै आत्मानं परि ददे) उसके लिये मैं अपने आपको देता हूं। (स्वाहा) मैं समर्पण करता हूं ॥ १ ॥

(वायुः मा अन्तरिक्षेण) वायु मुझे अन्तरिक्षसे (एतस्याः दिशः पातु) इस दिशासे सुरक्षित रखे। (आगे पूर्ववत्) ॥ २ ॥

(सोमः मा रुद्रैः दक्षिणायाः दिशः पातु) सोम मुझे रुद्रोंके साथ दक्षिण दिशासे सुरक्षित रखे ॥ ॥ ३ ॥

(वरुणः मा आदित्यैः एतस्याः दिशः पातु) वरुण मुझे आदित्योंके साथ इस दिशासे सुरक्षित रखे ॥ ॥ ४ ॥

(सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्याः दिशः पातु) सूर्य मुझे द्युलोक और पृथिवी लोकके पश्चिम दिशासे सुरक्षित रखे ॥ ॥ ५ ॥

(आपः मा ओषधिमतीः एतस्याः दिशः मा पान्तु) जल औषधि युक्त मुझे इस दिशासे सुरक्षित रखे ॥ ॥ ६ ॥

(विश्वकर्मा सप्तऋषिभिः मा उदीच्याः दिशः पातु) विश्वकर्मा सप्तऋषियोंके साथ मुझे उत्तर दिशामें सुरक्षित रखे ॥ ॥ ७ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ८ ॥
प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ९ ॥
बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१०॥ (१०९)

(१८) सुरक्षा।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — मन्त्रोक्ताः ।)

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥ १ ॥
वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ २ ॥
सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥
वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ४ ॥
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ५ ॥
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥

अर्थ— (इन्द्रः मरुत्वान् मा एतस्याः दिशः पातु) इन्द्र मरुतोंके साथ मुझे इस दिशामें सुरक्षित रखे ॥ ८ ॥

(प्रजापतिः प्रजननवान् प्रतिष्ठाया सह ध्रुवायाः दिशः मा पातु) प्रजापति प्रजननशक्तिके और प्रतिष्ठाके साथ ध्रुव दिशामें मुझे सुरक्षित रखे ॥ ९ ॥

(बृहस्पतिः विश्वैः देवैः मा ऊर्ध्वायाः दिशः पातु) बृहस्पति सब देवोंके साथ मुझे ऊर्ध्व दिशामें सुरक्षित रखे ॥ १० ॥

(१८) सुरक्षा।

(ये अघायवः) जो पापी (मा) मुझे (प्राच्याः दिशः अभिदासात्) पूर्व दिशासे आकर दास बनाना चाहते हैं (ते वसुवन्तं अग्निं ऋच्छन्तु) वे वसुओंके साथ अग्निके वश हों ॥ १ ॥

जो पापी (एतस्याः दिशः) इस दिशासे आकर दास बनाना चाहते हैं वे (अन्तरिक्षवन्तं वायुं) अन्तरिक्षमें रहने वाले वायुके (ऋच्छन्तु) आधीन हों ॥ २ ॥

जो पापी दक्षिण दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (रुद्रवन्तं सोमं ऋच्छन्तु) रुद्रयुक्त सोमके आधीन हों ॥ ३ ॥

जो पापी इस दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (आदित्यवन्तं वरुणं ऋच्छन्तु) आदित्य युक्त वरुणके आधीन हों ॥ ४ ॥

जो पापी पश्चिम दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (द्यावापृथिवीवन्तं सूर्यं) द्यावापृथिवीसे युक्त सूर्यके वशमें होकर रहें ॥ ५ ॥

जो पापी इस दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (ओषधीमतीः आपः) ओषधि युक्त जलके वशमें होकर रहें ॥ ६ ॥

जो पापी उत्तर दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (सप्तऋषिवन्तं विश्वकर्माणं) सात ऋषि युक्त विश्वकर्माके वशमें होकर रहें ॥ ७ ॥

इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ८ ॥
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु । ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥१०॥ (१११)

(१९) शर्म।

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — चन्द्रमा मन्त्रोक्ताश्च।)

मित्रः पृथिव्योदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ १ ॥
वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ २ ॥
सूर्यो दिवोदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ३ ॥
चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ४ ॥
सोम ओषधीभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ५ ॥
यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ६ ॥
समुद्रो नदीभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ७ ॥

अर्थ। जो शत्रु इस दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (मरुत्वन्तं इन्द्रं) मरुत्वान् इन्द्रके वशमें होकर रहें ॥ ८ ॥

जो शत्रु ध्रुव दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (प्रजननवन्तं प्रजापतिं) प्रजनन सामर्थ्यसे युक्त प्रजापालकके वशमें होकर रहें ॥ ९ ॥

जो शत्रु ऊर्ध्व दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (विश्वदेववन्तं बृहस्पतिं) सब देवोंके साथ बृहस्पतिके वशमें होकर रहें ॥ १० ॥

(१९) शर्म।

(मित्रः पृथिव्या उदक्रामत्) मित्र पृथ्वीसे ऊपर चढा। (वः तां पुरं प्र णयामि) आपको उस किलेमें मैं ले जाता हूं। (तां आ विशत) उसमें आओ (तां प्र विशत) उसमें प्रविष्ट होओ (सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु) वह तुम्हें सुख और रक्षण देवे ॥ १ ॥

(वायुः अंतरिक्षेण उदक्रामत्) वायु अन्तरिक्षसे ऊपर चढा ॥ २ ॥

(सूर्यः दिवा उदक्रामत्) सूर्य द्युलोकसे ऊपर चढा ॥ ३ ॥

(चन्द्रमाः नक्षत्रैः उदक्रामत्) चन्द्रमा नक्षत्रोंके साथ ऊपर चढा ॥ ४ ॥

(सोमः ओषधीभिः उदक्रामत्) सोम औषधियोंके साथ ऊपर चढा ॥ ५ ॥

(यज्ञः दक्षिणाभिः उदक्रामत्) यज्ञ दक्षिणाओंके साथ ऊपर चढा ॥ ६ ॥

(समुद्रः नदीभिः उदक्रामत्) समुद्र नदियोंके साथ ऊपर चढा ॥ ७ ॥

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ८ ॥
इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ९ ॥
देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१०॥
प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११॥ (१२७)

(२०) सुरक्षा।

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — नाना देवताः।)

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥ १ ॥
यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥
यत्ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः । इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान्पातु विश्वतः ॥ ३ ॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म मे विश्वे देवाः क्रन्मा मा प्रापत्प्रतीचिका ॥४॥ (१३१)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ— (ब्रह्म ब्रह्मचारिभिः उदक्रामत्) ज्ञान ब्रह्मचारियोंके साथ उत्क्रांत हुआ ॥ ८ ॥
(इन्द्रः वीर्येण उदक्रामत्) इन्द्र वीर्यके ऊपर चढा ॥ ९ ॥
(देवाः अमृतेन उदक्रामन्) देव अमृतके साथ ऊपर चढे ॥ १० ॥
(प्रजापतिः प्रजाभिः उदक्रामत्) प्रजापति प्रजाओंके साथ ऊपर चढा ॥ ११ ॥

(२०) सुरक्षा।

(यं पौरुषेयं वधं अप नि अधुः) जिस पुरुषके वधके साधनको दूर रखते हैं। इन्द्र अग्नि धाता सविता बृहस्पति सोम राजा वरुण अश्विनौ यम पूषा ये सब (अस्मान् मृत्योः परि पातु) हमें मृत्युसे सुरक्षित रखें ॥ १ ॥

(भुवनस्य यः पतिः) भुवनके पति प्रजापति वायुने (प्रजाभ्यः यानि चकार) प्रजाओंके लिये जो कवच किये (प्रदिशः दिशः च यानि वसते) दिशा उपदिशाओंमें जो कवच बसते हैं (तानि वर्माणि मे बहुलानि सन्तु) वे कवच मेरे लिये बहुत हों ॥ २ ॥

(ते तनूषु) तेरे शरीरोंमें (द्युराजयः देहिनः देवाः) तेजस्वी तपस्वी देव (यत् अनह्यन्त) जो कवच धारण करते हैं, (इन्द्रः यत् वर्म चक्रे) इन्द्रने जो कवच बनाया (तत् विश्वतः अस्मान् पातु) वह सब ओरसे हमारी रक्षा करे ॥ ३ ॥

(द्यावा पृथिवी मे वर्म) द्युलोक और पृथिवी मेरा कवच हों, (अहः वर्म) दिन मेरा कवच हो (सूर्यः वर्म) सूर्य मेरा कवच हो (विश्वे देवाः मे वर्म क्रन्) सब देव मेरा कवच करें (प्रतीचिका मा मा प्रापत्) विरोधी मुझे प्राप्त न हो ॥ ४ ॥

॥ यहां द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

(२१) छन्दांसि ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — छन्दांसि ।)

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यै ॥ १ ॥ (१११)

(२२) ब्रह्मा ।

(ऋषिः — अङ्गिराः । देवता — मन्त्रोक्तदेवताः ।)

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥ षष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥ नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥ तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥११॥ उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥१२॥
उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥१३॥ ऋषिभ्यः स्वाहा ॥१४॥
शिखिभ्यः स्वाहा ॥१५॥ गणेभ्यः स्वाहा ॥१६॥
महागणेभ्यः स्वाहा ॥१७॥ सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥१८॥
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥१९॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥२०॥
ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥२१॥ (१३२)

---

(२१) छन्दांसि ।

अर्थ— गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पंक्ति, त्रिष्टुप् जगती ये वेदके छन्द हैं ॥ १ ॥

(२२) ब्रह्मा ।

आंगिरसोंके पहिले पञ्चानुवाकोंके साथ २ छठेके लिये ३ सप्तम अष्टमके लिये ४ नीले नखोंवालोंके लिये ५ हरोंके लिये ६ क्षुद्रोंके लिये ७ पर्यायवालोंके लिये ८ पहिले शंखोंके लिये ९ दूसरे शंखोंके लिये १० तीसरे शंखोंके लिये ११ अन्तिमसे जो उत्तम हैं उनके लिये १२ उत्तमोंके लिये १३ उत्तरोंके लिये १४ ऋषियोंके लिये १५ शिखावालोंके लिये १६ गणोंके लिये १७ बडे गणोंके लिये १८ अंगोंका ज्ञान देनेवाले सब अंगिरोंके लिये १९ अलग अलग सहस्रवाले दोनोंके लिये २० ब्रह्मके लिये हम अर्पण करते हैं।

अथर्ववेदमें २० काण्ड हैं उन प्रत्येक काण्डके अनुवाक सूक्त और वर्ग आदिकों ये यहां हैं उनमें ब्रह्म ऋषियोंका भी संकेत है। बीस काण्डोंके लिये ये बीस सूत्र हैं।

(ब्रह्म-ज्येष्ठा वीर्याणि संभृता) ब्रह्मज्ञान जिनमें श्रेष्ठ है ऐसे सब प्रकारके बलके उत्तम यहां इकट्ठे किये हैं। (अग्रे ज्येष्ठं ब्रह्म) प्रारम्भमें श्रेष्ठ ब्रह्मने (दिवं आततान) द्युलोकको विस्तृत किया। (ब्रह्मा उत भूतानां प्रथमः जज्ञे) ब्रह्मा भूतोंके पहिले उत्पन्न हुआ। (तेन ब्रह्मणा कः स्पर्धितुं अर्हति) उस ब्रह्मके साथ स्पर्धा करनेके लिये कौन समर्थ होता है ॥ २१ ॥

इस वेदमें ब्रह्मज्ञान तथा अन्य सामर्थ्य इकट्ठे संग्रहित हुए हैं। सबसे प्रारंभमें ब्रह्म प्रकट हुआ। उसने आकाश उत्पन्न किया। पश्चात् ब्रह्मा उत्पन्न हुआ जिसने सृष्टीकी रचना की। वह सबसे अधिक सामर्थ्यवान् था अतः उससे स्पर्धा करनेमें कोई समर्थ नहीं था।

(२३) अथर्वाणः ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — मन्त्रोक्ताः चन्द्रमाश्च ।)

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥१॥ पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥ २ ॥
षडृचेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥ त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१०॥
चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥११॥ पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१२॥
षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१३॥ सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१४॥
अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१५॥ एकोनविंशतिः स्वाहा ॥१६॥
विंशतिः स्वाहा ॥१७॥ महत्काण्डाय स्वाहा ॥१८॥
तृचेभ्यः स्वाहा ॥१९॥ एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥२०॥
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥२१॥ एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥२२॥
रोहितेभ्यः स्वाहा ॥२३॥ सूर्याभ्यां स्वाहा ॥२४॥
व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥२५॥ प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥२६॥
विषासह्यै स्वाहा ॥२७॥ मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८॥
ब्रह्मणे स्वाहा ॥२९॥
ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥३०॥ (१८१)

(२३) अथर्वाणः ।

अर्थ— १ अथर्ववेदके चार ऋचावालोंके लिये २ पांच ऋचावालोंके लिये ३ छः ऋचावालोंके लिये ४ सात ऋचावालोंके लिये ५ आठ ऋचावालोंके लिये ६ नौ ऋचावालोंके लिये ७ दस ऋचावालोंके लिये ८ ग्यारह ऋचावालोंके लिये ९ बारह ऋचावालोंके लिये १० तेरह ऋचावालोंके लिये ११ चौदह ऋचावालोंके लिये १२ पंद्रह ऋचावालोंके लिये १३ सोलह ऋचावालोंके लिये १४ सत्रह ऋचावालोंके लिये १५ अठारह ऋचावालोंके लिये १६ उन्नीस ऋचावालोंके लिये १७ बीसके लिये १८ बडे काण्डोंके लिये १९ तीन ऋचावालोंके लिये २० एक ऋचावालोंके लिये २१ क्षुद्रोंके लिये २२ एक चरणकी विशेष ऋचा नहीं कहा जाता उनके लिये २३ रोहितोंके लिये २४ दो सूर्याओंके लिये २५ व्रात्योंके लिये २६ प्राजापत्योंके लिये २७ विषासहिके लिये २८ मंगलिकोंके लिये २९ ब्रह्माके लिये हम समर्पण करते हैं।

३० वें मंत्रका अर्थ पूर्व स्थानमें २२।२१ में दिया है।

महाकाण्ड का संकेत १८ वा काण्डसे है चार पांच आदि संख्यावाले उन ऋषियोंका संकेत है कि जिनके सूक्त इतनी संख्याके मंत्रोंके हैं। गोपथ ब्रा० १।१।५ में इस विषयमें देखने योग्य है। क्षुद्रसे अथर्वेद [illegible] भी स्वीय हैं एकानृचका अर्थ आया मंत्र रोहित प्रतिपादक काण्ड रोहित पदसे विषासहिसे १७ वां काण्ड इस तरह बोध होता है।

(२४) राष्ट्रम् ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — ब्रह्मणस्पतिः नाना देवताः ।)

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् । तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥
परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक्क्षत्रेऽधि जागरत् ॥ २ ॥
परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक्श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥ ३ ॥
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ ४ ॥
जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ ५ ॥
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥ ६ ॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥
हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥ ८ ॥ (१९१)

---

(२४) राष्ट्रम् ।

अर्थ—(येन) जो जैसा (सवितारं देवं) सविता देवको (देवाः परि अधारयन्) देवोंने पहनाया था हे ब्रह्मणस्पते ! (तेन इमं) उससे इस पुरुषको (राष्ट्राय परि धत्तन) राष्ट्रके लिये परिधान कराओ ॥ १ ॥

(इमं इन्द्रं) इस इन्द्रको (आयुषे) दीर्घायुके लिये और (महे क्षत्राय) बडे क्षात्रतेजके लिए (परि धत्तन) यह वस्त्र पहनाओ । (यथा एनं जरसे नयां) जिससे मैं इसको बुढापे तक ले जाऊं (क्षत्रे ज्योक् अधि जागरत्) और यह क्षात्रकर्ममें देरतक जागता रहे ॥ २ ॥

(इमं सोमं) इस सोमको (आयुषे महे श्रोत्राय) दीर्घायु और महान् ज्ञानशक्तिके लिए यह वस्त्र (परि धत्तन) पहनाओ (यथा एनं जरसे नयां) जिससे इसको बुढापेके लिये ले जाऊं और (श्रोत्रे ज्योक् अधि जागरत्) ज्ञान प्राप्तिके लिए यह सदा जागता रहे ॥ ३ ॥

(परि धत्त) वस्त्र पहनाओ (नः इमं वर्चसा धत्त) हमारे इसको तेजके साथ रखो (जरामृत्युं दीर्घं आयुः कृणुत) यह बुढापेके पश्चात् इसको मृत्यु प्राप्त और दीर्घ आयु प्राप्त हो । बृहस्पतिने (राज्ञे सोमाय परिधातवै उ) राजा सोमको परिधान करनेके लिये (एतत् वासः प्रायच्छत्) यह वस्त्र दिया है ॥ ४ ॥

(जरां सु गच्छ) बुढापेको अच्छी प्रकार प्राप्त हो (वासः परि धत्स्व) वस्त्र पहनो । (गृष्टीनां अभिशस्तिपा उ भव) प्रजाओंका विनाशसे बचानेवाला हो । (शतं च जीव शरदः पुरूचीः) सौ वर्ष जीवित रह (रायः च पोषं उपसंव्ययस्व) धन और पुष्टिको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

(स्वस्तये इदं वासः परि अधिथाः) कल्याणके लिये यह वस्त्र तूने पहना है । (वापीनां अभिशस्तिपा उ अभूः) कुओं या बावडियोंका रक्षण करनेवाला तू हो गया है । (पुरूचीः शरदः शतं च जीव) सौ वर्षतक तू जीवित रह । (जीवन् चारुः वसूनि वि भजासि) जीवित रहकर सुंदर धन अपने मित्रोंमें बांट ॥ ६ ॥

(योगेयोगे) प्रत्येक कार्यमें (वाजेवाजे) और प्रत्येक युद्धमें (सखायः) हम सब मित्र इकट्ठे होकर (तवस्तरं इन्द्रं ऊतये हवामहे) बलवान् इन्द्रको अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ ७ ॥

(हिरण्यवर्णः) सुवर्ण जैसे रंगवाला (अजरः) बुढापेसे रहित (सुवीरः) उत्तम वीरोंसे युक्त (जरा-मृत्युः) बुढापा आनेके पश्चात् मृत्यु प्राप्त करनेवाला (प्रजया सं विशस्व) अपनी प्रजाके साथ रहकर आराम कर । (तत् अग्निः आह) यह अग्निने कहा (तत् उ सोम आह) यह सोमने कहा (तत् बृहस्पतिः सविता इन्द्रः) यही बृहस्पति सविता और इन्द्रने कहा है ॥ ८ ॥

(२५) अश्वः।

(ऋषिः — गोपथः। देवता — वाजी।)

अभ्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च। उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥१॥ (१९१)

(२६) हिरण्यधारणम्।

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — अग्निः हिरण्यं च)

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु।
य एनद्वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥
यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे।
तत्त्वा चन्द्र वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान्भवति यो बिभर्ति ॥ २ ॥
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥
यद्वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः।
इन्द्रो यद्वृत्रहा वेद तत्त आयुष्यं भुवत्तत्ते वर्चस्यं भुवत् ॥ ४ ॥ (१९६)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

---

(२५) अश्वः।

अर्थ— (अभ्रान्तस्य प्रथमस्य च) न थकनेवाले और प्रथम आनेवालेके (मनसा त्वा युनज्मि) मनके साथ तुझे युक्त करता हूं। (उत्कूलं उद्वहो भव) किनारेपरसे ऊपरकी ओर ले जानेवाला हो (उदुह्य) ऊपर ले जाकर (प्रति धावतात्) फिर वापिस दौड आ ॥ १ ॥

(२६) हिरण्यधारणम्।

(अग्नेः प्रजातं) अग्निसे उत्पन्न हुआ (यत् हिरण्यं) जो सोना है वह (मर्त्येषु अमृतं परि दध्रे) मानवोंमें अमृत रखता है। (यः एनत् वेद) जो यह जानता है (स इदं एनं अर्हति) वही नियमसे इस सुवर्ण धारणके लिये योग्य होता है। (यः बिभर्ति जरामृत्युः भवति) जो इसका धारण करता है उसकी वृद्धावस्थामें मृत्यु होती है ॥ १ ॥

(यत् हिरण्यं सुवर्णं) जिस उत्तम वर्णवाले सोनेको (प्रजावन्तः पूर्वे मनवः सूर्येण दधिरे) प्रजावाले पहिले मनुष्योंने सूर्यसे धारण किया (तत् त्वा) वह तुझे (चन्द्र वर्चसा सं सृजति) चमकता हुआ तेजसे युक्त करता है (यः बिभर्ति) जो इसे धारण करता है वह (आयुष्मान् भवति) आयुष्मान् होता है ॥ २ ॥

(आयुषे त्वा) आयुष्यके लिये तुझे (वर्चसे त्वा) तेजके लिये तुझे, (ओजसे च बलाय च) शक्ति और बलके लिये तुझे मैं बांधता हूं (यथा) जिससे धारण करके (जनान् अनु) लोगोंमें (हिरण्यतेजसा विभासासि) सोनेके तेजसे प्रकाशमान होगे ॥ ३ ॥

(राजा वरुणः यत् वेद) राजा वरुण जिसको जानता है (देवः बृहस्पतिः वेद) देव बृहस्पति जिसको जानता है (वृत्रहा इन्द्रः यत् वेद) वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र जो जानता है (तत् ते आयुष्यं भुवत्) वह तुम्हारी आयुकी वृद्धि करनेवाला होवे (तत् ते वर्चस्यं भुवत्) वह तेरा तेज बढानेवाला होवे ॥ ४ ॥

॥ यहां तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

(२७) सुरक्षा।

(ऋषिः — भृग्वङ्गिराः। देवता — त्रिवृत्, चन्द्रमाश्च।)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः । वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः । माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥
त्रीन्नाकांस्त्रीन्त्समुद्रांस्त्रीन्ब्रध्नांस्त्रीन्वैष्टपान् । त्रीन्मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान्गोप्तॄन्कल्पयामि ते ॥ ४ ॥
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् । अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् । भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥
प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः । प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥
आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान्जीव मा मृथाः । प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

(२७) सुरक्षा।

अर्थ— (वृषभः त्वा गोभिः पातु) बैल तेरा रक्षण गौओंके साथ करे। (वृषा वाजिभिः त्वा पातु) बैल घोडोंके साथ तेरा रक्षण करे। (वायुः ब्रह्मणा त्वा पातु) वायु ज्ञानसे तेरा रक्षण करे (इन्द्रः इन्द्रियैः त्वा पातु) इन्द्र इन्द्रियोंके साथ तेरा रक्षण करे ॥ १ ॥

(सोमः ओषधीभिः त्वा पातु) सोम भी औषधियोंके साथ तेरी रक्षा करे। (सूर्यः नक्षत्रैः पातु) सूर्य नक्षत्रोंके साथ रहकर तेरी रक्षा करे। (चन्द्रः वृत्रहा माद्भ्यः त्वा) वृत्रको मारनेवाला चन्द्र महिनोंके साथ तेरा रक्षण करे। (वातः प्राणेन रक्षतु) वायु प्राणके साथ तेरी रक्षा करे ॥ २ ॥

(तिस्रः दिवः) तीन द्युलोक (तिस्रः पृथिवीः) तीन भूमियां (त्रीणि अन्तरिक्षाणि च) तीन अन्तरिक्ष (चतुरः समुद्रान्) चार समुद्र (त्रिवृतं स्तोमं) तीन गुणा स्तोम (त्रिवृतः आपः आहुः) तीन गुणा जल हैं ऐसा कहते हैं (त्रिवृद्भिः त्रिवृताः ताः त्वा रक्षन्तु) तीन गुणा तीन गुणित होकर वे तेरी रक्षा करें ॥ ३ ॥

(त्रीन् नाकान्) तीन स्वर्गोंको (त्रीन् समुद्रान्) तीन समुद्रोंको (त्रीन् ब्रध्नान्) तीन ब्रध्नोंको (त्रीन् वैष्टपान्) तीन विशेष तपनेवाले आश्रयोंको (त्रीन् मातरिश्वनः) तीन वायुओंको (त्रीन् सूर्यान्) तीन सूर्योंको (ते गोप्तॄन् कल्पयामि) तेरे रक्षा करनेवाले बनाता हूं ॥ ४ ॥

(घृतेन त्वा समुक्षामि) घीसे तुझे सिंचता हूं हे अग्नि! (आज्येन वर्धयन्) घीसे तुझे बढाता हूं। (अग्नेः चन्द्रस्य सूर्यस्य) अग्निके, चन्द्रके और सूर्यके (प्राणं) प्राणको (मायिनः मा दभन्) कपटी लोग न दबावें ॥ ५ ॥

(मायिनः) कपटी लोग (वः प्राणं मा) तुम्हारे प्राणको (वः अपानं मा) तुम्हारे अपानको तथा (हरः) बलको (मा दभन्) न दबावें। (विश्ववेदसः देवाः) सब धनवाले देव (भ्राजन्तः) चमकते हुए (दैव्येन धावत) अपनी दिव्य शक्तिके साथ तुम्हारे सहाय्यार्थ दौडें ॥ ६ ॥

(प्राणेन अग्निं सं सृजति) प्राणसे अग्निको संयुक्त करता हूं। (वातः प्राणेन संहितः) वायु प्राणके साथ जुडा हुआ है। (देवाः) सब देवोंने (विश्वतोमुखं सूर्यं) चारों ओर मुखवाले सूर्यको (प्राणेन अजनयन्) प्राणके साथ उत्पन्न किया है ॥ ७ ॥

(आयुः कृतां आयुषा जीव) आयु बनानेवालोंके आयुसे तू जीवित रह। तू (आयुष्मान् जीव) दीर्घायु होकर जीवित रह (मा मृथाः) मत मर जा। (आत्मन्वतां प्राणेन जीव) आत्मावालोंके प्राणसे जीवित रह। (मृत्योः वशं मा उदगाः) मृत्युके वशमें न जा ॥ ८ ॥

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत्पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ९ ॥
त्रयस्त्रिंशद्देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद्वीर्याणि ॥१०॥
ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥११॥
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१२॥
ये देवा पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१३॥
असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१४॥
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः । इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५॥ २११)

(२८) दर्भमणिः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः) । देवता — दर्भमणिः मंत्रोक्ताश्च ।)

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे । दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥ १ ॥

अर्थ— (देवानां निहितं निधिं) देवोंके गुप्त खजानेको (यं इन्द्रः) जिसको इन्द्रने (देवयानैः पथिभिः) देवयान मार्गोंसे (अन्वविन्दत्) इस [illegible] (आपः त्रिवृद्भिः हिरण्यं जुगुपुः) जलोंने तीन गुणोंके साथ सुवर्णकी रक्षा की (ताः) वे जल (त्रिवृता त्रिवृद्भिः) तीन गुणा तीन गुणोंके साथ (त्वा रक्षन्तु) तेरी रक्षा करें ॥ ९ ॥

(त्रयः त्रिंशत् देवताः) तैंतीस देवताओंने तथा (त्रीणि वीर्याणि) तीन वीर्योंने , (अप्सु अन्तः प्रियायमाणाः) जलोंके अन्दर प्यारसे (जुगुपुः) इसकी रक्षा की । (अस्मिन् चन्द्रे अधि यत् हिरण्यं) इस चमकनेवाले मणिपर जो सुवर्ण है, (तेन अयं वीर्याणि कृणवत्) उसके प्रभावसे यह पुरुष वीरताके कर्म करे ॥ १० ॥

(दिवि ये एकादश देवाः स्थ) द्युलोकमें जो ग्यारह देव हैं (अन्तरिक्षे ये एकादश देवाः स्थ) अन्तरिक्षमें जो ग्यारह देव हैं और (पृथिव्यां ये एकादश देवाः स्थ) पृथिवीपर जो ग्यारह देव हैं (ते देवासः) वे सब (इदं हविः जुषध्वं) इस हविका सेवन करें ॥ ११–१३ ॥

(पुरस्तात् नः असपत्नं) आगेसे हमारे लिये शत्रुका भय न रहे (पश्चात् नः अभयं कृतं) पीछेसे हमारे लिये अभय किया है । (सविता दक्षिणतः मा) सविता दक्षिण दिशासे मेरी रक्षा करे और (शचीपतिः उत्तरात् मा) इन्द्र उत्तर दिशासे मेरी रक्षा करे ॥ १४ ॥

(आदित्याः मा दिवः रक्षन्तु) आदित्य मेरी द्युलोकसे रक्षा करें, (अग्नयः भूम्याः रक्षन्तु) अग्नि भूमीपर मेरी रक्षा करें । (इन्द्राग्नी पुरस्तात् मा रक्षतां) इन्द्र और अग्नि आगेसे मेरी रक्षा करें । (अश्विनौ अभितः शर्म यच्छतां) अश्विनौ मेरा चारों ओरसे आश्रय दें । (तिरश्चीन् अघ्न्या रक्षतु) पशुओंकी रक्षा गौ करे । (भूतकृतः जातवेदाः मे सर्वतः वर्म सन्तु) भूतोंको बनानेवाले अग्नि सब ओरसे मेरा कवच बनें ॥ १५ ॥

(२८) दर्भमणिः ।

(दीर्घायुत्वाय तेजसे) दीर्घायुकी प्राप्ति और तेजस्विताके लिये (इमं मणिं ते बध्नामि) इस मणिको तेरे शरीरपर बांधता हूं । (दर्भं सपत्नदम्भनं) यह दर्भमणि शत्रुका नाश करता है और (द्विषतः हृदः तपनं) द्वेषीके हृदयको संताप उत्पन्न करनेवाला है ॥ १ ॥

(२७) सुरक्षा।

(ऋषिः — भृग्वङ्गिराः। देवता — त्रिवृत्, चन्द्रमाश्च।

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः। वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः। माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान्।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥
त्रीन्नाकांस्त्रीन्त्समुद्रांस्त्रीन्ब्रध्नांस्त्रीन्वैष्टपान्। त्रीन्मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान्गोप्तॄन्कल्पयामि ते ॥ ४ ॥
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन्। अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन्। भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥
प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः। प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥
आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान्जीव मा मृथाः। प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

(२७) सुरक्षा।

अर्थ— (वृषभः त्वा गोभिः पातु) बैल तेरा रक्षण गौओंके साथ करे। (वृषा वाजिभिः त्वा पातु) बैल घोडोंके साथ तेरा रक्षण करे। (वायुः ब्रह्मणा त्वा पातु) वायु ज्ञानसे तेरा रक्षण करे (इन्द्रः इन्द्रियैः त्वा पातु) इन्द्र इन्द्रियोंके साथ तेरा रक्षण करे ॥ १ ॥

(सोमः ओषधीभिः त्वा पातु) सोम औषधियोंके साथ तेरी रक्षा करे। (सूर्यः नक्षत्रैः पातु) सूर्य नक्षत्रोंके साथ रहकर तेरी रक्षा करे। (चन्द्रः वृत्रहा माद्भ्यः त्वा) वृत्रको मारनेवाला चन्द्र महिनोंके साथ तेरा रक्षण करे। (वातः प्राणेन रक्षतु) वायु प्राणके साथ तेरी रक्षा करे ॥ २ ॥

(तिस्रः दिवः) तीन द्युलोक (तिस्रः पृथिवीः) तीन भूमियां (त्रीणि अन्तरिक्षाणि) तीन अन्तरिक्ष (चतुरः समुद्रान्) चार समुद्र (त्रिवृतं स्तोमं) तीन गुणा स्तोम (त्रिवृतः आपः आहुः) तीन गुणा जल है ऐसा कहते हैं (त्रिवृद्भिः त्रिवृताः ताः त्वा रक्षन्तु) तीन गुणा तीन गुणित होकर वे तेरी रक्षा करें ॥ ३ ॥

(त्रीन् नाकान्) तीन स्वर्गोंको (त्रीन् समुद्रान्) तीन समुद्रोंको (त्रीन् ब्रध्नान्) तीन तेजोंको (त्रीन् वैष्टपान्) तीन विशेष तपनवाले लोकोंको (त्रीन् मातरिश्वनः) तीन वायुओंको (त्रीन् सूर्यान्) तीन सूर्योंको (ते गोप्तॄन् कल्पयामि) तेरे रक्षा करनेवाले बनाता हूं ॥ ४ ॥

(घृतेन त्वा समुक्षामि) घीसे तुझे सिंचता हूं हे अग्ने! (आज्येन वर्धयन्) घीसे तुझे बढाता हूं। (अग्नेः चन्द्रस्य सूर्यस्य) अग्निके चन्द्रके और सूर्यके (प्राणं) प्राणको (मायिनः मा दभन्) कपटी लोग न दबावें ॥ ५ ॥

(मायिनः) कपटी लोग (वः प्राणं मा) तुम्हारे प्राणको (वः अपानं मा) तुम्हारे अपानको तथा (हरः) बलको (मा दभन्) न दबावें। (विश्ववेदसः देवाः) सब जाननेवाले देव (भ्राजन्तः) चमकते हुवे (दैव्येन धावत) अपनी दिव्य शक्तिके साथ तुम्हारे सहाय्यार्थ दौडें ॥ ६ ॥

(प्राणेन अग्निं सं सृजति) प्राणसे अग्निको संयुक्त करता है। (वातः प्राणेन संहितः) वायु प्राणके साथ जुडा हुआ है। (देवाः) सब देवोंने (विश्वतोमुखं सूर्यं) चारों ओर मुखवाले सूर्यको (प्राणेन अजनयन्) प्राणसे उत्पन्न किया है ॥ ७ ॥

(आयुःकृतां आयुषा जीव) आयु बनानेवालोंके आयुसे तू जीवित रह। तू (आयुष्मान् जीव) दीर्घायु होकर जीवित रह (मा मृथाः) मत मर जा। (आत्मन्वतां प्राणेन जीव) आत्मावालोंके प्राणसे जीवित रह। (मृत्योः वशं मा उदगाः) मृत्युके वशमें न जा ॥ ८ ॥

मृण दर्भ सपत्नान्मे मृण मे पृतनायतः । मृण मे सर्वान्दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥
मन्थ दर्भ सपत्नान्मे मन्थ मे पृतनायतः । मन्थ मे सर्वान्दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५॥
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान्मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः । पिण्ड्ढि मे सर्वान्दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥६॥
ओष दर्भ सपत्नान्मे ओष मे पृतनायतः । ओष मे सर्वान्दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७॥
दह दर्भ सपत्नान्मे दह मे पृतनायतः । दह मे सर्वान्दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८॥
जहि दर्भ सपत्नान्मे जहि मे पृतनायतः । जहि मे सर्वान्दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥९॥ (२३०)

(१०) दर्भमणिः ।

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता — दर्भमणिः)

यत्ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते । तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः ॥ १ ॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते । तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २ ॥
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् । त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः । मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥
यत्समुद्रो अभ्यक्रन्दत्पर्जन्यो विद्युता सह । ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ ५ ॥ (२३५)

(मे पृतनायतः) मुझपर सेना लानेवालोंको (मे सर्वान् दुर्हार्दः) सब दुष्ट हृदयवालोंको (मे द्विषतः) मेरा द्वेष करनेवालोंको ॥ ४-९ ॥

सब मंत्र समान पदवाले हैं इसलिये सब मंत्रोंका भाव इकट्ठा दिया है ।

(१०) दर्भमणिः ।

अर्थ— हे दर्भ ! (यत् ते जरामृत्युः) जो बुढापेके पश्चात् मृत्यु लानेकी शक्ति है तथा (ते शतं वर्मसु वर्म) जो तेरा सैंकडों कवचोंमें उत्तम कवच है (तेन दर्भ वर्मिणं कृत्वा) उससे इसको कवचधारी बनाकर (वीर्यैः सपत्नान् जहि) अपने पराक्रमोंसे शत्रुओंको मार ॥ १ ॥

हे दर्भ ! (ते शतं वर्माणि) तेरे सौ कवच हैं (ते सहस्रं वीर्याणि) तेरे हजारों वीर्य हैं (विश्वे देवाः) सब देवोंने (त्वां अस्मै जरसे भर्तवै) तुझे इसको बुढापेतककी प्राप्ति होनेके लिये और भरणपोषणके लिये (अदुः) दिया है ॥ २ ॥

(त्वां देववर्म आहुः) तुझे देवोंका कवच कहते हैं हे दर्भ ! (त्वां बृहस्पतिं) तुझे बृहस्पति कहते हैं (त्वां इन्द्रस्य वर्म आहुः) तुझे इन्द्रका कवच कहते हैं । (त्वं राष्ट्राणि रक्षसि) तू राष्ट्रोंका रक्षण करता है ॥ ३ ॥

हे दर्भ ! (सपत्न क्षयणं) शत्रुनाशक (द्विषतः हृदः तपनं) द्वेष करनेवालोंके हृदयोंको संताप देनेवाला (क्षत्रस्य वर्धनं) क्षात्रतेजका संवर्धन करनेवाला (ते तनूपानं मणिं कृणोमि) तेरे शरीरका रक्षक इस मणिको मैं करता हूं ॥ ४ ॥

(यत् समुद्रः अभ्यक्रन्दत्) जो समुद्र गर्जना करता रहा (विद्युता सह पर्जन्यः) बिजलीके साथ मेघ गर्जना करता रहा (ततः हिरण्ययः बिन्दुः) वहांसे सुवर्णका बिन्दु उत्पन्न हुआ (ततः दर्भः अजायत) उससे दर्भमणि उत्पन्न हुआ है ॥ ५ ॥

(३१) औदुम्बरमणि ।

(ऋषिः – सविता (पुष्टिकामः) । देवता — औदुम्बरमणिः ।)

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा । पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् । औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे । औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः । गृह्णे३ऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥
उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥

---

(३१) औदुम्बरमणिः ।

अर्थ— (वेधसा) ज्ञानीने (औदुम्बरेण मणिना) औदुम्बर मणिसे (पुष्टिकामाय) पुष्टि चाहनेवालेके लिये प्रयत्न किया। जिससे (सविता) सविता (मे गोष्ठे) मेरी गोशालामें (सर्वेषां पशूनां स्फातिं) सब पशुओंकी वृद्धि (करत्) करे ॥ १ ॥

(यः नः गार्हपत्यः अग्निः) जो हमारा गार्हपत्य अग्नि (पशूनां अधिपा असत्) पशुओंका अधिपति है, (औदुम्बरः वृषा मणिः) बलवान् औदुम्बरमणि (मा पुष्ट्या स सृजतु) मुझे पुष्टिके साथ युक्त करे ॥ २ ॥

(करीषिणीं) गोबरके खादसे भरपूर घरभूमिको भी (फलवतीं) फलोंसे युक्त होकर (नः गृहे स्वधां इरां च) हमारे घरमें अन्न और पेय भरपूर रखे। (औदुम्बरस्य तेजसा) औदुम्बर मणिके तेजसे (धाता मे पुष्टिं दधातु) धाता मुझे पुष्टि देवे ॥ ३ ॥

(औदुम्बरं मणिं बिभ्रत्) औदुम्बर मणिको धारण करके (अहं) मैं (यत् द्विपात् च चतुष्पात् च) जो द्विपाद और चतुष्पाद और (यानि अन्नानि ये रसाः) जो अन्न और रस हैं (एषां भूमानं गृह्णे) इनकी बहुलताको प्राप्त करता हूं ॥ ४ ॥

(पशूनां पुष्टिं अहं परि जग्रभ) सब पशुओंकी पुष्टि मैंने ली है (चतुष्पदां द्विपदां यत् च धान्यं) चार पांववाले द्विपाद और जो धान्य है। (पशूनां पयः) पशुओंके दूधको और (ओषधीनां रसं) औषधियोंके रसको (बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्) बृहस्पति सविता मुझे देवे ॥ ५ ॥

(अहं पशूनां अधिपा असानि) मैं पशुओंका अधिपति होऊं। (पुष्टपतिः मयि पुष्टं दधातु) पुष्टपति मुझे पुष्टि देवे। (औदुम्बरः मणिः मह्यं द्रविणानि नि यच्छतु) औदुम्बर मणि मेरे लिये धन देवे ॥ ६ ॥

(औदुम्बरो मणिः) औदुम्बर मणि (प्रजया च धनेन च) प्रजा और धनके साथ, (इन्द्रेण जिन्वितो मणिः) इन्द्रसे प्रेरा हुआ यह मणि (वर्चसा सह मा उप आ गमत्) तेजके साथ मेरे समीप आता है ॥ ७ ॥

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये । पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे । एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९ ॥
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् । सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत्सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११ ॥
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥ १४ ॥ (१४०)

अर्थ— (सपत्नहा देवः मणिः) शत्रुओंका नाश करनेवाला यह दिव्य मणि (धनसा) धनोंको बांटनेवाला होकर (धनसातये) धनकी प्राप्तीके लिये [धारण किया है ।] यह (पशोः अन्नस्य भूमानं) पशु और अन्नकी समृद्धि तथा (गवां स्फातिं नि यच्छतु) गौओंकी हमें वृद्धि देवे ॥ ८ ॥

हे वनस्पते ! (यथा अग्रे त्वं) जैसे पहिले तू (पुष्ट्या सह जज्ञिषे) पुष्टिके साथ उत्पन्न हुई (एवा सरस्वती) वैसी ही सरस्वती (मे धनस्य स्फातिं आ दधातु) मेरे लिये धनकी वृद्धि देवे ॥ ९ ॥

सरस्वती सिनीवाली और (अयं औदुम्बरः मणिः) यह औदुम्बर मणि (मे) मेरे पास (धनं पयस्फातिं च धान्यं) धन धान्य और दूधकी समृद्धि (आ वहात्) लावे ॥ १० ॥

(त्वं वृषा असि) तू बलवान् है (मणीनां अधिपाः) मणियोंका अधिपति है । (पुष्टपतिः त्वयि पुष्टं जजान) पुष्टपतिने तुझमें पुष्टि उत्पन्न की है । (त्वयि इमे वाजाः) तुझमें ये बल हैं (सर्वा द्रविणानि) सब धन तुझमें हैं । (सः त्वं औदुम्बरः) वह तू औदुम्बर मणि (अस्मत् अरातिं अमतिं क्षुधं च) हमसे शत्रुता निर्बुद्धता तथा भूखको (सहस्व) दूर हटा दे ॥ ११ ॥

(ग्रामणीः असि) तू ग्रामका नेता है (ग्रामणीः उत्थाय) ग्रामका नेता होकर उठकर (अभिषिक्तः) तू अभिषिक्त हो । (वर्चसा मा अभिषिञ्च) तेजसे मुझे अभिषिक्त कर । (तेजः असि) तू तेज है (मयि तेजः धारय) मुझमें तेज धारण कर (रयिः असि) तू धन है (मे रयिं अधि धारय) मुझमें धनका धारण कर ॥ १२ ॥

(पुष्टिः असि मा पुष्ट्या समङ्ग्धि) तू पुष्टि है मुझे पुष्टिसे युक्त कर, (गृहमेधी) तू गृहमेधी होकर (मा गृहपतिं कृणु) मुझे गृहपति कर । (सः औदुम्बरः) वह तू औदुम्बर मणि है (त्वं अस्मासु रयिं धेहि) तू हममें धन स्थापन कर । (नः सर्ववीरं च नि यच्छ) हमारे लिये वीर पुत्र पौत्रवाला धन दे । (अहं त्वां) मैं तुझे (रायः पोषाय प्रति मुञ्चे) धनकी पुष्टिके लिये पहनता हूं ॥ १३ ॥

(अयं औदुम्बरः मणिः) यह औदुम्बरमणि (वीरः वीराय बध्यते) वीर है यह वीरको बांधा जाता है । (सः नः मधुमतीं सनिं कृणोतु) वह हमें मधुरताके साथ लाभसे संयुक्त करे । (सर्ववीरं रयिं च नः नि यच्छात्) और वीरोंसे युक्त धन हमें दे ॥ १४ ॥

(३२) दर्भः ।

(ऋषिः — भृगुः (आयुष्कामः) । देवता — दर्भः ।)

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः । दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥
नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते । यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः । त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥
तिस्रो दिवो अत्यतृणत्तिस्र इमाः पृथिवीरुत । त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् । उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥ ५ ॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वान्दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून्कृधि ॥ ६ ॥
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् । तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७ ॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥

---

(३२) दर्भः ।

अर्थ— (शतकाण्डः दुश्च्यवनः) सौ काण्डोंवाला हटाना जिसका कठिन है (सहस्रपर्णः) हजारों पत्तोंवाला (उत्तिरः) ऊपर जानेवाला (दर्भः यः उग्रः ओषधिः) दर्भ यह एक उग्र औषधि है (तं ते आयुषे बध्नामि) उसको तुझे आयु बढानेके लिये बांधता हूं ॥ १ ॥

(अस्य केशान् न प्रवपन्ति) इसके बालोंको काटते नहीं (न उरसि ताडं आ घ्नते) न छातीको पीटते हुए मारते हैं, (यस्मै) जिसको (अच्छिन्न पर्णेन दर्भेण) न कटे पत्तोंवाले दर्भसे यह (शर्म यच्छति) सुख देता है ॥ २ ॥

हे औषधे ! (ते तूलं दिवि) तेरी चोटी आकाशमें है (पृथिव्यां असि निष्ठितः) पृथिवीमें तू स्थिर है । (त्वया सहस्रकाण्डेन) तुझ सहस्र काण्डवालेके द्वारा (आयुः प्र वर्धयामहे) हम अपनी आयुको बढाते हैं ॥ ३ ॥

(तिस्रो दिवः अत्यतृणत्) तू तीन आकाशोंको चीर, (तिस्रः इमाः पृथिवीः उत) तीन इन पृथिवियोंको भी चीर गया है । (त्वया अहं) तेरे द्वारा मैं (दुर्हार्दः जिह्वां) दुष्ट हृदयवालेकी जिह्वाको तथा (वचांसि नि तृणद्मि) वचनोंको चीर डालता हूं ॥ ४ ॥

(त्वं सहमानः असि) तू विजयी है, (अहं सहस्वान् अस्मि) मैं बलवान् हूं । (उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा) हम दोनों बलवान होकर (सपत्नान् सहिषीमहि) शत्रुओंको दबा देंगे ॥ ५ ॥

(नः अभिमातिं सहस्व) हमारे शत्रुको दबाओ (पृतनायतः सहस्व) सेनासे हमला करनेवालोंको पराभूत कर । (सर्वान् दुर्हार्दः सहस्व) सब दुष्ट हृदयवालोंको पराभूत कर (मे सुहार्दः बहून् कृधि) मेरे लिये उत्तम हृदयवाले मित्र बहुत कर ॥ ६ ॥

(देवजातेन दर्भेण) देवोंसे उत्पन्न हुए दर्भसे (शश्वत् इत् दिवि ष्टम्भेन) सदा द्युलोकमें स्तंभके समान रहनेवाले (तेन अहं) उस दर्भमणिसे मैं (शश्वतः जनान् असनं) सदा लोगोंको जीता है और (सनवानि च) जीतूंगा भी ॥ ७ ॥

हे दर्भ ! (ब्रह्मराजन्याभ्यां) ब्राह्मण क्षत्रियों और (शूद्राय चार्याय च) शूद्रों और आर्योंके लिये (यस्मै च कामयामहे) जिसको हम चाहते हैं और (सर्वस्मै विपश्यते च) सब देखनेवालेके लिये (मा प्रियं कृणु) मुझे प्रिय बना ॥ ८ ॥

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद्यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥ ९ ॥
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥ १० ॥ (४५९)

(३३) दर्भः ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — दर्भः ।)

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥ १ ॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन्दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥

अर्थ— (यः जायमानः) जिसने जन्मते ही (पृथिवीं अदृंहत्) पृथिवीको दृढ किया (यः अन्तरिक्षं दिवं च अस्तभ्नात्) जिसने अन्तरिक्ष और द्युलोकको स्थिर किया (यं बिभ्रतं) जिसके धारण करनेवालेको (पाप्मा न नु विवेद) पापी नहीं प्राप्त कर सकता (सः अयं दर्भः) वह यह दर्भमणि (वरुणः) वरुण-श्रेष्ठ बनकर (दिवा कः) प्रकाश करे ॥ ९ ॥

(सपत्नहा) शत्रुको मारनेवाला (शतकाण्डः) सौ काण्डोंवाला (सहस्वान्) बलिष्ठ (ओषधीनां प्रथमः सं बभूव) औषधियोंमें पहिला हुआ है । (सः अयं दर्भः) वह यह दर्भमणि (विश्वतः नः परि पातु) सब ओरसे हमारा रक्षण करे । (तेन) उससे मैं (पृतन्यतः पृतनाः) सेनावालोंकी सेनाको (साक्षीय) जीतूंगा ॥ १० ॥

(३३) दर्भः ।

(सहस्र-अर्घः) सहस्रों प्रकारसे मूल्यवान् (शतकाण्डः) सौ काण्डोंवाला (पयस्वान्) दूधसे परिपूर्ण (अपां अग्निः) जलोंमें रहनेवाला अग्नि (वीरुधां राजसूयं) औषधियोंका राजसूय यज्ञ जैसा (सः अयं दर्भः) वह यह दर्भमणि (नः विश्वतः परि पातु) हमें चारों ओरसे सुरक्षित रखे । (देवः मणिः नः आयुषा सं सृजाति) यह दिव्य मणि हमें आयुके साथ संयुक्त करे ॥ १ ॥

(घृतात् उल्लुप्तः) घीसे सींचा हुआ (मधुमान् पयस्वान्) मधु और दूधसे भरा (भूमि-दृंहः) भूमिको दृढ करनेवाला (अच्युतः) न गिरनेवाला (च्यावयिष्णुः) शत्रुओंको गिरानेवाला (सपत्नान् नुदन्) शत्रुओंको दूर करनेवाला (अधरान् च कृण्वन्) शत्रुको नीचे करनेवाला तू है दर्भ ! (महतां इंद्रियेण आ रोह) बडोंके वीर्यसे शरीरपर आरूढ हो ॥ २ ॥

(त्वं भूमिं ओजसा अत्येषि) तू भूमिको अपने बलसे उल्लंघन करके जाता है (त्वं अध्वरे वेद्यां चारुः सीदसि) तू यज्ञकी वेदीमें सुंदर रीतिसे बैठता है । (ऋषयः त्वां पवित्रं अभरन्त) ऋषियोंने तुझे पवित्र मान कर धारण किया (त्वं अस्मत् दुरितानि पुनीहि) तू हमसे पापोंको दूर करके हमें पवित्र बना ॥ ३ ॥

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत्तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥
दर्भेण त्वं कृणवद्वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥ (२६४)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

(३४) जङ्गिडमणिः ।

(ऋषिः — अङ्गिराः । देवता — वनस्पतिः, लिंगोक्ताः ।)

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥ १ ॥
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये । सर्वान्विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः । अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः । अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥

अर्थ— (तीक्ष्णः राजा) वीर राजा (विषासहिः) शत्रुका पराभव करनेवाला (रक्षोहा) राक्षसोंको मारनेवाला (विश्वचर्षणिः) सब मानवोंका स्वामी (देवानां ओजः) देवोंका यह सामर्थ्य है (एतत् उग्रं बलं) यह उग्र बल है (तं ते) उसको तेरे शरीर पर (जरसे स्वस्तये बध्नामि) दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये और कल्याणके लिये बांधता हूं ॥ ४ ॥

(त्वं दर्भेण वीर्याणि कृणवत्) तू दर्भमणिसे पराक्रम कर (दर्भं बिभ्रत्) दर्भमणिको धारण करके (आत्मना मा व्यथिष्ठाः) मनमें दुःखित न हो । (अन्यान् वर्चसा अतिष्ठाय) अन्य सबके तेजसे ऊपर होकर (सूर्य इव) सूर्यके समान (चतस्रः प्रदिशः आ भाहि) चारों दिशाओंमें प्रकाशित हो ॥ ५ ॥

॥ यहां चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

---

(३४) जङ्गिडमणि ।

अर्थ— (जङ्गिडः असि) तू जङ्गिड है (जङ्गिडः रक्षिता असि) तू जंगिड अर्थात् रक्षक है । (अस्माकं द्विपात् चतुष्पात् सर्वं जङ्गिडः रक्षतु) हमारा जो दोपाया और चार पांववाला है उस सबका यह जङ्गिडमणि रक्षण करे ॥ १ ॥

(याः गृत्स्यः त्रिः पञ्चाशीः) जो हिंसक शत्रु तीन गुणा पचास हैं और (शतं कृत्याकृतः च ये) जो सौ हिंसक कर्म करनेवाले हैं (सर्वान् तेजसः विनक्तु) उन सबको यह तेजसे दूर करे यह (जङ्गिडः अरसान् करत्) जङ्गिडमणि बलहीन करे ॥ २ ॥

(अरसं कृत्रिमं नादं) बनावटी शब्दको निर्बल बनावे (सप्त विस्रसः अरसाः) सात क्षयादिको नीरस बनावे हे मणि ! (इतः अमतिं अप) यहांसे दुर्बुद्धिवालोंको दूर कर (अस्ता इषुं इव शातय) बाण फेंकनेवाला जैसा बाणको फेंकता है उस तरह दूर कर ॥ ३ ॥

(अयं कृत्यादूषणः एव) यह हिंसक कर्मोंका नाशक है (अथो अरातिदूषणः) यह शत्रुका विनाशक है । (अथो जङ्गिडः सहस्वान्) और यह जङ्गिडमणि सामर्थ्यवान् है यह (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारे आयुको बढावे ॥ ४ ॥

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः । विष्कन्धं येन सासह सस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन्निष्ठितं भूम्यामधि । तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः । विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य । पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥
उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ । अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् । तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥ (१०७)

(३५) जङ्गिडः ।

(ऋषिः — अङ्गिराः । देवता — वनस्पतिः ।)

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः । देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव । देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥

अर्थ— (जङ्गिडस्य सः महिमा) जङ्गिडमणिका वह महिमा है (नः विश्वतः परि पातु) कि वह हमारी सब ओरसे रक्षा करे । (येन विष्कन्धं सासहे) जिससे हम रोगको दूर करते हैं (ओजसा संस्कन्ध ओजः) अपने बलसे वस्कन्ध रोगको भी दूर करते हैं ॥ ५ ॥

(देवाः त्वा त्रिः अजनयन्) देवोंने तुझे तीन बार उत्पन्न किया (भूम्यां अधि निष्ठितं) भूमिपर तू स्थिर है । (पूर्व्याः ब्राह्मणाः) पूर्व कालके ब्राह्मण (तं उ त्वा अङ्गिरा इति विदुः) उस तुझे अङ्गिरा करके जानते हैं ॥ ६ ॥

(पूर्वा ओषधयः न त्वा) पुरानी औषधियां तुझे लांघती नहीं (याः नवाः त्वा न तरन्ति) जो नवीन औषधियें हैं वे भी लांघती नहीं । (विबाधः उग्रः जङ्गिडः) रोगोंको विशेष बाधा पहुंचानेवाला उग्र यह जङ्गिडमणि है वह (परिपाणः सुमङ्गलः) संरक्षक और उत्तम मंगल करनेवाला है ॥ ७ ॥

(अथ उपदान भगवः जङ्गिड) हे दान देनेवाले भगवान् जङ्गिड ! हे (अमितवीर्य) अपरिमित शक्तिवाले ! (पुरा ते उग्राः ग्रसत) उग्र शत्रु तुझे प्राप्त करनेसे पूर्व (इन्द्रः वीर्यं उप ददौ) इन्द्रने तुझमें वीर्य रखा है ॥ ८ ॥

हे वनस्पते ! (ते इत् उग्रः इन्द्रः) तेरे अन्दर उग्र इन्द्रने (ओज्मानं आ दधौ) बडी शक्ति रखी है (सर्वाः अमीवाः चातयन्) तू सब रोगोंको दूर करके हे औषधे ! (रक्षांसि जहि) राक्षसोंको मार ॥ ९ ॥

(आशरीकं विशरीकं) तोडनेवाला दुःखी करनेवाला (बलासं) खांसी (पृष्ट्यामयं) पीठकी बीमारी (तक्मानं विश्वशारदं) सब ऋतुमें होनेवाला ज्वर आदिको (जङ्गिडः अरसान् करत्) जङ्गिडमणि निःसत्त्व करता है ॥ १० ॥

(३५) जङ्गिडः ।

(इन्द्रस्य नाम गृह्णन्तः) प्रभुका नाम लेते हुए (ऋषयः) ऋषियोंने (जङ्गिडं ददुः) जङ्गिडमणि दिया है । (अग्रे देवाः) प्रारंभमें देवोंने (यं विष्कन्धदूषणं भेषजं चक्रुः) जो रोग दूर करनेवाला औषध करके किया था ॥ १ ॥

(धनपालः धना इव) धनका स्वामी जैसा धनोंका रक्षण करता है उस तरह (सः जङ्गिडः नः रक्षतु) वह जङ्गिड हमारी रक्षा करे । (यं देवाः ब्राह्मणाः) जिसको देवों और ब्राह्मणोंने (परिपाणं अरातिहं चक्रुः) रक्षक और शत्रुनाशक किया है ॥ २ ॥

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥ ३ ॥
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात्परि मोत भव्याद्दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥ ४ ॥
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः । सर्वांस्तान्विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥ (२८)

(३६) शतवारो मणिः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — शतवारः ।)

शतवारो अनीनशद्यक्ष्मान्रक्षांसि तेजसा । आरुह्य वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः । मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः । सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् । दुर्णाम्नः सर्वान्हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥

अर्थ— (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदयवालेके (संघोरं चक्षुः) क्रूर नेत्रको और (पापकृत्वानं आगमं) पाप कर्म करके किये आये हुएको (तान् त्वं सहस्रचक्षः) उनको तू हे सहस्र आंखवाले ! (प्रतिबोधेन नाशय) सावधानतासे विनाश कर । (परिपाणः असि जङ्गिडः) तू संरक्षण करनेवाला जङ्गिडमणि है ॥ ३ ॥

(दिवः मा परि पातु) द्युलोकसे मेरा रक्षण करे (पृथिव्याः मा परि) पृथिवीके ऊपर, (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्षसे (वीरुद्भ्यः मा परि) ओषधियोंसे (मा भूतात् परि) भूतोंसे (भव्यात् मा परि) होनेवालोंसे (दिशः दिशः जङ्गिडः अस्मान् पातु) दिशा दिशाओंसे यह जङ्गिडमणि हम सब सबका रक्षण करे ॥ ४ ॥

(ये देवकृताः ऋष्णवः) जो देवोंसे बने हिंसक कृत्य हैं (य उत ववृते अन्यः) या कोई दूसरे हिंसक (सर्वान् तान्) उन सबको (विश्वभेषजः जङ्गिडः) सब औषधिगुणवाला जङ्गिडमणि (अरसान् करत्) निःसत्व बनावे ॥ ५ ॥

(३६) शतवारो मणिः ।

(शतवारः मणिः) शतवार मणि (वर्चसा सह आरोहन्) तेजके साथ शरीर पर बांधा हुआ (दुर्णामचातनः) दुष्ट नामवाले रोगोंको दूर करता हुआ (तेजसा यक्ष्मान् रक्षांसि अनीनशत्) अपने तेजसे क्षय रोगादि और रोगजन्तुओं [राक्षसों] का नाश करता है ॥ १ ॥

(शृङ्गाभ्यां रक्षः नुदते) सींगोंसे राक्षसोंको दूर करता है (मूलेन यातुधान्यः) मूलसे यातना देनेवालोंको दूर करता है (मध्येन यक्ष्मं बाधते) मध्यसे रोगको दूर करता है (पाप्मा एनं न अति तत्रति) पापी रोग इसको कष्ट नहीं पहुंचाता ॥ २ ॥

(ये यक्ष्मासः अर्भकाः) जो रोगबीज सूक्ष्म हैं (ये च महान्तः शब्दिनः) या बडे शब्द करनेवाले रोग हैं (सर्वान् दुर्णाम हा शतवारः मणिः अनीनशत्) इन सबको दुष्ट नामवाले रोगोंका नाश करनेवाला शतवार मणि नाश करता है ॥ ३ ॥

(शतं वीरान् अजनयत्) सौ वीरोंको जन्म देता है (शतं यक्ष्मान् अपावपत्) सैकडों रोगोंको दूर करता है (सर्वान् दुर्णाम्नः हत्वा) दुष्ट नामवाले सब रोगोंको मार कर (रक्षांसि अवधूनुते) सब राक्षसों रोगबीजों—को कंपा देता है ॥ ४ ॥

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः । दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् । शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥ (२८५)

(३७) बलप्राप्तिः ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — अग्निः ।)

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशद्यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥ १ ॥
वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥ २ ॥
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा । अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः । धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ ४ ॥ (२८९)

(३८) यक्ष्मनाशनम् ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — गुल्गुलुः ।)

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते । यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥

अर्थ— (हिरण्यशृङ्गः ऋषभः) सोनेके सींगवाला बलवान् (अयं शतवारः मणिः) यह शतवार मणि है। (दुर्णाम्नः सर्वान् तृड्ढ्वा) सब दुष्ट नामवाले रोगोंको मारकर (रक्षांसि अवाक्रमीत्) राक्षसोंको हटा देता है ॥ ५ ॥

(अहं दुर्णाम्नीनां शतं) मैं दुष्ट नामवाले सैकडों रोगोंको (गन्धर्वाप्सरसां शतं) गन्धर्वों और अप्सरस् नामक सैकडों रोगोंको (शश्वतीनां शतं) हमेशा साथ रहनेवाले सैकडों रोगोंको (शतवारेण वारये) इस शतवार मणिसे दूर करता हूं ॥ ६ ॥

शतवार यह शतावर है या क्या इसका विचार वैद्य करें।

(३७) बलप्राप्तिः ।

(इदं वर्चः) यह तेज (अग्निना दत्तं आगन्) अग्निसे दिया आता है यह (भगः यशः) तेज यश (सहः ओजः) साहस और सामर्थ्य (वयः बलं) शक्ति और बल देता है। (यानि त्रयस्त्रिंशत् वीर्याणि) जो तैंतीस वीर्य हैं (तानि अग्निः मे प्र ददातु) उनको अग्नि मुझे देवे ॥ १ ॥

(मे तन्वां) मेरे शरीरमें (वर्चः सहः) तेज साहस (ओजः वयः बलं) ओज शक्ति और बल (आ धेहि) स्थापन कर। (इन्द्रियाय) इन्द्रिय सामर्थ्यके लिये (कर्मणे वीर्याय) कर्मशक्ति और वीर्यके लिये (शतशारदाय) सौ वर्षकी आयुके लिये (त्वा प्रति गृह्णामि) तुझे मैं धारण करता हूं ॥ २ ॥

(ऊर्जे त्वा बलाय त्वा) बलके लिये बलके लिये (ओजसे सहसे त्वा) सामर्थ्य और साहसके लिये (अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय) शत्रु पराभवके लिये और राष्ट्रपोषणके लिये तथा (शतशारदाय पर्यूहामि) सौ वर्षकी आयुके लिये तुझे मैं पहनता हूं ॥ ३ ॥

(ऋतुभ्यः त्वा आर्तवेभ्यः) ऋतुओंके लिये ऋतुओंमें होनेवाले फलोंके लिये (माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः) मासों और संवत्सरोंके लिये (धात्रे विधात्रे) धाता और विधाताके लिये (समृधे भूतस्य पतये यजे) समृद्धिके लिये तथा भूतोंके स्वामीके लिये यजन करता हूं ॥ ४ ॥

(३८) यक्ष्मनाशनम् ।

(यक्ष्मा तं न अरुन्धते) रोग उसको रोकता नहीं (शपथः एनं न अश्नुते) शाप इसे व्याप्त नहीं करता (यं) जिसको उत्तम (भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिः गन्धः) औषध गुग्गुलका उत्तम सुगंध (अश्नुते) व्याप्त होता है ॥ १ ॥

विष्वञ्चस्तस्माद्यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते । यद्गुग्गुलु सैन्धवं यद्वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥ (१९१)

(३९) कुष्ठनाशनम् ।

(ऋषिः — भृग्वङ्गिराः । देवता — कुष्ठः)

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः । नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता । नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ३ ॥
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव । नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥
त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि । त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः । साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

अर्थ— (तस्मात् यक्ष्मा विष्वञ्चः) उससे सब रोग दूर भागते हैं (मृगाः अश्वाः इव ईरते) जैसे मृग और अश्व दौड जाते हैं। (यत् गुग्गुलु सैन्धवं) जो तू गुग्गुल नदीसे प्राप्त हुआ हो (यत् वा अपि समुद्रियं असि) अथवा तू समुद्रसे प्राप्त हुआ हो ॥ २ ॥

(उभयोः नाम अग्रभं) मैंने दोनोंका नाम लिया है (अस्मै अरिष्टतातये) इसकी नीरोगताके लिये ॥ ३ ॥

(३९) कुष्ठनाशनम् ।

(त्रायमाणः देवः कुष्ठ) रक्षण करनेवाला दिव्य गुणयुक्त कुष्ठ वनस्पति (हिमवतस्परि ऐतु) हिमालय पर्वतसे आवे। (सर्वं तक्मानं नाशय) तू हरएक ज्वरको दूर कर (सर्वाः यातुधान्यः) और सब यातना देनेवाले रोगोंको दूर कर ॥ १ ॥

हे कुष्ठ ! (ते त्रीणि नामानि) तेरे तीन नाम हैं (नद्यमारः) न मारनेवाला (नद्यारिषः) न हानि पहुंचानेवाला (नद्यायं पुरुषः रिषत्) हानि न पहुंचावे यह पुरुष। (यस्मै त्वा सायं प्रातः अथो दिवा परिब्रवीमि) जिसके लिये तेरी मैं सायंको, प्रातःकालको और दिनभर प्रशंसा करता हूं ॥ २ ॥

(ते माता जीवला नाम) तेरी माता जीवन देनेवाली है (जीवन्तः नाम ते पिता) जीता रहनेवाला तेरा पिता है ॥ ॥ ३ ॥

(ओषधीनां उत्तमः असि) औषधियोंमें तू उत्तम है (अनड्वान् जगतां इव) जैसा बैल चलनेवालोंमें और (श्वपदां व्याघ्रः) श्वापदोंमें व्याघ्र होता है ॥ ॥ ४ ॥

(शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यः त्रिः) अङ्गिर कुलोत्पन्न शाम्बुओंसे तीन बार (आदित्येभ्यः परि त्रिः) आदित्योंसे तीन बार (विश्वदेवेभ्यः त्रिः जातः) विश्वे देवोंसे तीन बार उत्पन्न हुआ। (सः कुष्ठः विश्वभेषजः) यह कुष्ठ सब रोगोंकी औषध है। यह (सोमेन साकं तिष्ठति) सोमके साथ रहता है। तू सब ज्वरोंका नाश कर और यातना देनेवाले सब रोगोंका नाश कर ॥ ५ ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ७ ॥
यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥
यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः। यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ ९ ॥
शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः। तक्मानं विश्वशारदमधराञ्चं परा सुव ॥ १० ॥ (१३०)

(४०) मेधा।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — बृहस्पतिः, विश्वे देवाः।)

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम।
विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥ २ ॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः ।
शिवा नः सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ३ ॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥ (१०१

(४१) राष्ट्रं बलमोजश्च ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — तपः ।)

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ १ ॥ (१०२

(४२) ब्रह्मयज्ञः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — ब्रह्म ।)

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः । अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थ— हे (आपः) जलो ! (नः मेधां मा प्र मथिष्टन) हमारी बुद्धिका मंथन न करो (मा ब्रह्म) हमारे ज्ञानको न क्षीण करो (शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वं) शुभ प्रवाहसे तुम बहते रहो । (उपहूतः अहं) प्रार्थित हुआ मैं (सुमेधा वर्चस्वी) उत्तम बुद्धिमान् और तेजस्वी बनूं ॥ २ ॥

(नः मेधां मा हिंसिष्टं) हमारी मेधाको हानि न पहुंचाओ । (नः दीक्षां मा) हमारी दीक्षाको हानि न पहुंचाओ (यत् नः तपः) जो हमारा तप है (मा हिंसिष्टं) उसका नाश न करो (नः आयुषे शिवाः सन्तु) हमारी आयुके लिये कल्याणकारी हों (मातरः शिवाः भवन्तु) माताएं-जलधाराएं हमारे लिये कल्याण करनेवाली हों ॥ ३ ॥

हे अश्विनौ ! (या ज्योतिष्मती नः पीपरत्) जो प्रकाशवाली हमें पूर्ण करती है और (तमः तिरः) अन्धकार दूर करती है, (तां इषं अस्मे रासतां) उस अन्नको हमें दे दो ॥ ४ ॥

(४१) राष्ट्रं बलमोजश्च ।

(भद्रं इच्छन्तः स्वर्विदः ऋषयः) कल्याणकी इच्छा करनेवाले आत्मज्ञानी ऋषि (अग्रे तपः दीक्षां उपसेदुः) आरंभमें तप और दीक्षाका आचरण करते रहे (ततः राष्ट्रं बलं ओजः च जातं) उससे राष्ट्र हुआ और बल और सामर्थ्य भी उत्पन्न हुआ । (तत् अस्मै) इसलिये इसके सामने (देवाः उप सं नमन्तु) ज्ञानी पुरुष विनम्र हों ॥ १ ॥

ऋषियोंके प्रयत्नसे राष्ट्र बना है इसलिये ज्ञानी लोग राष्ट्रके सामने विनम्र होकर इसकी सेवा करें ।

(४२) ब्रह्मयज्ञः ।

(ब्रह्म होता) ब्रह्म होता हुआ है । (ब्रह्म यज्ञाः) ब्रह्म ही यज्ञ हुए हैं । (स्वरवः ब्रह्मणा मिताः) स्तंभ ब्रह्मने बनाये हैं । (ब्रह्मणः अध्वर्युः जातः) ब्रह्मसे अध्वर्यु हुआ है, (ब्रह्मणः हविः अन्तर्हितं) ब्रह्मके अन्दर हवि रखा है ॥ १ ॥

(घृतवतीः स्रुचः ब्रह्म) घीसे भरी स्रुचाएं ब्रह्म है, (ब्रह्मणा वेदिः उद्धिता) ब्रह्मसे वेदी तैयार की गयी है (यज्ञस्य तत्त्वं ब्रह्म) यज्ञका तत्त्व ब्रह्म है । (ये हविष्कृतः ऋत्विजः) जो हवि तैयार करनेवाले ऋत्विज हैं । (शमिताय स्वाहा) शान्त जो है उसके लिये समर्पण हो ॥ २ ॥

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३ ॥
अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥ ४ ॥ (४११)

(४३) ब्रह्मा।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — ब्रह्म बहवो देवताः ।)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥ १ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान्दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥ २ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥ ३ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ॥ ४ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ— (अंहोमुचे मनीषां प्र भरे) पापसे छुडानेवालेके लिये प्रशंसा गाता हूं। (सुत्राव्णे सुमतिं आवृणानः) उत्तम रक्षण करनेवालेके लिये उत्तम मति देता हूं। हे इन्द्र ! (इदं हव्यं प्रति गृभाय) यह हवि स्वीकार कर। (यजमानस्य कामाः सत्याः सन्तु) यजमानकी इच्छाएं सत्य हों ॥ ३ ॥

(अंहो-मुचं) पापसे छुडानेवाले (यज्ञियानां वृषभं) पूजनीयोंके अन्दर सामर्थ्यवान् (अध्वराणां प्रथमं विराजन्तं) यज्ञोंमें प्रथम विराजमान (अपां न-पातं) कर्मोंको न गिरानेवालेकी और (अश्विना हुवे) अश्विनी देवोंकी प्रशंसा करता हूं मुझे (धियः) बुद्धियां (ओजः) सामर्थ्य और (इन्द्रियेण इन्द्रियं) इन्द्रिय शक्तिसे इंद्रिय दे ॥ ४ ॥

(४३) ब्रह्मा।

(दीक्षया तपसा सह) दीक्षा और तपके साथ (यत्र ब्रह्मविदः यान्ति) जहां ब्रह्मज्ञानी जाते हैं। (अग्निः मा तत्र नयतु) अग्नि मुझ वहां ले जाय और (अग्निः मे मेधां दधातु) अग्नि मुझे मेधा बुद्धि देवे। अग्निके लिये अर्पण हो ॥ १ ॥

„ „ (वायुः मा तत्र नयतु) वायु मुझे वहां ले जाय (वायुः प्राणान् मे दधातु) वायु मेरे अन्दर प्राणोंको धारण करे। ॥ २ ॥

„ „ (सूर्यः मा तत्र नयतु) सूर्य मुझे वहां ले जाय (सूर्यः मे चक्षुः दधातु) सूर्य मुझमें आंख रखे। ॥ ३ ॥

„ „ (चन्द्रः मा तत्र नयतु) चन्द्र मुझे वहां ले जाय और (चन्द्रः मे मनः दधातु) चन्द्र मुझमें मन स्थापन करे। ॥ ४ ॥

„ „ (सोमः मा तत्र नयतु) सोम मुझे वहां ले जाय और (सोमः मे पयः दधातु) सोम मुझे दूध देवे। ॥ ५ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ॥ ६ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु । अद्भ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥ (११९)

(४४) भैषज्यम् ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — आञ्जनम्, वरुणः ।)

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे । तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥ १ ॥
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः । सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् । कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥
प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड । निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् । वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥

अर्थ— ॥ ॥ (इन्द्रः मा तत्र नयतु) इन्द्र मुझे वहां ले जाय और (इन्द्रः मे बलं दधातु) इन्द्र मुझे बल देवे ॥ ॥ ६ ॥

॥ ॥ (आपः मा तत्र नयन्तु) जलप्रवाह मुझे वहां ले जांय और (अमृतं मा उप तिष्ठतु) अमृत मुझे प्राप्त हो जाय ॥ ॥ ७ ॥

॥ ॥ (ब्रह्मा मा तत्र नयतु) ब्रह्मा मुझे वहां ले जाय और (ब्रह्मा मे ब्रह्म दधातु) ब्रह्मा मुझे ज्ञान देवे ॥ ॥ ८ ॥

(४४) भैषज्यम् ।

(आयुषः प्रतरणं असि) तू आयुष्य बढानेवाला है, (विप्रं भेषजं उच्यसे) तू विशेष स्फूर्तिवाला औषध कहा जाता है। (तत् आञ्जन ! त्वं शंताते) सो हे अञ्जन ! तू शान्ति बढानेवाला है (आपः) जलो ! (अभयं शं कृतं) मेरे लिये निर्भयता और सुख करो ॥ १ ॥

(यः हरिमा) जो पाण्डुरोग है (जायान्यः) जो स्त्रीसे होनेवाला रोग है, (अंगभेदः) अंगोंको तोडनेवाला दर्द है (विसल्पकः) विसर्प कुष्ठीका रोग है ये (सर्वं यक्ष्मं ते अंगेभ्यः) सब रोग तेरे अंगोंसे (आञ्जनं बहिः निर्हन्तु) यह अञ्जन बाहर निकाले ॥ २ ॥

(आञ्जनं पृथिव्यां जातं) यह अञ्जन पृथिवीपर उत्पन्न हुआ है। यह (भद्रं पुरुषजीवनं) कल्याणकारी और मनुष्योंको जीवन देनेवाला है, यह मुझे (अप्रमायुकं कृणोति) मरणरहित करता है (रथजूतिं) और रथके समान वेगवाला और (अनागसं) पापरहित बनाता है ॥ ३ ॥

हे (प्राण) प्राण ! (प्राणं त्रायस्व) मेरे जीवित प्राणकी रक्षा कर, हे (असो) प्राण ! (असवे मृड) प्राणको सुखी कर। हे (निर्ऋते) दुर्गते ! (निर्ऋत्याः पाशेभ्यः नः मुञ्च) दुर्गतिके पाशोंसे हमें छुडा ॥ ४ ॥

(सिन्धोः गर्भः असि) तू सिन्धुका गर्भ है (विद्युतां पुष्पं) बिजलियोंका तू फूल है (वातः प्राणः) वायु तेरा प्राण है (सूर्यः चक्षुः) सूर्य आंख है (दिवः पयः) द्युलोक दैविक रस है ॥ ५ ॥

नदियोंकी गतिशक्ति और विद्युतका तेज तुम्हारे अन्दर है ।

देवाञ्जन त्रैककुद परि मा पाहि विश्वतः । न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥
वीदं मध्यमवासृपद्रक्षोहामीवचातनः । अमीवाः सर्वाश्चातयन्नाशयदभिभा इतः ॥ ७ ॥
बह्वीदं राजन्वरुणानृतमाह पूरुषः । तस्मात्सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८ ॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम । तस्मात्सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन । तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥ (११०)

(४५) आञ्जनम् ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — आञ्जनम् मन्त्रोक्तदेवताः ।)

ऋणादृणमिव संनयन्कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् । चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥
यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद्गोषु यच्च नो गृहे । अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥
अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥ ३ ॥

अर्थ — हे (देवाञ्जन) दिव्य अञ्जन ! तू (त्रै-ककुद) तीन कोनोंमें श्रेष्ठ है। (मा विश्वतः परि पाहि) मेरी सब ओरसे रक्षा कर। (बाह्याः उत पर्वतीयाः) बाहर और पर्वतपर होनेवाली (ओषधयः त्वा न तरन्ति) औषधियां तुमसे बढकर नहीं होतीं ॥ ६ ॥

(रक्षोहा अमीवचातनः) राक्षसोंको मारनेवाला और रोगोंको हटानेवाला यह (इदं मध्यं वि अवासृपत्) इस मध्यभागमें आया है [हमारे पास उतरकर आया है] यह (सर्वाः अमीवाः चातयन्) सब रोगोंको दूर करता है और (इतः अभि भा नाशयत्) यहांसे आक्रमक रोगोंका नाश करता है ॥ ७ ॥

(हे वरुण राजन्) वरुण राजा ! (पुरुषः बहु इदं अनृतं आह) पुरुष यहां बहुत असत्य बोलता है हे (सहस्रवीर्य) हजारों शक्तियोंसे युक्त ! (तस्मात् अंहसः नः परि मुञ्च) उस पापसे हमें छुडाओ ॥ ८ ॥

हे (आपः) जलो ! हे (अघ्न्याः) न मारने योग्य ! हे वरुण ! (इति यत् ऊचिम) ऐसा जो हमने कहा है हे हजारों शक्तियुक्त ! तू उस पापसे हमें छुडाओ ॥ ९ ॥

हे आञ्जन ! मित्र और वरुण (त्वा अनु प्रेयतुः) तेरे पीछे जाते हैं (तौ त्वा दूरं अनुगत्य) वे दोनों तेरे पीछे दूरतक जाकर (भोगाय पुनः ओहतुः) भोगके लिये फिर तुझे लावें ॥ १० ॥

(४५) आञ्जनम् ।

हे अञ्जन ! (ऋणात् ऋणं संनयन् इव) ऋणसे ऋण चुकानेके समान (कृत्याकृतः गृहं कृत्यां) हिंसक कर्म करनेवालेके घर उन्हींके हिंसक कर्मको लौटा देते हैं। (चक्षुः मन्त्रस्य दुर्हार्दः) आंखके इशारोंसे हानि करनेवाले दुष्ट हृदयवालेकी (पृष्टीः अपि शृण) पसलियां तोड ॥ १ ॥

(यत् अस्मासु दुःष्वप्न्यं) जो हमारे अन्दर दुष्ट स्वप्न है (यत् गोषु) जो गौओंमें और (यत् च नः गृहे) जो हमारे घरमें है (प्रियः दुर्हार्दः अ-नाम-गः) प्रिय दुष्ट हृदयवाला अनामगामी (तं प्रति मुञ्चतां) उसको धारण करे — [उसके पास वह चला जाय ।] ॥ २ ॥

(अपां ऊर्जः) जलोंकी शक्ति और (ओजसः वावृधानः) सामर्थ्यसे बढनेवाला (जातवेदसः अग्नेः अधिजातं) जातवेद अग्निसे उत्पन्न हुआ (चतुर्वीरं पर्वतीयं यत् आञ्जनं) चार वीरोंकी शक्तिवाला जो पर्वतपर हुआ अञ्जन है वह (दिशः प्रदिशः ते शिवाः करत् इव) दिशा और उपदिशा तेरे लिये कल्याण करनेवाली करे ॥ ३ ॥

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥ ४ ॥
आश्यैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥ ५ ॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ८ ॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥१०॥(१११)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

अर्थ— (चतुर्वीरं आञ्जनं ते बध्यते) चार वीरोंकी शक्तिवाला अञ्जन तेरे शरीरपर बांधा जाता है इससे (ते सर्वाः दिशः अभयाः भवन्तु) तेरे लिये सब दिशाएं निर्भय हों। (सविता इव आर्यः ध्रुवः तिष्ठसि) सविताके समान तथा आर्य बनकर अपने स्थानपर स्थिर हो। (इमाः विशः ते बलिं अभि हरन्तु) ये सब प्रजाएं तेरे लिये बलि अर्पण करें ॥ ४ ॥

(एकं आशु) एकको आंखमें (एकं मणिं आ कृणुष्व) एकको मणि बना (एकेन स्नाहि) एकके साथ स्नान कर, (एषां एकं पिब) इनमेंसे एकको पी के रख (चतुर्वीरं) चार वीरोंके बलवाला अञ्जन (चतुर्भ्यः नैर्ऋतेभ्यः बन्धेभ्यः) चार राक्षसी बन्धनोंसे तथा (ग्राह्याः) पकडनेवाले रोगसे (अस्मान् परि पातु) हमारा रक्षण करे ॥ ५ ॥

इस मन्त्रमें जो गुप्त ज्ञान कहा है उसका अन्वेषण करना चाहिये।

(अग्निः अग्निना मा अवतु) अग्निके साथ अग्नि मेरी रक्षा करें। (प्राणाय अपानाय) प्राणके लिये अपानके लिये (आयुषे वर्चसे) आयुके लिये तेजके लिये (ओजसे तेजसे) सामर्थ्यके लिये कान्तिके लिये (स्वस्तये सुभूतये स्वाहा) कल्याणके लिये उत्तम ऐश्वर्यके लिये समर्पण करते हैं ॥ ६ ॥

(इन्द्रः इन्द्रियेण मे अवतु) इन्द्र इन्द्रशक्तिसे मेरी रक्षा करे ॥ ॥ ७ ॥
(सोमः मा सौम्येन अवतु) सोम सोमकी शक्तिसे मेरी रक्षा करे ॥ ॥ ८ ॥
(भगः मा भगेन अवतु) भग मेरी ऐश्वर्यसे रक्षा करे ॥ ॥ ९ ॥
(मरुतो मा गणैः अवन्तु) मरुत मेरी गणोंसे रक्षा करें ॥ ॥ १० ॥

॥ यहां पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

(४६) अस्तृतमणिः।

(ऋषिः — प्रजापतिः। देवता — अस्तृतमणिः।)

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात्प्रथममस्तृतं वीर्या॑य कम्।
तत्ते॑ बध्नाम्यायु॑षे वर्च॑स ओज॑से च बला॑य चास्तृतस्त्वाभि र॑क्षतु ॥ १ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन्पणयो यातुधानाः।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून्वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि र॑क्षतु ॥ २ ॥
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि र॑क्षतु ॥ ३ ॥
इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि र॑क्षतु ॥ ४ ॥
अस्मिन्मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान्यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि र॑क्षतु ॥ ५ ॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि र॑क्षतु ॥ ६ ॥

---

(४६) अस्तृतमणिः।

अर्थ — (प्रजापतिः त्वा) प्रजापतिने तुझे (प्रथमं कं अस्तृतं वीर्याय अबध्नात्) पहिले सुखदायी अस्तृत मणिको वीर्यके लिये बांधा था। (तत् ते आयुषे) वह तेरे शरीरपर आयुके लिये (वर्चसे ओजसे) तेजके लिये सामर्थ्यके लिये (बलाय च) बलके लिये बांधता हूं। (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) अस्तृत मणि तेरी रक्षा करे ॥ १ ॥

(अस्तृत अप्रमादं इमं रक्षन्) अस्तृतमणि प्रमाद न करता हुआ इसका रक्षण करनेके लिये (ऊर्ध्वः तिष्ठतु) ऊपर स्थित रहे। (यातुधानाः पणयः त्वा मा दभन्) यातना देनेवाले पणि तुझे हानि न पहुंचावें। (इन्द्रः इव दस्यून् अव धूनुष्व) इन्द्रके समान शत्रुओंको हिला दे। (पृतन्यतः सर्वान् शत्रून् वि सहस्व) सेनासे हमला करनेवाले सब शत्रुओंको पराभूत कर। (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) अस्तृत मणि तेरा रक्षण करे ॥ २ ॥

(शतं च प्रहरन्तः न) प्रहार करनेवाले सौ और (निघ्नन्तः न तस्तिरे) मारनेवाले भी इसके सामने ठहर नहीं सके। (तस्मिन् इन्द्रः) उसमें इन्द्रने (चक्षुः प्राणं अथो बलं पर्यदत्त) दृष्टि प्राण और बल दिया। अस्तृत मणि तेरा रक्षण करे ॥ ३ ॥

(इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परिधापयामः) इन्द्रके कवचसे तुझे हम ढांपते हैं। (यः देवानां अधिराजः बभूव) जो देवोंका अधिराज हुआ है। (पुनः त्वा सर्वे देवाः प्र णयन्तु) फिर तुझे सभी देव प्रेरित करें, अस्तृत मणि तेरा रक्षण करे ॥ ४ ॥

(अस्मिन् मणौ) इस मणिमें (एक शतं वीर्याणि) एक सौ वीर्य हैं (अस्मिन् अस्तृते सहस्रं प्राणाः) इस अस्तृत मणिमें हजार प्राणकी शक्तियां हैं। (व्याघ्रः सर्वान् शत्रून् अभि तिष्ठ) व्याघ्र बनकर सब शत्रुओंको पराभूत कर। (यः त्वा पृतन्यात्) जो तेरे ऊपर सैन्यसे आक्रमण करे (सः अधरः अस्तु) वह नीचे गिरे। अस्तृतमणि तेरा रक्षण करे ॥ ५ ॥

(घृतात् उल्लुप्तः) घीसे सिंचित हुआ (मधुमान् पयस्वान्) मधुसे भरा दूधवाला (सहस्रप्राणः शतयोनिः) सहस्र प्राणशक्तियां इसके पास हैं सौ उत्पत्ति स्थान हैं (वयोधाः शंभूः) आयुको धारण करनेवाला कल्याण करनेवाला (मयोभूः च ऊर्जस्वान् च) सुख देनेवाला बलिष्ठ (पयस्वान् च) रसके पूर्ण यह मणि है। यह अस्तृत मणि तेरा रक्षण करे ॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद्वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥ (१४९)

(४७) रात्रिः ।

(ऋषिः — गोपथः । देवता — रात्रिः ।)

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥
न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद्विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत्पञ्च सुम्नयि । चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत । मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥

अर्थ— (यथा त्वं उत्तरः असः) जैसा तू उत्कर है और (असपत्नः सपत्नहा) शत्रुरहित और शत्रुओंको मारनेवाला है तथा (सजातानां वशी असत्) सजातीयोंको वशमें करनेवाला है (तथा त्वा सविता करत्) वैसा तुझे सविताने किया है। अस्तृत मणि तेरी रक्षा करे ॥ ७ ॥

(४७) रात्रिः ।

हे रात्रि ! तूने (पितुः धामभिः) पृथ्वी पिताके स्थानों समेत (पार्थिवं रजः) पृथिवीके प्रदेशोंको (आ अप्रायि) भर दिया है। तू (बृहती) बडी (दिवः सदांसि) द्युलोकके स्थानोंको (वि तिष्ठसे) व्यापकर रहती है। (त्वेषं तमः आ वर्तते) तेजस्वी अंधेरा युक्त हो रहा है ॥ १ ॥

(यस्याः पारं न ददृशे) जिसका पार दिखाई नहीं देता (न योयुवत्) जिसमें न कुछ अलग अलग प्रतीत होता है, (विश्वं अस्यां नि विशते) सब इसमें आराम करते हैं, (यत् एजति) जो चलता है [वह इसमें विश्राम करता है] हे (उर्वि तमस्वति रात्रि) बडी अन्धकारवाली रात्रि ! (अ-रिष्टासः) न विनष्ट होते हुए हम (ते पारं अशीमहि) तेरे पार पहुंचेंगे (भद्रे ! पारं अशीमहि) हे कल्याण करनेवाली ! तेरे पार हम जावेंगे ॥ २ ॥

हे रात्रि ! (ये ते नृचक्षसः) जो तेरे मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले और (द्रष्टारः) देखनेवाले रक्षक हैं (नवतिः नव) नब्बे और नौ (अशीतिः अष्टाः सन्ति) अस्सी और आठ (उत च ते सप्त सप्ततिः) और सात और सत्तर हैं ॥ ३ ॥

(षष्टिः च षट्) साठ और छः हैं (रेवति) धनवाली रात्रि ! (पंचाशत् पञ्च) पचास और पांच हैं (सुम्नयि) सुख देनेवाली रात्रि ! (चत्वारः चत्वारिंशत् च) चार और चालीस हैं (वाजिनि) बलवाली रात्रि ! (त्रयः त्रिंशत् च) और तैंतीस हैं ॥ ४ ॥

(द्वौ च ते विंशतिः च ते) दो और बीस हे रात्रि ! (अवमाः एकादश) कमसेकम ग्यारह रक्षक हैं। हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री ! (तेभिः पायुभिः) उन रक्षकोंसे (अद्य नः नु पाहि) आज हमारी रक्षा कर ॥ ५ ॥

(रक्ष माकिः) हमारी रक्षा कर (अघशंसः मा नः ईशत) पापी हमपर स्वामी न हो (मा नः दुःशंस ईशत) न हमपर दुष्ट कीर्तिवाला स्वामित्व करे (अद्य गवां स्तेन नः मा) आज गौओंका चोर न हमपर अधिकार चलावे (अवीनां वृकः मा नः ईशत) भेडोंका भेडिया हम वशमें करे ॥ ६ ॥

माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः । परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥
अधं रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि । गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥९॥ (१५५)

(४८) रात्रिः ।

(ऋषिः — गोपथः । देवता — रात्रिः ।)

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि । तानि ते परि दद्मसि ॥ १ ॥
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥ २ ॥
यत्किं चेदं पतयति यत्किं चेदं सरीसृपम् । यत्किं च पर्वतायासत्वं तस्मात्त्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३ ॥
सा पश्चात्पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत । गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥
ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति ।
पशून्ये सर्वान्रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५ ॥

अर्थ— हे (भद्रे) कल्याण करनेवाली रात्री ! (अश्वानां तस्करः मा) घोडोंका चोर और (नृणां यातुधान्यः मा) मनुष्योंको कष्ट देनेवाले हमें कष्ट न देवें । (स्तेनः तस्करः) चोर और डाकू (परमेभिः पथिभिः धावतु) दूरके मार्गसे भाग जाय । (दत्वती रज्जुः परेण) दांतवाली रस्सी [सांप] (परेण अघायुः अर्षतु) दूरके मार्गसे पापी भाग जाए ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! (अघ) और (तृष्टधूमं) तृषा बढानेवाले (अहिं) सांपको (अशीर्षाणं) सिरसे हीन कर । (वृकस्य हनू जम्भय) भेडियेके जबडोंको पीस (तेन तं द्रुपदे जहि) उससे उसको तू खीचकमें मार ॥ ८ ॥

हे रात्रे ! (त्वयि वसामसि) तेरे अन्दर हम रहते हैं तेरे आश्रयसे (स्वपिष्यामसि) हम सोयेंगे (जागृहि) तू जाग । (नः गोभ्यः शर्म यच्छ) हमारी गौओंके लिये सुख दे और (अश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः) घोडोंके लिये और पुरुषोंके लिये सुख दे ॥ ९ ॥

(४८) रात्रि ।

(अथो यानि च यस्मा ह) और जो हम जानते हैं (यानि च परीणहि अन्तः) जो संदूकमें हैं (तानि ते परि दद्मसि) वे सब तेरे लिये अर्पण करते हैं ॥ १ ॥

(रात्रि मातः) हे रात्रि माते ! (नः उषसे परि देहि) तू हमें उषाके अधीन कर । (उषा नः अह्ने परि ददातु) उषा हमें दिनके सुपुर्द करे । हे (विभावरि) तेजस्विनी रात्रि ! (अहः तुभ्यं) दिन तुम्हारे सुपुर्द हमें करे ॥ २ ॥

(यत् किं च इदं पतयति) जो कुछ यहां उडता है (यत् किं च इदं सरीसृपं) जो कुछ यहां रेंगता है, (यत् किं च पर्वते असत्वं) जो कुछ पर्वतपर जीव है हे रात्रि ! (तस्मात् त्वं नः पाहि) उससे तू हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

(सा पश्चात् पाहि) वह तू पीछेसे हमारी रक्षा कर (सा पुरः) आगेसे (सा उत्तरात् अधरात् उत) वह तू ऊपरसे और नीचेसे हमारी रक्षा कर । हे (विभावरि) तेजस्विनी रात्री ! (नः गोपाय) हमें सुरक्षित रख । (ते इह स्तोतारः स्मसि) तेरे हम यहां स्तोतागण हैं ॥ ४ ॥

(ये रात्रिं अनुतिष्ठन्ति) जो रात्रीमें अनुष्ठान करते हैं (ये च भूतेषु जाग्रति) जो प्राणियोंमें जागते हैं (ये सर्वान् पशून् रक्षन्ति) जो सब पशुओंकी रक्षा करते हैं (ते न आत्मसु जाग्रति) वे हमारे आत्माओंमें जागते हैं (ते नः पशुषु जाग्रति) वे हमारे पशुओंमें जागते रहते हैं ॥ ५ ॥

वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वा भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६ ॥ (३६१)

(४९) रात्रिः।

(ऋषिः — गोपथः भरद्वाजश्च। देवता — रात्रिः।)

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥
अति विश्वान्यरुहद्गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥ २ ॥
वर्ये वन्द्ये सुभगे सुजात आजगन्रात्रि सुमना [redacted] स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥ ३ ॥
सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥ ४ ॥
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥ ५ ॥

अर्थ— हे रात्रि ! (ते नाम वेद वै) तेरा नाम हम जानते हैं। (घृताची नाम वै असि) तू घी देनेवाली है। (तां त्वा भरद्वाजः वेद) उस तुझको भरद्वाज जानता है (सा नः वित्ते अधि जाग्रति) वह तू हमारे धनपर जागती रह ॥ ६ ॥

(४९) रात्रिः।

(इषिरा) इच्छा करने योग्य (योषा युवति) तरुण स्त्री जैसी (दमूना) अपने अधीन अपना मन रखनेवाली (सवितुः भगस्य देवस्य) सविता भग देवकी (रात्री) यह रात्री (अश्व-क्षभा) शीघ्र देखरेख करनेवालोंसे प्रभावित (सु-हवा) सुखसे प्रार्थना करने योग्य (संभृत श्रीरा) श्रीको धारण करनेवाली यह रात्री (महित्वा द्यावा पृथिवी आ पप्रौ) अपने महत्त्वसे द्युलोक और भूलोकको भर देती है ॥ १ ॥

(गम्भीरः विश्वानि अति अरुहत्) गहरा अन्धेरा सब जगतपर चढ गया है। (श्रविष्ठाः वर्षिष्ठं अरुहन्त) यशस्वी शक्तिवाले वह ऊंचे आकाशपर चढे हैं। (उशती रात्री) इच्छा करनेवाली रात्री और (सा भद्रा अभि तिष्ठते) वह कल्याण करनेवाली रात्री संयुक्त जाती है (मित्रः स्वधाभिः इव) मित्र जैसा अपनी शक्तियोंके साथ जाता है ॥ २ ॥

(वर्ये) वरण करने योग्य (वन्द्ये) वन्दन करने योग्य (सुभगे) उत्तम भाग्यवाली (सु-जाते) उत्तम जन्मवाली हे रात्रि ! तू (आ अगन्) आ गयी है (सुमना इह स्याम्) यहां उत्तम मनवाले हों। (अस्मान् त्रायस्व) हमारी रक्षा कर। (नर्याणि जाता) मनुष्योंके हितके लिये जो उत्पन्न हुए हैं (अथो) और (यानि गव्यानि पुष्ट्या) जो गौओंकी पुष्टि करनेवाले हैं उन सबकी रक्षा कर ॥ ३ ॥

(उशती रात्री) इच्छा करनेवाली रात्री (सिंहस्य) सिंहके (पींषस्य) हरिणके, (व्याघ्रस्य) बाघके (द्वीपिनः) चीतेके (वर्चः आ ददे) तेजको लेती है। (अश्वस्य ब्रध्नं) घोडेके वेगको (पुरुषस्य मायुं) पुरुषके शब्दको लेती है और (विभाती) चमकती हुई रात्री (पुरु रूपाणि कृणुषे) बहुत रूपोंको दिखा करती है ॥ ४ ॥

(शिवां रात्रीं) कल्याण करनेवाली रात्री (अनुसूर्यं) सूर्यके पीछे (हिमस्य माता) सर्दीकी वह माता (नः सुहवा अस्तु) हमारे लिये सुखसे स्तुति करने योग्य हो। हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवाली ! (अस्य स्तोमस्य) इस स्तोत्रको (नि बोध) जान (येन विश्वासु दिक्षु त्वा वन्दे) जिससे मैं सब दिशाओंमें तेरी वन्दना करता हूं ॥ ५ ॥

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥
शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत्पुनर्न विद्यते ॥ ७ ॥
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥ ८ ॥
यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः । रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥ (१७१)

(५०) रात्रि ।

(ऋषि — गोपथः । देवता — रात्रिः ।)

अधं रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥

अर्थ— हे (विभावरि) प्रकाशवाली रात्रि ! (नः स्तोमस्य) हमारे स्तोत्रको तू (राजा इव जोषसे) राजाके समान प्यार करती है (व्युच्छन्तीः उषसः) चमकनेवाली उषाओंमें (सर्ववीराः असाम) सारे वीर पुत्रोंके साथ हम रहें और (सर्व-वेदसः भवाम) सब धनोंके साथ हों ॥ ६ ॥

(शम्या ह नाम दधिषे) आराम देनेवाली इस अर्थका नाम तू धारण करती है । (ये मम धना दिप्सन्ति) जो मेरे धनोंको हानि पहुंचाते हैं (तान् असुतपा रात्री इहि) उनके प्राणोंको ताप पहुंचानेवाली तू रात्री हो । (यः स्तेनः न विद्यते) जो चोर है वह न रहे (यत् पुनः न विद्यते) वह फिर भी न रहे ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! तू (भद्रा असि) कल्याण करनेवाली है । (चमसः न विष्टः) जैसा परोसा हुआ पात्र होता है । (युवतिः विष्वङ् गोरूपं बिभर्षि) तू युवती होकर चारों ओर गौका रूप धारण करती है । (मे उशती चक्षुष्मती वपूंषि) मुझे इच्छती हुई तू नक्षत्रके युक्त अपने आकर्षक शरीर दिखाती । (त्वं दिव्या न , तू आकाशके नक्षत्रके समान (क्षां प्रति अमुक्थाः) पृथिवीको भी सुभूषित कर ॥ ८ ॥

(यः अद्य स्तेन आयति) जो आज चोर आता है व (अघायुः मर्त्यः रिपुः) पापी मनुष्य शत्रु है (रात्री तस्य प्रतीत्य) रात्री उसके पास जाकर उसका (ग्रीवाः प्र शिरः प्र हनत्) गला और सिर काट डाले ॥ ९ ॥

हे रात्रि ! (पादौ प्र) उसके पांवोंको काट डाल (न यथा आयति) जिससे वह फिर न आ सके । (हस्तौ प्र) हाथ तोड दे (यथा न अशिषत्) जिससे वह हमें न पहुंचा सके (यः मलिम्लुः उप आयाति) जो चोरी करता है वह (संपिष्टः अपायति) पीसा हुआ चला जाय । (अपायति सु अपायति) वह चला जाय अच्छी तरह चला जाय (शुष्के स्थाणौ अपायति) सूखे खंबे पर चला जाय ॥ १० ॥

(५०) रात्रि ।

हे रात्रि ! (तृष्टधूमं अहिं) तृषा उत्पन्न करनेवाले विषवाले सांपको (अधं अशीर्षाणं कृणु) सिरहीन अंधा कर । (वृकस्य अक्षौ निर्जह्याः) भेडियेकी आंखोंको निकाल दे । (तेन तं द्रुपदे जहि) उसको तू लकडी द्रुपद साथ मार ॥ १ ॥

ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः । तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् । गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान्नानुविद्यते । एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् । अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान्भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥ ६ ॥
उपसे नः परि देहि सर्वान्रात्र्यनागसः । उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥ (१७८)

अर्थ— हे रात्रि ! (ये ते तीक्ष्णशृङ्गाः) जो तेरे तीखे सींगवाले (स्वाशवः) बडे तेज (अनड्वाहः) बैल हैं, (तेभिः नः अद्य) उनके साथ हमें आज (विश्वहा दुर्गाणि अति पारय) सब संकटोंके पार पहुंचा दे ॥ २ ॥

(वयं तन्वा अरिष्यन्तः) हम शरीरसे हानि न उठाते हुए (रात्रिं रात्रिं तरेम) प्रत्येक रात्रीमें पार हो जांय । (अरातयः अप्लवाः इव) शत्रु नौका रहितोंके समान (न तरेयुः) पार न हों ॥ ३ ॥

(यथा शाम्याकः) जैसा सावांका दाना (प्र पतन्) उडता हुआ (अपवान् न अनुविद्यते) हवानेपर मिलता नहीं हे रात्रि ! (एवा) इस तरह (प्र पातय) उसको उडा दे (यः अस्मान् अभ्यघायति) जो हमसे पापाचरण करता है ॥ ४ ॥

(वासः स्तेनं अप) वस्त्रोंके चोरको दूर कर (गो अज उत तस्करं) गौओं, बकरियोंके ले जानेवालेको तथा लुटेरेको दूर कर । (अथो यो अर्वतः शिरः) और जो घोडेके सिरको (अभिधाय निनीषति) बांधकर ले जाता है उसको भी दूर कर ॥ ५ ॥

हे (सुभगे रात्रि) भाग्यवाली रात्रि ! (यत् अद्य वसु विभजन्ती) जो आज तू धन बांटती हुई (आ अयाः) आती है । (तत् एतत् अस्मान् भोजय) वह हमें उपभोगके लिये दे (यथा इत् अन्यान् न उपायसि) जिससे वह दूसरोंके पास न जाय ॥ ६ ॥

हे रात्रि ! (अनागसः सर्वान् नः) निष्पाप हम सबको (उषसे परि देहि) उषाके लिये दे दो । (उषा नः अह्ने आ भजात्) उषा हमें दिनके लिये दे दे हे (वि-भावरि) प्रकाशवाली ! (अहः तुभ्यं) दिन तुम्हारे पास हमें सौंप दे ॥ ७ ॥

चार रात्री सूक्त

यहां गोपथ ऋषिके चार सूक्त रात्रीके वर्णनके हैं । इनमें एक तीसरा सूक्त भरद्वाजका भी अर्थात् गोपथ और भरद्वाज इन दोनोंका है । इनमें जो रात्रीका वर्णन है वह विशेष विचार पूर्वक देखने योग्य है ।

१ वि भा-वरि— विशेष तेजस्वी ४७।२; ४८; ४९।६; ५०।७;
२ संभृत श्री— इकट्ठी हुई शोभावाली ४९।१;
३ विभाती— विशेष तेजस्वी ४९।७;
४ स्फुरच्छ्री— विशेष चमकनेवाली ४९।६ ।

विविध चमकनेवाली विविध प्रकारके प्रकाशोंसे युक्त यह रात्री है । हमारी इस देशमें जो रात्री होती है उसमें विशेष प्रकाशोंका वर्णन नहीं होता इसलिये यह वर्णन हमारे देशमें होनेवाली रात्रीका नहीं लगता ऐसा प्रतीत होता है । तथा—

१ तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥५०।२
२ रात्रिं अरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ॥५०।३
३ अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्री पारम् अशीमहि । भद्रे पारमशीमहि ॥४७।२

१ हमें सब संकटोंसे पार ले जाती है । २ इस रात्रीको हम अपने शरीरके साथ विनाश न होते हुए पार जांयगे । ३ विनाश न होकर बडी अंधकारमय रात्रीके पार जांयगे हे कल्याण करनेवाली रात्री ! हम पार हो जांयगे ।

रात्रीमें सुरक्षित पार होने का वचन आजकी १२ घण्टोंकी रात्रीके विषयमें नहीं है क्योंकि इस रात्रीके पार हम जांयगे

(५१) आत्मा।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — आत्मा सविता च।)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो
मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥ (१८०)

(५२) कामः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — कामः।)

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥

यह हरएक मनुष्य भी जानता है। प्रतिदिन मनुष्य सोता है और दूसरे दिन उठकर पार होता ही है। इसलिये यह प्रार्थना (ऊर्वी तमस्वती रात्री) बडे अन्धकारवाली विशाल रात्रीकी ही होगी। जो रात्री ६।६ मास रहती है अथवा ९ मास उत्तरीय ध्रुवके पास रहती है। उस रात्रीकी यह प्रार्थना होगी। क्योंकि दीपमाल तक बडी रात्री रहती है इसलिये प्रार्थनाकी सार्थकता वहीं हो सकती है। इस रात्रीके विशेषण देखिये—

१ बृहती (४७।१)— बडी।

२ यस्याः पारं न दृदृशे। (४७।१)— जिसका पार दीखता नहीं ऐसी यह रात्री दीर्घकाल रहनेवाली है।

३ ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव। (४ १)— हे रात्री! तेरे अन्दर पहारेदार मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले ९९ हैं।

४ ये भूतेषु जाग्रति। (४८।५)— जो मनुष्योंके रक्षणार्थ जागते हैं।

ये जो जागता पहारा करना है वह अति दीर्घ रात्रीके लिये ही हो सकता है। इसलिये यह रात्री अनेक महिने रहनेवाली उत्तरीय ध्रुवके पास होनेवाली रात्री होगी।

जिस समय दीर्घ रात्री होती है उस समय हिंस्रपशुओंके भय होता है जिसका वर्णन इन मंत्रोंमें है। चोर डाकू लुटेरोंका भय होता है यह इन मंत्रोंमें है। पशुओंकी चोरी भी है। हमारी छोटी रात्रीमें भी ये भय होते हैं पर जितना वर्णन इन मंत्रोंमें है उतना नहीं होता। इन मंत्रोंमें वर्णन किया भय दीर्घ रात्रीमें ही हो सकता है। बृहती उर्वी आदि पद उस रात्रीके वाचक हैं। इसलिये निश्चय यह है कि यह भय वाचक वर्णन दीर्घ रात्रीका है।

---

(५१) आत्मा।

अर्थ— (अहं अयुतः) मैं पूर्ण हूं (मे आत्मा अयुतः) मेरा आत्मा पूर्ण है (मे चक्षुः अयुतं) मेरा नेत्र पूर्ण है (मे श्रोत्रं अयुतं) मेरे कान पूर्ण हैं (मे प्राणः अयुतः) मेरा प्राण पूर्ण है (मे अपानः अयुतः) मेरा अपान पूर्ण है (मे व्यानः अयुतः) मेरा व्यान पूर्ण है (अहं सर्वः अयुतः) मैं सब पूर्ण हूं ॥ १ ॥

(सवितुः देवस्य प्रसवे) सविता देवकी प्रेरणामें (अश्विनोः बाहुभ्यां) अश्विनोंके बाहुओंसे और (पूष्णः हस्ताभ्यां) पूषाके हाथोंसे (प्रसूतः) प्रेरा हुआ मैं (आ रभे) इस कार्यका प्रारंभ करता हूं ॥ २ ॥

(५२) कामः।

(अग्रे कामः समवर्तत) पहिले काम उत्पन्न हुआ। (तत् मनसः रेतः प्रथमं यत् आसीत्) वह मनका पहिला बीज था। हे काम! (बृहता कामेन सयोनिः सः) बडे कामके साथ समान उत्पत्ति स्थानवाला वह तू (यजमानाय रायस्पोषं धेहि) यजमानके लिये धनकी पुष्टि दे ॥ १ ॥

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥
कामेन मा काम आगन्हृदयाद्धृदयं परि । यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥ (१८७)

(५३) कालः ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — कालः ।)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
सप्त चक्रान्वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत्कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २ ॥

अर्थ — हे काम ! (त्वं) तू (सहसा प्रतिष्ठितः असि) सामर्थ्यके साथ रहता है। तू (विभुः विभावा) व्यापक तथा तेजस्वी और (सखीयते सखा) मित्रके समान बर्तनेवालेके साथ तू मित्र बनकर रहता है। (त्वं उग्रः) तू उग्र है (पृतनासु सासहिः) सेनाओंमें विजय करनेवाला (यजमानाय सहः ओजः आ धेहि) यजमानके लिये साहस और बल दे ॥ २ ॥

(दूरात् चकमानाय) दूरसे कामना करनेवाले (प्रतिपाणाय अक्षये) प्रति प्राणके अक्षरहित करनेके लिये (अस्मै आशाः अशृण्वन्) इस कामकी घोषणा सब दिशाएं सुनती हैं कि (कामेन स्वः अजनयन्) इस कामसे दिव्य सुख निर्माण किया है ॥ ३ ॥

(कामेन मा कामः आगन्) कामसे मेरी ओर काम आ गया है। (हृदयात् हृदयं परि) हृदयसे हृदयकी ओर भी काम आ गया है। (यत् अमीषां अदः मनः) जो उनका वह मन है (तत् मां इह उप एतु) वह मेरे पास आवे ॥ ४ ॥

हे काम ! (यत् कामयमानाः) जिसकी इच्छा करते हुए (ते इदं हविः कृण्मसि) तेरे लिये यह हवि करते हैं (तत् नः सर्वं समृध्यतां) वह सब हमारे लिये सिद्ध हो जाय। (अथ एतस्य हविषः वीहि) और इस हविका तू स्वीकार कर, (स्वाहा) तुम्हारे लिये समर्पण हो ॥ ५ ॥

काम का अर्थ इच्छा आकांक्षा है। यही सब सृष्टिमें बडे बडे कार्य कर रहा है। सृष्टि उत्पन्न करनेकी कामना परमेश्वरने की और सृष्टि बनाई। मनुष्य भी नाना प्रकारकी कामनाएं करता है और अनेक छोटे बडे कार्य करता है। इस लिये देखा जाय तो इस कामका राज्य ही सब स्थानोंपर है। यह देखना चाहिये।

(५३) कालः ।

(कालः अश्वः) कालरूपी घोडा (वहति) विश्वरूपी रथको खींचता है। (सप्त रश्मिः) इसके सात किरण हैं (सहस्र-अक्षः) हजार आंख हैं वह (अ-जरः) जरारहित और (भूरि-रेताः) बहुत वीर्यवान है (तं विपश्चितः कवयः आ रोहन्ति) उसपर ज्ञानी कवि चढते हैं (तस्य चक्रा विश्वा भुवनानि) उसके चक्र सब भुवन हैं ॥ १ ॥

(एषः कालः सप्त चक्रान् वहति) यह काल सात चक्रोंको खींचता है। (अस्य सप्त नाभीः) इसकी सात नाभियां हैं (अक्षः नु अमृतं) इसका अक्ष अमृत है। (सः इमा विश्वा भुवनानि अञ्जत्) वह इन सब भुवनोंको प्रकट करता है। (सः प्रथमः देवः कालः ईयते) वह काल पहिला देव है और वह चलता रहता है ॥ २ ॥

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्काल समाहुः परमे व्योमन् ॥ ३ ॥
स एव सं भुवनान्याभरत्स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत्पुत्र एषां तस्माद्वै नान्यत्परमस्ति तेजः ॥ ४ ॥
कालोऽमूं दिवमजनयत्काल इमाः पृथिवीरुत । काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः । काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥६॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् । कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत्प्रजापतेः ॥ ८ ॥
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन्प्रतिष्ठितम् । कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् । स्वयंभूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत ॥१०॥ (१९७)

अर्थ— (पूर्णः कुम्भः काले अधि आहितः) भरा हुआ घडा [यह विश्व] कालके ऊपर रखा है । (तं वै पश्यामः बहुधा नु सन्तं) उसको हम देखते हैं जो अनेक प्रकारसे होता है । (सः इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्) वह काल इन सब भुवनोंके सामने है (परमे व्योमन् तं कालं आहुः) परम आकाशमें उसको काल कहते हैं ॥ ३ ॥

(सः एव भुवनानि सं आभरत्) वह ही सब भुवनोंका भरणपोषण करता है (सः एव भुवनानि सं पर्यैत्) वही सब भुवनोंको व्यापता है । (पिता सन्) वह पिता होता हुआ (एषां पुत्रः अभवत्) इनका पुत्र हुआ है । (तस्मात् वै परं तेजः न अन्यत् अस्ति) उससे अधिक तेज कोई नहीं है ॥ ४ ॥

(कालः अमूं दिवं अजनयत्) कालने ही इस द्युलोकको बनाया है । (उत कालः इमाः पृथिवीः) और कालने ही ये भूमियां बनायी हैं (काले ह भूतं भव्यं च) कालमें जो भूतकालमें हुआ और भविष्यमें होगा वह सब रहता है तथा कालमें (इषितं ह वितिष्ठते) जो प्रेरित होता है वह सब रहता है ॥ ५ ॥

(कालः भूतिं असृजत) कालने भूति बनायी है । (सूर्यः काले तपति) सूर्य कालमें ही तपता है । (काले ह विश्वा भूतानि) कालमें ही सब भूत रहे हैं (काले चक्षुः विपश्यति) कालमें आंख विशेष रीतिसे देखता है ॥ ६ ॥

(काले मनः) कालमें मन (काले प्राणः) कालमें प्राण और (काले नाम समाहितं) कालमें नाम रहा है । (आगतेन कालेन) काल आनेपर (इमाः सर्वाः प्रजाः) ये सब प्रजाएं (नन्दन्ति) आनंदित होती हैं ॥ ७ ॥

(काले तपः) कालमें तप होता है (काले ज्येष्ठं) कालमें ज्येष्ठ रहता है (काले ब्रह्म समाहितं) कालमें ज्ञान रखा हुआ है (कालः ह सर्वस्य ईश्वरः) काल ही सबका ईश्वर है (यः प्रजापतेः पिता आसीत्) जो प्रजापतिका पिता था ॥ ८ ॥

(तेन इषितं) उसने प्रेरित किया है (तेन जातं) उससे उत्पन्न हुआ है (तत् उ तस्मिन् प्रतिष्ठितं) वह निःसंदेह उसमें रहा है । (कालः ह ब्रह्म भूत्वा) काल निःसंदेह ब्रह्म बनकर (परमेष्ठिनं बिभर्ति) परमेष्ठीको धारण करता है ॥ ९ ॥

(कालः प्रजाः असृजत) कालने प्रजाएं निर्माण की हैं (कालः अग्रे प्रजापतिं) कालने पहिले प्रजापतिको बनाया है । (स्वयंभूः कश्यपः कालात्) स्वयंभू कश्यप कालसे बना है (कालात् तपः अजायत) कालसे तप बना है ॥ १० ॥

कालसे सब कुछ बना है । काल ही सबका कारण है । यह विचार करके जानना योग्य है ॥

(५४) कालः ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — कालः ।)

कालादापः सर्मभवन्कालाद्ब्रह्म तपो दिशः । कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥ १ ॥
कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल आहिता ॥ २ ॥
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत्पुरा । कालादृचः समभवन्यजुः कालादजायत ॥ ३ ॥
कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् । काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥ ५ ॥ (२००)

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

---

(५४) कालः ।

अर्थ — (कालात् आपः समभवन्) कालसे जल उत्पन्न हुए हैं (कालात् ब्रह्म तपः दिशः) कालसे ज्ञान तप और दिशाएं उत्पन्न हुई हैं । (कालेन सूर्यः उदेति) कालसे सूर्य उदयको प्राप्त होता है (पुनः काले नि विशते) पुनः वह सूर्य कालमें ही प्रविष्ट होता है ॥ १ ॥

(कालेन वातः पवते) कालसे वायु बहता है (कालेन पृथिवी मही) कालसे ही पृथिवी बडी हुई है । (काले द्यौः मही आहिता) कालमें ही बडा द्यौ रखा है ॥ २ ॥

(पुत्रः कालः ह भूतं भव्यं च) पुत्र कालने ही भूत और भविष्य (पुरा अजनयत्) पहिले बनाये हैं (कालात् ऋचः समभवन्) कालसे ऋचाएं उत्पन्न हुई और (कालात् यजुः अजायत) कालसे यजु उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥

(कालः) कालने ही (अक्षितं यज्ञं भागं) अक्षय यज्ञभागको (देवेभ्यः समैरयत्) देवोंके लिये प्रेरित किया है । (काले गन्धर्व-अप्सरसः) कालमें ही गन्धर्व और अप्सराएं हुई हैं । (काले लोकाः प्रतिष्ठिताः) कालमें सब लोक रहे हैं ॥ ४ ॥

(काले अयं अङ्गिरा देवः) कालमें यह अङ्गिरा देव और (अथर्वा च अधि तिष्ठतः) और अथर्वा अधिष्ठाता होकर रहा है । (इमं च लोकं परमं च लोकं) इस लोकको और परम लोकको तथा (पुण्यान् लोकान् च) सब पुण्य लोकोंको और (पुण्याः विधृतीः च) पुण्य मर्यादाओंको तथा (सर्वान् लोकान् अभिजित्य) सारे लोकोंको जीतकर (परमः देवः कालः) परमदेव काल (ब्रह्मणा सः ईयते) ब्रह्म-ज्ञान-के साथ सर्वत्र जाता है ॥ ५ ॥

॥ यहां षष्ठ अनुवाक समाप्त ॥

(५५) रायस्पोषप्राप्तिः।

(ऋषिः — भृगुः। देवता — अग्निः।)

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥
या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ २ ॥
सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ ३ ॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥ ४ ॥
अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम्। अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ ५ ॥
त्वामिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवन्। अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥ ६ ॥ (४०३)

---

(५५) रायस्पोषप्राप्तिः।

अर्थ— (रात्रिं रात्रिं अप्रयातं) प्रत्येक रातमें बंधे हुए कहीं भी न जानेवाले (अस्मै तिष्ठते अश्वाय) इस खडे हुए घोडेके (घासं इव भरन्तः) घास देते हैं, उस तरह अग्निके लिये अन्न हवि लानेवाले हम सब (रायस्पोषेण इषा सं मदन्तः) धन और पुष्टिके तथा अन्नके साथ आनन्द करते हुए (ते प्रतिवेशाः) तेरे पडोसी हम हे अग्ने! (मा रिषाम) कष्ट न भोगें ॥ १ ॥

(या ते वसोः वातः इषुः) जो तुझ बसानेवालेका वायुरूप बाण है (सा ते एषा) वह तेरा ही यह बाण है (तया नः मृड) उससे हमें सुख दे ॥ २ ॥

(सायं सायं) प्रति सायंकाल (अग्निः नः गृहपतिः) अग्नि हमारा गृहपति होकर रहता है। वह (प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता) प्रत्येक प्रातःकालमें उत्तम मनका दाता होता है। वह (वसोः वसोः वसुदानः एधि) हमें प्रत्येक उत्तम वस्तुका दान देनेवाला हो (त्वा इन्धानाः वयं) तुझे प्रदीप्त करनेवाले हम (तन्वं पुषेम) अपने शरीरको पुष्ट करेंगे ॥ ३ ॥

(प्रातः प्रातः) प्रत्येक प्रातःकालमें (अग्निः नः गृहपतिः) अग्नि हमारा गृहपति हुआ है वह (सायं सायं सौमनसस्य दाता) प्रत्येक सायंकालमें उत्तम मनका दाता है। वह (वसोः वसोः वसुदानः एधि) हमें प्रत्येक उत्तम वस्तुका दान देनेवाला हो (त्वा इन्धानाः शतं हिमाः ऋधेम) तुझे प्रदीप्त करनेवाले हम सौ वर्ष समृद्ध होते रहेंगे ॥ ४ ॥

(दग्धान्नस्य अ-पश्चा भूयासं) पके अन्नवालेके पीछे मैं न होऊं। (अन्नादाय अन्नपतये) अन्नका स्वीकार करनेवाले अन्नके पति (रुद्राय अग्नये नमः) रुद्ररूपी अग्निके लिये मैं नमस्कार करता हूं। (सभ्य मे सभां पाहि) सभाके योग्य तू है मेरी सभाकी रक्षा कर। (ये च सभ्याः सभासदः) जो सभामें बैठनेवाले सभासद हैं वे भी सभाकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! (त्वं पुरुहूत) तू बहुतों द्वारा प्रार्थना करने योग्य है। (विश्वं आयुः व्यश्नुवत्) तेरा उपासक सारी आयु भोगे। (अहः अहः बलिं इत् ते हरन्तः) प्रतिदिन तुझे बलि लाते हुए हम हे अग्ने! (तिष्ठते अश्वाय घासं इव) खडे घोडेको घास देते हैं उस तरह तुझे हम हवि देते हैं ॥ ६ ॥

(५६) दुःष्वप्ननाशनम्।

(ऋषिः — यमः। देवता — दुःष्वप्ननाशनम्।)

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान्प्र युनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥ १ ॥
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥ २ ॥
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥ ३ ॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४ ॥
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥ ५ ॥

---

(५६) दुःष्वप्ननाशनम्।

अर्थ— (यमस्य लोकात्) यमके लोकसे (अध्या बभूविथ) तू इधर आया है। (धीरः प्रमदा मर्त्यान् युनक्षि) तू बुद्धिमान् इससे मनुष्योंको स्वप्नमें प्रयुक्त करता है। (असुरस्य योनौ) प्राणके उत्पत्तिस्थानमें (स्वप्नं मिमानः) स्वप्नकी रचना करता हुआ (विद्वान्) जानता हुआ (एकाकिना सरथं यासि) तू अकेलेके साथ समान रथ बैठकर जाता है ॥ १ ॥

(विश्वचया बन्धः) पूर्ण व्यापक बन्धनने (रात्र्याः जनितोः पुरा) रात्रीके उत्पन्न होनेके पूर्व (एके अह्नि) एक दिन (त्वा अग्रे अपश्यत्) तुझे प्रथम देखा था। हे (स्वप्न) स्वप्न! (ततः इदं अध्या बभूविथ) वहांसे इधर आया है (भिषग्भ्यः रूपं अपगूहमानः) और वैद्योंसे अपने रूपको तू छिपाता है ॥ २ ॥

(बृहद्गावा महिमानं इच्छन्) बडी गौओंवाला अपना महत्त्व चाहता हुआ स्वप्न (असुरेभ्यः देवान् अधि उपावर्तत) असुरोंसे देवोंके पास आया है। (स्वः आनशानाः त्रयस्त्रिंशासः) स्वर्गमें रहनेवाले तैंतीस देवोंने (तस्मै स्वप्नाय आधिपत्यं दधुः) उस स्वप्नके लिये अधिपत्य दिया है ॥ ३ ॥

(पितरः एतां न विदुः) पितर इस स्वप्नको जानते नहीं (उत न देवाः) और देव भी इस स्वप्नको जानते नहीं (येषां जल्पिः इदं अन्तरा चरति) जिनका वार्तालाप इस स्वप्नके अन्दर चलता है। (वरुणेन अनुशिष्टाः आदित्यासः नरः) वरुणसे शिक्षित किये आदित्य और मनुष्य (स्वप्नं आप्त्ये त्रिते अदधुः) स्वप्नको जलके पुत्र त्रितमें रखते हैं। [जल पुत्र जलके कारण स्वप्न होता है ऐसा मानते हैं।] ॥ ४ ॥

(यस्य क्रूरं दुष्कृतः अभजन्त) जिस स्वप्नके क्रूर फलको दुष्कर्म करनेवाले आपसमें बांटते हैं और (सुकृतः अस्वप्नेन पुण्यं आयुः) पुण्य कर्म करनेवाले स्वप्न न आनेसे पुण्यमय आयुको भोगते हैं। (परमेण बन्धुना स्वः मदसि) परम बन्धु परमात्माके साथ रहकर स्वर्गसुखका आनन्द मिलता है। तू स्वप्न (तप्यमानस्य मनसः अधि जज्ञिषे) तपनेवाले मनसे उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद्विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥ ६ ॥ (५१२)

(५७) दुःस्वप्ननाशनम्।

(ऋषिः — यमः। देवता — दुःस्वप्ननाशनम्।)

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति। एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥ १ ॥
सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः।
समस्मासु यद्दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ॥ २ ॥
देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः। मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम्।
अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद्गोषु यच्च नो गृहे ॥ ४ ॥

अर्थ— हे स्वप्न ! ते सर्वाः पुरस्तात् परिजाः विद्म [illegible] है। (यः इह ते अधिपाः विद्म) [illegible] है। (नः यशस्विनः) [illegible] (इह आरात् [illegible] याहि) [illegible] (द्विषेभिः दूरं अप याहि) [illegible] ॥ ६ ॥

[illegible]

अनास्माकस्तद्देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम्।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि। दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥ (५७)

(५८) यज्ञः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — यज्ञः, बहवो देवताश्च।)

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥ १ ॥
उपास्मान्प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥ २ ॥
वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ४ ॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥

अर्थ— (अनास्माकः देवपीयुः पियारुः) जो हमारा नहीं जो देवोंका विरोधी है और दुष्ट है वह (तत् निष्कं इव प्रति मुञ्चताम्) वह स्वप्नको हारके समान पहने। (नव-अरत्नीन् अपमयाः) नौ हाथ परे हट जा। (अस्माकं ततः परि) हमारे दुष्ट स्वप्न उससे परे जांय। (सर्वं दुःष्वप्न्यं द्विषते निर्दयामसि) सब दुष्ट स्वप्न हम उसपर फेंकते हैं जो हमारा द्वेष करता है॥ ५॥

(५८) यज्ञः।

(समना सदेवा) मन समान देवी शक्तियोंके साथ (घृतस्य जूतिः) घीकी अविच्छिन्न गति (हविषा संवत्सरं वर्धयन्ती) हविसे संवत्सरको बढाती है। (नः श्रोत्रं चक्षुः प्राणः अच्छिन्नः अस्तु) हमारे कान आंख और प्राण ये अविच्छिन्न रहें (आयुषः वर्चसः वयं अच्छिन्नाः) आयु और तेजसे हम अविच्छिन्न हों॥ १॥

(प्राणः अस्मान् उपह्वयतां) प्राण हमें बुलावे (वयं प्राणं उपहवामहे) हम प्राणको बुलावें। (पृथिवी वर्चः जग्राह) पृथिवीने तेज ग्रहण किया है। (अन्तरिक्षं वर्चः) अन्तरिक्षने तेज ग्रहण किया है (सोमः बृहस्पतिः विधत्ता) सोम और बृहस्पति तेज धारण करते हैं॥ २॥

(द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी (वर्चसः संग्रहणी बभूवथुः) तेजका संग्रह करनेवाले हुए हैं। (वर्चः गृहीत्वा पृथिवीं अनु संचरेम) तेजको लेकर हम पृथिवीपर संचार करेंगे। (यशसं गोपतिं गावः उपतिष्ठन्ति) यशस्वी गौके स्वामीके पास गौवें आती हैं। (यशः गृहीत्वा आयती) यश लेकर आनेवाली गौओंके (गृहीत्वा) लेकर हम (पृथिवीं अनु संचरेम) पृथिवीपर घूमेंगे॥ ३॥

(व्रजं कृणुध्वं) गोशाला बनाओ (सः हि वः नृपाणः) वही तुम्हारा मानवोंका दूध पीनेका स्थान है। (वर्मा सीव्यध्वं) कवच सीकर तैयार करो वे (बहुला पृथूनि) बहुत हों और बडे भी हों। (आयसीः पुरः अधृष्टाः कृणुध्वं) लोहेके शत्रुसे न हारनेवाले किलेके समान नगर बनाओ। (वः चमसः मा सुस्रोत्) तुम्हारे पात्र न चूएं (तं दृंहत) उसको दृढ बना दो॥ ४॥

(यज्ञस्य चक्षुः मुखं च प्रभृतिः) यज्ञकी दृष्टि और मुख प्रकर्षसे धारण करनेवाले हैं। (वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि) वाणी कानोंसे और मनसे मैं आहुति देता हूं। (विश्वकर्मणा इमं विततं यज्ञं) विश्वकर्माके फैलाये हुए इस यज्ञके प्रति (सुमनस्यमानाः देवाः यन्तु) उत्तम मनवाले देव आवें॥ ५॥

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥ ६ ॥ (४११)

(५९) यज्ञः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — अग्निः ।)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ २ ॥
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥ ३ ॥ (४१४)

(६०) अङ्गानि ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — वाक्, अङ्गानि च ।)

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः । प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥ (४१६)

अर्थ— (ये देवानां ऋत्विजः) जो देवोंके ऋत्विज हैं (ये च यज्ञियाः) जो पूजनीय हैं (येभ्यः भागधेयं हव्यं क्रियते) जिनके लिये स्वीकार करने योग्य हव्य दिया जाता है (इमं यज्ञं पत्नीभिः सह एत्य) इस यज्ञमें पत्नियोंके साथ आकर (यावन्तः देवाः) जितने देव हैं वे सब (तविषा मादयन्तां) हविसे तृप्त हों ॥ ६ ॥

(५९) यज्ञः ।

हे अग्ने ! हे देव ! (त्वं मर्त्येषु व्रतपा असि) तू मनुष्योंमें हमारे व्रतोंका रक्षक है। (यज्ञेषु त्वं ईड्यः) तू यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य है ॥ १ ॥

हे (देवाः) हे देवो ! (यत् वयं विदुषां वः व्रतानि प्रमिनाम) यदि हम आप विद्वानोंके कोई व्रत तोडे होंगे (अविदुष्टरासः) न जानते हुए तोडे होंगे (तत् विश्वादाः अग्निः) तो उनको सब खानेवाला अग्नि (पृणातु) पूर्ण करे (सोमस्य च विद्वान् ब्राह्मणान् आविवेश) सोमका जाननेवाला जो ब्राह्मणमें आकर बैठता है वह उन दोषोंको दूर करे ॥ २ ॥

(देवानां पन्थां अपि आ अगन्म) हम देवोंके मार्गपर आ गये हैं। (यत् शक्नवाम) यदि हम समर्थ हुए तो (तत् अनु प्रवोढुं) उसके आगे ले जानेके लिये यत्न करेंगे। (स विद्वान् अग्निः) वह ज्ञानी अग्नि (स यजात्) वह यज्ञ करे (स इत् होता) वह निःसंदेह हवन करता है (सः अध्वरान्) वह यज्ञोंको और (सः ऋतून् कल्पयाति) वह ऋतुओंको सामर्थ्यवान बनाता है ॥ ३ ॥

(६०) अङ्गानि ।

(मे आसन् वाक्) मेरे मुखमें उत्तम वाक् शक्ति रहे (नसोः प्राणः) मेरे नाकमें प्राण रहे (अक्ष्णोः चक्षुः) मेरे आंखोंमें उत्तम दृष्टि रहे (कर्णयोः श्रोत्रं) मेरे कानोंमें उत्तम श्रवण शक्ति रहे (केशाः अपलिताः) मेरे केश श्वेत न हों (दन्ताः अशोणाः) मेरे दांत मलिन न हों अथवा गिर न जांय (बाह्वोः बहु बलं) मेरे बाहुओंमें बहुत बल रहे (ऊर्वोः ओजः) मेरे जांघोंमें सामर्थ्य रहे (जंघयोः जवः) मेरी पिंडलियोंमें वेग रहे (पादयोः प्रतिष्ठा) मेरे पांवोंमें स्थिर रहनेकी शक्ति हो (मे सर्वा अरिष्टानि) मेरे सब अवयव नीरोग हों (आत्मा अनिभृष्टः) मेरा आत्मा कभी दुःखसे न गिरा हुआ हो ॥ १-२ ॥

(६१) पूर्णायुः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — ब्रह्मणस्पतिः।)

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय। स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१॥ (५०९)

(६२) सर्वप्रियत्वम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — ब्रह्मणस्पतिः।)

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥ (५१०)

(६३) आयुर्वर्धनम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — ब्रह्मणस्पतिः।)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान्यज्ञेन बोधय। आयुः प्राणं प्रजां पशून्कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥१॥ (५११)

(६४) दीर्घायुष्यम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — अग्निः।)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि। तथा त्वमस्मान्वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि। सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव। आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥ (५१५)

---

(६१) पूर्णायुः।

अर्थ— (मे तनूः तन्वा) मेरा शरीर मोटा ताजा हो (दतः सहे) शत्रुओंका मैं पराभव करूंगा, मुझे दबानेवालोंको मैं अपने सामर्थ्यसे दूर करता हूं। (सर्वं आयुः अशीय) मैं पूर्ण आयुका भोग करूंगा (मे स्योनं सीद) मेरे सुखसे स्थानपर बैठ (पुरुः पृणस्व) अपने आपको परिपूर्ण कर, (पवमानः स्वर्गे) पवित्र होता हुआ सुखपूर्ण स्थानमें रहूंगा ॥१॥

(६२) सर्वप्रियत्वम्।

(देवेषु मा प्रियं कृणु) देवोंमें मुझे प्रिय करो (राजसु मा प्रियं कृणु) राजाओंमें मुझे प्रिय कर (सर्वस्य पश्यतः प्रियं) सब देखनेवालोंमें मैं प्रिय बनूं (उत शूद्रे उत आर्ये) चाहे वह शूद्र हो चाहे आर्य हो ॥१॥

(६३) आयुर्वर्धनम्।

हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामिन् (उत्तिष्ठ) उठ, (यज्ञेन देवान् बोधय) यज्ञसे देवोंको समझा दो। आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति तथा यजमानको (वर्धय) बढाओ ॥१॥

(६४) दीर्घायुष्यम्।

हे अग्ने! (बृहते जातवेदसे) बडे जातवेदके लिये (समिधं आहार्षं) समिधा लाता हूं (सः जातवेदाः) वह जातवेदा (मे श्रद्धां च मेधां च प्र यच्छतु) मुझे श्रद्धा और मेधा देवे ॥१॥

जातवेदाः— जिससे वेद हुए। परमात्मा, अग्नि।

हे जातवेद! (इध्मेन समिधा त्वा वर्धयामसि) जलनेवाली समिधाओंसे मैं तुझे बढाता हूं। (तथा त्वं अस्मान्) वैसा तू हमें (प्रजया च ध[illegible] वर्धय) प्रजा और धनसे बढा ॥२॥

हे अग्ने (यानि कानि [illegible]) जो कोई (दारूणि) लकडियां (ते आ दध्मसि) तेरे लिये हम लाकर डालते हैं, (यविष्ठ्य! तत् जुषस्व) हे [illegible] उसका तू सेवन कर। (तत् सर्वं मे शिवं अस्तु) वह सब मेरे लिये कल्याणकारी हो ॥३॥

हे अग्ने! (एताः ते समिधः [illegible]) समिधाएं हैं (त्वं इद्धः) तू प्रदीप्त होकर (समित् भव) तेजस्वी हो। (अस्मासु आयुः धेहि) हमें [illegible] (आचार्याय अमृतत्वं) आचार्यके लिये अमरपन दे ॥४॥

(९५) अयनम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — जातवेदाः सूर्यश्च।)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥ १ ॥ (४१६)

(९६) असुरक्षयणम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — जातवेदाः सूर्यो वज्रश्च।)

अयोमाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन्पाहि वज्रः ॥ १ ॥ (४१७)

(९७) दीर्घायुत्वम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — सूर्यः।)

पश्येम शरदः शतम् ॥ १ ॥ जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरदः शतम् ॥ ३ ॥ रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरदः शतम् ॥ ५ ॥ भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥ (४२५)

(९८) वेदोक्त कर्म।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — कर्म।)

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया। ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥ (४२६)

---

(९५) अयनम्।

अर्थ— (हरिः सुपर्णः) दुःखोंका हरण करनेवाला उत्तम किरणवाला सूर्य (दिवं आरुह) द्युलोक पर आरूढ हुआ है। (दिवं उत्पतन्तं त्वा) द्युलोक पर चढ़ते समय तुझे (ये दिप्सन्ति) जो हानि पहुंचाते हैं, हे (जातवेदः) अग्ने! (तान् हरसा अव जहि) उनको अपने तेजसे मार डाल। हे सूर्य! (अबिभ्यत्) न डरता हुआ (उग्रः) उग्र होकर (अर्चिषा दिवं आ रोह) तेजसे द्युलोक पर चढ़ ॥ १ ॥

(९६) असुरक्षयणम्।

(अयोमालाः) लोहेकी माला धारण करनेवाले (मायिनः असुराः) जो कपटी असुर (अयस्मयैः पाशैः अङ्किनः ये चरन्ति) लोहेके पाश हाथमें लेकर चलते हैं। हे (जातवेदः) अग्ने! (तान् ते हरसा रन्धयामि) उनको मैं तेरे तेजसे विनष्ट करता हूं। तू (सहस्र-ऋष्टिः वज्रः) सहस्र धारवाला वज्र बन कर (सपत्नान् प्रमृणन् पाहि) शत्रुओंका नाश करता हुआ हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

(९७) दीर्घायुत्वम्।

हम सौ वर्ष देखें ॥ १ ॥ हम सौ वर्ष जीवें ॥ २ ॥ हम सौ वर्ष ज्ञान लेते रहें ॥ ३ ॥ हम सौ वर्ष बढ़ते रहें ॥ ४ ॥ सौ वर्ष पुष्ट होते रहें ॥ ५ ॥ हम सौ वर्ष अच्छी तरह रहें ॥ ६ ॥ हम सौ वर्ष बढ़ते रहें ॥ ७ ॥ सौ वर्षोंसे भी अधिक जीवें ॥ ८ ॥

(९८) वेदोक्त कर्म।

(अव्यसः च) अव्यापक और (व्यचसः च) व्यापक (बिलं मायया विष्यामि) बिलको कुशलतासे मैं खोलता हूं। (ताभ्यां वेदं उद्धृत्य) उन दोनोंसे वेदको उद्धृत करके (अथ कर्माणि कृण्महे) कर्मोंको हम करते हैं ॥ १ ॥

[illegible] दोनोंमेंसे वेदको बाहर निकालता हूं। उस वेदका आधार लेकर हम कर्म करते हैं।

(६९) आपः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — आपः।)

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥ उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२॥
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३॥ जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥४॥ (४७०)

(७०) पूर्णायु।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — इन्द्रसूर्यादयः।)

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्। सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥ (४७१)

(७१) वेदमाता।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — गायत्री।)

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥१॥ (४७२)

(७२) परमात्मा।

(ऋषिः — भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा। देवता — परमात्मा देवाश्च।)

यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१॥ (४७३)

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥

॥ इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ॥

---

(६९) आपः।

अर्थ— (जीवाः स्थ) तुम जीवनवाले हो (जीव्यासं सर्वं आयुः जीव्यासं) मैं जीऊं, मैं सब आयुतक जीऊं ॥१॥ (उपजीवाः स्थ) तुम जीवनवाले हो (उप जीव्यासं) मैं जीऊं, सब आयुतक जीऊं ॥२॥ (संजीवाः स्थ) तुम उत्तम जीवनवाले हो, मैं उत्तम जीवनवाला बनूं, सब आयुतक जीऊं ॥३॥ (जीवलाः स्थ) तुम जीवन युक्त हो, मैं जीऊं, सब आयुतक मैं जीऊं ॥४॥

(७०) पूर्णायु।

हे इन्द्र! (जीव) जीओ! हे सूर्य (जीव) जीओ! (देवाः जीवाः) हे देवो! जीते रहो। (अहं जीव्यासं) मैं जीऊं। (सर्वं आयुः जीव्यासं) सब आयुतक जीवित रहूं ॥१॥

(७१) वेदमाता।

(मया वरदा वेदमाता स्तुता) मैंने वेदमाताकी स्तुति की। यह वेदमाता (द्विजानां प्र चोदयन्ती) द्विजोंको प्रेरणा देनेवाली और (पावमानी) पवित्र करनेवाली है। आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति धन ज्ञान तेज (मह्यं दत्त्वा) मुझे देकर (ब्रह्मलोकं व्रजत) ब्रह्मलोकको जाओ ॥१॥

(७२) परमात्मा।

(यस्मात् कोशात्) जिस कोशसे (वेदं उदभराम) वेदको हमने निकाला (तस्मिन् अन्तः) उसीमें (एनं अवदध्म) इस वेदको हम पुनः रखते हैं। (ब्रह्मणः वीर्येण इष्टं कृतं) ज्ञानके वीर्यसे जो कर्म करना था वह किया। (तेन तपसा) उस तपसे (देवाः इह अवत) देव यहां हमारी रक्षा करें ॥१॥

॥ यहां सप्तम अनुवाक समाप्त ॥

॥ यहां १९ वां काण्ड समाप्त हुआ ॥



अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य

विंशं काण्डम् ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष स्वाध्याय मण्डल साहित्य वाचस्पति गीतालंकार

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

[illegible]

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर बी. ए.,
स्वाध्याय मंडल
पोस्ट- स्वाध्याय मंडल (पारडी)
पारडी [जि. सूरत]

*

शक १८८२ संवत् २०१७ ई. स. १९६०

★

प्रथम बार

*

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर बी. ए.,
भारत मुद्रणालय स्वाध्याय-मंडल
पोस्ट- स्वाध्याय-मंडल (पारडी)
पारडी [जि. सूरत]



अथर्ववेदका स्वाध्याय।

विंशं काण्डम् ।

अथर्ववेदमें इन्द्र देवताका वर्णन

अथर्ववेदमें इन्द्र देवताके मंत्र इस तरह हैं—

प्रथम काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
२	अथर्वा	१	
७	चातनः	१	
९	अथर्वा	१	
१६	चातनः	१	
१९	ब्रह्मा	१	
२	अथर्वा	१	
२१	अथर्वा	४	
२६	ब्रह्मा	१	
३५	अथर्वा	१	१२

द्वितीय काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
५	भृगुराथर्वणः	७	
१२	भरद्वाजः	१	
२७	कपिञ्जलः	१	
२९	अथर्वा	१	
३६	पतिवेदनः	१	११

तृतीय काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
१	अथर्वा	४	
२	अथर्वा	२	
३	अथर्वा	४	
४	अथर्वा	१	
८	अथर्वा	१	
१	अथर्वा	१	
११	ब्रह्मा भृग्वङ्गिराश्च	३	
१४	ब्रह्मा भृग्वङ्गिराश्च	१	
१५	अथर्वा	३	
१६	अथर्वा	२	
१९	वसिष्ठः	३	
२७	अथर्वा	१	
३१	ब्रह्मा	२	२८

चतुर्थ काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
४	अथर्वा	१	
११	भृग्वङ्गिराः	१२	
२२	वसिष्ठः अथर्वा वा	७	
२४	मृगारः	७	२७

पञ्चम काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
३	बृहद्दिवोऽथर्वा	३	
८	अथर्वा	१	
११	कण्वः	११	
२४	अथर्वा	१	
२६	ब्रह्मा	१	१७

षष्ठ काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
५	अथर्वा	१	
३३	जाटिकायनः	३	
४	अथर्वा	२	
५८	अथर्वा	२	

६५	अथर्वा	१	
६६	अथर्वा	३	
६७	अथर्वा	३	
७५	कबन्धः	३	
८२	भग	३	
९३	अथर्वा	३	
९८	अथर्वा	३	
९९	अथर्वा	३	
१०३	उच्छोचनः	३	
१०४	प्रशोचनः	३	३६

सप्तम काण्ड

१२	शौनकः	१	
२४	ब्रह्मा	१	
३१	भृग्वङ्गिराः	१	
४४	प्रस्कण्वः	१	
५	अंगिराः	९	
५१	अंगिराः	१	
५४	भृगुः	१	
५५	भृगुः	१	
५८	कौरुपथिः	२	
७२	अथर्वा	३	
७६	अथर्वा	१	
८४	भृगुः	२	
८६	अथर्वा	१	
९१	अथर्वा	१	
९२	अथर्वा	१	
९३	भृग्वङ्गिराः	१	
९७	अथर्वा	८	
९८	अथर्वा	१	
११	भृगुः	३	
११७	अथर्वाङ्गिराः	१	४१

अष्टम काण्ड

४	चातनः	२५	
८	भृग्वङ्गिराः	२४	४९

नवम काण्डके ब्राह्मणमें आगन्तुक इनके मंत्र नहीं हैं।

एकोनविंश काण्ड

५	अथर्वाङ्गिराः	१	
१	वसिष्ठः	३	
१३	अप्रतिरथः	११	
१५	अथर्वा	४	
७	ब्रह्मा	१	२०

विंश काण्ड

१	विश्वामित्रः	१
२	गृत्समदः	१
३–५	इरिम्बिठिः	१२
६	विश्वामित्रः	९
७	सुकक्षः ३ विश्वामित्रः १	४
८	भरद्वाजः १ कुत्सः १ विश्वामित्रः १	३
९	नोधाः २, मेध्यातिथिः २	४
१०	मेध्यातिथिः	२
११	विश्वामित्रः	११
१२	वसिष्ठः ६ अत्रिः १	७
१३	वामदेवः १ गोतमः १ कुत्सः १ विश्वामित्रः १	४
१४	सौभरिः	४
१५	गोतमः	६
१७	कृष्णः ११ वसिष्ठः १	१२
१८	मेधातिथिः प्रियमेधश्च ३ वसिष्ठः ३	६
१९	विश्वामित्रः	७
२	विश्वामित्रः ४ गृत्समदः ३	७
२१	सव्यः	११
२२	त्रिशोकः ३ प्रियमेधः ३	६
२३–२४	विश्वामित्रः	१८
२५	गोतमः ६ अष्टकः १	७
२६	शुनःशेपः ३ मधुच्छन्दाः ३	६
२७–२९	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ	१५
३०–३१	बरुः सर्वहरिर्वा	१३
३३	अष्टकः	३
३४	गृत्समदः	१८
३५	नोधा (भरद्वाजः)	१६
३६	भरद्वाजः	११
३७	वसिष्ठः	११

३	इरिम्बिठि २, मधुच्छन्दाः १	६
३९	मधुच्छन्दा १	
	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ४	५
४	मधुच्छन्दाः	३
४१	गोतमः	३
४२	कुरुसुतिः	३
४३	त्रिशोकः	३
४४	इरिम्बिठिः	३
४५	शुनःशेपो देवरातः	३
४६	इरिम्बिठिः	३
४७	सुकक्षः १ इरिम्बिठि १	
	मधुच्छन्दाः ६	११
५	मेध्यातिथिः	२
५१	प्रस्कण्वः २, पुष्टिगुः २	४
५२-५३	मेध्यातिथिः	६
५४-५५	रेभः	६
५६	गोतमः	६
५७	मधुच्छन्दाः १ विश्वामित्र ४	
	गृत्समदः १ मेध्यातिथि ६	१२
५८	नृमेधः २ जमदग्निः २	४
५९	मेध्यातिथिः २ कौत्सः २	४
६	सुकक्षः सुतकक्षो वा ३	
	मधुच्छन्दाः ३	६
६१	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ	६
६२	सोभरि ४ नृमेधः २	
	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ १	१
६३	भुवनः आप्त्यः साधनो वा ३ भरद्वाजः	
	गोतमः १ पर्वतः १	९
६४	नृमेध ३ विश्वमनाः ३	६
६५-६६	विश्वमनाः	६
६७	वरूत्रिः ३ गृत्समदः ४	७
६८-७१	मधुच्छन्दा	६
७२	वरूत्रिः	३
३	वसिष्ठ ३ मधुच्छ. ३	६
४	शुनःशेप	७
७५	वरूत्रिः	३
७६	वसुक्रः	८
७७	वामदेवः	८
७८	शंयुः	३
७९	वसिष्ठः शाक्तिर्वा	२
८	शंयुः	२
८१	पुरुहन्मा	२
८२	वसिष्ठः	२
८३	कलिः	२
८४	मधुच्छन्दाः	३
८५	प्रगाथः २ मेध्यातिथिः २	४
८६	विश्वामित्रः	१
८७	वसिष्ठः	७
८९	कृष्णः	११
९२	प्रियमेधः १२, पुरुहन्मा ९	२१
९३	प्रगाथ ३ देवजामयः ५	८
९४	कृष्णः	११
९५	गृत्समदः १ सुदाः पैजवनः ३	४
९६	पूरणः	५
९७	कलि	३
९८	शंयुः	२
९९	मेध्यातिथिः	२
१	नृमेधः	३
१ १	मेध्यातिथिः	३
१ ४	मेध्यातिथिः २ नृमेधः २	४
१ ५	नृमेधः ३ पुरुहन्मा २	५
१ ६	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ	३
१ ७	वत्सः ३ बृहद्दिवः १ कुत्सः १	१५
१ ८	नृमेधः	३
१ ९	गोतमः	३
११	शतक्रतुः सुकक्षो वा	३
१११	पर्वतः	३
११२	सुकक्षः	३
११३	भर्गः	२
११४	सोभरिः	२
११	शरकः	३
११६	मेध्यातिथिः	२
११७	वसिष्ठः	३

११८	भर्गः २ मेध्यातिथिः २	४
११९	आयुः १ श्रुष्टिगुः १	२
१२०	देवातिथिः	२
१२१	वसिष्ठः	२
१२२	शुनःशेपः	३
१२४	वामदेवः ३ भुवनः ३	६
१२५	सुकीर्तिः	५
१२६	वृषाकपिरिन्द्राणी च	२३
१२७	बुधः १ तिरश्चीरांगिरसो ५	
	बुलस्तो वा कुच्छो १	६
१२८	वत्सः	२
		६७७

कांडोंमें इन्द्रके वर्णनके ये मंत्र हैं—

प्रथम कांडमें	१२ मंत्र
द्वितीय कांडमें	११ मंत्र
तृतीय कांडमें	१८ मंत्र
चतुर्थ कांडमें	१० मंत्र
पंचम कांडमें	२४ मंत्र
षष्ठ कांडमें	३६ मंत्र
सप्तम कांडमें	४१ मंत्र
अष्टम कांडमें	४९ मंत्र
	१२८

इतने मंत्र आठ कांडोंमें हैं। नवम कांडसे अठारहवें कांडतक इन्द्रके मंत्र नहीं हैं।

उन्नीसवें कांडमें	२	मंत्र हैं।
बीसवें कांडमें	६७७	मंत्र हैं।
अष्टम कांडतक	२२८	मंत्र हैं।
	९२५	

अथर्ववेदमें कुल मंत्रसंख्या ५९७७ है उसमें ९५ मंत्रोंमें इन्द्रका वर्णन है। कुल मंत्रोंका यह छठवां भाग है। इन्द्र देवता शत्रुसे युद्ध करके उसका पराभव करनेवाली देवता है। इस देवताके मंत्रोंमें युद्धके वर्णन होते हैं। इन्द्रके साथ युद्ध करने वाले वैदिक मरुत् देवता हैं। इस देवताके मंत्र भी इस इन्द्रका विचार करनेके समय विचारमें लेने चाहिये। क्योंकि इन्द्रके साथ युद्धकर्ममें रहनेवाले मरुत् ही हैं। ये तो युद्ध करनेवाले वैदिक वीर। सबकी सैनिकोंका ठीक व्यवस्थापन करनेका कार्य अश्विनी देवताका है अतः अश्विनी देवताके मंत्रोंका भी विचार इस इन्द्रके मंत्रोंके विचारके साथ करना चाहिये। इसी तरह रथ देव भी युद्ध देव ही है। त्वष्टा शस्त्र करके इन्द्रको देता है। इस तरह रथ त्वष्टा आदि देवताओंका भी विचार युद्धकर्ममें कार्य करनेवाले इन्द्र देवताके मंत्रोंके साथ होना चाहिये। इस तरह विचार करनेपर वेदका युद्धकर्मका विचार समझमें आ सकता है।

हम यहां केवल इन्द्रके मंत्रोंका ही विचार करना चाहते हैं और इस विचारसे जानना चाहते हैं कि इन्द्र देवता वेदोंके युद्ध मंत्र कहे हैं।

अब हम देखते हैं कि इस इन्द्रका वर्णन किनके ऋषियोंने किया है—

ऋषियोंका नाम		मंत्रसंख्या
१	अथर्वा	१८
२	मधुच्छन्दाः	१५
३	विश्वमना	६१
४	वसिष्ठः	५३
५	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ	५१
६	विश्वामित्रः	३५
७	सुकक्षांगिरसः	१८
८	कुत्समदः	१९
९	गौतमः	३४
१०	मेध्यातिथिः	३१
११	कृष्णः	३३
१२	भारद्वाजः	२७
१३	वृषाकपिरिन्द्राणी च	२३
१४	हरिम्बिठिः	२२
१५	नृमेधः	२१
१६	नोधाः	२८
१७	प्रियमेधः	१८
१८	मधुः बार्हस्पत्यः	१९
१९	शुनःशेपः	१६
	कुत्सपुत्रा	[illegible]
२१	वत्सः	१३
२२	वत्सः सार्वदेविनौ	१३
२३	भारद्वाजः	१३
२४	कुत्सः	१२
२५	ब्रह्मा	१२
२६	बृहदिवः	१०

२७	वामदेवः	११
२८	अप्रतिरथः	११
२९	अंगिराः	११
३०	मधुकः	११
३१	वम्रः	११
३२	सोभरि	१०
३३	वत्सः	९
३४	शंयुः	९
३५	पुरुमेधः	९
३६	मनुः	८
३७	प्रगाथः	८
३८	नृमेधः	७
३९	त्रिशोकः	६
४०	पर्वतः	६
४१	भुवन	६
४२	कुत्सकः	६
४३	रेभः	६
४४	पूरणः	५
४५	सुकीर्तिः	५
४६	देवजामयः	५
४७	शिरिम्बिठागिरसः	५
४८	गर्गः	४
४९	कुत्स	४
५०	अष्टकः	४
५१	मेधातिथिः	३
५२	पुत्राः पैजवनः	३
५३	भगः	३
५४	प्रस्कण्वः	३
५५	प्रयोगः	३
५६	नाभिकावनः	३
५७	कुसुरुबिन्दुः	३
५८	वशंत	३
५९	वमिः	३
६०	पुष्टल	३
६१	उपमेधनः	३
६२	श्रौतर्षिः	२
६३	जमदग्नि	२
६४	देवातिथिः	२
६५	उशिगुः	२
६६	सुविगुः	१
६७	ध्रुवः	१
६८	सौलकः	१
६९	पतिवेदनः	१
७०	आयुः	१
७१	अत्रिः	१
७२	कपिंजलः	१

इतने ऋषियोंके मंत्र इन्द्रका वर्णन कर रहे हैं। अब वह वर्णन कैसा है वह देखिये—

इन्द्रकी मूछियाँ

इन्द्र वीर है इसलिये उसकी मूछियां अच्छी होगी यह स्वाभाविक ही है देखिये—

हरि-श्मश्रारु हरि-केशः। ऋ १ ।३९।२ (१८९)

पीली मूछोंवाला और पीले केशोंवाला इन्द्र है। और देखिये—

इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि रुष्णां प्रमि पुष्णुते।
ऋ १ ।७२।५ (४८५)

इन्द्र अपने पीले रंगके मूछोंके बालोंपर पानी लगाता है। इस वर्णनसे पता लगता है कि इन्द्रके बाल मूछोंके बालोंके तथा सिरके (हरि हरित्) पीले रंगके थे।

इन्द्रका गला

इन्द्रका गला तुवि-ग्रीवः (१५) बडा था। मुखकी जितनी चौडाई होती है उससे गला बडा होना चाहिये। कमसे कम वीरका गला तो अवश्य मजबूत होना चाहिये। वैसा मजबूत गला इन्द्रका था। देखिये—

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुः अन्धसो मदे।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते॥ ऋ ८ ।१७।८ (१५)

इन्द्र (तुविः ग्रीवः) बडी गर्दनवाला (वपा-उदरः) बडे पेटवाला (सुबाहुः) उत्तम बाहुवाला (अन्धसः मदे) सोमरसके उत्साहसे (वृत्राणि जिघ्नते) शत्रुओंको मारता है।

इन्द्रका पेट (वपा-उदरः) पुष्ट था पेटपर चर्बी थी। ऐसा इस मंत्रसे दीखता है। यह उसकी अवस्था परिपक्व बताता है।

इन्द्रकी दो शिराएं थीं

इन्द्रकी दो शिराएं थीं ऐसा कहा है। देखिये—

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी।
ऋ १ ।६ ।५ (१७८)

त्रिध (त्रि-बहस॑) दो शिखावाले इन्द्रका (बृहत् सहः) बड़ा बल (रोदसी दाधार) आकाश तथा पृथिवीका धारण करता है।

यहाँ बहस् का अर्थ मोरके सिरपरका तुर्रा तथा पक्षीकी दुम है। शीरके अर्थमें शिखा अर्थ है। इन्द्रकी दो शिखाएँ थीं अथवा सिरमें दो तुर्रे थे ऐसा यहांके मंत्रके कथनसे स्पष्ट दीखता है।

इन्द्रका सोम पीना

इन्द्र सोम पीता था और अपना पेट भर लेता था। इसलिये इसका वर्णन ऐसा किया है—

यः सोमपातमः कुक्षिः समुद्र इव पिन्वते।
अ. ९।७१।१

जो पेट सोम अधिक पीनेसे समुद्रके समान फूलता है।

इन्द्र (सोम-पा-तमः) अत्यधिक सोम पीनेवाला है इसलिये सोम पीनेपर उसका पेट समुद्र जैसा फूलता है। सोमपा सोमपा-तरः सोमपातमः ये पद उसके अत्यधिक सोम पीनेका वर्णन कर रहे हैं।

इन्द्रका साफा

इन्द्रके साफेका वर्णन इस तरह वेद कर रहा है—

हरिशिप्रं त्वा रथे आ वहन्तु। अ. २०।३१।१(१६३)

तुवद् अहिं हरिशिप्रो य आयसः। अ २०।३१।४ (१६५)

(हरिशिप्रं) सुनहरी साफावाले इन्द्रको रथमें बिठला कर ले जावें। (हरि शिप्रः) सुनहरी साफावाले इन्द्रने अहिको मारा। इस तरह यह इन्द्रके साफेका वर्णन है। यह साफा सुनहरी था। (आयसः) फौलादके शिरस्त्राणके ऊपर सुनहरी साफा यह बांधता था।

सु-शिप्री (मं ११)— उत्तम साफा बांधनेवाला शिप्र का दूसरा अर्थ हनु है। सुशिप्री का अर्थ उत्तम हनुवाला भी होता है। पर आयसः सुशिप्रः (१६५) का अर्थ फौलादके शिरस्त्राणपर उत्तम साफा बांधनेवाला ऐसा होता है। अर्थात् वीर इन्द्र मस्तकपर फौलादका शिरस्त्राण रखता है और उसपर जरीका साफा बांधता है।

इन्द्रकी पोषाक

इन्द्रका सब पोषाक जरतारीका होता है इसलिये इसको (इन्द्रः हिरण्ययः) (२५८)— सुवर्णमय इन्द्र है ऐसा कहते हैं। इन्द्रके तरफ देखनेसे यह सुवर्णका बना है ऐसा दीखता है।

पांवसे लेकर सारेतक सब पोषाक उत्तम कीमतवाले जर तारीके कपड़ोंका होता है। जैसा किसी राजा महाराजाका होता है। हरिश्रियः (१७४)— सुवर्णकी शोभा सब शरीर पर होती है। सब शरीरका पोषाक उत्तम जरतारीका होनेसे उसकी शोभा वैसी दीखती है।

इन्द्र शरीरसे बड़ा है

तव्यान् वावृधानः (४३)— शरीरसे बड़ा इन्द्र होता है। इन्द्रका प्रत्येक शरीरका अवयव हृष्टपुष्ट तथा बलवान् होता है। किसी अवयवमें किसी प्रकारकी दुर्बलता नहीं होती। वीरका शरीर ऐसा ही बलवान् होना चाहिये।

इन्द्र बैल जैसा बलवान् है

इन्द्र अतीव बलवान् है, बैल जैसा वह शक्तिशाली है इस कारण इस इन्द्रको वृषभः (१)— बैल जैसा बलवान् कहा जाता है बलिष्ठोंमें बलिष्ठ इन्द्र है।

शृंगवृषः (२)— सींगवाले बैलके समान इन्द्र बलवान् है। सींगवाला बैल जैसा शत्रुपर एकदम चढाई करता है और सींगोंसे शत्रुको मारता है, वैसा इन्द्र अपने शत्रुको मारता है।

वृषभः (५९)— बलवान्, शक्तिमान् इन्द्र है।

शुष्मी (५८)— सामर्थ्यवान्,

शविष्ठः (७८)— शक्तिमान्, बड़ा सामर्थ्यवान्, वैर्यवान्, व्यवहारमें कुशल बड़ा बलवान् वीर,

हे वृष्णि यावा (४)— हे इन्द्र! तेरा यह सामर्थ्ययुक्त है। तेरा सामर्थ्य अप्रतिम है।

यावाः (१८)— सामर्थ्यवान् इन्द्र है।

शचिपीभिः आवृतः (१८)— इन्द्र अनेक शक्तियोंसे युक्त है। अनेक कलाओंकी योजनाएं वह करता है।

इस तरह इन्द्रके अद्भुत सामर्थ्यका वर्णन वेदमंत्रोंमें किया है, अब उसके सौंदर्यका वर्णन देखिये—

इन्द्रका सौंदर्य

इन्द्र जैसा सामर्थ्यवान् है वैसा सुन्दर भी है। जो हृष्टपुष्ट और बलवान् होता है वह शरीरसे सुन्दर ही दीखता है। देखिये—

दस्म (१८)— दर्शनीय सुन्दर

पुरुः (१८)— तेजस्वी कान्तिमान्।

इन्द्र तेजस्वी है इसके योग्य सुन्दर भी है। इस ही उसका शरीर सशक्त है सुडौल है तेजस्वी है इस कारण इस

प्रकारका आरोग्यका प्रभाव उसपर रहता है अतः वह देखनेमें सुन्दर दीखता है। जैसे तेजस्वी पुरुष प्रभावशाली होते ही हैं वैसा इन्द्र वीर भी प्रभावी है।

इन्द्र विद्वान् है

इन्द्रके वर्णनमें उसके विद्वान होनेका भी वर्णन है। वह जैसा बलवान् शूर है वैसा वह विद्वान् भी है देखिये—

विश्वस्य विद्वान् (६१८)— इन्द्र सब विद्याओंका ज्ञाता है जिसमें जो जानने योग्य है उसको वह यथायोग्य रीतिसे जानता है। जिसमें जानने योग्य कोई विद्या उसको नहीं आती ऐसा नहीं है। सब विद्याओंका उत्तम प्रकारसे वह ज्ञाता है।

बृहते विप्राय धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे
साम गायत। ऋ ८।९८।१ (३८४)

(बृहते) बड़े (विप्राय) ज्ञानी ज्ञाता (धर्मकृते) धर्मके अनुकूल कर्म करनेवाले (विपश्चिते) विद्वान् (पनस्यवे) स्तुत्य इन्द्रके लिये सामगायन गाओ। उत्तम स्तोत्र गाओ।

इस मंत्रमें दिये सब विशेषण विद्वान् इन्द्रके शुभगुणोंका वर्णन करते हैं। ये सब विशेषण उसकी विशेष विद्वत्ता दर्शाते हैं।

जरारहित तरुण इन्द्र

इन्द्र इतना सामर्थ्यवान्, बलवान्, प्रभावी विद्वान् है वैसा वह जरारहित तरुण भी है। उसकी आयु कितनी भी हुई होगी तो भी वह अ-जुर्यः (२४)- जरारहित है अतएव वह युवा (६६)- तरुण है। आयु कितनी भी हुई हो जिसके विचार तरुण हैं वह वृद्ध होनेपर तरुण ही है। ऐसा तरुण विचारोंसे युक्त उसको रहना चाहिये। तरुण विचार जिसके हैं वह शरीरसे भी क्षीण नहीं होता। अतः सदा विचारोंका तारुण्य अपने मनमें उसको रखना योग्य है।

तेजस्वी इन्द्र

इन्द्रके वर्णनमें द्युमत्तमः (१२१)— अर्थात् तेजस्वी इन्द्र है। त्वेष-सं-दृक् (१४)— कान्तिमान् देदीप्यमान दीखनेवाला इन्द्र है। ऐसे यह उसका तेजस्वी होना बताते हैं। इन्द्र कदापि निस्तेज निरुत्साही बलहीन सामर्थ्यहीन नहीं होता वह सदा सतेज उत्साही बलवान् सामर्थ्यवान् रहता है। ऐसा ही वीरोंको होना चाहिये। सब पुरुष ऐसे ही होने चाहिये।

२ (अथर्व स्वा० काण्ड २)

आनन्दी स्वभाववाला इन्द्र

इन्द्र उत्साही तथा बलवान् रहता है अतः उसमें आनन्द स्वभावसे ही रहता है। देखिये- मन्दसानः' (४९५ - आनन्दी स्वभाववाला इन्द्र है। मदाय मायाहि (६२) आनंदका अनुभव करनेके लिये इन्द्र यहां आवे। ये वर्णन उसके आनंदी स्वभावके दर्शक हैं। मद् पदका अर्थ प्रेम संतोष तथा अपने सामर्थ्यका अभिमान आनंद अति संतोष वीर्य शौर्य आदि भाव जिससे उत्साह बढता है।

इन्द्रके बाहु

इन्द्रके वर्णनमें उसके बाहुओंका वर्णन इस तरह हुआ है—

सुबाहुः (१५)— इन्द्रके बाहु उत्तम हैं अर्थात् सुडौल और बलिष्ठ हैं।

वज्रबाहुः (५६)— जैसा वज्र सामर्थ्यवान् होता है उस प्रकार इन्द्रके बाहु सामर्थ्यवान् हैं।

बाहोजाः (बाहु-ओजाः) (३१)— बाहुओंके विशेष बलसे इन्द्र बलवान् हुआ है।

इन्द्रके बाहु ऐसे बलवान् हैं इस कारण वह युद्धमें शत्रुओंका पूर्ण पराभव कर सकता है। वीरोंको व्यायाम आदिसे अपने बाहु ऐसे बलवान् करने चाहिये।

मुष्टियुद्ध करनेवाला इन्द्र

मुष्टिहत्यया वृत्रा निवयामहै (४५६)— मुष्टियुद्धसे शत्रुओंको दूर रखता है मुष्टियुद्ध करके शत्रुओंका पराजय करता है। ऐसे वर्णनोंसे पता चलता है कि इन्द्र मुष्टियुद्ध करनेमें भी प्रवीण था और मुष्टियुद्ध करके इसने शत्रुओंको पराजय करता था।

बहुत अन्नसे युक्त इन्द्र

इन्द्र सामर्थ्यवान् है उसके शरीरका प्रत्येक अवयव हृष्टपुष्ट है ऐसे वर्णन देखनेसे पता चलता है कि वह पौष्टिक अन्न भी पर्याप्त प्रमाणमें अपने पास रखता होगा और उसका उप-भोग भी यथेच्छ करता होगा। नहीं तो शरीर हृष्टपुष्ट होनेकी संभावना ही नहीं होगी। इस विषयके प्रमाण अब देखिये—

पुरु-भोजाः (३८)— बहुत भोजन करनेवाला बहुत अन्नसामग्री अपने पास रखनेवाला पौष्टिक अन्न पर्याप्त प्रमाणमें अपने पास रखनेवाला।

पुरु-क्षुः (२२४)— बहुत अन्नसे युक्त अनेक प्रकारके पौष्टिक अन्न अपने पास रखनेवाला।

सु मना: (१८)— अब पर्याप्त प्रमाणमें अपने पास रखनेवाला अनेक प्रकारके पुष्टिकारक, बलवर्धक तथा उत्साह वर्धन साम पेय अपने पास इन्द्र पर्याप्त प्रमाणमें रखता था। इस कारण वह सदा सामर्थ्यवान रहता था।

इन्द्र महान् है

अब इस वर्णन देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्र एक अत्यंत महान और पुरुष है। देखिये इस इन्द्रकी महत्ता बतानेवाले वर्णन—

बृहत् (११)— इन्द्रका बल बडा शक्तिशाली है महान् है

मंहिष्ठः (११)— इन्द्र विशाल है।

इन्द्रः महान् परः च (४१२)— इन्द्र बडा और श्रेष्ठ है इसमें इन्द्रकी जैसी महत्ता वर्णन हुई है उसी तरह उसकी श्रेष्ठता ज्यादा तथा महत्ता भी दिखाई देती है।

द्यौः न प्रथिमा शवः (४१२)— द्युलोकके समान उसका बल फैला है। द्युलोक जैसा विस्तीर्ण है वैसा उसका सामर्थ्य भी अत्यंत बडा विस्तृत है। उसके सामर्थ्यकी बराबरी दूसरा कोई कर नहीं सकता ऐसा वह अप्रतिम सामर्थ्यवान है।

वज्रिणे महित्वं अस्तु (४११)— वज्रधारी इन्द्रके लिये महत्त्व है। वज्रके द्वारा वह सब शत्रुओंको दूर करता है इसलिये उसका महत्त्व बडा है।

ओजस्वी महान् अभिमिहि (४१८)— इन्द्र सामर्थ्यसे बडा है और सब शत्रुओंको दबा देनेवाला बलशाली वीर है। उसके बराबर दूसरा कोई सामर्थ्यशाली नहीं है जो इस इन्द्रकी बराबरी कर सके।

नृभिः वृत्रहा इन्द्रः शवसे मदाय वावृधे (११८)— वीरोंके साथ रहकर वृत्रोंको मारनेवाला इन्द्र सामर्थ्य और उत्साहके लिये प्रशंसित होता है। इन्द्र वृत्रोंको मारता है इस प्रकार कष्ट देता है इसलिये उसका नाम करनेसे प्रजा सुखी होती है, सामर्थ्य और उत्साह इसमें होते हैं। इस कामगुणोंके लिये सब वीर पुरुष इन्द्रका वर्णन करते हैं और उसके बडेपनका गुणगान करते हैं।

न गिरनेवाला इन्द्र

इन्द्र न गिरनेवाला है अपने स्थानसे वह कभी पतित नहीं होता है इसलिये उसका महत्त्व भारी बार देखा है देखिये–

अ-पात् (२)— न गिरनेवाला या न गिरानेवाला इन्द्र है।

प्र-अ-पात् (१)— विशेष रीतिसे न गिरनेवाला या न गिरानेवाला इन्द्र है। वह अपने कर्तव्यसे कभी च्युत नहीं होता।

प्र-पाप (५)— विशेष प्रगति करनेवाला इन्द्र है।

ये सब उसके कर्तव्यनिष्ठाके वर्णन हैं। वीरोंको ऐसा ही होना चाहिये।

कल्याण करनेवाला मित्र इन्द्र है

'शिवः सखा इन्द्रः (१२)— इन्द्र उत्तम कल्याण करनेवाला मित्र है। इन्द्र सदा दूसरोंका हित करता है सुख करता है, कल्याण करता है। उसका मन सदा है, मित्र है, सुहृद है। कभी किसीका बुरा करनेका विचार भी उसके मनमें नहीं आता है। शत्रुका बुरा करता है। पर वह अपरिहार्य है। शत्रुका नाश किये बिना जनताका हित हो नहीं सकता इस कारण वह सब शत्रुओंका नाश करता है वह आवश्यक ही है।

इन्द्रका मन

इन्द्रका मन मनुष्योंकी सहायता करनेके कार्यमें तत्पर रहता है इसलिये वह सु-मनाः (१४१)— मनुष्योंकी सुख वृद्धि करनेमें जिसका मन सदा लगा है मानवोंके हितके कर्म करनेमें जो अपना मन प्रेरित करता है। तथा—

एभिः द्युभिः सुमनाः (११२)— इन तेजोंसे सामर्थ्यसे तेजस्वी बना मन है जिसका ऐसा तेजस्वी मनवाला इन्द्र है।

मनस्वान् प्रथमः देवः (११८)— मुख्य तथा उत्तम मनसे युक्त वह पहिला देव है।

ऐसे इन्द्रके मनके वर्णन वेदमंत्रोंमें अनेक दीखते हैं।

वर्पा (४१)— अपने प्रभावसे प्रकाशित इन्द्र है। इस कारण—

द्युक्षः (५१)— उत्तम गुणोंसे वह युक्त है और

यानि पूजस्त (११)— शक्तिमान् लोग भी जिसका पूजन करते हैं ऐसा इन्द्र उत्तम मनसे तथा प्रभावी शक्तियोंसे युक्त है।

आर्योंका रक्षण

इन्द्र आर्योंका रक्षण करता है इस कारण उसको दासोंका नाश करना आवश्यक होता है। देखिये—

आर्यं वर्ण प्रावत् (५१)— इन्द्र आर्योंकी विशेष सुरक्षा करता है। आर्योंका रक्षण करना और अनार्योंका नाश करना ये इन्द्रके अत्यंत आवश्यक कर्तव्य ही है। आर्य:

(१ १)– श्रेष्ठ पुरुष होता है। सदाचारी श्रेष्ठ पुरुषोंका सेर सुख करना और दुराचारी नीच पुरुषोंका सुधार हो सकता है तो उनका सुधार करना नहीं तो उन दुराचारियोंको दूर करना और पुरुषोंका राज्यमें कर्तव्य ही होता है।

दासानि आर्याणि करः' (२४१)— इन्द्र दासोंको आर्य करता है। दास उनका नाम है जो दुराचारी दुष्ट होते हैं। उनको इन्द्र सदाचारका पालन करनेके लिये बाधित करता है और उनकी उन्नति करके उनको आर्य बनाता है। अनार्योंको सदा दबाकर रखके उनका नाश करता है ऐसा नहीं परंतु उनको सुधरनेका अवसर देता है। वे सुधरे तो वे आर्योंमें शामील होते हैं उनको आर्योंके अधिकार उनके उस प्राप्त होते हैं। न सुधरे तो उनको दूर किया जाता है। अनार्योंको आर्य बनानेका यह विधि इन्द्रका था।

यः दासं वर्णं अधरं गुहा कः (२ १)— वह इन्द्र दास वर्णको–अर्थात् दास लोगोंको–नीच स्थानमें–गुहामें–रखता है। आर्योंके स्थानसे पृथक् स्थानमें दास रहें। ऊंचे स्थानपर आर्य रहें और नीचके स्थानपर दास रहें ऐसा इन्द्रकी व्यवस्थाका आशय है। ग्राममें जो ऊंचा स्थान हो वहां आर्य रहें और जो नीचका स्थान हो वहां दास अनार्य अथवा हीनाचार करनेवाले लोग रहें ऐसी व्यवस्था इन्द्र करता था।

आर्यं स्वं ज्योतिः मनवे विदन् (९)— आत्म ज्ञानसे परिपूर्ण आर्य तेज मनुष्यको प्राप्त हो। इस तरह आर्यत्वके प्रसारके लिये इन्द्र प्रयत्न करता था।

पुरुषार्थके कर्म करनेवाला इन्द्र

इन्द्र बलवान है, विद्वान है आर्योंकी रक्षा करता है आदि इस इन्द्रके अनेक गुण बताये देखे। वे सब उत्तम पुरुषार्थके गुण हैं। पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाला इन्द्र है इस विषयमें उसके कर्मोंमें कैसा भाव प्रकट होता है देखिये—

शतक्रतुः (१ ६)— सैकडों प्रकारके पुरुषार्थके प्रयत्न करनेवाला इन्द्र है। अनेक कार्य वह जनताके हित करनेके लिये करता रहता है।

पुरुकृत् (१११)— बहुत कर्म करनेवाला इन्द्र है।

तुवि कूर्मिः (२२६)— अनंत कर्मोंका करनेवाला इन्द्र है।

अभिमाति षाह्‌ (१ ७)— शत्रुका पराभव करनेके लिये जो जो करना योग्य तथा आवश्यक है वह सब इन्द्र करता है।

चित्रं युगे युगे नव्यम् (४१२)– इन्द्रका कर्म प्रत्येक युगमें नया नया होता है। युगके अनुसार परिस्थिति बदलनेसे जो कर्म जैसे करने चाहिये वे कर्म वैसे करता है, इस कारण इन्द्रके कर्मोंसे जनताका हित होता है।

पौंस्यैः भरथा नर्यः' (५ १)– पौरुषके अनेक कर्म करनेके कारण इन्द्र (नर्यः) जनताका हित करनेवाला हुआ है।

नकिः नु अस्य इन्द्रस्य पौंस्यं अकृतं अस्ति (६०२)– कौनसा पौरुषका जनताके हित करनेवाला कर्म इन्द्रने नहीं किया है? अर्थात् जनताका हित करनेके लिये जो कर्म आवश्यक हैं वे सब कर्म इन्द्र सदा करता रहता है। जन जनका हित हो प्रजाजनोंकी उन्नति हो एतदर्थ वह सदा प्रयत्नशील रहता है।

तानि पौंस्या सना न भुवन् (४११)– आपके वे पौरुषके कर्म पुराने नहीं हुए हैं। वे सदा ताजे वैसे हैं। अर्थात् इन्द्र सदा उत्तमोत्तम कर्म जनताके हितके लिये करता रहता है।

नव द्युम्नानि मा क्षायिषुः (४१२)– इन्द्रके तेज क्षीण नहीं हुए हैं। उसके तेज सदा चमकते रहते हैं। वह इन्द्र कभी भी थकता नहीं श्रान्त नहीं होता सदा कार्यकारी रहता है और आलस्य छोडकर जनताके कल्याणके लिये अवश्य कर्म जितने करने पडे करता ही रहता है।

अस्य कामं विधतः न रोषति (१६१)– इस इन्द्रके अनुकूल जो कार्य करते हैं उनपर वह कदापि रुष्ट नहीं होता। इसकी इच्छा जनताका हित करनेकी होती है अतः जो लोग जनताका हित करनेके लिये प्रयत्नशील होते हैं उनपर इन्द्र संतुष्ट रहता है और उनका भला वह करता है।

इस तरह इन्द्र जनताके हित करनेके कार्य सब करता है। और जो दूसरे वैसे कर्म करते हैं उनको भी सहायक होता है।

लोगोंके लिये प्रयत्न करनेवाला

इन्द्र लोगोंकी उन्नतिके लिये सदा प्रयत्न करता है इसलिये उसे लोक-कृत्नु (१७४)– लोगोंके लिये कुशलतापूर्वक प्रयत्न करके स्थान बनानेवाला कुशल कार्यकर्ता कहते हैं।

स्थिर नीतिवाला

स्थिरः (११६)– इन्द्र स्थिर है। इसका अर्थ यह है कि उसकी नीति जनताका हित करनेके विषयमें स्थिर रहती है। उसमें कभी न्यूनता नहीं होती। युद्ध और राष्ट्रके विषयमें उसके कार्यक्रम अच्छी तरह सुस्थिर रहते हैं। आज एक, कल दूसरा परसु तीसरा ऐसा नहीं होता। जनताका हित विषयके

होगा ऐसे ही कार्य वह करेगा इस उद्देशमें उसकी स्थिर नीति रहती है।

लोगोंकी साक्षी

लोग भी कहते हैं कि इन्द्रः नः मृळयाति (११७) इन्द्र हम सबको सुख देता है। यह सब जनताका अनुभव है।

इन्द्र अपूर्व है

अ-पूर्व्यः (६५)- इन्द्र अपूर्व है। इसके पहिले ऐसा जनताका हित करनेवाला कोई नहीं हुआ था और इसीसे हम कहते हैं कि आगे भी ऐसा कोई नहीं होगा। इस कारण इसको सब लोग अह्न (११६)- प्रिय करके कहते हैं। सबको यह अत्यंत प्रिय हुआ है।

आगे बढनेवाला

इन्द्र सदा सत्कर्म करनेके लिये आगे बढनेवाला है। वह कभी आक्रमण प्रारंभ करनेके समय पीछे नहीं रहता। इस कारण उसको अभि-भुः (११६)- आगे बढनेवाला कहते हैं।

पुरः प्रेहि (१६)- आगे बढ शत्रुपर आक्रमण कर हमला कर धृष्णुया न मिनाति (१२१)- धैर्यसे शत्रुपर हमला करता है।

यह इन्द्रका आगे बढना शत्रुपर करनेकी चढाईके समयका है। शूर वीर अपनी सेनासे शत्रुपर चढाई करते हैं वैसी चढाई करनेमें इन्द्र विशेष उत्साह बढाता है।

न गिरनेवालेको गिरानेवाला

इन्द्र सुस्थिर शत्रुको स्थानभ्रष्ट कर फेंकनेवाला है। अतः उसको यः अ-च्युत-च्युतः (२१)— न गिरनेवाले शत्रुको गिरानेवाला कहते हैं। यह इन्द्र सर्व अपने स्थानपर स्थिर रहेगा और शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला है। सुस्थिर प्रबल शत्रुको भी अपने स्थानसे हिलाकर दूर करनेवाला है। न हिलनेवालेको समूल उखाडकर फेंकनेवाला इन्द्र है।

गुप्त न रहनेवाला

इन्द्र इस तरहके कार्य करता रहता है इसलिये वह छिपा अ-गोह्यः (१६६)— यह इन्द्र छिपकर न रहनेवाला है। अपने प्रचण्ड कार्योंसे वह सबके लिये स्पष्ट हुआ है। सत्रा-जितः (१६६)— सेनाके साथ रहकर शत्रुको जीतनेवाला है। अब नित्य विजयी होनेके कारण वह इन्द्र कहीं भी छिपकर नहीं रह सकता।

सार्वजनिक हितके कार्य करता है

इन्द्र सदा सार्वजनिक हितके कार्य करता है इस कारण उसको नयः — नरोंका हित करनेमें तत्पर रहनेवाला कहा है।

नर्यापसं (नर्य-अपस्)' (१)— सार्वजनिक हितके कार्य सदा करता है।

पुरूणि नर्या दधानः (४७)— सार्वजनिक हितके बहुत कार्य करनेवाला।

' अस्य मह इन्द्रस्य पुरूणि सुकृता महानि कर्म (४८)— इस बडे इन्द्रके अनंत परमोत्तम बडे महत्वके सार्वजनिक हितके लिये होते हैं। यह जो कार्य करता है वे सब जनताके हितके ही कार्य होते हैं।

इस कारण इसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

त्वरासे कार्य करनेवाला

इन्द्र जो कार्य करना चाहता है वह सत्वर करता है और उत्तमसे उत्तम रीतिसे उत्कृष्ट और सुन्दर करता है। कभी बीचमें अधूरी अवस्थामें छोडता नहीं। इसलिये उसे—

तुरः (११६)— त्वरासे कार्य करनेमें कुशल।

तुर्वणिः (१२६)— सत्वर परन्तु उत्तम कार्य करनेमें चतुर।

ऋभुक्षाः (१२७)— प्रत्येक कार्य अतिशीघ्र तथा उत्तम करनेमें कुशल

यः कर्मण्या ऋभुक्षाः तुविष्मान् (६२)— जो स्वभाव कर्मसे ही शीघ्रतासे कार्य समाप्त करनेमें कुशल और बलवान है।

तुराषाट् (६)— त्वरासे लडाईमें शत्रुको पराजित करता है।

यह सामर्थ्य इन्द्रका है। इस कारण इन्द्रके सामर्थ्यकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

इन्द्रका सामर्थ्य

शक्रः (११५)— सामर्थ्यवान् इन्द्र,

शची-पतिः (१२१)— शक्तिमान् इन्द्र है, शचीका अर्थ शक्ति है।

सत्य-शुष्मः (६२)— सच्चा सामर्थ्य जिसके पास है।

उग्रः सासहत्पाति (१४)— बलवान सदा शत्रुको परास्त करनेवाला इन्द्र है।

उग्र-बाहुः (१४२)— अपनी बाहुसे शक्तिसे युक्त इन्द्र है।

महान् ओजसा चरसि (११)- बडे सामर्थ्यके साथ इन्द्र चलता है।

कत् वयः दधे (१११)— किस प्रकारकी अद्भुत शक्ति इन्द्रमें है।

दिवि ओपशं धारयाः (१०१)— द्युलोकमें सामर्थ्य प्रकट करता है।

न पुराणः न नूतनः अन्य ते वीर्यं न अनुआपत् (९१)— कोई प्राचीन अथवा कोई अर्वाचीन वीर तेरे पराक्रमकी बराबरी नहीं कर सकता है। ऐसा इन्द्रका सामर्थ्य अद्भुत है।

त्वा न किः आ विपमत् (११)— तुझे कोई रोक नहीं सकता। तेरी गति अप्रतिहत है।

अनिपुतः स्थिरः रणाय संस्कृतः (१११)— इन्द्र कभी पीछे नहीं हटता युद्धस्थानमें स्थिर रहता है और युद्धके लिये सदा तैयार रहता है।

उग्रः सखा शवांसि दधानः (११५)— उग्रवीर इन्द्र है साथ साथ अनेक सामर्थ्योंको धारण करनेवाला भी है।

वज्री नः विश्वा सुपथा कृणोतु (११५)— वज्रधारी इन्द्र अपने सामर्थ्यसे हमारे लिये सब मार्ग उत्तम सुगम करता है।

इस तरह इन्द्र सामर्थ्यवान् है इस कारण सर्वत्र उसकी प्रशंसा गायी जाती है।

प्रशंसित इन्द्र

इन्द्रकी प्रशंसा सब करते हैं, इस विषयमें देखिये—

पुरु-स्तुतः (२१)— बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र है।

महः (४४)— प्रशस्य माननीय।

पनीयम् (७१)— जिसकी सब स्तुति करते हैं।

अर्कः (२२)- अर्चनीय पूजनीय।

गूर्त-श्रवाः (२१)— जिसका यश चारों ओर फैला है।

स्तोतॄणां भद्रकृत् (१००)— स्तुति करनेवालोंका कल्याण करता है।

सुविद्वांसं चर्षणीनां चर्कृत्यं उपस्तुहि (४१)— मानवों द्वारा प्रशंसित उत्तम विद्वान् इन्द्रकी स्तुति कर।

दानौकसः (२१)— इन्द्र दानका घर ही है उदार दाता है।

इस तरह इन्द्रकी सब लोग सदा प्रशंसा करते हैं। इस स्तुतिसे स्तुति करनेवालोंका हित होता है। यह इन्द्र बलवान् है शूर है युद्धमें कुशल है इत्यादि उसके गुण स्तुतिमें वर्णन किये जाते हैं। स्तुति सुननेवालेके मनमें ये गुण उत्तम हैं यह भाव जम जाता है और इन गुणोंको अपनेमें धारण करनेकी प्रबल इच्छा स्तुतिको सुननेवालोंमें उत्पन्न होती है। यदि वे गुण किसीने अपनेमें धारण किये तो वह बलवान् शूर युद्धमें कुशल होता है और इस तरह उसकी उन्नति होती है। स्तुतिका यह लाभ है।

इन्द्रकी गौवें

इन्द्रके पास उत्तम गौवें होती हैं। वह स्वयं दूध पीता है अपने सैनिकोंको दूध पीनेके लिये देता है तथा योग्य मनुष्योंको गौवें देता है। इन्द्र गौका उत्तम रीतिसे पालन करता है अतः उसके पासकी गौवें उत्तमोत्तम होती हैं।

गोमान् (१६)— गौओंको अपने पास रखनेवाला

गोपतिः (१११)— गौओंकी पालना करनेवाला

शाचि-गुः (१९)— शक्तिवाली गौओंका निर्माण करनेवाला, हृष्टपुष्ट गौओंको अपने पास रखनेवाला

अ-गो-रुधः (४६)— गौओंको न रोकनेवाला उनकी उन्नतिमें बाधा न डालनेवाला, गौओंकी उन्नति करनेवाला।

गवां पुरस्कृत् (७१५)— गौओंका उद्धारक

गविष (४६)— गौओंकी इच्छाके अनुसार उन्नति करनेवाला

पुरुभोजसं गां ससाम (५१)— बहुत अन्न देनेवाली गायको इन्द्र प्राप्त करता है। गाय बहुत दूध देती है ऐसी गौओंको इन्द्र अपने पास रखता है।

यः वलस्य अपधा गाः उदाजत् (१)— जिसने बलने छिपाकर रखी गौओंको ऊपर निकाला।

दासपत्नीः धेनाः आविः अकृणोत् (७५)— रात्रीमें शत्रुने छिपायी गौवें इन्द्रने प्रकटमें लायीं। शत्रुको परास्त करके उसके पासकी गौवें अपने आधीन करके रखीं।

अंगिरोभ्यो गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन् उत आ अजत् (१०४)— अंगिरा ऋषियोंके लिये गौवें जो छिपाकर रखी थीं उसको बाहर निकाला और उनका दान उन ऋषियोंके लिये किया।

गव्य अश्व्य धाता ददाति (१४)— अनेकों गौवें और घोड़े इन्द्र दानमें देता है।

सब प्रकारका सामर्थ्य इन्द्रमें रहता है इसलिये उसका शासन द्रोहरहित होता है।

सपत्नः असपत्नहा (२८८ — वह बलवान् है और कभी न गिरनेवाला है। अपने बलसे वह उन्नतर होता रहता है।

वृषभस्य धुरि धीमहि (४७८) बलके कारण तुझे अग्रस्थानमें हम रखते हैं।

यः तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः एकः कृष्टीः प्रच्यावयति (२४१)— वह इन्द्र तीखे सींगवाले बैलके समान महाभयंकर है वह अकेला ही सब शत्रुजनोंको स्थान भ्रष्ट करता है विनाश करता है। अकेला ही अपने बलके कारण सब शत्रुओंको पराजित करता है।

न महिमानं न वीर्यं न राधः अनु आनशुः (४८२)— कोई वीर तेरी महिमा तेरा वीर्य तेरे धनकी बराबरी नहीं कर सकता।

दमोदाः (२११)— इन्द्र बल देनेवाला है।

अनूर्मी बाजी यमः (४ ८)— बीचा रहित बलवान् नियामक होता है।

ते वीर्यस्य चर्षणयः चर्किरन् (४५१)— तेरे बल कर्मोंकी कीर्ति स्तुतियों द्वारा करनेवालोंने गाई है।

पूरवः ते अस्य वीर्यस्य विद्युः (४११)— लोग तेरे इस पराक्रमको अच्छी तरह जानते हैं।

चिकित्वुषे असुर्याय मन्म (५ १)— जो ज्ञानी या बलवान् होता है उसका स्तोत्र गाया जाता है।

शवसे गाये सखा (१४२)— बलके कार्य करनेके लिये उपस्थित होनेकी आवश्यकता अर्थात है।

विश्वा शवसा वृष्ण्या महिमा आ पप्राथ (५११)— सारे बल और सामर्थ्यों महिमाने भर दिया है अर्थात् जहां शक्ति और सामर्थ्य है वहां महिमा आ जाती है।

त्वं बलात् सहसः अभिजातः (५५८)— तू बल और साहसके कारण प्रसिद्ध हुआ है।

ते वृष्ण्यानि वर्धाम (१ १)— तेरे बलोंका वर्णन करके हम उनको बढाते हैं।

तुविशुष्मः महिषः (१११)— इन्द्र बड़ा सामर्थ्यवान् और भैंसेके समान बलवान् है।

महान् उग्रः सत्यः देवः इन्द्रः (६११)— बड़ी महिमावाला उग्र देव इन्द्र है।

इन्द्रः शुष्मं दधे (७ ७)— इन्द्र प्रचण्ड बल धारण करता है।

वृष्ण्यं शवः (७११)— इसका समर्थ बल श्रेष्ठ है।

अप्रतिमानं ओजः (१११)— इस इन्द्रका अतुलित सामर्थ्य है।

अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा महांसि अति प्रत्यक्षाणः (१ १)— अपरंपार महा सामर्थ्यसे अपने इन सामर्थ्योंको वह अति तीक्ष्ण बनाता है।

नृभिः प्राङ् अपाङ् उदङ् न्यङ् हूयसे (७१)— मानवों द्वारा पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर दिशाओंमें सहायार्थ तू बुलाया जाता है।

इस तरह इन्द्रके प्रचण्ड सामर्थ्यका वर्णन यह कर रहा है। इस वर्णनको पढनेसे अपनेमें सामर्थ्य बढाना चाहिये यह स्फूर्ति स्तुति करनेवालोंमें उत्पन्न होती है जो मानवोंकी उन्नतिके लिये अत्यंत आवश्यक है।

किलेमें रहनेवाला इन्द्र

अद्रि-वः (११५)— पहाडी किलोंमें इन्द्र रहता है। यह इस वीरकी सुरक्षितताके लिये पहाडी किलोंमें रहता है। किलेमें रहनेसे अपनी सुरक्षितता निश्चित होती है। यह शत्रुओंके किले तोडता है देखिये—

शत्रुके किले इन्द्र तोडता है

इन्द्र स्वयं पर्वतपरके किलेमें रहता है। शत्रु भी उस तरह किलेको अभेद्य बनाता है। पर स्वयं इन्द्र शत्रुके किले तोडता है उनमें प्रवेश करता है तथा उनको अपने अधिकारमें लेता है। शत्रुको वहांसे हटाता है और उनमें अपने लोगोंको बसाता है। इन्द्रके वर्णनोंमें ये वर्णन बहुत हैं उनमेंसे थोडे देखिये—

पुर्भित् (पुः-भित्) (४१)— शत्रुके नगरोंके किलोंको तोडनेवाला इन्द्र है।

पुरां दर्मा (११)— शत्रुकी पुरियोंको तोडनेवाला

अयं ओजसा पुरः विभिनत्ति (११६)— यह इन्द्र अपने बलसे शत्रुकी नगरीयोंके किलोंको तोडता है।

शाकवतीनां पुरां हर्ता असि (४ १)— तू शत्रुके सारे किलोंको तोडता है।

शारदीः पुरः साससहानः अवातिरः (४११)— शरद् ऋतुमें रहनेके लिये बनाये शत्रुके किले साहससे इन्द्रने तोडे।

दृढं पुरं ओजसा चोदसि (११५)— इस किलेको तू अपने बलसे तोडता है।

बाहोजसा वज्र अवर्सि पुरः बिभेद (११)— अपने भुजोंके बलसे शत्रुके निन्यानवे किले तोड दिये।

नवनवतिं पुरः सद्यः (२४७)— निन्यानवे किलोंको तोड दिया।

ऋजिश्वना परिपूता अनानुदः शुष्णस्य शतानि पुरः भरभिनत् (१०६)— ऋजिश्वाके द्वारा घेरी हुई कंजूस शुष्णकी सौ नगरियोंको तूने तोड दिया।

अबन्धुना सुश्रवसा उपजग्मुषः एतान् द्विदश जनराज्ञः षष्टिं सहस्रा नवतिं नव दुष्पदा रथ्या चक्रेण नि अवृणक् (१२७)— जिना सहाय ऐसे युद्ध करनेमें सुश्रवाके हमला किये हुए इन बीस जनराजाओंको तथा उनके साठ हजार निन्यानवे सैनिकोंको अजय रथचक्रसे मार डाला। साठ हजार सैनिकोंका पराभव करनेके लिये कितना बल चाहिये उतना इन्द्रके पास बल था यह इसका भाव है।

त्वं अस्मै मेह पूर्वे तार्थे कुत्सं अतिथिग्वं आयुं अरन्धयः (११८)— तूने इस तरुण राजाका हित करनेके लिये कुत्स अतिथिग्व और आयुको मारा।

शिवेशाने हत्तमा अभिवेपीः पुरीं अहन् (१४७)— रहनेके लिये तूने सौवें किलेमें प्रवेश किया उस समय तूने इसको मार दिया।

उत नमुचिं अहन् (१४७)— और नमुचिको भी मारा।

इस तरह शत्रुके लिये तारनेका वर्णन वेदमें है। साठ साठ हजार शत्रु सैनिकोंका वध किया इस कार्यके लिये इन्द्रका सैन्य कितना होगा इसकी कल्पना पाठक करें। किलोंमें रहकर लडने वालेके पास थोडा सैन्य हुआ तो चल सकता है। पर शत्रुके किले तोडना लडते रहे शत्रुओंका नाश करना साठ सत्तर हजार शत्रुके सैनिकोंका नाश करना आदि कार्य करनेके लिये शत्रुके सैन्यकी अपेक्षा तीन गुणा तो सैन्य अवश्य ही चाहिये। उतना इन्द्रके पास था यह इस वर्णनसे सिद्ध होता है।

इन्द्रका संरक्षण सामर्थ्य

इन्द्र एक समय निन्यानवे किले शत्रुके लेता है और सौवें किलेमें जाकर रहता है इससे इन्द्रका युद्ध करनेका सामर्थ्य कितना बडा है यह स्पष्ट होता है। युद्ध करनेका सैनिकोंका सामर्थ्य होता है। इस सामर्थ्यके बाहरके शत्रुओंसे संरक्षण किया जाता है और आन्तरिक उपद्रवकारियोंसे भी संरक्षण होता है। इसलिये इन्द्र सबका संरक्षण करनेवाला है अतः कहा है—

अविता (११)— इन्द्र रक्षण करनेवाला है।

सत्पतिः (६)— उत्तम पालन करनेवाला है।

३ (अथर्व. स्वा. भाष्य २)

कुण्डपाय्यः (२)— यज्ञके कुण्डका संरक्षक। आर्य यज्ञ करते थे और अनार्य यज्ञका नाश करते थे। इसलिये यज्ञके कुण्डका रक्षण करनेका कार्य आर्य क्षत्रिय रक्षण करता है।

त्वं समर्यः वर्म असि (१४)— तू मेरा बडा कवच है। जैसे कवच रक्षण करता है वैसे तू मेरा रक्षण करता है।

इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि अभयं करत् (११८)— इन्द्र सब दिशाओंसे आनेवाले शत्रुओंसे निर्भयताका निर्माण करता है।

सखायः! यात योने वाजे याजे तवस्तरं इन्द्र ऊतये हवामहे (१६१)— हे मित्रो! हम सब मिलकर शत्रुके साथ युद्ध होनेपर प्रत्येक युद्धमें बलशाली इन्द्रको अपनी सुरक्षा करनेके लिये बुलाते हैं।

सखा इन्द्रः पुरस्तात् उत मध्यतः सखिभ्यः वरिवः कृणोतु (१७)— हमारा मित्र इन्द्र आगेसे और मध्यसे हमारे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ संरक्षण देवे, अथवा धन देवे।

धने हिते येन आविथ (१९)— युद्ध शुरू होनेपर अपनी शक्तिसे तू हमारा संरक्षण करता है। यहां धन नाम युद्धका है क्योंकि युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर शत्रुका धन अपने आधीन होता है।

सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः नः इन्द्र उपा गमत् (१६२)— हजारों संरक्षक योजनाओं और सामर्थ्योंसे हमारे पास यह इन्द्र आता है और हमारा संरक्षण करता है।

हे इन्द्र! वाजयामस्य यिम्मा यमानि त्रिग्युषः ते ऊतिं आवृणीमहे (१२)— हे इन्द्र! तुम बल बढानेवाले और शत्रुओंका जीतनेवाले वीरके संरक्षणको हम चाहते हैं। तेरी शक्तिसे हमारा संरक्षण होता रहे।

मा अभुकेभिः परुषैः आयस्य (२४९)— हमारा संरक्षण सरल साधनोंसे कर। उनमें कपट प्रयोग करनेकी आवश्यकता न रहे।

त्वया ऊती वावृधस्व (२५१)— अपने संरक्षण शक्तिसे बढाओ।

स वाजेषु न प्राविषत् (११८)— यह इन्द्र युद्धोंमें हमारा संरक्षण करता है।

नः अविता भव— (१४२)— तू हमारा संरक्षक हो।

सुरूपकृत्नुं ऊतये जुहूमसि (१४४)— उत्तम सुंदर रूप बनानेवाले इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं।

यास्ते शायुध ते विभूतय ऊतय (११)— जो तेरे शस्त्रोंके सिवा तेरी विभूतियां संरक्षक होती हैं।

रेवतः मद्यः गोदाः (१४५)— धनवान् इन्द्रका हर्ष गौओंको देनेवाला है।

इस तरहके वचन बता रहे हैं कि इन्द्र गौओंकी उत्तम पालना करता है। अधिक दूधवाली अच्छी देनेवाली गौवें तैयार करता है और उनका दान ऋषियोंके लिये करता है।

इन्द्र घोडोंकी पालना करता है

इन्द्र जैसी उत्तम गौओंकी पालना करता है उसी तरह वह उत्तम घोडोंकी पालना करनेवाला भी है। देखिये—

हर्यश्वः (हरि-अश्वः) (१८)— लाल या पीले घोडोंको रखनेवाला इन्द्र है।

हरि-प्रियः (१४३)— घोडे जिसको अत्यंत प्रिय हैं ऐसा इन्द्र है।

हरि-वः (१६४)— लाल घोडे अपने पास रखने वाला इन्द्र है।

हरीणां स्थाता इन्द्रः (४३)— घोडोंको आश्रय देनेवाला इन्द्र है।

अश्वस्य पीतः (७१५)— घोडोंकी पालना करने वाला इन्द्र है।

केशिनी (१)— केशवाले इन्द्रके घोडे हैं।

ब्रह्मयुजौ (१)— इशारेके साथ रथको जुडनेवाले इन्द्रके घोडे हैं। इशारा होते ही अपने स्थानपर रथके साथ जुडनेवाले जिसके घोडे हैं।

केशिना ब्रह्मयुजा हरी त्वा आवहताम् (१)— केशवाले इशारेसे जुड जानेवाले दो घोडे तुझे-इन्द्रको यहां ले आवें।

इन्द्रः अश्वान् ततक्ष (५१)— इन्द्र युद्धोंमें घोडोंको तैयार करता है। युद्धोंमें जीतनेवाले घोडे इन्द्र तैयार करता है। घोडोंको ऐसी शिक्षा वह देता है जिससे युद्धमें उसके घोडे जीतते हैं।

वचोयुजा मा संमिश्लः हर्योः सचा (११८)— शब्दसे इशारेके साथ रथके साथ जुडनेवाले घोडोंका साथी इन्द्र है अर्थात् ऐसे उत्तम घोडे जिसके पास रहते हैं, ऐसा इन्द्र है।

ते हरी सुयमा (६३)— तेरे दोनों घोडे उत्तम रीतिसे स्वाधीन रहनेवाले हैं।

त्वां सत्पतिं नरः युद्धेषु अर्वतः काष्ठासु हवामहे (१७४)— तब हम लोग तुझ जैसे उत्तम पालक इन्द्रको शत्रुओंके घिर जानेपर- तथा युद्धोंके मैदानोंमें- बुलाते हैं। सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

रथयुज्यवः सप्तयः आ वहन्तु (६२)— रथमें जुतने वाले घोडे तुम्हें यहां ले आवें।

अरुषीः हरयः आ सस्रिरे (११४)— लाल घोडे इन्द्रको यहां लाते हैं।

अर्वाङ् हरिभ्यां आयाहि (११६)— मेरे पास घोडोंसे आओ।

अस्मत् आरे मा मुमुचः (१४२)— हमसे दूर अपने घोडोंको न छोड।

सधीचीनं रथं हरिभ्यां युजे (५६)— घोडोंको जुडनेवाले रथको मैं दो घोडोंको जोडता हूं।

केशिना घृतस्नू हरी रथे त्वा अर्वाञ्चा वहतां (१७४)— केशवाले और जिनके शरीरसे घृत टपकता है ऐसे तेजस्वी दो घोडे रथमें तुझे हमारे पास ले आवें। इसमें घृत-स्नू पद है। घी जैसा पदार्थ जिनके शरीरसे टपकता है। यह वर्णन इनके घोडोंकी तेजस्विताका है।

हरिभ्यां उप याहि (१७५)— घोडोंसे यहां आओ। दो घोडे अपने रथको जोतकर, उस रथमें बैठकर यहां आओ। इन्द्रके रथको दो घोडे जोते जाते हैं यह इस वर्णनका अर्थ है।

केशिना हरी इन्द्रं वहतः (१७८)— केशवाले दो घोडे इन्द्रको ले जाते हैं।

शिप्रिणं हरी मुदा हिन्वन् (१८८)— मुखमें सिर रखकर युद्ध करनेवाले इन्द्रको दो घोडे आगे चलाते हैं।

हर्यता हरी वज्रिणं मंदिनं इन्द्रं रथे वहतः (१८७)— प्रिय दो घोडे वज्रधारी आनंदित इन्द्रको रथमें ले जाते हैं।

अस्य रथे विपक्षसा शोणा धृष्णू नृवाहसा काम्या हरी युञ्जन्ति (१६५)— इस रथमें दोनों ओर लाल रंगके दो प्रिय घोडे शूरवीर इन्द्रको ले चलनेके लिये जोते जाते हैं।

तव ऊतिभिः सुप्रावीः मर्त्यः अश्वावति गोषु प्रथमः गच्छति (१५४)— तेरी सुरक्षासे सुरक्षित हुआ मानव गौओं और घोडोंवालोंमें पहिला होकर जाता है।

सर्वरथा हरी इह विमुच (११७)— सब रथोंके दो भी घोडे यहां छोड।

मदच्युता हरी युक्ष्व (१४)— मद गिरानेवाले दो घोडे रथको जोत।

यमस्य रथे हरी वहतः (४८४)— नियामक इन्द्रके रथको दो लाल घोडे चलाते हैं।

त्वा मघवन् ऊत्यासः नि गव्यन्तो यमीमहि (४५९)— तेरी प्रेरणासे घोड़ोंसे सुरक्षित हुए हम शत्रुको रोक सकते हैं।

मघवद्भिः हरिभिः यः ओज ईयते (१८८)— वेगवाले घोड़ोंसे यह इन्द्र ओजसे शीघ्र जाता है। इस मंत्रमें हरिभिः अनेक घोड़ोंके साथ इस वर्णनका प्रयोग है। अन्यत्र हरी दो घोड़े ऐसा ही प्रयोग है।

अमासः सविश्वासः इन्द्रवाहः सधमादः पर्म सुपर्ति अर्थ वक्षमाणाः प्रत्यक्षसं सत्यशुष्मं इं अस्मत्रा आ वहन्तु (१४)— रथ जुड़नेवाले इन्द्रके घोड़े उस रथ और मनुष्योंके पालक मनके समान वेगवाले बलवान् उस सामर्थ्यवाले इस इन्द्रको हमारे पास ले आवें।

इन्द्रका रथ

घोड़ोंके वर्णनके संगम इन्द्रके रथका भी वर्णन आता है। इन्द्र घोड़ेपर बैठता नहीं वह सदा रथमें ही बैठता है। अतः कहा है—

रथे-ष्ठाः (२११)— इन्द्र रथमें बैठता है।

ते रथः सुखतम (१२)— तेरा रथ उत्तम रीतिसे स्थिर है, रथ मजबूत है।

वयुजो रथे यजोयुजा इन्द्रवाहा हरी सुयुतिं (१५)— चौड़ पूछोंवाले उत्तम रथमें इशारेसे ही जुड़ जानेवाले इन्द्रके दो लाल रंगके घोड़े जोते जाते हैं।

अभिमानः सुवक्षा— (११८)— अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला इन्द्र है। यह इन्द्रका रथ (सुवक्षा) उत्तम चक्रवाला है। वेगसे यह जाता है और अन्दर बैठनेवालेको कुछ भी कष्ट नहीं होता। ऐसा उसका उत्तम रथ है।

अर्भको कुमारकः नवं रथं अधितिष्ठम् (९८४)— छोटा बालक इन्द्र नये रथपर चढ़कर बैठा। इस तरह वह शूर और वेगवान् युवा वीर है। कुमारकसे यह इन्द्रकी नव युवकता स्पष्टतासे प्रकट हो रही है।

इस प्रकार घोड़ों और रथका वर्णन इन्द्रके विषयमें वेदमें आया हुआ है। इन्द्र रथमें बैठकर ही इधर उधर जाता है। रथके घोड़े अनेक हैं वे शक्तियोंके द्योतक किये जानेमें आते होंगे। क्योंकि इन्द्रके रथको दो ही घोड़े जोते जाते हैं।

इन्द्रका अतुल सामर्थ्य

इन्द्रके अतुल सामर्थ्यके विषयमें वेदमंत्रोंमें बहुत ही वर्णन है, उसका अब थोडासा दिग्दर्शन करता है—

भीमः (७१)— इन्द्र महाभयंकर है इन्द्र शत्रुको कैसा दीखता है यह भाव इस शब्द द्वारा प्रकट हुआ है।

तवस (११)— इन्द्रका सामर्थ्य विशेष है।

पुरुशाकः (२४८)— बहुत शक्तिवाला है।

ओजिष्ठः (२८७)— इन्द्र बहुत ओजस्वी है महा बलवान है।

सहस्रावान् (२४९)— साहससे युक्त यह युक्त है। शत्रुका पराभव करनेका उसका सामर्थ्य विशेष अधिक है।

वाचस्पतिः (४९५)— यह वक्ता स्वामी है।

अप्रतिमान ओजः (१११)— उसका अप्रतिम सामर्थ्य है। उसके समान दूसरे किसीका भी बल नहीं है।

ते वीर्यं भूरि (७१)— इन्द्रका पराक्रम बहुत बडा है।

विश्वायु धायसे अपावृत (११)— संपूर्ण आयुपर्यंत वह सबके लिये प्रसिद्ध है। सब आयुपर्यंत वह सबके होनेवाला कार्य करता रहता है।

विश्वं केवलं सह तथा दधिषे (७४)— सब प्रकारका शुद्ध सामर्थ्य तू- इन्द्र- धारण करता है। अन्यमें जो सामर्थ्य करता है वह सब इन्द्रमें है।

वृषभः वृषण्यावान् सत्यः सत्वा पुरुमायः सह स्वान् पत्यते (११२)— बलवान् सामर्थ्ययुक्त सच्चा सत्ववान् अनेक कर्मोंको कुशलतासे करनेवाला शत्रुका पराभव करनेवाला जो इन्द्र है उसकी स्तुति होती है। यह इन्द्र पुरुमायः है। इस पदका अर्थ अनेक कर्म करनेवाला कुशलतासे कर्म करनेवाला अनेक कपट प्रयोगोंसे भी शत्रुका जीतनेमें प्रवीण ऐसा होता है। माया का अर्थ कुशलता तथा कपट प्रयोग ऐसा दोनों प्रकारका है। यह इन्द्र युद्धकौशल्यसे शत्रुका पराभव करता है तथा आवश्यकता होनेपर कपट प्रयोग करके भी शत्रुका नाश करता है। ये दोनों अर्थ यहां ठीक उचित हैं।

यः शश्वतो विश्वानि आततान (५४)— जो इन्द्र अपने बलसे सब शत्रुओंको फैलाकर मारता है। शत्रु एकत्रित होने नहीं देता, उनको फैलाता है और नष्ट भ्रष्ट करता है।

असाद्य तरुरि पर्वतेष्ठां अद्रोघवाचं शविष्ठं तं मतिभिः अभि— (१११)— शत्रुको दबानेवाला शत्रुका शीघ्र नाश करनेवाला पर्वतपरके किलेमें रहनेवाला द्रोहरहित भाषण करनेवाला बलवान् है उसकी बुद्धियोंसे स्तुति करते हैं। तरुरि का अर्थ त्वरासे वध प्राप्त करनेवाला शीघ्रताप शत्रुका नाश करनेवाला है। पर्वतपरके किलेमें इन्द्र रहता है द्रोहरहित भाषण करता है भाषणमें उसकी उत्तम सभ्यता प्रकट होती है भाषण उसकी प्रिय लगे ऐसा उत्तम होता है।

सब प्रकारका सामर्थ्य इसमें रहता है इसलिये उसका शासन अप्रतिहत होता है।

समदः अनपच्युतः (२८८) — यह बलवान है और कभी न गिरनेवाला है। अपने बलसे यह उत्तम होता रहता है।

शूरस्य भूरि धीमहि (४७८) उसके कारण तुझे ध्यानमें हम रखते हैं।

यः तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः एकः कृष्टीः च्यावयति (२४१) — यह इन्द्र तीखे सींगवाले बैलके समान महाभयंकर है यह अकेला ही सब शत्रुजनोंको स्थान भ्रष्ट करता है विनष्ट करता है। अकेला ही अपने बलके कारण सब शत्रुओंको पराजित करता है।

न महिमानं न वीर्यं न राधः तव आनंशुः (४८९) — कोई वीर तेरी महिमा तेरा वीर्य तेरे धनकी बराबरी नहीं कर सकता।

दमोत्साः (२३६) — इन्द्र बल देनेवाला है।

अनूर्मी वाजी यमः (४ ८) — पीछा रहित बलवान् नियामक होता है।

ते वीर्यस्य वधिरः चर्षणिम् (४९६) — तेरे पराक्रमोंकी कीर्ति जनतामें इच्छा करनेवालोंमें जाती है।

पूरवः ते अस्य वीर्यस्य विदुः (४९५) — लोग तेरे इस पराक्रमको अच्छी तरह जानते हैं।

विचिकित्से मनुष्याय सम्म (५ ६) — जो ज्ञानी या बलवान् होता है उसका सत्कार किया जाता है।

शवसे राधे सत्या (२४२) — बलके और धनके लिये संघटित होनेकी आवश्यकता बताता है।

विश्वा शवसा वृष्ण्या महिना अप्रथाय (७११) — सारे बल और सामर्थ्यकी महिमाने भर दिया है अर्थात् जहां शक्ति और सामर्थ्य है वहां महिमा बढ जाती है।

त्वं बलात् सहसः अभिजातः (७१८) — तू बल और साहसके कारण प्रसिद्ध हुआ है।

ते वृष्ण्यानि वर्धाम (६ १) — तेरे बलोंका वर्णन करके हम सबको बढाते हैं।

तुविशुष्मः महिषः (११३) — इन्द्र महा सामर्थ्यवान् और भैंसेके समान बलवान् है।

महान् उग्रः सत्यः देवः इन्द्रः (११३) — बडी महिमावाला बडा देव इन्द्र है

इन्द्रः शुष्मं दधे (७ ७) — इन्द्र बलका धारण करता है।

वृष्ण्यं शवः (७११) — इसका अमरो बल है।

अप्रतिमानं ओजः (१११) — इस इन्द्रका अतुल सामर्थ्य है।

अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा मही भिः अति प्रत्याशानः (६ २) — अपरंपार महा सामर्थ्यसे अपने सब सामर्थ्योंको यह अति तीक्ष्ण बनाता है।

भूमिः प्राङ् अपाङ् उदङ् न्याङ् हूयसे (४१) — मानवी द्वारा पूर्व पश्चिम दक्षिण, उत्तर दिशाओंमें सहायार्थ तू बुलाया जाता है।

इस तरह इन्द्रके अनन्त सामर्थ्यका वर्णन वेद कर रहा है। इस वर्णनको पढनेसे अपनेमें सामर्थ्य बढाना चाहिये यह सूचना स्तुति करनेवालोंको प्राप्त होती है जो मानवोंकी उन्नतिके लिये अतीव आवश्यक है।

किलेमें रहनेवाला इन्द्र

अद्रि-जाः (११५) — पहाडी किलोंमें इन्द्र रहता है। यह इस वीरकी सुरक्षितताके लिये पहाडी किलोंमें रहता है। किलेमें रहनेसे अपनी सुरक्षितता निश्चित होती है। यह शत्रुओंके किले तोडता है देखिये—

शत्रुके किले इन्द्र तोडता है

इन्द्र स्वयं पर्वतपरके किलेमें रहता है। शत्रुके द्वारा बनाये किलेको अभेद्य बनाता है। पर स्वयं इन्द्र शत्रुके किले तोडता है उनमें प्रवेश करता है तथा उनको अपने स्वाधीन करता है। शत्रुसे वहांसे हटाता है और उनमें अपने लोगोंको रखता है। इसके वर्णनोंमें ये वर्णन बहुत हैं उनमेंसे थोडे देखिये—

पूर्भित् (पुर्-भित्) (४६) — शत्रुके नगरोंके किलोंको तोडनेवाला इन्द्र है।

पुरां दर्मा (११) — शत्रुकी पुरियोंको तोडनेवाला

अध ओजसा पुरः बिभिदथ (१३६) — यह इन्द्र अपने बलसे शत्रुकी नगरीयोंके किलोंको तोडता है।

शतमन्तीनां पुरां दर्ता असि (४ १) — तू सैकडों किलोंको तोडता है।

शारदीः पुरः सासहानः अवातिरः (४१५) — वर्षभर शत्रुके रहनेके लिये बनाये शत्रुके किले साहससे इसने तोडे।

दर्भ पुरं आजसा संहसि (११५) — इन किलोंको तू अपने बलसे तोडता है।

सहोजसा अप मायसि पुरः बिभेद (११) — अपने प्रचण्ड बलसे शत्रुके निवासके किले तोड दिये।

नवनवतिं पुरः सद्यः (२४७)— निन्यानवे किलोंको तोड दिया ।

ऋजिश्वना परिषूता अनानुदः वंगृदस्य शताः पुरः अभिनत् (१२६)— ऋजिश्वाके द्वारा घेरी हुई वंगृदकी सौ नगरियोंको तूने तोड दिया ।

अबन्धुना सुश्रवसा उपजग्मुषः एतान् द्विदश जनराज्ञः षष्टिं सहस्रा नवतिं नव दुष्पदा रथ्या चक्रेण नि अवृणक् (१२७)— बिना सहाय मिले हुए अकेले सुश्रवाके हमला किये हुए इन बीस जनराजाओंको तथा उनके साठ हजार निन्यानवे सैनिकोंको अजय्य रथचक्रसे मार डाला । साठ हजार सैनिकोंका पराभव करनेके लिये जितना बल चाहिये उतना इन्द्रके पास बल था यह इसका भाव है ।

त्वं अस्मै महे यूने राज्ञे कुत्सं अतिथिग्वं आयु अरन्धयः (१२८)— तूने इस तरुण राजाका हित करनेके लिये कुत्स अतिथिग्व और आयुको मारा ।

निवेशने शततमा अविवेषीः वृत्रं अहन् (२४७)— रहनेके लिये तूने सौवें किलेमें प्रवेश किया। उस समय तूने वृत्रको मार दिया ।

उत नमुचिं अहन् (२४७)— और नमुचिको भी मारा ।

इस तरह शत्रुके किले तोडनेका वर्णन वेदमें है । साठ साठ हजार शत्रु सैनिकोंका वध किया इस कार्यके लिये इन्द्रका सैन्य कितना होगा इसकी कल्पना पाठक करें। किलोंमें रहकर लडने-वालेके पास थोडा सैन्य हुआ तो चल सकता है । पर शत्रुके किले तोडना उनमें रहे शत्रुओंका नाश करना साठ साठ हजार शत्रुके सैनिकोंका नाश करना आदि कार्य करनेके लिये शत्रुके सैन्यकी अपेक्षा तीन गुणा तो सैन्य अवश्य ही चाहिये । उतना इन्द्रके पास था यह इस वर्णनसे सिद्ध होता है ।

इन्द्रका संरक्षण सामर्थ्य

इन्द्र एक समय निन्यानवे किले शत्रुके लेता है और सौवें किलेमें जाकर रहता है इससे इन्द्रका युद्ध करनेका सामर्थ्य कितना बडा है यह स्पष्ट होता है। युद्ध करनेका सैनिकीय सामर्थ्य होता है। इस सामर्थ्यसे बाहरके शत्रुओंसे संरक्षण किया जाता है और आन्तरिक उपद्रवकारियोंसे भी संरक्षण होता है। इसलिये इन्द्र सचमुच संरक्षण करनेवाला है अतः कहा है—

अविता (११)— इन्द्र रक्षण करनेवाला है ।

सत्पतिः (१८)— उत्तम पालन करनेवाला है ।

१ (अथर्व स्वा काण्ड २)

कुण्डपाय्यः (२)— यज्ञके कुण्डका संरक्षक । आर्य यज्ञ करते थे और अनार्य यज्ञका नाश करते थे । इसलिये यज्ञके कुण्डका रक्षण करनेका अर्थ आर्य आतिथ्य रक्षण करना है ।

त्वं सप्रथाः वर्म असि (१४)— तू मेरा बडा कवच है । जैसे कवच रक्षण करता है वैसे तू मेरा रक्षण करता है ।

इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि अभयं करत् (११८)— इन्द्र सब दिशाओंमेंसे आनेवाले शत्रुओंसे निर्भयता निर्माण करता है ।

सखायः! योगे योगे वाजे वाजे तवस्तरं इन्द्रं ऊतये हवामहे (१११)— हे मित्रो! हम सब मिलकर शत्रुके साथ संघर्ष होनेपर प्रत्येक युद्धमें बलवाले इन्द्रको अपनी सुरक्षा करनेके लिये बुलाते हैं ।

सखा इन्द्रः पुरस्तात् उत मध्यतः सखिभ्यः वरिवः कृणोतु (१७)— हमारा मित्र इन्द्र आगेसे और मध्यसे हमारे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ संरक्षण देवे, अथवा धन देवे ।

धने हिते धनं आविथ (११)— युद्ध शुरू होनेपर अपनी शक्तिसे तू हमारा संरक्षण करता है । यहां धन नाम युद्धका है क्योंकि युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर शत्रुका धन अपने अधीन होता है ।

सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः नः इन्द्र उप गमत् (११२)— हजारों संरक्षक योजनाओं और सामर्थ्योंसे हमारे पास वह इन्द्र आता है और हमारा संरक्षण करता है ।

हे इन्द्र! वाजपालस्य विश्वा धनानि जिग्युषः ते ऊतिं आवृणीमहे (१७२)— हे इन्द्र! तुम वेद पढनेवाले और धनोंको जीतनेवाले वीरके रक्षणको हम चाहते हैं । तेरी शक्तिसे हमारा संरक्षण होता रहे ।

नः अपृक्तेभिः वरूथैः पायस्व (२४९)— हमारा संरक्षण सतत साधनोंसे कर । उनमें कसर प्रयोग करनेकी आवश्यकता न रहे ।

तन्वा ऊती वावृधस्व (२५१)— अपने शरीरसे अपनी संरक्षक शक्तिको बढाओ ।

स वाजेषु नः प्राविषत् (११८)— यह इन्द्र युद्धोंमें हमारा संरक्षण करता है ।

नः अविता भव— (२४२)— तू हमारा रक्षक हो ।

सुरूपकृत्नुं ऊतये जुहूमसि (२४४)— उत्तम सुंदर रूप बनानेवाले इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिए बुलाते हैं ।

मादयते राधसे ते विभूतयः ऊतयः (२७२)— मेरे जैसे दाताके लिये तेरी विभूतियां संरक्षक होती हैं ।

अस्माकं तनूनां अविता भूत् (१११)— तू हमारे शरीरोंका संरक्षक है।

अर्यमित्राः चित्राः प्रचर (४८१)— सबका संरक्षक तू है, हम मित्र भावसे हमारे रक्षणार्थ संचार कर।

सखीयतः आविथ (४९६)— मित्रताके साथ रहनेवालोंका संरक्षण कर।

पृतनासु प्रमन्तवे कार्ये वचकर (४९६)— शत्रुके सैन्यको जीतनेके लिए तुमने पुरुषार्थ किया।

चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अव (५११)— विलक्षण संरक्षक साधनोंसे हमारा संरक्षण कर।

चित्रः ऊती सदावृधः सखा कया नः आभुवत् (७२१)— विलक्षण संरक्षक सदा महान मित्र इन्द्र किस महान् सामर्थ्यसे युक्त है जिससे वह हमारा संरक्षण करता है।

यः ऊती मघं मंहेमानं अप्रतिहतं आत्मखेतारं होतारं रथीतमं मरुत्वं तुग्र्यावृधं (९९६)— आपके संरक्षणके लिये बलसहित विजयी अपराजित, शीघ्र विजय प्राप्त करनेवाले प्रेरणा देनेवाले बडे रथी इन्द्रको प्राप्त करो। वह आपका उत्तम संरक्षण करेगा।

इस प्रकार इन्द्र संरक्षणका कार्य करता है। इससे इस संरक्षक मंत्री भी कह सकते हैं। इसके मुख्य कार्योंमें जनताका संरक्षण आन्तरिक उपद्रवियोंसे तथा बाह्य शत्रुओंसे करनेका कार्य अन्तर्भूत हुआ है और वह कार्य विशेष रूपसे दीखते रहा है। इस कारण वह संरक्षक मंत्री ही है।

युद्ध करनेवाला इन्द्र

इन्द्र युद्धका देवता है। सबसे शत्रुसे सामना करना यह इसका मुख्य कार्य है। देखिये इसके वर्णन—

पुरो योधः (१ ४)— आगे रहकर युद्ध करनेवाला अग्रभागमें रहकर युद्ध करनेवाला।

नर हन्तुः (२७५)— युद्धमें शत्रुका नाश करनेवाला।

पृत्सु सासहिः (१ ४)— युद्धोंमें साहस करनेवाला विजयी वीर।

परि-उषा (४८६)— चारों ओर घूमकर युद्ध करनेवाला।

समत्सु वृत्रहा (६१८)— युद्धोंमें घेरनेवाले शत्रुओंका वध करनेवाला।

यः समत्सु संवन्द (२)— जो संग्रामोंमें शत्रुको घेरता है।

हे इन्द्र! वाजेषु सासहिः भव (११)— हे इन्द्र! तू युद्धोंमें शत्रुको जीतनेवाला हो।

त्वां वाजे हवामहे (६५)— तुझे हम युद्धमें सहायार्थ बुलाते हैं।

युधा युधं धृष्णुया उप एषि (१२५)— युद्धकी तैयारीसे युद्धके प्रति तू अपनी धर्षक शक्तिके साथ जाता है।

वाजेषु दाधृर्षं विद्म (१५)— युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला तू है ऐसा हम जानते हैं।

संयती क्रन्दसी च विह्वयेते (२ ५)— युद्ध करनेवाला सैन्य जिसको अपनी सहायताके लिये बुलाता है।

युग्मेषु पृतनाज्ये पृत्सु तुर्षु श्रवाःसु अभिमातिषु सासह (१११)— सवनादिके कर्मोंमें युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेके समयोंमें यश प्राप्त करनेके कर्मोंमें शत्रुका सामना करनेके समयोंमें तू हमारा साथी हो।

युध्यमाना अवसे यं हवन्ते (२ ६)— युद्ध करनेवाले वीर अपने रक्षणके लिये जिस इन्द्रको बुलाते हैं।

सत्राट् इन्द्रः स्वरिर् अमत्रः रणाय आववृते (२२४)— सरल चलनेवाला इन्द्र अपने बलसे शक्तिमान और सामर्थ्यवान होकर युद्धके लिये तैयार है।

युधे इन्द्रः आयुधानि अधायमानः शत्रून् निरिणाति (११८)— युद्धकी इच्छा करनेवाला जब शस्त्रोंको शत्रुपर प्रेरित करता है तब शत्रुओंको नीचे गिराता है।

अस्मिन् वाजे नः ऊतये क्रम्यः तिष्ठ (१८२)— इस युद्धमें हमारे संरक्षणके लिये खडा रह।

समत्सु ज्योतिः कर्ता (१८१)— युद्धोंमें तेजस्विता प्रकट करनेवाला इन्द्र है।

यथा अमित्राम् सासहानः (१८१)— युद्धमें शत्रुओंको पराजित करनेवाला इन्द्र है।

तं महत्सु आजिषु उत अर्भे हवामहे (११८)— उस इन्द्रको हम जैसे बडे युद्धोंमें सहाय्यार्थ बुलाते हैं वैसे छोटे संग्रामोंमें भी बुलाते हैं।

के इमः के वसो दधुः (१४)— किसने मार आर किसको बसमें रखा! इन्द्रने क्या क्या किया!

वृत्राणि घ्नन् अभवत् (४३५)— इन्द्र शत्रुओंको मारनेवाला हुआ है।

वाजेषु वाजिनं प्रावः (४२५)— युद्धोंमें घोडोंकी रक्षा कर।

समत्सु यस्य नैरथ हरी न वृषयत (४११)— युद्धोंमें जिसके जाने हुए घोडोंका पीछा कोई नहीं करता वह इन्द्र है।

उग्राभिः ऊतिभिः सहस्रप्रधनेषु नः अव (४५१)- उग्र वीरताके संरक्षणके साधनोंसे सहस्रों प्रकारके धन जिसमें मिलते हैं ऐसे युद्धोंमें हमारी रक्षा कर। सहस्र-प्र-धन यह युद्धका नाम है। शत्रुका पराभव करनेसे शत्रुके सहस्रों प्रकारके धन जिसमें वीरको प्राप्त होते हैं।

इन्द्रं वयं महाधने इन्द्रं अर्भे हवामहे (४५१)- इन्द्रको हम बड़े बड़े युद्धोंमें सहायार्थ बुलाते हैं बड़े छोटे युद्धोंमें भी बुलाते हैं।

अस्मिन् यामनि नः शिक्ष (५१६)— इस चढाईमें हमें ज्ञान आदेश दे (कि हम अपनी तैयारी कैसी करें?)

अज्ञाता वृजना दुराध्यः अशिवासः जनाः मा अव क्रमुः (५१७)— अज्ञात, कपटी दुष्ट अशुभ शत्रु हमपर आक्रमण न करें।

युधा इदमस्य धरितः आकर्ष (५१९)- युद्धसे देवोंके लिये धन प्राप्त किया है।

धृभिः पुतः अभियुध्यः स आजि त्वया सोम वयं जयेम (५१७)— वीरोंसे घिरा हुआ जो युद्ध करता है उस युद्धमें हम तेरे साथ रहकर अपनी शक्तिसे जीतेंगे।

अदेवीः मायाः असहिष्ठ (५१८)— असुरोंके कपट जालोंको पराभूत किया।

यमा मन्मस्त्सु सतस्नाना समीक रथा विहयन्त (५५)— वीर क्षेम युद्धमें बड़े शत्रुपर युद्धकी सहायतार्थ तुम बुलाते हैं।

सुयुधान् स्वधान् शत्रून् नि युवति वृत्र हन्ति (५५१)— उत्तम संग्रामोंवाले उत्तम सक्षमनाके शत्रुओंका पर इन्द्र दूर करता है और इन्हें मारता है।

अस्य शत्रु आरात् चित् अपगताः (५५२)— इस इन्द्रके शत्रु दूरसे भी उससे डरते रहते हैं।

अस्मे अस्या अस्ता नि नमन्तो (५५२)— इसके सामने सब मानवी तेजस्वी वीर विनम्र होकर रहते हैं।

शत्रुं आरात् दूरं यः उग्रः शम्भः तेन अपबाधस्व (५८१)— शत्रुका पासके और दूरके भी जो उग्र बल है उससे बाधा पहुंचाओ।

शत्रुः इन्द्रः विश्वाः द्विषः आति नोदते (५८१)- सामर्थ्यवान् इन्द्र सब शत्रुओंको दूर करता है।

समीके सगे सोफदन् (६१४)— संग्रामके युद्धमें वीरोंके लिये बाण्य स्थान देनेवाला इन्द्र है।

अहिं अपराधा आहन् (६१५)— अहि नामक शत्रुको मारकर नीचे गिराया।

समीक इन्द्रं हवामहे (७१६)— युद्धमें सहायार्थ हम इन्द्रको बुलाते हैं।

इन्द्रके युद्धविषयक सामर्थ्यका यह वर्णन है। इससे पता लग सकता है कि इन्द्रकी युद्धमें प्रवीणता कितनी है। इसीलिये हम इन्द्रका युद्धमन्त्री कहते हैं। पाठक भी इन वचनोंमें युद्ध मंत्रीके गुण देख सकते हैं।

शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र

शत्रुका पराभव हमेशा इन्द्र करता है। इस विषयमें इन्द्रके वचन देखने योग्य हैं उनमेंसे कुछ देखिये—

शत्रून् अहि (१४)— शत्रुओंको पराभूत कर

दस्यून् हन्ता (५१)— दस्युओंका हनन करनेवाला

उग्रः (५१)— इन्द्र अत्यंत उग्र वीर है।

शत्रून् जेता (११८)— शत्रुओंको जीतनेवाला।

दस्योः हन्ता (४ १)— दस्युओंका वध करनेवाला

शत्रून् विध्यमान इन्द्र (४१)— शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र है।

अर्कैः त्रास अधिरत्—(४१) अपने तेजसे इन्द्र अपने शत्रुको मार सकता है।

बल विभेद (५९)— बल नामक शत्रुको इन्द्रने मारा।

विवाचः मृध्र (५९)— विरुद्ध भाषण करनेवालोंको दूर किया।

अभिक्रत्वा दमिता अभवत् (५१)- यज्ञविरोधी लोगोंको दबानेवाला इन्द्र है।

भरे बाजसाती सुतमः (५१)- युद्धमें तथा अन्नदान करनेके समय इन्द्र सब नेताओंमें अतिश्रेष्ठ है।

भूषयन् (५१)- उत्तम रहना युक्त है।

समत्सु ऊतये (५१)- युद्धोंमें रक्षण करनेके लिये इन्द्र सहायक होता है।

चर्षणी-सहः (६८)- शत्रुसेनाका पराभव इन्द्र करता है।

यः दस्योः हन्ता (२ ७)- दस्युओंका वध करनेवाला इन्द्र है।

य पर्वतेषु क्षियन्त शंबरं यः मायावतं अहिं मायायां दानुं जघान (२ ८)- जिस इन्द्रने पर्वतपर रहनेवाले शंबरको कपटी अहिको और विभाग करनेवाले शत्रुको मारा।

यः कसीभिः शंबरं पर्यतरत् (२ ९)- जिसने पर्वतोंसे शंबरको मारा ।

यां मारोहन्त रौहिणं मस्फुरत् (२१)- आकाशमें ऊपर चढनेवाले रौहिणको इन्द्रने मारा ।

नाधि सुवृक्तिं प्र भरामि (११०)- शत्रुको मारना चाहूं वाकेके लिये यह उत्तम स्तोत्र मैं बोलता हूं ।

घोरे कर्मणा परिर्ष्टं आमुरिं उग्रं ओजिष्ठं तवसं तरस्विनं (१११)- घोर कर्म करनेके समय शत्रुको मारने वाले उग्र, बलवान्, सामर्थ्यवान् शत्रुको इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

व्रतमतः आवसः ऊतिभिः सचते (११२)- नियमोंके अनुसार चलनेवाला इन्द्र अपने रक्षणके तथा संरक्षणके साधनोंसे उत्तम रीतिसे आगे बढता है ।

अभिभूतिः (१२१)- शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र है ।

त्वायासः यर्यं यना वज्रं आददीमहि युधि स्पृधः संजयेम (४६१)- हे इन्द्र ! तेरे द्वारा रक्षित हुए हम मारक वज्र हाथमें धरते हैं और उससे युद्धमें स्पर्धा करनेवाले सब शत्रुओंको उत्तम रीतिसे जीतते हैं ।

वय मस्तृभिः शूरेभिः त्वया युजा पृतन्यतः सासह्याम (४६१)— हम बाण चलानेवाले वीरोंके साथ तथा तेरे साथ रहकर सैन्यसे हमला करनेवाले शत्रुको पराजित करेंगे ।

त्वायासः इन्द्रः पृतनाः व्यानट् (५ ८)- अपनी निज शक्तिसे समर्थ हुआ इन्द्र शत्रुसेनाको जीतता है ।

पृतनासु रथं आतिष्ठ (५ ४)— युद्धोंमें रथपर बैठ कर युद्ध कर ।

जिष्णा सुवना अभिभूय (५ ९)— जीतके शत्रुसेनाका पराभव कर ।

सत्रा-साहः (१)— शत्रुको जीतनेवाला इन्द्र है ।

अभिष्ठितः अन्तिरिक्षः पृतना जिगाय (४६)— इस सार्थ वीरोंके साथ रहकर हमला करनेवाले इन्द्रने जीत लिया ।

इन्द्रः युजा यज्वा आ विवेश (४०)— इन्द्र शत्रुसेनामें घुसता है ।

सत्रासाहः (५)— इन्द्र वीरोंके साथ रहकर शत्रुका पराभव करता है ।

वृत्रघ्न (५)— वह वृत्र विनाशी है ।

शत्रा-हा (५) वह शत्रुका नाश करनेवाला है ।

न पृथिवी इन द्यां अस्नाम (५)— जिस इन्द्रको पृथ्वी और द्युलोक नहीं पहुंचते, अर्थात् पूर्ण रूपसे शत्रुको पराभूत किया और आकाशसे आनेवाले शत्रुओंको भी जीत लिया ।

त्वया युजा प्रति ब्रुवे (१ ४)— तेरे साथ रहनेसे इन्द्रके साथ रहनेसे मैं शत्रुको योग्य उत्तर दे दूंगा ।

जिष्णा क्षिपः अपामित्रिष (२७४)— सब शत्रुओंका नाश कर उनमें फूट डाल उनका मतैक्य न हो ऐसा कर ।

मायाभिः उत्सिसृपतः दस्यून् अवधूनुथाः (१८)- कपटसे व्यवहार करनेवाले शत्रुओंको इन्द्रने नीचे गिराया ।

वाधः स्पृधः परिबाधि (२७४)— बाधा करनेवाले शत्रुओंको पराभूत कर ।

वृष्ण्ये ! वृषन् (१२७)— हे शत्रुका वर्षण करनेवाले इन्द्र ! तू शत्रुका नाश करनेवाला है ।

भूरि परा हन्ति (११९)— तू बहुत शत्रुओंको दूर करता है ।

वृषन् (६६)— शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र है ।

तुवि ग्रामः (२१६)— इन्द्र बहुत शत्रुओंको वश कर रखता है ।

न रिषः न दभ्नुवन्ति (१६६)— उस इन्द्रको शत्रु नहीं दबा सकते ।

निपूरणा नि स्वापय अबुध्यमाने सस्तां (४८९)- जिन्हें आदरके विना जो वैरभाव करते हैं उनको सुलाओ। वे न जागते हुए सोते ही रहें । शत्रुओंको गिराके वश करना यह एक युद्धनीति ही है ।

अया देवहितं वाजं सनेम (१९२)— इससे देवोंका हित करनेवाला बल प्राप्त करेंगे ।

क्षिपः अपपजाति (४११)— इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है ।

अधृतः वाजी सहस्रा शिक्षासति (४११)— शत्रुसे दबाया न जानेवाला इन्द्र हमारे धनोंको प्राप्त करता है ।

पुरुदुपाण्या दूरे पतन्ति (४५३)— पुरुष शत्रु दूर भाग जाते हैं ।

सर्वे परिक्रोश जहि (४५३)— सब आक्रोश करनेवाले दुष्ट शत्रुओंका पराजित कर ।

कुरुस्तार्थं जंभय (४५३)— छिपकर हमला करनेवाले शत्रुका नाश कर ।

उग्रे धायपमीस दर्ती हवामहे (५१)— शूरवीर तथा शत्रुकी सेनाको जीतनेवाले उस इन्द्रको हम सहायार्थ बुलाते हैं ।

अभिभवाम् तुमहान् रुपि (५१९) शत्रुओंको हराव

कर । अर्थात् ऐसा कर कि शत्रुके हमसे बडे बलवाली न हों । उनको हम सहजहीसे दूर कर सकें ऐसा बल हममें बढाओ ।

मघवत्सी मघुरः (५१)— शत्रुका दूर करनेवाला इन्द्र पराजित है यह सत्य ही है ।

संमनेन-अमर्यकरः उभयावी (५१)— भेदोंको सहायता करनेवाला इन्द्र दोनों पक्षोंको मिलाता है । दो पक्ष मिलनेसे शक्ति बढती है ।

विश्वासां पृतनानां तरुता (५८८)— सब शत्रुकी सेनाको इन्द्र जीत लेता है ।

वृत्रहा ज्येष्ठा गृणे (५८८)— वृत्रको मारनेवाला इन्द्र सबमुख श्रेष्ठ है ऐसी उसकी स्तुति होती है ।

ब्रह्मद्विषः तव जहि (५९४)— ज्ञानका द्वेष करनेवाले सब शत्रुओंको पराजित कर ।

अराधसः पणीन् वधा नि वाधस्व (५९५)— दान न देनेवाले वणियोंको शस्त्रसे बाधा पहुंचाओ ।

शत्रवे वधं भरता नासि (६१६)— शत्रुपर तू वध करके वज्र फेंकता है ।

यः मा जिघांसति (६१६)— जो हमारा वध करता है वह हमारा शत्रु है ।

ब्रह्मद्विषः ब्रह्मद्विषः हन्ति (६२)— किसीके न कहनेपर भी इन्द्र ज्ञानके द्वेष करनेवालोंको मारता है ।

त्वं तरुष्यतः तूर्य (६६४)— तू सब शत्रुओंको जीत ।

ते मन्यवे विश्वा स्पृधः सयमन्त (६६५)— तेरे क्रोधके सामने सब शत्रु नीचे पडते हैं ।

अस्य मन्यवे विश्वा विशः कृष्टयः सं नमन्ते (६७२)— इस इन्द्रके क्रोधके सामने शत्रुके सब सैनिक या सब प्रजाजन नम्र होते हैं ।

प्राचः अपाचः उदीचः अधराचः अ मित्रान् अप नुदस्व (७१५)— पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाके सब शत्रुओंको दूर हटाओ ।

सर्वे इन्द्रस्य शत्रवो हताः (९१९)— इन्द्रके सब शत्रु मारे गये ।

सप्तभ्यः शत्रुभ्यः शत्रुः अभवः (९२१)— सातों प्रकारके शत्रुओंका तू शत्रु है । पहाडी अश्वारोही हस्त्यारोही रथी, जलचर, अन्तरिक्षचर, पहाडी ऐसे सात प्रकारके शत्रु होते हैं । इन सब शत्रुओंका पराभव इन्द्र करता है इस कारण इन्द्र बडा विजयी है ।

त्वं शुष्णस्य धपत्रे अधातिर (९२२)— तूने शुष्णको वज्रोंसे मारा है ।

इन्द्र ! अशत्रुः अजिषे (६१५)— हे इन्द्र ! तू शत्रु रहित उत्पन्न हुआ है ।

अशत्रुभ्यः, अ-नाः अम्-मापिः (७४)— तेरे लिये कोई शत्रु नहीं कोई दूसरा नेता नहीं, कोई मित्र नहीं । तू ही अपना भाई नेता और मित्र है । तू ही सर्वतंत्र स्वतंत्र वीर है ।

युधा इत् आपित्वं इच्छसे (७४)— युद्धसे ही तू मित्रता करनेकी इच्छा करता है । युद्ध करके शत्रुको दूर करता है या बचते हैं वे तुम्हारे मित्र होकर रह सकते हैं ।

इस तरह इन्द्र शत्रुओंके साथ युद्ध करता है, शत्रुओंको दूर करता है प्रजाका संरक्षण करता है । युद्ध करना और मानवोंका संरक्षण करना ये इसके मुख्य कार्य हैं । इस कारण हम इस इन्द्रको युद्धमंत्री अथवा संरक्षण मंत्री कह सकते हैं ।

इन्द्रने अनेक राक्षसोंको मारा है । उनमेंसे कई आर्यके देशोंसे संबंध रखनेवाले हैं ऐसा दीखता है । असुर ये असीरियन दीखते हैं राक्षस् या राक्षस ये रक्षियन प्रतीत होते हैं आदि ये अफगाणिस्थान-बलिचिस्थानके होंगे बल ये बल्खी होंगे शुष्ण ये इसमें सर्दी प्रांत है वहांके होंगे । इस तरह ये इन्द्रके शत्रु थे । ये उपद्रवी थे । इनके नगर किले थे । उनको इन्द्रने तोडा और अपने अनुयायियोंके रहनेके लिये वे नगर दिये ।

यहांतक जो वेदवचन दिये हैं उनपर हमने टीका टिप्पणी बिलकुल की नहीं । ये वचन इतने स्पष्ट हैं कि इनके पढनेसे इन्द्र युद्ध करनेवाला, शत्रुका पराभव करनेवाला अपनी प्रजाका रक्षण करनेवाला है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है ।

आखण्डला (१९)— शत्रुके टुकडे करनेवाला इन्द्र है ।

पृतनाषाट् (१ ५)— शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला ।

वनेषु अपाचम् व्यंस अहन् (४५)— वनोंमें जानेवालेको उस बडी छातीवाले शत्रुको मारा ।

अस्या सख्या परायति मायिन मनुषि नि बर्हयः (११५)— शत्रुको भगानेवाले मित्रके साथ रहकर दूर रहनेवाले कपटी मनुष्योंको तूने मारा ।

अतिथिग्वस्य वननी करञ्जं उत पर्णयं तेजिष्ठ या वर्धीः (११६)— अतिथिग्वके मार्गमें आकर विरोध करनेवाले करंज और पर्णयको तूने तेज शस्त्रसे मारा ।

शत्रुतूर्याय बृहतीं अमृध्रां संपते इन्द्र मा भर (२८१)— शत्रुको मारनेके लिये बडी संयममें रहने वाली कल्याण करनेवाली धनसंपत्ति हमें भर दो ।

इस प्रकार इन्द्रके वीर्यके वर्णन देखने योग्य हैं। अब इसके शत्रुके विषयमें थोडासा देखिये—

वृत्र वध

वृत्र-हा (१६)— वृत्रका मारनेवाला इन्द्र है।

वृत्राणि जिघ्नते (१९)— वृत्रोंको इन्द्र मारता है।

वृत्राणि जहि (१६)— वृत्रोंको जीत।

वृत्राणि घ्नन् (५१)— वृत्रोंको मारनेवाला इन्द्र है।

वृत्रहा अहिं अवधीत् (११)— वृत्रका वध करनेवाले इन्द्रने अहिको मारा।

इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान् (५६)— इन्द्रने वृत्रोंका असामान्य रीतिसे मार दिया।

वार्त्रहत्य (१ ५)— वृत्रका वध करनेका कर्म।

दश सहस्राणि वृत्राणि अप्रति नि बर्हयः (१२४)- दस हजार वृत्रोंको अप्रतिम रीतिसे इन्द्रने मारा।

वधं मर्त्यानां जुजुषे (१७४)— वध असुरको नीचे गिराया।

नमुचेः शिरः अपां फेनेन उदवर्तयः (१७८)— नमुचि राक्षसका सिर जलके फेनसे काट दिया।

विश्वाः स्पृधः अजयः (१७८)— सब शत्रुओंको जीता।

आयसः हरिशिप्रः अहिं ह्नुवत् (१८५)— फौलादके समान सुनहरि साफेको बांधनेवाले इन्द्रने अहि नामक शत्रुको मारा।

अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात् (२)— अहिको मारकर सात नदियोंको बहाया।

कियेधाः इत्थाः येन शुष्णं शुष्ण वृत्रस्य मर्म विदत् (२२१)— अनेक भूमियोंमें रहनेवाले इस इन्द्रने वज्र फेंकनेके समय वृत्रका मर्मस्थान कहां है यह जाना। शत्रुके मर्म स्थानको जानकर उसी स्थानपर आघात करना योग्य है।

अद्रिं अस्ता वराहं तिरो विध्यत् (२२२)— वज्रको शत्रुपर फेंकनेवाले इन्द्रने वराहको बीचमें बींधा।

अस्य शवसा वज्रेण शुपन्तं वृत्रं इन्द्रः विवृश्चत् (२२५)— अपने बलसे वज्रसे गरजते हुए वृत्रके इन्द्रने टुकडे कर डाले।

देववीती त्वं नृभिः भूरीणि वृत्राणि हंसि (२४६)- युद्धमें तू वीरोंके साथ रहकर बहुत वृत्रोंको मारता है।

वृत्रहत्ये शिवः भूः (२५१)— वृत्रका वध करनेके समय तू सबका कल्याण करनेवाला हो।

दस्युहा अभवः (२७१)— दस्युओंको मारनेवाला तू हुआ है।

दाशुषे वृत्राणि हन्सि (१२१)— दाताके हितके लिये शत्रुओंका तू मारता है।

एकः वृत्राणि जिघ्नसे (१७९)— तू अकेला ही वृत्रोंको मारता है।

वृत्रहा असुपाः पतिः (६४१)— अकेले ही सब वृत्रोंको मारता है।

अपः वव्रिवांसं वृत्रं परा हन् (५११)— जल प्रवाहको रोकनेवाले वृत्रको इन्द्रने मारा।

अप्रतिष्कुतः इन्द्रः दधीचो अस्थिभिः नवतीः नव वृत्राणि जघान (९६)— अपराजित इन्द्रने दधीचीकी अस्थियोंसे बनाये वज्रसे निन्यानवे वृत्रोंको मारा।

दोधतः वृत्रस्य शिरः भृम्यसा शतपर्वणा वज्रेण वि बिभेद (६७४)— कांपनेवाले वृत्रका सिर सौ पर्वोवाले वज्रसे तोड दिया।

इन्द्रके शस्त्रास्त्र

इन्द्रके शस्त्रोंमें वज्र मुख्य है। यह फौलादका बना है, अनेक तीक्ष्ण धाराएं इसको होती हैं और लगाने से यह सफल होता है। वज्रके आघातसे इसके सब शत्रु मर जाते हैं और इन्द्र विजयी होता है ऐसा यह वज्र है। यह हाथमें पकडा जाता है और शत्रुपर फेंका जाता है। इस वज्रके विषयमें कुछ वर्णन अब देखिये—

इन्द्रस्य हिरण्ययः हर्यतः वज्रः (७)— इन्द्रका चमकीला सोनेकी वज्र है। यह धातुमें फौलादका होता है पर ऊपर सुनहरी नक्शी होती है।

त्वं महां वज्रं पर्वतं पर्वशः वकर्तिथ (७४)— तूने- इन्द्रने महान् पर्वतके वज्रसे टुकडे किये।

वज्रः हरितः ईशानः विध्यवान् (१८५)— यह सुवर्णका वज्र विशेष शत्रुका वेध करता है।

हरिं मदः सहस्रशोकाः अभवत् (१८५) सुनहरे मदा यह वज्र हजारों दीप्तियोंवाला हो गया है।

वज्रहस्तः (२११)— इन्द्र हाथमें वज्र लेता है।

सा अस्य वज्रः हरितः य आयसः हरिः निकामः हरिः आ गभस्त्योः द्युम्नी सुशिप्रः हरिमन्युसायकः इन्द्रे हरिता रूपा निमिमिक्षिरे (१८४)— यह इस इन्द्रका वज्र सोनेके चमकीला फौलादका है यह प्राण हरण करनेवाला वज्र इस इन्द्रको प्रिय है यह इन्द्र शत्रुके प्राण हरण करनेको

वज्रको हाथोंमें पकडता है, वह तेजस्वी उत्तम वाण चलानेवाला इन्द्र शत्रुके प्राण हरण करनेवाले घोडेके जैसे जानेवाले वाणको धारण करता है उस इन्द्रमें सारे सुन्दर रूप मिले हैं।

इस वचनमें कहा है कि वह इन्द्रका वज्र फौलादका है अतः नीला है उसपर सुनहरी नकशी है। इन्द्र इसको दोनों हाथोंसे किसी समय बायें हाथसे और किसी समय दाहिने हाथसे पकडता है वह इन्द्र शत्रुपर मारनेके लिये (सायकः) बाण भी फेंकता है।

अस्मै इत्याय त्वष्टा स्वर्यं स्वपस्तमं वज्रं ततक्ष (१११)— इस इन्द्रके लिये युद्ध करनेके हेतुसे दिव्य तथा उत्तम कार्य करनेवाला वज्र त्वष्टाने निर्माण करके दिया। त्वष्टा वह कारीगर है जो वज्र बाण रथ आदि बनाता है।

अपां प्रवत्वे तिरश्चा वज्रं प्र भर (११७)— जल-प्रवाहोंके प्रवाहित होनेके लिये इसपर वज्रको तिरछा मार।

दक्षिण हस्ते वज्रं धीष्व (१४)— दाहिने हाथमें वज्रको धारण कर।

दर्शता वज्रः हस्ताय प्रति धायि (५८१)— दर्श-नीय वज्र हाथमें लिया है।

श्योतसा वज्रं शिशाध (१)— तू अपने बलसे वज्रको तीक्ष्ण बना।

सजोषस्य अर्कं वाहो: बिभर्षि (१) — तू अपने बाहुमान् तेजस्वी वज्रको बाहुओंसे धारण करता है।

गभस्त्यो वज्रः मिम्यक्ष (१ २)— हाथोंमें वज्र चमकता है।

चित्र वज्रहस्त अद्रिवः (१४५)— आश्चर्यकारक वज्र हाथमें धारण करनेवाला पहाडी किलेमें रहनेवाला इन्द्र।

अस्ता (१)— शत्रुपर शस्त्र फेंकनेमें कुशल इन्द्र है।

ते अंकुशः दीर्घः अस्तु (१७)— तेरा अंकुश लम्बा हो।

इन्द्रस्य मही सुपरा समिधः शतानीका हेतयः (११५)— इस इन्द्रकी बडी सुन्दर उत्तम इच्छाएं हैं और सेकडों नोकोंवाले उसके पास शस्त्र हैं।

इस तरह इन्द्रके शस्त्रोंका वर्णन है। सीसेकी गोली भी वह मारता था ऐसा अगले मंत्रोंसे प्रतीत होता है—

सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदंग यातुचातनम्।
अथ १।१६।२

इन्द्रने मुझे सीस (सीसेकी गोली) दी है हे प्रिय! वह पीडा करनेवाले दुष्ट शत्रुओंको दूर करनेवाला है।

इदं विष्कंधं सहते इदं बाधते अत्रिणः।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः॥
अथ १।१६।३

यह सीसा शत्रुको पराभूत करता है खाऊ शत्रुओंको यह दूर करता है। जो (पिशाच्याः) रक्त पीनेवालोंकी जातियां हैं वे सब जातियां इस सीसेसे पराभूत होती हैं।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नो असो अवीरहा॥
अथ १।१६।४

यदि तू हमारी गौको मारेगा यदि घोडेको मारेगा यदि मनुष्यको मारेगा तो उस दुष्टको हम सीसेसे वींधेंगे जिससे हमारेमें कोई वीरोंको मारनेवाला नहीं रहेगा।

यहां " सीसेन विध्यामः " सीसेसे वींधते हैं ऐसा कहा है यह सीसेकी गोलीसे वींधना ही होगा पर बन्दूकका नाम वेदमें नहीं मिला। तो यह सीसेसे वींधना किस तरह होता है इसकी खोज पाठक करें। परन्तु यहां " विध्यामः " वींधनेका अर्थ स्पष्ट है। वज्र भी दूरसे फेंका जाता था बाण भी दूरसे फेंके जाते थे सीसेसे वींधना भी दूरसे ही होता था।

सैन्य बल

इन्द्रके पास मरुतोंका सैन्य सदा तैयार रहता था।

यस्य अनीकं रुक्मसा प्र दविद्युतत् (१)— इसका सैन्य बडा चमकता रहता है।

वाजिनीवसुः (१४१)— सैन्यके साथ रहनेवाला इन्द्र है। इन्द्रके साथ वीरोंकी सेना तैयार रहती है।

शतानीकः (१११)— सैकडों सैनिक इन्द्रके साथ रहते हैं।

हे वीर! सेन्यः असि (११९)— हे वीर इन्द्र! तू सेनाके साथ रहता है तू सेनाके साथ कार्य करता है सेनाका संचालन तू करता है।

इन्द्र वीर है

इन्द्र वीर है, इसीलिये वह युद्ध करता है और विजय प्राप्त करता है। अतः कहा है—

नृतमः (११४)— नेताओंमें श्रेष्ठ वीर इन्द्र है।

सत्रासाहः वीरः (४ २) सदा जय करनेवाला वीर इन्द्र है।

शूरः यत स्थिरः पृत्सु (११८)— इन्द्र शूर है और युद्धमें अपने स्थानमें स्थिर रहता है भाग नहीं जाता अथवा चंचल भी नहीं होता।

पुरुवीरः (११४)— इन्द्र बहुत वीरोंके साथ रहनेवाला बडा वीर नेता है।

उग्रः (११)— वह उग्रवीर है।

वीरयुः असि (११८)— वीरोंको योग्य स्थानमें योजना पूर्वक रखनेवाला इन्द्र है।

मनुषीणां क्षितीनां उत दैवीनां विशां पूर्वयावा असि (४४)— मानवी प्रजाओंमें तथा दैवी प्रजाओंमें यह इन्द्र पहिले शत्रुपर हमला करनेके लिये जानेवाला है।

प्रत्नाय पत्ये इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा धियः मर्जयन्तः (११७)— प्राचीन कालसे स्वामित्व करनेवाले इन्द्रकी हृदयसे मनसे तथा बुद्धिसे स्तुति करके अपनी बुद्धियोंको पवित्र करते हैं।

नृपतिः (६ १)— मनुष्योंका पालनकर्ता इन्द्र है।

नृणां नर्यः नृतमः क्षपावान् (४९७)— नेताओंमें मुख्य नेता मानवोंका उत्तम भद्र सेनाध्यक्ष पृथिवीका राजा यह है।

त्रिधातुः त्रयः सत नृन् अनु व्यावहत् (४९८)— तीन ज्योतियोंवाला उस इन्द्रका रथ वीरों नेताओंके साथ ले जाता है।

सत्पतिः इन्द्रः (६ २)— सज्जनोंका स्वामी इन्द्र है।

त्वं ईशिषे (६ ६)— तू सबपर स्वामित्व करता है।

इन्द्रः विश्वा भूतानि येमिरे (७१७)— इन्द्र सब भूतोंको स्वाधीन रखता है।

जगतः तस्थुषः पतिं ईशानं अभिनोनुमः (७२२)— जंगम तथा स्थावर विश्वके उत्तम स्वामी इन्द्रको हम नमन करते हैं।

त्वावान् अन्यः न दिव्यः न पार्थिवः न जातः न जनिष्यते (७२१)— तेरे जैसा दूसरा कोई न दिव्य, न पार्थिव न हुआ और न होगा। ऐसा तू अद्वितीय है।

जेता अभवस्त्वा च मन्यवे (१७१)— विजय मन और उसका विनमन करनेके लिये तू है।

त्वं अभिभूः असि (१८५)— तू सब शत्रुओंका पराभव करनेवाला है।

सत्रासाह् (४९८)— तू विजयी है।

अभिभूतिः (७३५)— तू सब शत्रुओंका पराभव करनेवाला है।

प्रजाका पालक इन्द्र

इन्द्र प्रजाका उत्तम पालन करता है प्रजाका पालन करनेके लिये ही वह युद्ध आदि करता है इसलिये उसके वर्णनमें कहा है—

विश्पतिः (२१)— इन्द्र प्रजाका पालनकर्ता है।

सत्पतिः (२४)— वह उत्तम पालक है।

राजा (६)— वह तथा प्रजाका रंजन करनेवाला है।

चर्षणी धृतः (१ ८)— यह प्रजाजनोंका धारण करनेवाला है।

चर्षणिप्रा इन्द्रः महां युधा देवेभ्यः वरिवः चकार (४९)— प्रजापालक इन्द्रने बडे युद्धसे देवोंके लिये श्रेष्ठ धन प्राप्त करके दिया।

सखिभ्यः सखा (१२)— मित्रोंके लिये यह उत्तम मित्र है।

चर्षणीनां पतिः (१७)— यह प्रजाओंका स्वामी है, व प्रजाओंका स्वामी है।

ज्येष्ठराज (१७९)— यह इन्द्र श्रेष्ठ राजा है।

जनानां अर्यः (१४१)— तू जनोंका स्वामी है।

स त्वं राजासि (१७१)— वह तू जनोंका पालन करता है।

यः एक इत् विश्वाः कृष्टीः अभ्यस्ति (४ ५)— जो अकेला ही सब प्रजाजनोंपर अधिकार रखता है।

चर्षणीनां ईशानः (४२९)— सजीव मनुष्योंका स्वामी है।

दिव्यस्य जनस्य पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः (२४)— दिव्य जनोंका और पार्थिव जगत्का इन्द्र राजा हुआ है।

चर्षणीनां सम्राजं शुषाद् महिष्ठं नरं इन्द्रं गीर्भिः स्तोत (१७७)— मानवोंके राजा शत्रुके वीरोंको काटनेवाले नेता और इन्द्रकी स्तुति कर।

विश्वा पृतना अभिभूतरं नरं इन्द्रं सजूः ततक्षुः राजसे क्रतुः च (११२)— सब शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले नेता इन्द्रको सबने मिलकर निश्चित किये उत्तम शासन करनेके कार्यमें लगाया।

पञ्चक्षितीनां चर्षणीनां प्रभूनां इन्द्रः अति (७९६)— पांचों मानवोंके वर्गोंका इन्द्र राजा हुआ है।

राधसः दीर्घश्रवसः पतिः (४८४)— धन और श्रेष्ठ यशका स्वामी इन्द्र है।

इन्द्रः विश्वानि वयुनानि विद्वान् (५ १)— सर्व इन्द्र मानवोंके हितके सब कर्म जानता है।

राधसा पतिः अभवत् (५११)— सामर्थ्यसे यह राजा हुआ है।

क्षितीनां वृषभः (५३४)— सब मनुष्योंमें यह बलिष्ठ है।

त्वं जनानां राजा (५९६)— तू जनोंका राजा है।

विश्वा भुवः आभुवः (६ १)— तू अपना प्रभाव सब स्थानोंपर जमाता है।

विश्वा जातानि ओजसा अभिभूः असि (ऋ० १)-तू सब शत्रुओंका अपने सामर्थ्यसे पराभव करनेवाला है।

यहां तथा अन्य अनेक स्थानोंमें 'जनानां राजा। क्षितीनां वृषभः। चर्षणिक्षितीनां इन्द्रपति' आदि पदोंमें इन्द्रको मानवोंका राजा कहा है। यह संरक्षण भी मानवोंका ही करता है याजक लोग उसको अपनी रक्षाके लिये बुलाते हैं उनके सहाय्यार्थ वह उनके पास जाता है उनका रक्षण करता है सब मानवोंकी पालना करता है। इस तरह इन्द्र सदा मानवोंका हित करता रहता है।

स्वस्तिदा विशां पतिः वृत्रहा वि मृधो वशी।
वृषा इन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभय-करः ॥ १ ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥ २ ॥
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन् अमित्रस्य अभिदासतः ॥ ३ ॥
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ४ ॥

अथर्व १।२१

(विशांपतिः स्वस्तिदाः) प्रजाओंका पालक राजा कल्याण करनेवाला हो (वृत्रहा) शत्रुको मारनेवाला (वि मृधः वशी) हिंसकोंको वशमें करनेवाला (सोमपा) सोमपान करनेवाला (अभय-करः) और प्रजाको अभय करनेवाला है ॥ १ ॥

हे इन्द्र! (नः मृधः वि जहि) हमारे शत्रुओंको मार डाल (पृतन्यतः नीचा यच्छ) सेना द्वारा हमपर हमला करनेवालोंको नीचे रखो। (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें दास बनानेकी इच्छा करता है उसको (अधमं तमः गमय) हीन अंधकारमें पहुंचाओ ॥ २ ॥

(रक्षः मृधः वि जहि) राक्षसोंको तथा हिंसकोंको मार डाल (वृत्रस्य हनू रुज) शत्रुके जबडोंको तोड दे। हे (वृत्रहन् इन्द्र) शत्रुघातक इन्द्र (अभिदासतः अमित्रस्य मन्युं वि रुज) हमारा नाश करनेवाले शत्रुके क्रोधको तोड दे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! (द्विषतः मनः अप) द्वेषीका मन दूर हटा दे (जिज्यासतः वधं अप) आयुका नाश करनेवालेके दूर कर (महत् शर्म वि यच्छ) हमें बडा सुख दे (वधं वरीयः यावय) वध हमसे दूर रहे ॥ ४ ॥

इन्द्रका वर्णन इन मंत्रोंमें देखने योग्य है।

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून्
मत्स्वेदु महे रणाय ॥ ४ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं
ततक्ष ॥ ६ ॥

अथर्व २।५

(यतीः न) यत्न करनेवाले पुरुषके समान (यः तुराषाट् मित्रः इन्द्रः) मित्र त्वरासे शत्रुपर हमला करनेवाले मित्र इन्द्रने (वृत्रं जघान) वृत्रको मारा (वलं बिभेद) वलका नाश किया और (शत्रून् ससहे) शत्रुओंका पराभव किया ॥ ३ ॥

(इह) यहां (महे रणाय मत्स्व) बडे युद्धके लिये आनंदित हो ॥ ४ ॥

(पर्वते शिश्रियाणं) पर्वतके आश्रयमें रहनेवाले (अहिं अहन्) अहिको मारा। (अस्मै त्वष्टा स्वर्यं वज्रं ततक्ष) इस इन्द्रके लिये त्वष्टाने दिव्य वज्र तैयार करके दिया था ॥ ६ ॥

जय क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र।
कृण्वानो अन्यान् अधरान् सपत्नान् ॥

अथर्व २।२९।२

(सहसा) अपने बलसे (क्षेत्राणि जयन्) क्षेत्रोंको जीतता है और (अन्यान् सपत्नान् अधरान् कृण्वन्) दूसरे शत्रुओंको नीच बना देता है।

अमित्रसेनां मघवन् अस्मान् शत्रूयतीमभि।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन् अग्निश्च दहतं प्रति ॥

अथर्व ३।१।३

हे (मघवन्) इन्द्र! हमारे साथ शत्रुता करनेवाली जो शत्रुकी सेना हमपर आक्रमण करनेके लिये आ रही है (तान्) उस शत्रुकी सेनाको हे शत्रुको मारनेवाले इन्द्र और अग्नि! तुम दोनों मिलकर उस सैन्यको जला दो।

प्र ते वज्रः प्रमृणन् एतु शत्रून्।
हन्ति प्रतीचो अनूचः पराचः ॥ अथ० ३।१।४

तेरा वज्र शत्रुओंको मारता हुआ आगे बढे। पीछे रहने वाले साथ चलनेवाले और आगे होनेवाले शत्रुको मार डाल।

इन्द्र सेनां मोहय अमित्राणाम्।
ताम् विषूचो विनाशय ॥ अथ० ३।१।५

हे इन्द्र! शत्रुकी सेनाको मोहित कर और उनको चारों ओरसे विनाश कर।

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्तु ओजसा।
चक्षूंषि अग्निः आदत्तां पुनरेतु पराजिता ॥

अथ० ३।१।६

इन्द्र शत्रुकी सेनाको मोहित करे, सैनिक उनको वेगसे मारें अग्नि उनकी आंखें बंद करें और फिर वह पराजित हो जावे।

यो विश्वजित् विश्वभृत् विश्वकर्मा।(अथ ५।११।५) जो सबको जीतनेवाला सबका भरण पोषण करनेवाला और सब कर्म करनेवाला है।

यो दानवानां बलं आरुरोज।(अथ ४।२४।२)— जो दानवोंके बलको तोड़ता है।

यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी।(अथ ४।२४।७)— जो स्वाधीन रहनेवाला युद्धोंके प्रति ले जाता है।

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि॥
अथ. ६।४०।३

हे इन्द्र! नीचेसे ऊपरसे पीछेसे और आगेसे हमें शत्रुरहित कर।

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः।(अथ ६।६५।३) इन्द्रने प्रथम असुरोंके लिये निहत्थापन अर्थात् निर्बलपन किया। इससे असुर पराभूत हुए।

निर्हस्ताः शत्रवः अभिदासन्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान्। समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविक्तः॥१॥
आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रोऽद्य पराशरीत्॥२॥
निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै॥३॥
अथ ६।६६

(यः अभिदासन शत्रुः निर्हस्तः अस्तु) हमलेपर हमला करनेवाला शत्रु हस्तरहित हो।(ये सेनाभिः अस्मान् युधं आयन्ति) जो सैन्य लेकर हमारे साथ युद्ध करनेके लिये आते हैं हे इन्द्र! (महता वधेन समर्पय) उनको बड़े शस्त्रके साथ मार डाल। (एषां अघहारो विविक्तः द्रातु) इनका पापी वीर विद्ध होकर भाग जावे॥१॥

हे (शत्रवः) शत्रुओ! (ये आतन्वानाः) जो तुम धनुष्य तानकर (आयच्छन्तः अस्यन्तः च धावथ) खींचते हुए और बाण फेंकते हुए चले आते हो तुम (निर्हस्ताः स्थन) हस्तहीन हो जाओ (इन्द्रः अद्य वः पराशरीत्) इन्द्र आज ही तुम्हें मार डाले॥२॥

(शत्रवः निर्हस्ताः सन्तु) सब शत्रु हस्तरहित हो जाय (एषां अङ्गा म्लापयामसि) इनके अंगोंको हम निर्बल बना देते हैं। हे इन्द्र! (एषां वेदांसि) इन शत्रुओंके धनोंको (शतशः वि भजामहे) सैकडों प्रकारसे आपसमें बांट देते हैं॥३॥

इस सूक्तसे पता लगता है कि शत्रुको पराजित करके शत्रुके धन धन आपसमें बांट लेते थे।

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम्॥१॥
अथ ६।६७

इन्द्र और पूषा (सर्वतः वर्त्मानि परि सस्रतुः) सब मार्गोंमें भ्रमण करें जिससे (अमित्राणां सेनाः) शत्रुओंकी सेना (परस्तरां मुह्यन्तु) अत्यन्त मोहित हो जाय।

इससे पता चलता है कि इन्द्रके साथ पूषा भी युद्धमें जाता था।

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत्॥१॥
परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः॥२॥
अथ ६।७५

(यः सपत्नः पृतन्यति) जो शत्रु सेनाद्वारा आक्रमण करता है (अमुं ओकसः निः नुद) उसको घरसे निकाल (एनं नैर्बाध्येन हविषा) इस शत्रुको नाशकारी समर्पणसे (इन्द्रः पराशरीत) इन्द्र मार डाले॥१॥

(वृत्रहा इन्द्रः) शत्रुनाशक इन्द्र (तं परमां परावतं नुदतु) उस शत्रुको दूरसे दूरके स्थानको भगा दें (यतः शश्वतीभ्यः समाभ्यः) जिससे शाश्वत कालतक (पुनः न आयति) फिर नहीं आ सके॥२॥

इस तरह शत्रु अवश्य दूर हो इसलिये उपाय किये गये हैं।

इन्द्रो जयाति न पराजयाता अधिराजो राजसु राजयाति। चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह॥१॥
त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम्। त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु॥२॥
प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोऽसि। यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः॥३॥
अथ ६।९८

(इन्द्रः जयाति) इन्द्रकी जय होती है (न पराजयाति) कभी पराजय नहीं होती। (राजसु अधिराजः राजयाति) राजाओंमें जो सबसे श्रेष्ठ अधिराजा होता है उसकी शोभा बढ़ती है। हे इन्द्र हे राजा (इह चर्कृत्यः ईड्यः) यहां शत्रुका नाश करनेके कारण स्तुतिके योग्य हुआ है (वन्द्यः उपसद्यः नमस्यः भव) वन्दनीय पास जाने योग्य और नमस्कार करने योग्य हो॥१॥

हे इन्द्र! (त्वं अधिराजः) तू राजाधिराज है (श्रवस्युः) कीर्तिमान् है (त्वं जनानां अभिभूतिः भूः) तू प्रजाजनोंका अधिपति है (त्वं इमाः दैवीः विशः विराज)

तू इन दिव्य प्रभावोंपर विराजमान हो (ते आयुष्मत् क्षत्रं अजरं अस्तु) तेरा दीर्घायु युक्त क्षात्रतेज अजरामर हो ॥ १ ॥

(हे इन्द्र ! त्वं प्राच्याः दिशः राजा असि) हे इन्द्र ! तू पूर्व दिशाका राजा है हे (वृत्रहन्) शत्रुको मारनेवाले ! (उत उदीच्याः दिशः शत्रुहा असि) और तू उत्तर दिशाके शत्रुओंका नाश करनेवाला है (यत्र स्रोत्या यन्ति) जहांतक नदियां जाती हैं वहांतकके प्रदेशको (तत् ते जितं) तूने जीत लिया है तथा (वृषभः हव्यः दक्षिणतः एषि) बलवान् और आदरसे पुकारने योग्य होकर दक्षिण दिशामें तू जाता है ॥ २ ॥

इस तरह इन्द्रके पराक्रमोंका वर्णन अथर्ववेदमें है।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवन् शूर जिन्व । यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ १ ॥ अथ ७।३१

हे इन्द्र ! (यावत् श्रेष्ठाभिः बहुलाभिः ऊतिभिः) अति श्रेष्ठ विविध प्रकारके संरक्षणोंसे (अद्य नः जिन्व) आज [illegible] जीवित रख। हे (मघवन् शूर) धनवान् शूर वीर ! (यः नः द्वेष्टि) जो हमारा द्वेष करता है (सः अधरः पदीष्ट) वह नीचे गिर जाय। (यं उ द्विष्मः) जिसका हम सब द्वेष करते हैं (तं उ प्राणः जहातु) उसको प्राण छोड देवे ॥ १ ॥

इन्द्रके संरक्षणके कार्य बहुत हैं इस विषयमें ऐसे मंत्रोंमें जो वर्णन है वह ऐसे मंत्रोंमें देखा जा सकता है।

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः । यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १ ॥ अथ ८।८

(पुरंदरः) शत्रुके किलोंको तोडनेवाला शूर बलवान् (मन्थिता इन्द्रः) मन्थन करनेवाला इन्द्र (मन्थतु) शत्रुकी सेनाका मन्थन करे (यथा अमित्राणां सहस्रशः सेनाः) जिस रीतिसे शत्रुओंके हजारों सैनिकोंको (हनाम) हम मारें।

बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य। तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥ ७ ॥

हे शूर इन्द्र ! (सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य बृहतः ते) सहस्रोंद्वारा पूजित सैकडों सामर्थ्योंवाले बडे तुझ इन्द्रका (बृहत् जालं) बडा जाल है। (तेन अभिधाय) उस जालको फैलाकर तथा (सेनया) अपनी सेनाके द्वारा (शक्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्र (दस्यूनां शतं जघान) शत्रुओंके सैकडों हजारों लाखों और करोडों सैनिकोंको मारता है। ॥ ७ ॥

बडा हजारों लाखों शत्रुओंको मारनेका साधन है। अर्थात् ऐसी बडी लडाइयां इन्द्र जीतता है, इतना वह समर्थ है।

इन्द्रकी कपटनीति

इन्द्र युद्ध शत्रुओंसे कपटनीति भी बरतता था [illegible] विषयमें कहा है—

अभिभूति-ओजाः मायाभिः दस्यून् (४८)— शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्यसे युक्त इन्द्रने कपट प्रयोगोंसे भी शत्रुओंको मारा है। अर्थात् कपटी शत्रुओंसे वह इन्द्र कपटका प्रयोग भी करता था।

कृत्रिमेण कृत्रिमान् सं पिपेष (४८)— कपटसे कपटियोंका वध इसने पीस डाला।

जो शत्रु कपट करते थे उनको कपटसे वह मारता था।

शर्धनीतिः मायिनां च अमित्रान् (५५)— कपट नीतिमें कुशल इन्द्र कपटी शत्रुओंको मारता है। शर्ध (शर्धस्) — कपट, कुटिलता माया। इनका उपयोग करके इन्द्र युद्धोंको चलाता था। शर्ध नीतिः (५५)— कपटनीतिमें कुशल वीर।

सार्धनीतिः (५५)— सेनाके दलोंको चलानेकी नीति जिसकी उत्तम है। सैन्यके दलोंका उत्तम उपयोग करके शत्रुओंसे करनेका नाम सार्ध-नीति है।

मानवोंपर दया

इन्द्र मानवोंपर दया करता है इस विषयमें—

एकः देवत्रा मर्तान् दयसे (५८) देवोंमें इन्द्र अकेला ही मनुष्योंपर दया करता है।

जनानां वृषभः (४१)— मनुष्योंको बढानेवाला इन्द्र है। मानवोंका कल्याण करनेके लिये इन्द्र सदा दक्ष रहता है।

मघवा विश्वा विश्वं चर्षणीनाम् (११)— धनवान इन्द्र प्रत्येक प्रजाजनकी देखभाल करता है।

शृणोत्याशतां येन्द्रः अभ्यर्चतः आह्वम् (११)— बलवान् इन्द्र लोगोंकी प्रार्थना सुनता है जनताका कहना सुनता है और उनके हितके कार्य किया करता है।

इन्द्रका दातृत्व

इन्द्र धन आदि देता है इस विषयमें ये वर्णन है—

अश्वस्य गोः यवस्य वसु ना पुरः असि (१२)— घोडे, गौवें जौ और धन देनेवाला इन्द्र है।

विश्वाभिः धातृभिः वसु दाति धायि (११९)— धन धारण करनेवालोंसे सैकडों दान प्रदान किया है।

दाशुषे अर्थ अहमामं गाये रयि (८८)— दाताको इस धन इन्द्रने बढा कर दिया है।

सधमुतः मघवा इन्द्रः सूरिभिः आ विविस्रुति (४८४)— विस्तृत दानी धनवान् इन्द्र ज्ञानियोंके साथ बैठता है।

अरातयः सस्तां रातयः बोधन्तु (४९)— कंजूस सो जांय दानी जागते रहें।

वसु प्रयच्छसि (१७)— तू धन देता है।

अश्वावत् गोमत् यवमत् उरुधारा इव दोहसे (१२)— घोडे गौवें जौसे युक्त धन बडी धारासे देता है।

सुदानुः (३८)— उत्तम दाता इन्द्र है।

विभूवसुः (४१)— बहुत दान करनेवाला इन्द्र है।

भूरिदात्रः (४२)— बडा दानी।

यस्य दुर्धरं राधः (९१)— जिसका अप्रतिम दान है।

प्रभूवसुः (७२)— बहुत धनका दाता।

धनंजयः (१५)— युद्धमें जीतनेवाला धनको जीतनेवाला।

सपृक्ष्य आ भर (१२१)— धनका संग्रह करके दान दे।

भरेषु वाजसातये इन्द्रं उपब्रुवे (१ १)— युद्धमें अन्न या धनका दान करनेके लिये हम इन्द्रको बुलाते हैं।

तव इदं वसु अभितः चेकिते (१२१)— तेरा यह धन चारों ओर दानसे फैलता है।

त्व अबीधस्ता वसुना पृणासि (१५४)— तू उसको पर्याप्त धनसे भर देता है।

सुविदत्रः (५८)— बहुत धन देनेवाला इन्द्र है।

मघवा (६८)— धनवान् इन्द्र

पुरुमघः (६८)— बहुत धनी इन्द्र है।

पुरुवसुः (३१९)— बहुत धनवान्

मघवा वस्वः राय ईशते (८९)— इन्द्र धनवान् है वह निवासक धनका स्वामी है।

वसुनः इमस्पतिः (१९)— इन्द्र धनका स्वामी है।

अ-काम-कर्शनः (११)— कामना पूर्ण करनेवाला इन्द्र है।

यथा त्वं अहं वस्वः एक ईशीय (११७)— जैसा तू धनका स्वामी है वैसा मैं धनका अकेला स्वामी बनूं।

मनीषिणे शिक्षेयं (११८)— ज्ञानीको धनका दान करूं।

न देवः न मर्तः ते राधसे वर्ता अस्ति (१७)— न देव वा न मानव कोई भी तेरे दान देनेमें विरोध करनेवाला नहीं है। तू दान करता है उसमें किसीका विरोध नहीं हो सकता।

भूता मघ (१)— जिससे धनवान होनेके लिये आशीर्वाद दे।

दाती सहस्री (१८)— इन्द्र सैकडों और हजारों प्रकारके धनोंसे युक्त है।

हिरण्यं गोअर्ण सत्साम (५१)— सुवर्ण तथा गौ आदि पदार्थ वह प्राप्त करता है।

धनानां संजितः (५२)— धनोंको जीतनेवाला इन्द्र है।

स्पार्हं वसु आ भर (२७४)— स्पृहणीय धन अवश्य भर दे।

काम्यं वसु सहस्रेण मंहते (२२४)— वह इष्ट धन सहस्रगुणा देता है।

पिशंगरूपं गोमन्तं मघु ईमहे (२९८)— पीले रंगवाला अर्थात् सुवर्णमय गौओंसे युक्त धन हमें शीघ्र प्राप्त हो ऐसा चाहते हैं।

त्वा पुरुवसुं विद्म (१४२)— तू बहुत धनवान् है यह हम जानते हैं।

अश्वहीनराति वसुदां उपस्तुहि (३११)— हानि न करनेवाला जिसका दान है ऐसे धनदाता इन्द्रकी स्तुति कर।

इन्द्रस्य रातयः मह्यः (३११)— इन्द्रके दान प्रमाण करनेवाले हैं।

मघः दानाय चोदयन् (३६१)— अपने धनको दान देनेमें प्रवृत्त कर।

अस्य मंहना वक्षिष्यते (३६६)— इस इन्द्रका धन बढता ही रहता है।

शिप्रवृका यत्र (३६६)— जिसकी श्रेष्ठ धन होता है।

सुवीमघा (३६९)— बडे धनवाला इन्द्र है।

अस्य राधः न पर्येतवे (४ ७)— इसके धनके दानकी कोई मर्यादा नहीं है।

सुन्वानाय आसुर्वे रयिं ददासि (४११)— यज्ञ करनेवालेको इन्द्र बहुत धन देता है।

सासहिं साधिस्थानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं ऊतये आ भर (४५८)— जयकारी विजयी शत्रुको जीतनेवाले श्रेष्ठ धनको हमें अपनी सुरक्षा करनेके लिये भरकर भर दो।

चित्रं श्रेष्ठं राधः अर्वाक् तोकोस्तु ते विभु प्रभु असत् (४७२)— विलक्षण श्रेष्ठ धन हमारे पास भेज दे, वैसा धन तेरे पास बहुत है।

सुविभुस इन्द्र! इमस्ततः पराततः असाम दधे सुलोमृधं (४७३)— हे तेजस्वी इन्द्र! प्रसन्न करनेवाले और यशस्वी बने हमको धन प्राप्त करनेके लिये उत्तम रीतिसे प्रेरित कर।

एकावसु (५११)— अनेक धन दाता इन्द्र है।

विश्वं वार्यं पुष्यसि (६१५)— सब प्रकारके धनकी बढाता है।

अस्मे बृहत् पृथु श्रवः गोमत् वाजवत् विश्वायुः अक्षितं धेहि (४७४)— हमें बड़ा विस्तृत यशस्वी गौओं और अन्नोंसे युक्त पूर्ण आयुतक टिकनेवाला धन दे।

सहस्रसातमं द्युम्नं बृहत् श्रवः रयिवीः इन्द्र अस्मे धेहि (४७५)— हजारों प्रकारका आनन्द देनेवाला तेजस्वी बडे यशवाला धन और रथके साथ रहनेवाला अन्न हमें प्रदान करो।

गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु च आ शंसय (४८७)— गौओं घोडों तथा हजारों तेजस्वी धनोंमें हमें रख।

इस तरह इन्द्रके धनी होने और अन्नका दान करनेके विषयमें वेदमंत्रोंमें वर्णन है।

सत्यकी प्रेरणा करनेवाला इन्द्र

यः रध्रस्य कृशस्य ब्रह्मणः नाधमानस्य कीरेः चोदिता (२ १)— जो इन्द्र उपासकको ज्ञानी याचक कविको सत्यता बढानेके लिये उत्तम प्रेरणा देता है।

यस्य प्रदिशि अश्वासः गावः ग्रामाः रथासः (१ ४)— इस इन्द्रकी आज्ञामें घोडे गौवें गांव और रथ रहते हैं। इसलिये यह हरएक प्रकारकी प्रेरणा देता है और सहायता करता है।

यस्य अमितानि वीर्या (४ ७)— इस इन्द्रके अपरिमित पराक्रम हैं इसलिये यह उत्तम प्रेरणा सब भक्तोंको करता है और उनकी उन्नति करनेमें समर्थ होता है।

विचर्षणिः (१४)— विशेष रीतिसे देखनेवाला विचारपूर्वक देखभाल करनेवाला हलचल करनेवाला चपल, सबके दोषोंको देखनेमें चतुर इन्द्र है।

सत्रासाहा विश्वगूर्तः ऋभ्वपाः पृथु-ज्योताः अपृष्ठ इन्द्रः (५९)— सदा सहनेवाला सबसे प्रशंसित सब कार्य करनेवाला शत्रुका धर्षण करनेवाला बडे युद्ध, स्थिर इन्द्र है। इसलिये वह सबको उत्तम प्रेरणा देता है।

अषाळ्हः उग्रः पृतनासु सासहिः (५११)— किसीसे गम्भीर, युद्धोंमें शत्रुका पराभवकर्ता इन्द्र है।

अयाजकोंका दमन करता है

अयज्युं मर्त्यं स्रासः (५९५)— यज्ञ न करनेवाले मानवोंको दण्ड देनेवाला इन्द्र है।

असुन्वां संसदं विषूचीं व्यनाशयः सोमपाः उत्तरः भवन् (१४१)— यज्ञ न करनेवालोंकी सभाको छिन्नभिन्न करके उनको नष्ट करता है और यज्ञ करनेवालोंको उच्च बनाता है।

ये यज्ञियां नावं आरुहं न शेकुः ते केपयः ईर्मा एव न्यविशन्त (६ ७)— जो यज्ञकी नौकापर चढ नहीं सकते वे पापी इसी लोकमें ही पडे रहते हैं।

आपत्ति दूर करनेवाला इन्द्र

निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ (४१)— आपत्तियोंको दूर करनेका उपाय इन्द्र अच्छी तरह जानता है। इस कारण आपत्तियां उसको नहीं सताती।

देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति न स्वप्नाय स्पृहयन्ति (१ १)— देव यज्ञ करनेवालोंको चाहते हैं सुस्त मनुष्योंको नहीं चाहते।

अतन्द्राः प्र मादं यन्ति (१ १)— आलस्य छोडनेवाले ही विशेष आनन्दको प्राप्त होते हैं।

अ-दाशुषां वेदः आभर त्वं हि तेषां वेदः आ भर (२४२)— कंजूस मनुष्योंका धन अन्दरसे ही निकाल और उनका धन हमें लाकर दे।

निदे वनवो अराव्णः मा मा राधिष (१ ३)— निन्दक, अर्थ नहीं देनेवाले कंजूसके आधीन हमें न कर। उनका शासन हमपर न हो।

अदेयेषु सुष्टुतिः न उच्यते (११९)— उनका दान न करनेवालोंके लिये स्तुति योग्य नहीं है। उन दाताओंकी प्रशंसा ही होनी योग्य है।

पाप

अघं नः पश्चात् न अशत् (११७)— पाप हमारे पीछे नहीं लगे।

न पापत्वाय रासीय (५९९)— पाप करनेके लिये मुझ नहीं है।

घमण्डियोंका नाशक इन्द्र

यः शश्वतः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् जघान (२ ७)— जो यह इन्द्र है वह सदा पाप करनेवाले और बारंबार कहनेपर भी न सुननेवाले हैं उनको मारता है।

यः शर्धते शृध्यां न अनुददाति (२ ७)— जो इन्द्र घमंडीका घमंड नहीं सहन करता।

महतः मन्यमानान् योधय (५२७)— अपने आपको बहुत बडा माननेवाले जो घमंडी हैं उनसे युद्ध कर।

शासदानाम् बाहुभिः साक्षाम (५१७)— हम घमंडी शत्रुओंका हम बाहु युद्धमें पराजय करेंगे।

भयको दूर करनेवाला इन्द्र

इन्द्रः महत् भयं अभीपात् अपचुच्यवत् (११९)- इन्द्र बडे भयके कारणको पराजित करके दूर भगाता है।

मथिरयुजा इन्द्रेण संजग्मानः (१६५) निर्भय इन्द्रके साथ तू मिलकर जाता है। इस कारण तू निर्भय हुआ है।

संगठन करनेवाला इन्द्र

यदा सहस्त्रं कृणवाथि मानं इव समूहसि (७ ५)— जब हे इन्द्र! तू भाषण करता है तब तू समूह बनाता है। इन्द्रके भाषणमें संगठन करनेकी शक्ति होती है।

लोगोंको बसानेवाला इन्द्र

वसुः (१२७)— आर्योंको बसानेवाला इन्द्र है। यह इन्द्र आर्योंके बस्ती करानेकी सुव्यवस्था करता है।

इन्द्र घर रहनेके लिये देता है

त्रिधातु त्रिवरूथं स्वस्तिमत् शरणं छर्दिः मघवद्भ्यः च यच्छ यन्ध्यः दिद्युं यावय (५१४)— तीन धातुओंसे बना तीन आवरणोंवाला कल्याणकारी आश्रय करने योग्य घर मुझे दे तो उसा ऐसे घर धनवानोंको भी [illegible] ऐसा घर और इनसे सब शत्रुओंको दूर कर। जिससे यहां सुखसे सब मानवोंका रहना हो सके।

उत्तम मार्ग

सुपथा सीमं अर्वाक् याहि (१ २)— उत्तम मार्गसे सीम हमारे पास आओ। ये मार्ग इसके मार्ग हैं। ऐसे इसके मार्ग उत्तम होने चाहिये। इन्द्र उत्तम मार्ग निर्माण करता है।

दुःख देनेवालोंको दण्ड

अघकादतः आवस्थाथि (६१)— दुःख देनेवाले दुष्ट शत्रुओंको तू योग्य दण्ड देता है। इससे प्रजाजन आनन्दमें रह सकते हैं।

देवकी सहायता

देवयुं देवासः मायेः प्रणयन्ति (१५५)— देवत्व प्राप्त करनेवालेको देव आगे बढाते हैं। देवोंके गुणोंको देखकर उन गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेसे देवत्व प्राप्त होता है। ऐसे देवत्व प्राप्त करनेवालोंको देव हरप्रकारसे सहायता करते हैं।

ब्रह्मप्रियं यदा इव जोषयन्ते (१५५)— ज्ञान जिसको प्रिय है, जो ज्ञान प्राप्त करता है, उसका देव श्रेष्ठ पुरुषको सहाय्य करनेके समान सहाय्य करते हैं।

इन्द्रका माहात्म्य

इन्द्रस्य यातेन धामभिः महयामसि (१ ८)— इन्द्रका महत्व सबके देखनेमें स्थानोंसे वर्णित होता है। इन्द्रका महत्व इतना बडा है।

महिनः (२११)— इन्द्र सचमुच महत्त्वसे युक्त है।

पशु हमें प्राप्त हों

स्पर्ध गोमिद्धं पशुभिश्च आ भर (५१८)— अब सामर्थ्यवान् परिपूर्ण धन हमें भरपूर दे।

इन्द्र सच्चा है

इन्द्रमें सचाई है वह कभी असत्यमार्गमें दूर नहीं जाता। इस कारण कहा है—

सत्य (५ ५)— इन्द्र सत्य है सच्चा है कभी असत्य मार्गपर जाता नहीं।

सत्यस्य सूनुः (१११)— इन्द्र सत्यका प्रचारक है। सब सत्य मार्गसे जानेसे क्षेम होता है अतः अपने आचरणसे उनको बताता है।

युद्धसे लूट

असुरेभ्यः युधा आ भर (२२६)— असुरोंसे युद्ध कर दे। असुरोंका पराभव करके उनसे धन आदि पदार्थ भरपूर प्रमाणमें प्राप्त कर। शत्रुके नगर तोडके उनपर अधिकार किया तो बहुत धनरूप लूट करके विजयी वीरोंको धन अनेक प्रमाणमें प्राप्त होता है। ऐसा धन इन्द्रके पास आता रहता है। विजय प्राप्त करनेवाले वीरको ऐसा धन मिलता ही है।

इन्द्रके वर्णन

इस प्रकरणमें हमने इन्द्रके वर्णन देखे। वेदवचनोंको देकर उनके यहां सरल अर्थ दिये हैं। इन वचनोंपर विशेष विचार करके अधिक टीका-टिप्पणी नहीं की है। क्योंकि इन वचनों-पर अधिक टीका-टिप्पणी करनेकी कोई जरूरत ही नहीं है। इनके ये वचन स्पष्ट हैं।

इन वचनोंसे अनायास इन्द्रके सम्बन्धमें पता पाठकोंको लग सकता है। इन्द्र लोगोंका संरक्षण करता है, शत्रुओंसे युद्ध करके उनका पराभव करके बाहरके शत्रुओंको दूर करता है। अन्दरसे और बाहरसे संरक्षण करके प्रजाको सुरक्षित करने देना ये इस इन्द्रके मुख्य कार्य हैं। इसीलिये इस इन्द्रको हम युद्धमंत्री अथवा संरक्षकमंत्री कह सकते हैं। इनके कर्तव्य यहां इस निर्देशमें दिये हैं। अन्य विचार पाठक करें और युद्धमंत्रीके कर्तव्य क्या हैं, इस विषयमें वेदका कथन क्या है यह पाठक देखें और उसका मनन करके निश्चय करें कि राज्यके युद्धमंत्री ऐसे होने चाहिये।

अथर्ववेदके अनेक नामोंमें क्षत्रवेद भी एक नाम है। यह नाम अथर्ववेदको इसलिये मिला है कि इसमें इन्द्रके मंत्र दूसरे वेदोंसे भी अधिक संख्यामें हैं। इस इन्द्रके मंत्रोंके कारण ही इस वेदको क्षत्रवेद कहा है।

पाठक इस प्रकरणका अधिक विचार करके क्षात्रभावका योग्य बोध प्राप्त करें और इस बोधको राष्ट्रीय उन्नतिके कार्यमें लगा देवें।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

बीसवां काण्ड ।

विषयानुक्रमणिका

सूक्त	देवता	पृष्ठ	सूक्त	देवता	पृष्ठ	सूक्त	देवता
३४	इन्द्रः	४२	७१	इन्द्रः	९१	१ ७	इन्द्रः
३५	इन्द्रः	५	७२	इन्द्रः	९२	१ ८	इन्द्रः
३६	इन्द्रः	५४	७३	इन्द्रः	९३	१ ९	इन्द्रः
३७	इन्द्रः	५७	७४	इन्द्रः	९५	११	इन्द्रः
३८	इन्द्रः	६१	७५	इन्द्रः	९६	१११	इन्द्रः
३९	इन्द्रः	६२	७६	इन्द्रः	९६	११२	इन्द्रः
४	इन्द्रः मरुतः	६३	७७	इन्द्रः	९८	११३	इन्द्रः
४१	इन्द्रः	६३	७८	इन्द्रः	१	११४	इन्द्रः
४२	इन्द्र	६४	७९	इन्द्रः	१	११५	इन्द्रः
४३	इन्द्रः	६४	८	इन्द्रः	१ १	११६	इन्द्रः
४४	इन्द्रः	६५	८१	इन्द्रः	१ १	११७	इन्द्रः
४५	इन्द्रः	६५	८२	इन्द्रः	१ २	११८	इन्द्रः
४६	इन्द्रः	६६	८३	इन्द्रः	१ २	११९	इन्द्रः
४७	इन्द्रः सूर्यः	६६	८४	इन्द्रः	१ ३	१२	इन्द्रः
४८	सूर्यः, गौ	६८	८५	इन्द्रः	१ ३	१२१	इन्द्रः
४९	विश्वे	६९	८६	इन्द्रः	१ ४	१२२	इन्द्रः
५	इन्द्रः	७	८७	इन्द्रः	१ ४	१२३	सूर्यः
५१	इन्द्रः	७	८८	बृहस्पतिः	१ ५	१२४	इन्द्रः
५२	इन्द्रः	७१	८९	इन्द्रः	१ ६	१२५	इन्द्रः
५३	इन्द्रः	७२	९	बृहस्पतिः	१ ८	१२६	इन्द्रः
५४	इन्द्रः	७३	९१	बृहस्पति	१ ९	१२७	कुन्ताप सूक्त
५५	इन्द्रः	७४	९२	इन्द्र	११२	१२८	कुन्ताप सूक्त
५६	इन्द्रः	७५	९३	इन्द्रः	११६	१२९	कुन्ताप सूक्त
५७	इन्द्रः	७६	९४	इन्द्रः	११७	१३	कुन्ताप सूक्त
५८	इन्द्रः सूर्य	७७	९५	इन्द्रः	११९	१३१	कुन्ताप सूक्त
५९	इन्द्र	७८	९६	इन्द्रः, यक्ष्मनाशनम्, सर्वे-देवाः। इन्द्रग्नम्	१२	१३२	कुन्ताप सूक्त
६	इन्द्र	७९	९७	इन्द्रः	१२३	१३३	कुन्ताप सूक्त
६१	इन्द्रः	८	९८	इन्द्रः	१२३	१३४	कुन्ताप सूक्त
६२	इन्द्रः	८१	९९	इन्द्रः	१२४	१३५	कुन्ताप सूक्त
६३	इन्द्रः	८३	१	इन्द्रः	१२४	१३६	कुन्ताप सूक्त
६४	इन्द्रः	८३	१ १	अग्निः	१२५	१३७	यक्ष्मनीवाशनम् इ-द्रविषया सोमा मरुता
६५	इन्द्र	४	१ २	अग्निः	१२५	१३८	इन्द्रः
६६	इन्द्र	८४	१ ३	अग्नि	१२६	१३९	अश्विनौ
६७	इन्द्रः मरुतः अग्निः	८५	१ ४	इन्द्रः	१२६	१४	अश्विनौ
६८	इन्द्रः	८७	१ ५	इन्द्र	१२७	१४१	अश्विनौ
६९	इन्द्रः	८८	१ ६	इन्द्रः	१२८	१४२	अश्विनौ
७	इन्द्रः	९				१४३	अश्विनौ

॥ यहां बीसवां काण्ड समाप्त ॥



अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

विंश काण्डम् ।

[सूक्त १]

(ऋषिः — १ विश्वामित्रः २ गोतमः ३ विरूपः । देवता — १ इन्द्रः २ मरुतः ३ अग्निः ।)

इन्द्र॑ त्वा वृष॒भं व॒यं सु॒ते सोमे॑ हवामहे । स पा॑हि॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः ॥ १ ॥

मरु॑तो॒ यस्य॒ हि क्षये॑ पा॒था दि॒वो विमहसः । स सु॑गो॒पात॑मो॒ जनः॑ ॥ २ ॥

उ॒क्षान्ना॑य व॒शान्ना॑य॒ सोम॑पृष्ठाय॒ वे॒धसे॑ । स्तोमै॑र्विधेमा॒ग्नये॑ ॥ ३ ॥ (१)

[सूक्त २]

(ऋषिः — [गृत्समदो मेधातिथिर्वा ?] । देवता — १ मरुतः २ अग्निः ३ इन्द्रः ४ द्रविणोदाः ।)

म॒रुतः॑ पो॒त्रात्सु॒ष्टुभः॑ स्व॒र्काद्॑ऋ॒तुना॒ सोमं॑ पिबतु ॥ १ ॥

अ॒ग्निरा॒ग्नीध्रात्सु॒ष्टुभः॑ स्व॒र्काद्॑ऋ॒तुना॒ सोमं॑ पिबतु ॥ २ ॥

(सूक्त १)

(हे इन्द्र) हे इन्द्र ! (वयं सोमे सुते) हम सोमरस निकालनेपर (वृषभं त्वा) तुम बलवान्को (हवामहे) बुलाते हैं, तेरी प्रार्थना करते हैं (मध्वो अन्धसः पाहि) इस मधुररसका पान कर ॥ १ ॥ (ऋ. ३।४० ।१)

(दिवः विमहसः मरुतः) हे द्युलोकके समान तेजस्वी मरुत् वीर ! (यस्य क्षये) जिसके घर, जिसके यज्ञगृहमें (पाथ) तुम रक्षा करते हैं (सः जनः सुगोपातमः) वह मनुष्य अत्यंत उत्तम रक्षक होता है ॥ २ ॥ (ऋ. १।८६।१)

(उक्षान्नाय वशान्नाय) बैलके समान बलवान् जिसका अन्न है गौके समान दूध घी जिसका अन्न है (सोमपृष्ठाय वेधसे) सोमका हवन जिसपर होता है उस ज्ञानी (अग्नये) अग्निके लिये (स्तोमैः विधेम) स्तोत्रोंसे हम सत्कार करते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।४३।११)

वृषभं हवामहे— बलवान्की हम स्तुति करते हैं ।

मध्वो अन्धसः पाहि— मधुररसका पान कर ।

दिवः विमहसः मरुतः यस्य क्षये पाथ स जनः सुगोपातमः— द्युलोकके समान विशेष तेजस्वी वीर सैनिक जिसके घर जाकर रहते हैं या रक्षण करते हैं वह मनुष्य उत्तम रक्षक होता है ।

वेधसे स्तोमैः विधेम— ज्ञानीका सत्कार हम स्तोत्र गाकर करते हैं ।

उक्षान्नः— बैलकी खेतीसे उत्पन्न अन्न खावें सोम अन्न ।

वशान्नः— गौसे उत्पन्न दूध दही घी छाछ आदि पीवे । दूध और अन्न ।

सोमपृष्ठः— सोमका रस पीवे ।

वेधाः— ज्ञानी कर्मकुशल ।

सु-गोपा-तमः— अत्यंत उत्तम रक्षण करनेवाला वीर बने ।

(सूक्त २)

(मरुतः पोत्रात्) मरुत् वीर पोताके पात्रसे (सुष्टुभः स्वर्कात्) शोभन स्तोत्र युक्त उत्तम मंत्र युक्त (ऋतुना सोमं पिबतु) ऋतुके अनुसार सोमरस पीवे ॥ १ ॥

(अग्निः आग्नीध्रात्) अग्नि अग्नि प्रदीप्त करनेवालेके पात्रसे उत्तम स्तोत्र युक्त और उत्तम मंत्र युक्त ऋतुके अनुसार सोमरस पीवे ॥ २ ॥

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ३ ॥
देवो द्रविणोदाः पोत्रात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ४ ॥ (७)

[सूक्त ३]

(ऋषिः — इरिम्बिठिः। देवता — इन्द्रः।)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ (१०)

(इन्द्रः ब्रह्मा) इन्द्र ब्रह्मा (ब्राह्मणात्) ब्रह्माके पात्रसे उत्तम स्तोत्र युक्त और उत्तम मंत्र युक्त ऋतुके अनुसार सोमरस पीवे ॥ ३ ॥

(द्रविणोदाः देवः) धनदाता देव (पोत्रात्) सोम रसको पवित्र करनेवालेके पात्रसे उत्तम स्तुति युक्त और उत्तम मंत्र युक्त ऋतुके अनुसार सोमरस पीवे ॥ ४ ॥

ऋतुना सोमं पिबतु— ऋतुके अनुकूल रसपान करे। जिस ऋतुमें जितना पान पीना शरीर आरोग्यके लिये योग्य है उतना ही उस ऋतुमें पीवे अधिक न पीवे। सब खान पान ऋतुके अनुसार ही होना चाहिये।

पोता— रसको पवित्र शुद्ध निर्दोष जो बनाता है।

आग्नीध्र— अग्निको प्रदीप्त करनेवाला।

ब्रह्मा— यज्ञका मुख्य अध्यक्ष। यह अथर्ववेदी ही होना चाहिये।

द्रविणोदाः— धन देनेवाला (द्रविण-) धनका (दाः) दाता।

सु स्तुभः— उत्तम स्तोत्रोंसे जिसकी प्रशंसा होती है।

सु-अर्कः— उत्तम मंत्र जिसके साथ गाये जाते हैं।

इस सूक्तके ऋ. २।३६।३७ के मंत्रांश हैं।

(सूक्त ३)

हे इन्द्र! (आ याहि) आओ (ते सुषुम हि) तुम्हारे लिये हमने यह रस तैयार किया है (इमं सोमं पिब) इस सोमरसका पान करो (मम इदं बर्हिः आ सदः) और मेरे लिये इस आसनपर बैठो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।१)

हे इन्द्र! (केशिना ब्रह्मयुजा हरी) केश वालोंवाले ज्ञानके साथ युक्त होनेवाले घोडे (त्वा आ वहतां) तुझे यहां ले आवें। (नः ब्रह्माणि नः उप शृणु) हमारे मंत्रोंको समीपसे सुनो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।२)

हे इन्द्र! (वयं सोमिनः) हम सोमयाग करनेवाले (ब्रह्माणः) ज्ञानी लोग (सुतावन्तः) सोमरस तैयार करके (सोमपां त्वा) सोम पीनेवाले तुझको (युजा) अपने साथ रहनेवाले मित्रके साथ (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१७।३)

आतिथ्य सत्कार— मम इदं बर्हिः आ सदः। मेरे लिये इस आसनपर बैठ। जो अतिथि घर आजाय उसको इस रीतिसे सम्मानपूर्वक बैठनेके लिये आसन देना चाहिये।

सोमं पिब— सोम रस पीओ ऐसा कहकर उस अतिथिका आदरसे पेय रस देना चाहिये।

केशिनी ब्रह्मयुजी हरी त्वा आवहतां— केश जिनके अच्छे हैं जो घोडे इशारेसे ज्ञानसे संकेतमात्रसे रथके साथ जुड जाते हैं ऐसे घोडे शिक्षित होने चाहिये। इनसे ऐसे घोडे आप स्थानपर ले आवें।

नः ब्रह्माणि उ शृणु— हमारे मंत्र समीप बैठकर श्रवण कर।

वयं ब्रह्माणः त्वा हवामहे— हम ब्राह्मण तुझे बुलाते हैं।

युजा— साथ रहनेवाले मित्रके साथ यहां आओ। साथ निर्भय करनेके लिये राक्षस का भय था उस समय साथ साथ आना ऐसा यहां स्पष्टतासे सूचित किया गया है।

[सूक्त ४]

(ऋषिः — इरिम्बिठिः । देवता — इन्द्रः ।)

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ १ ॥
आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३ तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥ (११)

[सूक्त ५]

(ऋषिः — इरिम्बिठिः । देवता — इन्द्रः ।)

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३ ॥

(सूक्त ४)

हे (सु शिप्रिन्) उत्तम साफा धारण करनेवाले इन्द्र ! (सुतावतः नः आ याहि) सोमरस तैयार करनेवाले हमारे पास आओ। (अस्माकं सुष्टुतीः उप) हमारी उत्तम स्तुतियोंको पासमें श्रवण कर । और (अन्धसः सु पिब) इस रसको पीओ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।४)

(ते कुक्ष्योः) तेरी कोखोंमें (आ सिञ्चामि) मैं इस रसका सिंचन करता हूं। यह रस तेरे (गात्रा अनु वि धावतु) गात्रोंमें अनुकूलतासे दौड जाय। (जिह्वया मधु गृभाय) जिह्वासे इस मधुररसका आस्वाद ग्रहण कर ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।५)

(संसुदे ते) उत्तम दाता एसे तेरे लिये यह (स्वादुः अस्तु) मीठा बने (तव तन्वे मधुमान्) तेरे शरीरके लिये मधुर बने। यह (सोमः ते हृदे शं अस्तु) सोमरस तेरे हृदयके लिये शान्ति देनेवाला हो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१७।६)

सु शिप्रिन्— उत्तम साफा सिरपर धारनेवाला, उत्तम टोपीवाला।

अन्धसः सु पिब— रसका उत्तम रीतिसे पान कर। अन्धः— जिससे धारक बल शरीरमें बढता है वह पौष्टिक रस अथवा अन्न।

गात्रा अनु वि धावतु— सब गात्रोंमें प्रगतिमान हो। प्रत्येक अंगमें स्फूर्ति उत्पन्न हो। सोमरस पीनेसे प्रत्येक अंगमें उत्साह आता है।

जिह्वया मधु गृभाय— जिह्वासे मधुरताका आस्वाद लेते हुए रसपान करना चाहिये। सोमरसमें गौका दूध और मधु मिलाया जाता है। इससे वह मीठा बनता है।

सोमः ते हृदे शं अस्तु— सोम हृदयके लिये शान्ति देता है।

मधु, मधुमान्, स्वादुः शं— ये पद सोमरसका मीठापन बता रहे हैं। अन्दर उसमें शहद है यह बात मधु, मधुमान् इन पदोंसे स्पष्ट हो रही है।

(सूक्त ५)

हे (विचर्षणे इन्द्र) विशेष कर्ममें कुशल इन्द्र ! (अयं अभि संवृतः सोम) यह गौदुग्धसे मिलाया हुआ सोमरस (त्वा प्र सर्पतु) तेरे पास चलता जाय (जनीः इव) जैसी स्त्री पतिके पास जाती है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।७)

(तुविग्रीवः वपोदरः) बडी गर्दनवाला, चर्बीवाला पेट वाला (सु बाहुः) उत्तम बाहुवाला (इन्द्रः) इन्द्र (अन्धसः मदे) अन्नरसके आनन्दमें (वृत्राणि जिघ्नते) वृत्रोंका नाश करता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।८)

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (पुरः प्रेहि) आगे बढ (त्वं ओजसा विश्वस्य ईशानः) तू अपनी शक्तिसे विश्वका स्वामी है। हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (वृत्राणि जहि) शत्रुओंको मार ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१)

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥ ७ ॥ (१०)

(ते अंकुशः दीर्घः अस्तु) तेरा अंकुश लंबा हो (येन) जिससे (सुन्वते यजमानाय) सोमयाग करनेवाले यजमानके लिये तू (वसु प्र यच्छसि) धन देता है ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१७।१०)

हे इन्द्र! (अयं सोमः ते) यह सोमरस तेरे लिये (निपूतः बर्हिषि अधि) छानकर आसनपर रखा है (एहि) आओ (ईं द्रव) इसके पास दौडकर आओ और (पिब) पीओ ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१७।११)

हे (शाचिगो) शक्तियुक्त गायोंवाले हे (शाचि पूजन) शक्तिमानोंसे पूजित! हे (आखण्डल) शत्रुका खण्डन करनेवाले इन्द्र! (ते रणाय सुतः) तेरे आनंदके लिये यह रस तैयार किया है और (प्र हूयसे) तू बुलाया जाता है ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।१७।१२)

(यः ते शृङ्गवृषः) यह जो तेरा सींगवाले बैल जैसा बल है (न पात्) न पतित होनेवाला सामर्थ्य है तथा जो (प्र ण पात्) विशेषतः न गिरनेवाला बल है और (कुण्ड पाय्यः) रक्षा करनेका जो संरक्षक सामर्थ्य है (तस्मिन् मनः आ दध्र) उस सामर्थ्यमें मैं अपने मनको स्थिर करता हूं ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१७।१३)

इन्द्रके विशेषण-वर्णन—

१ विश्वचर्षणि — विशेष मनसे युक्त जनोंका विशेष हित करनेवाला जिसके अनुकूल लोग रहते हैं।

२ तुवि ग्रीव — बडी गर्दन जिसकी है अर्थात् बलवाला प्रायः बडी गर्दन वाला रहता है, इसने व्यायाम करके अपनी गर्दन बलवान् की थी।

३ वपोदर — (वपा) चरबी (उदर) उदरपर जिसके है। पुष्ट पेटवाला।

४ सुबाहुः— बडे बलवान् बाहुवाला, जिसके बाहु हृष्ट-पुष्ट बलवान् हैं।

५ ओजसा विश्वस्य ईशानः— अपनी शक्तिसे विश्वका स्वामी बना है।

६ शाचिगु— हृष्टपुष्ट गौवें जिसकी हैं वा पुष्ट गौवोंका दूध पीता है।

७ शाचि पूजन— जिसकी पूजा शक्तिवान् पुरुष करते हैं। अर्थात् शक्तिमानोंके लिये भी जो पूजनीय है।

८ आखण्डल— शत्रुके खण्ड खण्ड करनेवाला। शत्रुका विनाश करनेवाला।

९ शृङ्ग-वृष— सींगवाले बैलके समान जो बलवान् है।

१० न-पात्— जो गिरता नहीं और नाहीं स्वयं भ्रष्ट पतित होता है।

११ प्र-न पात्— विशेष रीतिसे जो कि कदापि गिरता नहीं।

१२ कुण्ड-पाय्य — (कुण्ड-इति यावत् रक्षणे च) रक्षण और पालन शत्रुका नाश करके जो प्रजाका रक्षण करता है।

ये इन्द्रके वीरके गुण हैं। वीर इन गुणोंसे युक्त होना चाहिये यह बोध यहां मिलता है।

अभीः इव— जिस किस तरह पतिके पास आती है स्त्री अपने पतिके साथ रहे यह उसका कर्तव्य है।

इन्द्रः वृत्राणि जिघ्नते— इन्द्र वृत्रोंको मारता है। यहां इन्द्र यह पुल्लिंगमें है और वृत्र पद नपुंसक लिंगमें है। नपुंसक लिंगसे उनकी शक्तिकी हीनता बताई है। और इन्द्र शक्तिहीन शत्रुको मारता है।

वृत्रहन्! वृत्राणि जहि— हे शत्रुको मारनेवाले वीर! तू शत्रुओंको मार। अपने पौरुषसे उनका वध कर।

वृत्रः— घेरनेवाला शत्रु शत्रु जो अपनेको चारों ओरसे घेरता है वह वृत्र असुर।

वसु प्रयच्छसि— तू धन देता है।

सुतः निपूतः (मं ५) अधि संपृक्तः (मं १)— सोमरस निचोडा छाना गया और दूधके साथ मिलाया है। इसके पश्चात् (पेय) पीया जाता है। यह सबका उत्साह बढानेवाला पेय है।

[सूक्त ६]

(ऋषिः — विश्वामित्रः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ ६ ॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥ (१६)

(सूक्त ६)

हे इन्द्र ! (सुते सोमे) सोमरस तैयार करनेपर (वयं वृषभं त्वा) हम तुझ बलिष्ठको (हवामहे) बुलाते हैं (सः मध्वः अन्धसः पाहि) वह तू मधुर रसका पी ॥ १ ॥ (अथर्व. २०।१।१; ऋ. ३।४०।१)

हे (पुरुष्टुत इन्द्र) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (क्रतुविदं) कर्मका ज्ञान करानेवाले (सुतं सोमं हर्य) सोम रसको तू चाह और (तातृपिं पिब) अत्यंत तृप्ति करनेवाले इस रसको पी और (वृषस्व) बलवान् बन ॥ २ ॥ (ऋ. ३।४०।२)

हे (स्तवान) स्तुति किये गये (विश्पते इन्द्र) प्रजापालक इन्द्र ! (नः धितावानं यज्ञं) हमारे धनसे युक्त इस यज्ञको (विश्वेभिः देवेभिः प्र तिर) संपूर्ण विश्व पुरुषों या देवोंके साथ आकर बढा दो ॥ ३ ॥ (ऋ. ३।४०।३)

हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (इमे सुताः चन्द्रासः इन्दवः सोमाः) ये निचोडे हुए चमकीले आनंद बढानेवाले सोमरस (तव क्षयं प्र यन्ति) तेरे आश्रममें जाते हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ३।४०।४)

हे इन्द्र ! (वरेण्यं सुतं सोमं) स्वीकार करने योग्य इस सोमरसको अपने (जठरे दधिष्व) पेटमें धारण कर (द्युक्षासः इन्दवः तव) द्युलोकमें रहनेवाले ये सोमरस तेरे लिये ही हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. ३।४०।५)

हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (नः सुतं पाहि) हमारे द्वारा तयार किये इस रसको पी । (मधोः धाराभिः अज्यसे) इस मधु रसकी धाराओंसे तू [illegible] करता है । (यशः त्वादातं इत्) हमारा यश निःसंदेह तेरी ही देन है ॥ ६ ॥ (ऋ. ३।४०।६)

(वनिनः अक्षिता द्युम्नानि) तुम्हारे भक्त अक्षय धन (इन्द्रं अभि सचन्त) इन्द्रकी ओर जाते हैं । (सोमस्य पीत्वी वावृधे) सोमरसको पीनेवाला बडा होता है ॥ ७ ॥ (ऋ. ३।४०।७)

हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (अर्वावतः परावतः च) पाससे या दूरसे (नः आ गहि) हमारे पास आ जाओ और (इमाः नः गिरः जुषस्व) इन हमारी स्तुतियोंका स्वीकार करो ॥ ८ ॥ (ऋ. ३।४०।८)

हे इन्द्र ! (अर्वावतं) समीपसे (परावतं) दूरसे (यत् अन्तरा) मध्यसे भी (हूयसे) तुझे पुकारते हैं । (ततः इह आ गहि) वहांसे यहां आओ ॥ ९ ॥ (ऋ. ३।४०।९)

इस सूक्तमें इन्द्रके विशेषण देखिये । वे वीरोंके गुण बता रहे हैं—

१ वृषभः— बैलके समान बलवान्, पराक्रमकी वृद्धि करनेवाला ।

२ पुरु-स्तुतः— बहुतों द्वारा प्रशंसित जो रक्षण करता है उस वीरकी स्तुति सब करते ही रहते हैं ।

[सूक्त ७]

(ऋषिः — १-३ सुकक्षः ४ विश्वामित्रः। देवता — इन्द्रः।)

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥ (११)

---

३ स्तवाम — स्तुतिके योग्य

४ विश्व-पतिः — प्रजाओंका अपनी रीतिसे पालन करनेवाला

५ सत्पतिः — सज्जनोंका पालन करनेवाला

६ गिर्-वणः — जिसकी प्रशंसा होती है ऐसा वीर

७ वृत्र-हन् — शत्रुको मारनेवाला, शत्रुका मारनेवाला घेरनेवाले शत्रुका नाश करनेवाला। ये वीरके गुण इस सूक्तमें कहे हैं।

सोमरसके विषयमें इस सूक्तमें जो कहा है वह अब देखिये

१ मधु अन्धः — मधुर पेय रस

२ क्रतुविद् — कर्तव्यकर्मोंका ज्ञान देनेवाला जिसके पीनेसे कर्तव्यकर्मोंका ज्ञान होता है

३ तातृपिः — तृप्ति करनेवाला

४ सोमाः सुताः अमृक्तासः इन्दवः — ये सोमरस चमकते हैं चमकीले ये रस हैं। अन्धेरेमें चमकते हैं।

५ द्युक्षास इन्दवः — द्युलोकमें रहनेवाले ये सोम हैं। हिमालयके मौजवान पर्वत पर ११ [illegible] फूटपर यह सोम वनस्पति उगती है इसलिये इसको द्यु-क्ष कहा है। स्वर्गमें द्युलोकमें इसका निवास है।

तातृपिं पिब वृषस्व — तृप्ति करनेवाले इस रसको पी और बलवान बन। यह रस पीनेसे सामर्थ्य बढता है।

विश्वेभिः देवेभिः चर्षणि प्र गिरः — सब देवोंकी शक्ति मैंसे इस यज्ञको पूर्ण कर। सब देवोंकी शक्ति [illegible] [illegible] होती है।

सोमरस चमकता है इसलिये इसको अन्धस् इन्दु ये नाम हैं। अर्थात् इस सोममें चैतन्यरस रहता है जिसके कारण यह रसमें चमक रहती है। इसी कारण यह अरसा[illegible] कहाता है [illegible] कहाता है

(सूक्त ७)

हे सूर्य ! (श्रुतामघं वृषभं) प्रसिद्ध ऐश्वर्यवान् बैल जैसा बलवान् (नर्य-अपसं) मानवोंके हितके लिये कर्म करनेवाले (अस्तारं) शत्रु फेंकनेमें कुशल इन्द्रके दर्शनके लिये ही (अभि उत् एषि च इत्) तू उदय होता है॥१॥ (ऋ. ८।९३।१)

(यः बाहु-ओजसा) जो अपने बाहुबलसे शत्रुके (नव नवतिं पुरः) न्यानवे दुर्गोंको (बिभेद) छिन्नभिन्न करता है (च वृत्रहा अहिं अवधीत्) और शत्रुके मारनेवालेने अहिको भी मारा ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९३।२)

(सः नः इन्द्रः शिवः सखा) वह हमारा इन्द्र कल्याण करनेवाला मित्र है। वह हमें (अश्वावत् गोमत् यवमत्) घोडों गौओं और जौसे परिपूर्ण धन (उरुधारा इव दोहते) बडी धाराके दूध देनेवाली गौके समान प्रदान करे ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९३।३)

इन्द्र क्रतुविदं इस मंत्रका अर्थ अथर्व २।[illegible] में (पृष्ठ ५ पर) देखिये। (ऋ. ३।४०।२)

इन्द्रके विशेषण इस सूक्तमें देखिये—

१ श्रुता-मघः — प्रसिद्ध ऐश्वर्यवान्, जिसके ऐश्वर्यकी चारों ओर प्रशंसा होती है।

२ वृषभ — बैलके समान बलवान्, इस जगत्की वृष्टि करनेवाला सामर्थ्यवान्

३ नर्यापस — (नर्य-अपस्) — मानवोंके हितके कर्म करनेवाला

४ अस्ता — शत्रुपर शस्त्र फेंकनेमें कुशल

५ शिवः सखा — हितकर मित्र

६ बाह्वोजसा यः नव नवतिं पुरः बिभेद — जो अपने बाहुओंके सामर्थ्यसे शत्रुके न्यानवे नगरोंको छिन्न भिन्न

[सूक्त ८]

(ऋषिः — १ भरद्वाजः २ कुत्सः ३ विश्वामित्रः । देवता — इन्द्रः ।)

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ १ ॥
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ २ ॥
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ ३ ॥ (१६)

करता है। पुरः वे सभी पुरियां किलेवाली होती हैं। वे तोडना बडा पौरुषका कार्य है। यह इन्द्र करता है।

७ वृत्रहा अहिं अवधीत्— वृत्रको मारनेवालेने अहिको मारा। अ-हि— हन न होनेवाला शत्रु। जिसकी वृद्धि बढती रहती है ऐसा शत्रु। अहि नाग-सांप यह नाम अन्नादिकस्थान का था। सर्प नाग सांप का इन्द्र-पन स्थान हुआ जिसका अध-मानि-स्थान हुआ ऐसा भी मानते हैं। अहि तथा सर्प जातिके मनुष्य आर्योंके शत्रु थे।

८ वज्र अश्वावत गोमत् यवमत् अश्व गौवें और अन्नसे भरा था।

९ सोम पिब वृषस्व— सोम पी और बलवान बन। इससे स्पष्ट विदित होता है कि सोमरस पीनेसे पीनेवालेका बल बहुत बढ जाता है।

(सूक्त ८)

(एवा प्रत्नथा पाहि) इस प्रकार पूर्वके समान सोम रसको पी। (त्वा मदतु) तुझे यह रस आनन्द देवे (ब्रह्म श्रुधि) हमारे मंत्र पाठको सुन (उत गीर्भिः वावृधस्व) और हमारे स्तुतियोंसे बढ जा। (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्यको प्रकट कर (इषः पिपिहि) अन्नोंकी पुष्टिसे पुष्ट कर (शत्रून् जहि) शत्रुओंको मार हे इन्द्र! (गाः अभि तृन्धि) किरणोंको छेदकर बाहर निकाल ॥ १ ॥

(ऋ ६।१७।३)

(अर्वाङ् एहि) इधर आ (त्वा सोमकामं आहुः) तुझे सोमरस चाहनेवाला कहते हैं। (अयं सुतः) यह रस तैयार है (तस्य मदाय पिब) उसका आनन्दित होनेके लिये पी। (उरु-व्यचाः जठरे आ वृषस्व) बडा बलवान् तू अपने पेटमें डाल (हूयमानः) बुलाया हुआ (पिता इव नः शृणुहि) पिताके समान हमारी प्रार्थना सुन ॥ २ ॥

(ऋ १। १०४।९)

(अस्य कलशः आपूर्णः) इसका कलश भर दिया है। (स्वाहा) यह उत्तम रीतिसे तुझे समर्पित है। (सेक्ता इव कोशं) भरनेवाला जैसा पात्रको भरता है वैसा (पिबध्यै सिसिचे) पीनेके लिये यह पात्र भर रखा है। (प्रियाः सोमासः) प्रिय सोम (मदाय) आनंदके लिये (अभि प्रदक्षिणित्) दायीं ओरसे (इन्द्रं सं आववृत्रन् उ) इन्द्रको घेरकर जाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रका वर्णन इस सूक्तमें देखिये—

१ ब्रह्म श्रुधि— वेदके मंत्रोंका श्रवण कर।

२ गीर्भिः वावृधस्व— स्तुतियोंसे तेरी कीर्ति बढती जाय।

३ शत्रून् जहि— शत्रुओंको मार।

४ गाः अभि तृन्धि— [शत्रुके अधीन रही] गौओंको किले तोडकर बाहर ला। शत्रु गौओंको चुराकर अपने किलेमें रखता है इन्द्र उस किलेको तोडकर गौओंको बाहर लाता है। इस तरह सूर्य किरणोंको बाहर लाता और प्रकाशको फैलाता है।

अभि प्रदक्षिणित्— अतिथिको अपने सीधे हाथकी दक्षिणकी ओर बिठाना यह सम्मानकी वैदिक रीति है। स्वयं उत्तरकी ओर रहना आना और अतिथिको दक्षिणकी ओर रखना।

[सूक्त ९]

(ऋषिः — १-२ नोधाः, ३-४ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ३ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ४ ॥ (४०)

(सूक्त ९)

(तं वः दस्मं) आपके उस दर्शनीय (ऋतीषहं) शत्रुओंका पराभव करनेवाले (वसोः अन्धसः मन्दानं) सबके निवासक अन्नसे आनन्दित होनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रकी हम (गीर्भिः नवामहे) गीतोंसे प्रशंसा करते हैं। जैसी (धेनवः स्वसरेषु वत्सं अभि न) गौवें बाडोंमें रहे अपने बछडेके [लिये हंभारती हैं।] ॥ १ ॥ (ऋ. ८।८८।१)

(द्युक्षं) द्युलोकमें रहनेवाले अति तेजस्वी (सुदानुं) उत्तम दान देनेवाले (तविषीभिः आवृतं) अनेक शक्तियोंसे युक्त (पुरुभोजसं गिरिं न) बहुत भोजन देनेवाले पर्वतके समान (क्षुमन्तं) अन्नसे पूर्ण (वाजं) बलवान् (गोमन्तं) गौओंवालेसे (मक्षू) शीघ्र हम (शतिनं सहस्रिणं ईमहे) सैकडों और हजारों धन मांगते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।८८।२)

(तत् सुवीर्यं ब्रह्म) उस वीर्यको उत्तम रीतिसे बढानेवाले ज्ञानको (पूर्व-चित्तये) प्रथम विचार करनेके लिये (त्वा यामि) तेरे पास मैं मांगता हूं। जब (धने हिते) युद्ध शुरू हुआ तब (येन) जिस ज्ञानसे (यतिभ्यः भृगवे) यतियोंके लिये भृगुके लिये रक्षण किया और (येन प्रस्कण्वं आविथ) जिस शक्तिसे प्रस्कण्वकी रक्षा की ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।३।९)

(येन समुद्रं असृजः) जिस सामर्थ्यसे समुद्रको तूने उत्पन्न किया और (महीः अपः) बडे जलप्रवाह पैदा किये हे इन्द्र! (ते वृष्णि शवः) वह तुम्हारी वृष्टि करनेवाला तेरा ही बल है। (सः अस्य महिमा सद्यः न संनशे) वह इसका महिमा कभी कम नहीं होता (यं क्षोणीः अनुचक्रदे) जिसका वर्णन सब मनुष्य कर रहे हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।३।१०)

इस सूक्तमें इन्द्र वीरके गुण ये कहे हैं—

१ दस्म— दर्शनीय सुन्दर सुरूप

२ ऋतीषह— शत्रुओंका नाश करनेवाला हानि पहुंचानेवालोंको दूर करनेवाला

३ वसोः अन्धसः मन्दानः— जिससे प्राणियोंका निवास होता है जिससे प्राणीका धारण होता है उस अन्नसे आनन्दित होनेवाला

४ द्युक्षः— द्युलोकमें रहनेवाला

५ सु दानुः— दान देनेवाला

६ तविषीभिः आवृतः — नाना शक्तियोंसे युक्त

७ पुरुभोजाः— अनेक प्रकारके अन्न अपने पास रखनेवाला

८ क्षुमान्— अन्न पास रखनेवाला

९ गोमान्— गौवें पास रखनेवाला

१० धने हिते आविथ— युद्ध शुरू होनेपर रक्षण करता है।

११ वृष्णि शवः— बल बढानेवाला सामर्थ्य जिसका है।

१२ यं क्षोणीः अनुचक्रदे— जिसका सब लोग वर्णन करते हैं।

१३ येन समुद्रं असृजः महीः अपः— जिसने समुद्र और बडे बडे जलप्रवाह उत्पन्न किये।

१४ अस्य महिमा न संनशे— इसका महिमा कम नहीं होता।

ये गुण इन्द्रके वीरके हैं। वीरमें ऐसे गुण रहने चाहिये।

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

(शर्धनीतिः इन्द्रः) वर्गोंको चलानेवाले इन्द्रने (वृत्रं अवृणोत्) वृत्रको घेर लिया। (वर्प-नीतिः मायिनां प्र अमिनात्) नाना रूपोंको लेनेवाले इन्द्रने कपटी शत्रुओंको विशेष रीतिसे नष्ट किया। (वनेषु उशधग्वम् व्यंसं अहन्) वनोंको तथा स्थल जलानेवालोंमें स्कंध-युक्त देनेवाले शत्रु-को मार दिया और (राम्याणां धेनाः आविः अकृणोत्) रात्रीमें छिपायी गौओंको किरणोंको प्रकट किया। शत्रुने छिपायी गौओंको बाहर निकाला ॥ ३ ॥

(स्वर्षा इन्द्रः) स्वर्ग प्रकाशी इन्द्रने (अहानि जन यन्) दिनोंको उत्पन्न किया (अभिष्टिः) अपना अभीष्ट प्राप्त करनेवाले इन्द्रने (उशिग्भिः) अपने साथियोंके साथ रहकर (पृतनाः जिगाय) शत्रुसेनाको जीत लिया। (मनवे) मनुष्यमात्रके हितके लिये (अह्नां केतुं प्रारोचयत्) दिनोंके ध्वजको-सूर्यको-प्रकाशित किया और (बृहते रणाय) बडी रमणीयताके लिये (ज्योतिः अविन्दत्) प्रकाशको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

(इन्द्रः) इन्द्र (तुजः) लडाके (बर्हणा आ विवेश) शत्रुसेनामें घुस गया। वह (नृवत्) नेताके समान (पुरूणि नर्या दधानः) बहुत वीरके कर्म करता है। (जरित्रे इमाः धियः अचेतयत्) उसने अपनी स्तुति करनेवालेके लिये ये बुद्धियां सचेत की और (आसां इमं शुक्रं वर्णं) इन उषाओंके इस स्वच्छ प्रकाशको (प्र अतिरत्) अधिक बढा दिया ॥ ५ ॥

(अस्य महः इन्द्रस्य) इस महान् इन्द्रके (पुरूणि सुकृता महानि कर्म) बहुत उत्तम बडे कर्म हैं जिनकी लोग (पनयन्ति) स्तुति करते हैं। (वृजनेन वृजिनान् सं पिपेष) बलसे कपटियोंको उसने पीस डाला। (अभिभूति-ओजाः) शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्यवाले इन्द्रने (मायाभिः दस्यून्) अपनी शक्तियोंसे दुष्टोंको [illegible] किया ॥ ६ ॥

(सत्पतिः चर्षणिप्राः इन्द्रः) सज्जनोंके पालक और मानवोंको धनादिसे परिपूर्ण करनेवाले इन्द्रने (मह्ना युधा) अपनी महिमासे और युद्ध करके (देवेभ्यः वरिवः चकार) देवोंके लिये श्रेष्ठता निर्माण की। (विवस्वतः सदने) विवस्वानके घरमें (विप्राः कवयः) ज्ञानी कवि (अस्य तानि उक्थेभिः गृणन्ति) इस इन्द्रके उन कर्मोंका स्तोत्रोंसे गान करते हैं ॥ ७ ॥

(सत्रासाहं) साथ रहकर जीतनेवाले (वरेण्यं) श्रेष्ठ विजयी (सहोदां) साहसमय बल देनेवाले (स्वः देवीः अपः च ससवांसं) स्वर्गको और दिव्य जलको जीतने

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥ (५१)

वाले (इन्द्रं) इन्द्रके साथ (धीरणासः अनुमदन्ति) बुद्धिमान ज्ञानी लोग आनन्द मनाते हैं (यः पृथिवीं उत इमां द्यां ससान) जिसने पृथिवी और इस द्युलोकको जीता है ॥ ८ ॥

(इन्द्रः अत्यान् ससान) इन्द्रने घोडे जीते हैं। (उत सूर्यं ससान) और सूर्यको जीता है (पुरुभोजसं गां ससान) बहुत अन्न देनेवाली गायको जीता है (हिरण्ययं उत भोगं ससान) सुवर्णको और भोगको जीता है, (दस्यून् हत्वी) उसने दस्युओंको मारकर (आर्यं वर्णं आवत्) आर्य वर्णकी रक्षा की है ॥ ९ ॥

(इन्द्रः ओषधीः अहानि असनोत्) इन्द्रने औषधियों और दिनोंको जीता (वनस्पतीन् अन्तरिक्षं असनोत्) वनस्पतियों और अन्तरिक्षको जीता (वलं बिभेद) वल नामक शत्रुको तोड दिया (विवाचः नुनुदे) विरुद्ध बोलनेवालोंको दूर किया और (अथ अभिक्रतूनां दमिता अभवत्) और उसके विरोधियोंका दमन करनेवाला हो गया है ॥ १० ॥

(शुनं मघवानं) उत्तम सुखवाले धनवान् (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस युद्धमें धनोंको जीतनेके लिये (नृतमं) श्रेष्ठ नेता वीर (शृण्वन्तं उग्रं) सबका सुननेवाले शूरवीर (समत्सु ऊतये) युद्धोंमें रक्षणार्थ (वृत्राणि घ्नन्तं) शत्रुओंको मारनेवाले (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले (इन्द्रं हुवेम) इन्द्रको हम बुलावें ॥ ११ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रदेवके गुण देखिये—

१ पूर्भित्— शत्रुके किले तोडनेवाला, शत्रुके पुरियोंपर अपना अधिकार जमानेवाला

२ दासं अर्कैः आविरत्— दास नामक शत्रुको शस्त्रोंसे मारा

३ विदद्वसुः— धनका दान करनेवाला

४ शत्रून् विदयमानः— शत्रुओंका नाश करनेवाला

५ ब्रह्म जूतः— ज्ञानसे प्रेरित होनेवाला

६ तन्वा वावृधानः— शरीरसे बडा बलवान् होनेवाला

७ भूरिदात्रः— बहुत दान देनेवाला

८ उभे रोदसी आपृणात्— दोनों लोकोंको तेजसे भरनेवाला

९ तविषः— बलवान्

१० मखः— पूजनीय

११ अमृताय भूषन्— अमरत्वके लिये वेषभूषा करनेवाला

१२ मानुषीणां क्षितीनां दैवीनां विशां पूर्वयावा— मानवी और दैवी प्रजाओंका अगुवा नेता

१३ शर्धनीतिः— जिसकी नीति बलके आश्रयसे चलती है

१४ वृत्रं अवृणोत्— जिसने वृत्रको घेरा था

१५ वर्पणीतिः मायिनां प्र अमिनात्— अनेक रूप धारण करनेवाले इन्द्रने कपटियोंका पराभव किया।

१६ वर्पे नीतिः— अनेक रूप धारण करनेवाला इन्द्र है।

१७ व्यंसं अहनत्— व्यंसको मारा

१८ उशधक्— प्रज्वलित होनेवाला तेजस्वी;

१९ स्वर्षाः— प्रकाशयुक्त

२० अभिष्टिः उशिग्भिः पृतनाः जिगाय— इष्ट कार्य करनेवालोंसे अपनी शक्तियोंसे शत्रुसेनाओंको जीत लिया।

२१ बृहते रणाय ज्योतिः अविन्दत्— बडे आनन्दके लिये प्रकाश प्राप्त किया।

२२ इन्द्रः तुजः बर्हणा आविवेश— इन्द्र त्वरासे कार्य करनेवाला वेगसे शत्रुसेनामें घुस गया।

२३ नृवत्— नेता हुआ।

२४ पुरूणि नर्या दधानः— बडे वीर कर्म करता है।

२५ इमा धियः अचेतयत्— ये बुद्धियां सचेत करता है।

२६ अस्य महः इन्द्रस्य महानि पुरूणि सुकृता

[सूक्त १२]

(ऋषिः — १-६ वसिष्ठः ७ अत्रिः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ ७।२३।१-६)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥

धनपत्नि— इस बडे इन्द्रके अनेक सत्कर्मोंकी सब लोग स्तुति करते हैं।

२७ वृतेन वृत्रिमान् सं पिपेष— ... पीस डाला।

२८ अभिभूत्योजाः मायाभिः दस्यून्— आक्रमक बलवाले इन्द्रने कपटसे शत्रुओंको मारा।

२९ सत्पतिः चर्षणिप्राः इन्द्र महा युधा देवेभ्य वरिवः चकार— सज्जनोंका पालक मानवोंके रक्षक इन्द्रने बडे युद्धसे देवोंके लिये श्रेष्ठ स्थान बनाया।

३० विप्रा कवय अस्य तानि उक्थेभिः गृणन्ति— ज्ञानी कवि इसके उन कर्मोंका वर्णन गाते हैं।

३१ सत्रासाहः— साथ रहकर विजय करनेवाला

३२ वरेण्य — श्रेष्ठ

३३ सहोदाः— बल देनेवाला

३४ ससवान्— विजयी

३५ य पृथिवीं उत द्यां ससान— जिसने पृथिवीपर और द्युलोकमें विजय किया है।

३६ धीरणासः इन्द्रं अनुमदन्ति— बुद्धिमान लोग इन्द्रके दर्शनसे आनंद मनाते हैं।

३७ ससान पुरुभोजसं गां हिरण्यं भोजं ससान— घोडे दुधार धेनु सोना और भोग इसने जीते।

३८ दस्यून् हत्वी आर्यं वर्णं प्रावत्— दस्युओंको मार कर आर्य वर्णकी रक्षा की।

३९ वलं बिभेद— बलका पराभव किया

४० विवाच तुतुरे— विरोध करनेवालोंको दूर किया।

४१ अभिक्रतूनां दमिता अभवत्— वह विरोधकोंका दमन करनेवाला हुआ है।

४२ शुनं मघवानं इन्द्रं हुवेम— उदार धनवान् इन्द्रको हम बुलाते हैं।

४३ अस्मिन् भरे वाजसातौ नृतमं— इस युद्धमें धनप्राप्तिके समय यह श्रेष्ठ वीर है।

४४ समत्सु ऊतये वाजे शृण्वन्तं— युद्धोंमें रक्षाके समय इसको जो प्रार्थना सुनता है उसको बुलाते हैं।

४५ वृत्राणि घ्नन्तं— वृत्रोंको मारनेवाला

४६ धनानां संजितं— धनोंको जीतनेवाला यह वीर है।

ये इन्द्रके वीरताके गुण इस सूक्तमें वर्णन किये हैं।

(सूक्त १२)

(श्रवस्या) यशकी इच्छासे (ब्रह्माणि उत् ऐरत उ) स्तोत्र गाया करो, हे वसिष्ठ! (समर्ये इन्द्रं महय) युद्धमें इन्द्रकी महिमाका गान कर (यः शवसा विश्वानि आ ततान) जिसने अपने बलसे सब विश्वको फैलाया है। (ईवतः मे वचांसि उपश्रोता) भक्ति करनेवाले मेरे वचनोंको वह सुनेगा॥१॥

हे इन्द्र! (देव-जामिः घोषः अयामि) देवोंके साथ अनुकूल रहनेवाली स्तुतियां हो चुकी हैं (विवाचि यत् शुरुधः इरज्यन्त) विरोधी घोषणामें शोकको रोकनेवाले वचन प्रकट होते हैं। (जनेषु स्वं आयुः न हि चिकित) मनुष्योंमें अपनी आयुको कोई नहीं जानता। (तानि अंहांसि इत्) वे पाप (अस्मान् अति पर्षि) हमसे दूर कर॥२॥

(गवेषणं रथं हरिभ्यां युजे) गौओंको ढूंढनेवाले तेरे रथको दो घोडे मैं जोडता हूं। (ब्रह्माणि जुजुषाणं उप अस्थुः) हमारे स्तोत्र सेवन करनेवाले इन्द्रके पास पहुंचे हैं। (स्यः महित्वा) यह इन्द्र अपने महत्वसे (रोदसी वि बाधिष्ट) द्युलोक और भूलोकको बाधता है। (इन्द्रः

आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नं स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥ (९०)

वृत्राणि अप्रती जघन्वान्) इन्द्रने वृत्रोंको अप्रतिम रीतिसे मारा है ॥ ३ ॥

(स्तर्यः गावः न) वंध्या गौओंके समान (आपः चित् पिप्युः) जलप्रवाह पुष्ट हुए हैं। हे इन्द्र ! (ते जरितारः ऋतं नक्षन्) तेरी स्तुति करनेवाले सत्य मार्गसे जाते हैं। (नः अच्छा नियुतः आ याहि) तू हमारे पास सीधा घोडोंसे आ जाओ (वायुः न) जैसा वायु आता है। (त्वं हि धीभिः वाजान् वि दयसे) तू अपने बुद्धियुक्त कर्मोंसे अन्नों और बलोंको बांटता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! (ते मदाः) ये आनंददायक सोमरस (जरित्रे तुविराधसं शुष्मिणं त्वा) स्तोताके लिये पर्याप्त धन देनेवाले विशेष बलिष्ठ तुझको (मादयन्तु) आनन्दित करें। तू (एकः) अकेला ही (देवत्रा) देवोंमेंसे (मर्तान् दयसे हि) मानवोंपर दया करता है। हे शूर ! (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस सोमयागमें आनंदित हो ॥ ५ ॥

(वज्रबाहुं वृषणं इन्द्रं) वज्र बाहुपर धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रकी (वसिष्ठासः एव इत् अर्कैः) वसिष्ठ इस तरह स्तोत्रोंसे (अभ्यर्चन्ति) पूजा करते हैं। (नः स्तुतः) हमसे स्तुति किया गया वह इन्द्र (वीरवत् गोमत् धातु) वीर पुत्रों और गौओंके साथ रहनेवाला धन हमें देवे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी कल्याणोंके साथ रक्षा करो ॥ ६ ॥

(ऋजीषी) सोमपान करनेवाला (वज्री) वज्र धारण करनेवाला (वृषभः) बैलके समान बलवान् (तुराषाट्) त्वरासे शत्रुओंको दबानेवाला (शुष्मी) बलवान् (राजा) राजा (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला (सोमपावा) सोम पीनेवाला (हरिभ्यां युक्त्वा) दो घोडोंको जोडकर (अर्वाङ् उप यासत्) हमारे पास आवे (इन्द्रः माध्यंदिने सवने मत्सत्) इन्द्र मध्याह्नके सवनके समय आनन्दित हो जाय ॥ ७ ॥

इस सूक्तमें बोधके वचन ये कहे हैं—

१ इन्द्र समर्ये महय— संग्राममें इन्द्रकी महिमा गाओ।

२ यः शवसा विश्वानि आततान— वह अपने बलसे विश्वको फैलाता है।

३ इवतः मे वचांसि उपश्रोता— प्रार्थना करनेवाले मेरा भाषण वह सुनता है।

४ हे इन्द्र ! देवजामि घोषा अयामि— हे इन्द्र ! तू देवोंका बन्धु है ऐसा आप सुनते हैं।

५ विश्वानि शुरुधः यत् इरज्यन्त— विरुद्ध बोलनेवालोंको धर्मसे रोकनेवाले बन्धन होते हैं।

६ गवयजः रथं हरिभ्यां युजे— गौओंसे हंकनेवाले रथको मैं दो घोडे जोडता हूं।

७ ब्रह्माणि जुजुषाणः उप अस्थु— स्तोत्र श्रवण करनेवालोंके पास पहुंचे हैं।

८ स्व महित्वा रोदसी वि पाप्रिथ— वह अपने महत्त्वसे दोनों लोकोंको भरता है।

९ इन्द्रः वृत्राणि अप्रती जघन्वान्— इन्द्र अप्रतिम रीतिसे वृत्रोंको मारता है।

१० नः अच्छ नियुतः आयाहि— हमारे पास घोडोंसे आओ।

११ त्वं हि धीभिः वाजान् विदयसे— तू अपने बुद्धियुक्त कर्मोंसे हमें बल देता है।

१२ शुष्मी— बलवान्

१३ तुविराधा — बहुत धनवाला

[सूक्त १३]

(ऋषिः — १ वामदेवः २ गोतमः ३ कुत्सः ४ विश्वामित्रः।
देवता — १ इन्द्राबृहस्पती २ मरुतः ३-४ अग्निः।)

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ २ ॥
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ४ ॥ (१२)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

---

१४ देवता एकः मर्त्यान् दधसे— देवोंमें अकेला तू मानवोंपर दया करता है।

१५ मदा त्वा मादयन्तु— ये सोमरस तुझे आनन्द दवें।

१६ शूर ! अस्मिन् सवने मादयस्व— हे शूर ! इस सवनमें आनन्द मना।

१७ वज्रबाहुः वृषण्वा— वज्रके समान कठिन बाहु वाला और बलवान्।

१८ सः नः वीरवत् गोमत् धातु— वह हमें वीर पुत्रों और गौओंके साथ रहनेवाला धन देवे।

१९ ऋजीषी- सोमरस पीनेवाला

२० वज्री- वज्र धर्मनेवाला

२१ तुराषाट्- त्वरासे शत्रुका पराभव करनेवाला

२२ राजा- शासक

२३ वृत्रहा- शत्रुको मारनेवाला

२४ सोमपावा- सोमरस पीनेवाला

२५ हरिभ्यां युक्त्वा- दो घोडोंको जोतकर।

(सूक्त १३)

हे बृहस्पते ! तू और इन्द्र (मन्दसाना वृषण्वसू) आनन्द मनाते हुए, बलका तीक्ष्ण निवास देनेवाले तुम दोनों (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (सोमं पिबतं) सोमरस पीओ। (सु-आभुवः इन्दवः) उत्तम रीतिसे सिद्ध हुए ये सोमरस (वां आ विशन्तु) तुम्हारे अन्दर जाय। (अस्मे सर्ववीरं रयिं नि यच्छतं) हमको सब पुत्रोंवाले युक्त धन दे दो ॥ १ ॥ (ऋ. ४।५० ।१०)

(रघु-स्यदः सप्तयः वः आ वहन्तु) शीघ्र चलने वाले घोडे आपको इधर ले आवें। (रघु-पत्वानः बाहुभिः प्र जिगात) भुजाओंसे शीघ्र चलते हुए आगे बढो। (बर्हिः सीदत) आसनपर बैठो (वः उरु सदः कृतं) तुम्हारे लिये विस्तृत स्थान किया है। हे मरुतो ! (मध्वः अन्धसः मादयध्वं) मधुर रससे आनन्दित हो जाओ ॥ २ ॥ (ऋ. १।८५।६)

(रथं इव) रथको सजाते हैं उस तरह (इमं स्तोमं) इस स्तोत्रको (अर्हते जातवेदसे) योग्य जातवेद अग्नि के लिये (मनीषया सं महेम) बुद्धिसे सजाते हैं। (अस्य संसदि) इसके साथ बैठनेमें (नः भद्रा प्रमतिः) हमारी कल्याणकारिणी बुद्धि विकसित होती है। हे अग्ने ! (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रतामें हम हानि न उठावें ॥ ३ ॥ (ऋ. १।९४।१)

हे अग्ने ! (एभिः सरथं अर्वाङ् आ याहि) इन देवोंके साथ एक रथपर बैठकर इधर आ। अथवा (नानारथं वा) अनेक रथोंपर बिठलाकर ले आ। (हि अश्वाः विभवः) क्योंकि आपके घोडे वैभवसंपन्न हैं। (पत्नीवतः) पत्नी योंके साथ (त्रिंशतं त्रीन् च देवान्) तीस और तीन देवोंको (अनु-स्वधं आ वह) उनकी अपनी धारणाशक्ति

[सूक्त १४]

(ऋषिः — १-४ सोभरिः । देवता — इन्द्रः ।)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥ (९८)

अनुकूल रथपर बैठो के आ और (मादयस्व) हमको प्रसन्न कर ॥ ४ ॥ (ऋ. ३।६।८)

इसमें इन्द्र बृहस्पति मरुत् और अश्विनौ वर्णन है। इनके गुण ये हैं—

१ मन्द्रसानो— आनन्दित रहनेवाले

२ वृषण्वसू— बल बढानेवाला धन अपने पास रखनेवाले।

३ सर्ववीरं रयिं नि यच्छतं— वीर पुत्रोंके साथ रहने वाला धन दो। पुत्रपौत्र जिससे बढते हैं ऐसा धन चाहिये। पुत्रहीन धन नहीं चाहिये।

४ रघुष्यदः रघुपत्वानः सप्तयः— घोडे जल्दी दौडनेवाले चाहिये।

५ जात-वेदाः— वेद जिससे हुए, ज्ञानप्रसारक

६ अस्य संसद् नः भद्रा प्रमतिः— इसके साथ रह मेल करनेवाली बुद्धि होती है।

७ तव सख्ये मा रिषाम— तेरी मित्रतामें हमें हानि न पहुंचे।

८ एभिः सरथं वा नानारथं वा याहि— इन देवोंके साथ एक रथमें या नाना रथोंमें बैठकर आओ। रथमें बैठकर देव आते हैं। अग्निके साथ देव आते हैं।

९ ग्नावा विमद — जिसके सामर्थ्यवान् हैं वैभववान् हैं श्रीमती हैं।

१० परमेश्वर सिद्धार्थ त्रीणि च देवान अनुष्वधं आ वह— सर्वोंको मिलकर ३३ देवोंको ले आओ। उनको जो अन्न चाहिये वह दो।

११ मादयस्व— उनको आनन्दित रख। सब आनन्द प्रसन्न रहें।

॥ यहां प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त १४)

हे (अ-पूर्व्य) अपूर्व इन्द्र! (कच्चित् स्थूरं न भरन्तः) कोई विशेष धन अपने पास न रखनेवाले परंतु (अवस्यवः) अपनी सुरक्षा चाहनेवाले (वयं) हम (चित्रं त्वा) आश्चर्य मय तुमको (वाजे उ हवामहे) युद्धमें सहायार्थ बुलाते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।२१।१)

(कर्मन् ऊतये त्वा) युद्धके कर्ममें रक्षाके लिये तुझे बुलाते हैं। (सः यः) वह तू (युवा) तरुण (उग्रः) उग्र वीर (धृषत्) शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य धारण करने वाला (नः उप चक्राम) हमारे समीप आ। (त्वां इत् हि अवितारं ववृमहे) तुझे ही रक्षक करके हम स्वीकार करते हैं। हे इन्द्र! (सखायः सानसिं) हम साथी तुझ जैसे दानीको हम अपना रक्षक करते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।२१।२)

(यः नः इदं इदं वस्यः) जिसने हमारे पास यह इस प्रकारका धन (पुरा प्र आनिनाय) पहिले लाया है (सखायः) मित्रो! (तं इन्द्रं उ) उसी इन्द्रकी (वः ऊतये स्तुषे) तुम्हारी रक्षाके लिये स्तुति करता हूं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।२१।९)

(हर्यश्वं) लाल घोडोंवाले (सत्पतिं) सज्जनोंका पालन करनेवाले (चर्षणी-सहं) शत्रु सैन्यको जीतनेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं। (सः हि यः अमन्दत स्म) वही है जो आनन्द बढाता है। (सः मघवा तु) वही धनवान् इन्द्र (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओंको (गव्यं अश्व्यं शतं वयति) सौ गौवें और घोडे समूह लाकर देता है ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।२१।१)

इस सूक्तमें वीर इन्द्रके जो गुण बताये हैं वे ये हैं—

[सूक्त १५]

(ऋषिः — १-४ गोतमः । देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ. १।५७।१-४)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥

---

१ अपूर्व्यः — इसके समान दूसरा वीर नहीं हुआ ।

२ वाजे चित्रं — युद्धमें आश्चर्यकारक वीरता का दिखाता है।

३ युवा — सदा तरुण, आयु बडी होनेपर भी तरुण जैसा कार्य करनेवाला ।

४ उग्रः — उग्र शूरवीर

५ धृषत् — शत्रुका पराभव करनेवाला धैर्यवान् ।

६ कर्मन् ऊतये — प्रत्येक युद्धके कर्ममें रक्षा करनेवाला

७ अविता — संरक्षण करनेवाला

८ दानासिः — विशेष दान देनेवाला

९ यः न इद वस्य आनिनाय — जो हमारे पास इस तरहका धन लाता है । वस्य धन वह है कि जो मानवोंको बसानेवाला है ।

१० हर्यश्वः — लाल घोडोंवाला

११ सत्पतिः — सज्जनोंका रक्षक

१२ चर्षणी सहः — शत्रुके वीर मानवोंका पराभव करनेवाला

१३ मघवा गव्यं अश्व्यं शतं ददाति — इन्द्र सैकडों गौओं और घोडोंके समूह देता है ।

(सूक्त १५)

(मंहिष्ठाय) बडे महान, (बृहते) सबसे श्रेष्ठ (बृहद्रये) बडे धनवाले (सत्यशुष्माय) सच्चे बलवाले (तवसे) सामर्थ्यवाली इन्द्रके लिये (मतिं प्र भरे) स्तोत्र गाता हूँ । (यस्य दुर्धरं राधः) जिसका अतुलनीय धन दान (प्रवणे अपां इव) नहरोंमें जलके पूरके समान (विश्व-आयु) सब मानवोंके लिये और (शवसे) बलके लिये (अपावृत) प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

(अध विश्वं ते इष्टये ह अनु असत्) अब सब विश्व तेरी इच्छा—तेरे यज्ञ के लिये अनुकूल रहता है। (आपः निम्ना इव) जलप्रवाह नीचाईकी ओर जाते हैं वैसे तरह (हविष्मतः सवना) हविवालोंके हवन तेरे पास जाते। (इन्द्रस्य हिरण्ययः हर्यतः वज्रः) इन्द्रका सुवर्णमय तेजस्वी वज्र (पर्वते यत् न समशीत) पर्वतपर भी मेघमें ही नहीं प्रभावित होता परंतु वह (श्नथिता) शत्रुको चूर्ण करनेमें समर्थ रहता है ॥ २ ॥

(अस्मै भीमाय पनीयसे) इस भयंकर तथा स्तुतिके योग्य इसके लिये (उषः न) उषाके समान प्रकाशित (नमसा शुभ्रे अध्वरे सं आ भर) नमस्कारपूर्वक शुभ्र यज्ञमें हवि लाकर भर दे। (यस्य धाम नाम श्रवसे) जिसका स्थान और नाम यशके लिये तथा (इन्द्रियं ज्योतिः अकारि) इंद्रियकी ज्योति प्रकाशके लिये बनाई गयी है (हरितः न अयसे) जैसे घोडे गतिके लिये हैं ॥ ३ ॥

हे (पुरुष्टुत इन्द्र) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! हे (प्रभूवसो) प्रभूत धनवाले ! (इमे ते ते वयं) वे ये हम तेरे ही हैं। (ये त्वा आरभ्य चरामसि) जो तेरा सहारा लेकर फिरते हैं। हे (गिर्वणः) स्तुतिके स्वामिन् ! (त्वत् अन्यः) तेरे सिवाय कोई दूसरा (गिरः नहि सघत्) हमारी स्तुतियोंको स्वीकार कर नहीं सकता। (क्षोणीः इव) प्रजाजनका जैसा राजा (नः तद् वचः प्रति हर्य) वैसा हमारे इस वचनका स्वीकार कर ॥ ४ ॥

भूरिं त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥ (७४)

हे इन्द्र (ते वीर्यं भूरि) तेरा पराक्रम बडा है। (तव स्मसि) हम भी तेरे ही हैं। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (अस्य स्तोतुः काम आ पृण) इस स्तोताकी इच्छा पूर्ण कर। (बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु) बडी द्यौ तेरे पराक्रमका अनुमान कराती है। (इयं च पृथिवी) और यह पृथिवी भी (ते ओजसे नेमे) तेरी शक्तिके सामने झुकी है ॥ ५ ॥

हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (त्वं तं महां उरुं पर्वतं) तूने उस महान् विशाल पर्वतके- मेघके- (वज्रेण पर्वशः चकर्तिथ) वज्रसे टुकडे टुकडे कर डाले। और (अपः) जलौंको जो (निवृताः) घेरे प्रकार से रुकथे (सर्तवा अवासृजः) बहनेके लिये छोड दिया। (विश्वं केवलं सहः सत्रा दधिषे) संपूर्ण शक्तिको तू साथ साथ धारण करता है ॥ ६ ॥

इस सूक्तमें जो वीरके गुण बताये हैं वे ये हैं—

१ महिष्ठः— महान् श्रेष्ठ

२ बृहत्— बडा

३ बृहद्रयिः— बहुत धन जिसके पास है।

४ सत्य शुष्मः— सच्चा बल जिसके पास है अपने बलका वा निश्चयसे अपना कर्तव्य करता ही रहता है।

५ तवस— बलवान्

६ यस्य दुर्धरं राधः— जिसका दुर्धर अरुण सामर्थ्य है सिद्धि प्राप्त करनेका सामर्थ्य जिसमें अनुपम है।

७ विश्व आयु — सब मानवोंके हितके लिये जो कार्य करता है

८ राधः— सामर्थ्य बल

९ ते इच्छये विश्वं अनु असत् — तेरे इच्छा करनेके लिये सब तयार रहते हैं।

१ (अथर्व अन्य काण्ड २)

१० इन्द्रस्य हिरण्ययः हर्यतः वज्रः श्रयितः— इन्द्रका तेजस्वी वज्र सबका पूर्ण कर सकता है।

११ भीमाः— भयंकर

१२ यस्य धाम श्राम इन्द्रियं ज्योतिः अवसे अकारि— जिसका धाम और श्रम इन्द्रके सामर्थ्यकी ज्योति रक्षाके लिये प्रकट करता है।

१३ पुरुष्टुतः— बहुतों द्वारा प्रशंसित

१४ प्रभू-वसुः— बहुत धनवान्

१५ वयं त्वा आरभ्य चरामसि— हम तेरा आधार करते हैं।

१६ नहि त्वदन्यः गिरः सघत— तेरे सिवाय दूसरा कोई हमारी स्तुतियोंका स्वीकार कर नहीं सकता।

१७ गिर्वणाः— प्रशंसाके योग्य।

१८ हे इन्द्र ! ते वीर्यं भूरि— हे इन्द्र ! तेरा पराक्रम बडा है।

१९ तव स्मसि— हम तेरे हैं।

२० हे मघवन् ! स्तोतुः कामं आ पृण— हे इन्द्र ! स्तोताकी इच्छा पूर्ण कर।

२१ बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु— यह बडी द्यौ तेरे सामर्थ्यका प्रकाश करती है।

२२ इयं पृथिवी ते ओजसे नेमे— यह पृथिवी तेरे सामर्थ्यके सामने नमती है।

२३ हे वज्रिन् ! इन्द्र ! त्वं तं महां उरुं पर्वतं वज्रेण पर्वशः चकर्तिथ— हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने उस बडे महान् पर्वत-मेघ-के वज्रसे टुकडे टुकडे किये।

२४ विश्वं केवलं सहः सत्रा दधिषे— सब बल सामर्थ्य तू साथ साथ अपनेमें धारण करता है।

[सूक्त १६]

(ऋषिः — १-१२ अयास्यः। देवता — बृहस्पतिः।)
(ऋ० १०।६८।१-१२)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १ ॥
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥
साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥
आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥

(सूक्त १६)

(उदप्रुतः वयः न) जलमें तैरनेवाले पक्षियोंकी तरह (रक्षमाणा) अपनी रक्षा करते हुए (वावदतः अभ्रियस्य घोषा इव) गर्जनेवाले मेघोंकी गर्जनाके समान और (गिरिभ्रजः मदन्तः ऊर्मयः न) पर्वतोंसे गिरनेवाले आनन्दपूर्ण जलप्रवाहोंके समान (अर्काः बृहस्पतिं अभि अनावन्) हमारे स्तोत्र बृहस्पतिकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

(आङ्गिरसः गोभिः सं नक्षमाणः) अंगरस विद्याको जाननेवाला गौओंके साथ रहता है। (भगः इव अर्यमणं इत् निनाय) भगके- ऐश्वर्यवान्के समान अर्यमाको- श्रेष्ठ मनवालेको हमारे पास लाता है। (जने मित्रः न) जनसमूहमें मित्रकी तरह (दंपती अनक्ति) पति पत्नी सजाकर प्रकाशते हैं। (आजौ आशून् इव) युद्धमें घोडोंके समान हे बृहस्पते! (वाजय) हमें बलवान् बना ॥ २ ॥

(साधु-अर्याः) सज्जनोंके पास रहनेवाली (अतिथिनीः) अतिथिके पास ले जाने योग्य (इषिराः) इच्छा करने योग्य (स्पार्हाः) इच्छा करने योग्य (सुवर्णाः) उत्तम रंगवाली (अनवद्यरूपाः) अनिन्दनीय सुंदर रूपवाली (गाः पर्वतेभ्यः वितूर्य) गौओंको पर्वतोंसे लाकर (निः ऊपे) फैलाते हैं (स्थिविभ्यः यवं इव) कोठियोंसे लाकर जौ को जैसा फैलाते हैं ॥ ३ ॥

(अर्कः ऋतस्य योनिं मधुना अवक्षिपन्) सूर्य जैसा यज्ञके स्थानको मधुसे भरता है, (द्योः उल्कां इव) द्युलोकसे उल्काको नीचे फेंकता है वैसा बृहस्पति (आप्रुषायन्) सींचता है, (बृहस्पतिः अश्मनः गाः उद्धरन्) बृहस्पति पाषाणसे गौओंका उद्धार करता है (भूम्याः त्वचं उद्ना इव बिभेद) भूमिकी त्वचाको जलके समान तोडता है [जिससे पर्याप्त घास उत्पन्न होता है।] ॥ ४ ॥

(ज्योतिषा तमः अन्तरिक्षात् अप आजत्) प्रकाशसे अन्धकारको अन्तरिक्षसे हटाता है (वातः उद्नः शीपालं इव) वायु जैसा पानीसे शैवालको हटाता है, (बृहस्पतिः अनुमृश्य वलस्य गाः आ चक्रे) वैसा बृहस्पति विचार करके वलकी गौओंको बाहर फैलाता है (वातः अभ्रं इव) वायु जैसा मेघको फैलाता है ॥ ५ ॥

(यदा) जब (अग्नितपोभिः अर्कैः) अग्निके समान ताप करनेवाले अर्कोंसे मंत्रोंसे (पीयतः वलस्य जसुं

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७ ॥
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद्बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥
सोषामविन्दत्स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥ ११ ॥
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥ (८३)

सेद्) जलनेवाले वलके बलको तोड दिया तब (वह्निः परिविष्टं जिह्वा आदत्) वातोंसे चलाये हुए अग्निको जिह्वा खाती है उस तरह (उस्रियाणां निधीः आविः अकृणोत्) गौओंके निधियोंको [जो वलने आवृत्त थे उनको सब लोगोंके हितार्थ] प्रकट किया ॥ ६ ॥

(बृहस्पतिः आसां स्वरीणां) बृहस्पतिने इन शब्द करनेवाली गायोंका (नाम अमत) नाम-पता-ज्ञान किया (यत् सदने गुहा) जो गुप्त स्थानमें था (पर्वतस्य त्मना उस्रियाः उत् आजत्) पर्वतकी गुहामेंसे स्वयं गौओंको बाहर निकाल दिया जैसा (शकुनस्य आण्डा भित्त्वा गर्भं) पक्षीके अण्डेको तोडकर बच्चा स्वयं बाहर आता है ॥ ७ ॥

(अश्ना पिनद्धं मधु) पत्थरसे ढके हुए मधुको-निधिमें बंद गौओंको- (पर्यपश्यत्) बृहस्पतिने जैसा देखा (दीने उदनि क्षियन्तं मत्स्यं न) थोडे जलमें रहनेवाले मत्स्यको जैसे देखते हैं। (बृहस्पतिः विरवेण विकृत्य) बृहस्पतिने विशेष शब्द करनेवाले वज्रसे उस निधिको- तोडकर (वृक्षात् चमसं न) वृक्षसे चमस बनाते हैं उस तरह उस स्थानसे (तत् निः जभार) उस मधुको-गौओंको-बाहर निकाल लाया ॥ ८ ॥

(स उषां अविन्दत्) उस बृहस्पतिने उषाको प्राप्त किया (सः स्वः) उसने प्रकाशको और (सः अग्निं) उसने अग्निको प्राप्त किया पश्चात् (सः अर्केण तमांसि वि बबाधे) उसने सूर्यसे अन्धेरेको विनष्ट किया। (बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (वलस्य गोवपुषः) वलके गोरूप धारण करनेवालेके शरीरसे (पर्वणः न) जोडोंसे चर्बी निकालते हैं वैसे (मज्जानं निर्जभार) चर्बीको निकाल लिया [अर्थात् वलको मारा।] ॥ ९ ॥

(हिमा इव) हिमकणोंसे (पर्णा मुषिता वनानि) पत्ते गिर पडे हुए धारण वन [दुःखी दीखते हैं उस तरह] (बृहस्पतिना) बृहस्पतिने छीनी गई (गाः वलः अकृपयत्) गौओंके लिये वल दुःखी हुआ। (अनानुकृत्यं अपुनः चकार) जिसका कोई अनुकरण न कर सके जो फिर होनेवाला नहीं ऐसा यह कर्म हुआ। (यात् सूर्यामासा मिथः उच्चरातः) सूर्य और चन्द्र मिलकर कार्य बारबार सम्पादन करते हैं [ऐसा यह कर्म हुआ है।] ॥ १० ॥

(कृशनेभिः श्यावं अश्वं न) आभूषणोंसे श्याम घोडेको सजाते हैं वैसे (पितरः नक्षत्रेभिः द्यां अभि अपिंशन्) पितरोंने नक्षत्रोंसे द्युलोकको सजाया। (रात्र्यां तमः अदधुः) रात्रीमें अन्धकार धार (अहन् ज्योतिः) दिनमें प्रकाशको रखा। (बृहस्पतिः अद्रिं भिनत्) बृहस्पतिने पर्वतको तोडा और (गाः विदत्) गौएं प्राप्त कीं ॥ ११ ॥

(इदं अभ्रियाय नमः अकर्म) यह हमने मेघको तोडने

जाने [बृहस्पति] के लिये नमस्कार किया (यः पूर्वीः अन्वानोनवीति) जो पूर्वके अनुक्रमसे उपदेश करता है (स बृहस्पतिः) वह बृहस्पति (गोभिः सः अश्वैः) गौओं और घोडों तथा (सः वीरेभिः सः नृभिः) वह वीरपुत्रों और नेताओंके साथ (नः वयः धात्) हमें दीर्घ-आयु देवे ॥ १२ ॥

इस सूक्तमें जो वीरताके कर्मोंका वर्णन आया है वे वीरताके कर्म बृहस्पतिने किये हैं। यह बृहस्पति इन्द्रके समान ही वज्रका प्रयोग करता है। इन्द्रके समान ही वलको मारता है और किलेमें बंद रही गौओंको मुक्त करता है।

१ हे बृहस्पते ! वाजो आशूत् इव वाजय— हे बृहस्पते ! घुडदौडके घोडोंकी तरह हमें बलवान् कर।

२ पर्वतेभ्य गाः बृहस्पतिः निः ऊपे— पर्वतकी गुफासे बृहस्पतिने गौवें छुडाईं।

३ साध्वर्याः अतिथिनीः इषिराः स्पार्हाः सुवर्णाः अनवद्यरूपाः— सज्जनोंके पास रहने योग्य अतिथिके योग्य गमनशील स्पृहणीय उत्तम रंगवाली सुंदर रूपवाली जो गौवें थीं। वे वलने चुराई थीं उनको पर्वतकी गुफामें रखा था, वहांसे बृहस्पतिने छुडाईं।

४ बृहस्पतिः अश्मनः गाः उद्धरत्— बृहस्पतिने पत्थरोंकी गुफामेंसे गौवें छुडाईं।

५ बृहस्पतिः अनुमृश्य वलस्य गाः आ वाजे— बृहस्पतिने विचार करके वलके अधीनताकी गौओंको छुडाया।

६ बृहस्पतिः अग्नितपोभिः अर्कैः वलस्य परिधः वज्रं भेत्— बृहस्पतिने अग्निके समान अस्त्रोंसे वलके वज्रका भेद किया।

७ उस्रियाणां निधीः आविः अकृणोत्— गौओंके निधियोंको प्रकट किया। पानीको बाहर निकाला।

८ बृहस्पतिः स्तरीणां आसां सदने गुहा यत् नाम स्वयं अमत— बृहस्पतिने ढंकाव करनेवाली गौओंका स्थान पर्वतकी गुहामें है यह ज्ञान किया।

९ उस्रियाः पर्वतस्य त्मना आजत्— गौवें पर्वतकी गुहासे स्वयं बाहर आ गयीं।

१० अश्ना पिनद्धं मधु पर्यपश्यत् बृहस्पतिः विरवेण विकृत्य तत् निः जभार— पत्थरसे मधु ढका है, गुहामें गौवें बंद हैं यह बृहस्पतिने देखा, विशेष शब्द करनेवाले वज्रसे उस गुहाको तोडा और गौओंको बाहर निकाला।

११ बृहस्पतिः गोवपुषः वलस्य मज्जानं पर्वणा निः जभार— बृहस्पतिने गौहरणकारी वलकी मज्जा बाहर निकाली और पर्व तोड दिये।

१२ बृहस्पतिना गाः वलः अकृपयत्— बृहस्पतिने गौओंको मुक्त किया इससे वलको बडा दुःख हुआ।

१३ अनानुकृत्यं अपुनः चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः— यह इस जो बृहस्पतिने किया उसका कोई अनुकरण कर नहीं सकता न कोई फिर ऐसा कर सकता है इसका वर्णन सूर्य और चन्द्र बारंबार करते हैं।

१४ बृहस्पतिः अद्रिं भिनत् गाः विदत्— बृहस्पतिने पर्वतको तोडा और गौवें प्राप्त कीं।

१५ इदं अभ्रियाय नमः अकर्म— यह हम अभ्रमें स्थित बृहस्पतिको नमस्कार करते हैं।

१६ बृहस्पतिः गोभिः अश्वैः वीरेभिः नृभिः नः वयो धात्— बृहस्पति गौओं घोडों और पुत्रों और नेताओंके साथ हमें पूर्ण आयु देवे।

इस सूक्तमें बृहस्पतिका यह प्रशंसनीय कर्म है ऐसा वर्णन है। यह बृहस्पति वज्र धरता है, किला तोडता है, वलको मारता है और गौओंको मुक्त करता है। ऐसे ही इन्द्रके कर्म अन्यान्य वेदमन्त्रोंमें कहे हैं। बृहस्पतिको अभ्रिय १२ में मेघमें रहा है। अभ्रमें रहनेवाला सूर्य होता है। विद्युत् भी मेघोंमें रहती है।

यह तथा ऐसे वर्णनके सूक्त आलंकारिक वर्णनके माने जाते हैं। वल मेघ है विद्युत् वज्र है सूर्य किरणें गौवें हैं। उदयके पूर्व ये सूर्यकिरण रूपी गौवें वलने अपने किलेमें बंद की थीं। यह ब्रह्मणस्पतिने खोली और बाहर निकालीं।

स उषां अविन्दत् स स्वः सः अग्निं स अर्केण तमांसि वि बबाधे (मन्त्र ९)— उस बृहस्पतिने उषा तथा पश्चात् प्रकाश अग्नि और पश्चात् सूर्य लाया और अन्धकारको दूर किया। इस मंत्रसे स्पष्ट है कि रात्रीके अन्धेरेने मेघोंने किरणोंको छिपाया था। सूर्य आनेसे वह वल राक्षस मर गया और आपकी किरणें स्वेच्छा विहार करने लगीं।

यह सूक्त तथा ऐसे वर्णन करनेवाले अन्य सूक्त इस अर्थ पकडके वर्णन समझने योग्य हैं।

[सूक्त १७]

(ऋषिः — १-११ कृष्णः; १२ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

(ऋ० १०।४३।१-११)

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥
न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥ ५ ॥

(सूक्त १७)

(मे मतयः) मेरी बुद्धिपूर्वक की हुई स्तुतियां (स्वर्विदः सध्रीचीः) आत्मज्ञानसे युक्त सीधी (विश्वाः उशतीः) सब कामना युक्त (अच्छा इन्द्रं आ अनूषत) अच्छी तरह इन्द्रको प्राप्त होती हैं। ये स्तुतियां (मघवानं ऊतये) इन्द्रको अपनी रक्षाके लिये इस प्रकार प्राप्त होती हैं (शुन्ध्युं न मर्यं पतिं) शुद्ध पवित्र मानव पतिको (यथा जनयः परि ष्वजन्ते) जैसी स्त्री आलिंगन देती है ॥ १ ॥

हे (पुरुहूत) सबके द्वारा जिसकी स्तुति होती है ऐसे इन्द्र! (मे मनः त्वद्रिक्) मेरा मन तेरे पास आकर (न घ अप वेति) वापस नहीं जाता (त्वे इत् कामं शिश्रय) तेरे पास ही मैंने अपनी कामना रखी है। हे (दस्म) दर्शनीय! (राजा इव बर्हिषि अधि निषदः) राजाके समान इस आसनपर बैठ। (अस्मिन् सोमे ते सु अवपानं अस्तु) इस सोममें तेरा उत्तम पान हो ॥ २ ॥

(अमतेः उत क्षुधः) दुर्बुद्धि और भूखसे (इन्द्रः विषूवृत्) इन्द्र सब प्रकार छुड़ानेवाला है। (सः इत् मघवा वस्वः रायः ईशते) वही इन्द्र निवास देनेवाले धनका स्वामी है। (इमे सप्त सिन्धवः) ये सात नदियां (प्रवणे) नीचेके मार्गमें बहती हुई (तस्य वृषभस्य शुष्मिणः इत्) उस बलवान् और शूरके ही पीछे (वयः वर्धन्ति) शक्ति बढ़ाती हैं ॥ ३ ॥

(सुपलाशं वृक्षं वयः आसदन् न) उत्तम पत्तोंवाले वृक्षपर पक्षी बैठते हैं उस तरह (मन्दिनः चमूषदः सोमासः इन्द्रं) आनंद बढ़ानेवाले पात्रोंमें रहनेवाले सोम इन्द्रका आश्रय करते हैं। (एषां अनीकं शवसा प्र दविद्युतत्) इनका तेज बलसे चमकता रहा और (आर्यं ज्योतिः मनवे विदत्) आर्य तेज मनुष्यके लिये प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

(देवने श्वघ्नी कृतं न विचिनोति) जैसे जुआ खेलनेवाला जीतनेके समय दांव चुनता है उस प्रकार (यत् संवर्गं सूर्यं मघवा जयत्) मघवा इन्द्रने सूर्यको जीता। (मघवन्) हे इन्द्र! (न पुराणः न उत नूतनः) पुराना या नया (अन्यः ते तत् वीर्यं न अनुशकत्) दूसरा कोई तेरे इस पराक्रमका अनुकरण नहीं कर सकता है ॥ ५ ॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६ ॥

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

(मघवा विशं विशं पर्यशायत) इन्द्र प्रत्येक प्रजाजनके पास होता है (वृषा जनानां धेना अवचाकशत्) यह बलिमान् इन्द्र लोगोंकी वाणीको सुनता है। (यस्य अह सवनेषु शक्रः रण्यति) जिसके सोमयागमें समर्थ इन्द्र आनन्द मनाता है (सः तीव्रैः सोमैः पृतन्यतः सहते) वह तीखे सोमरसोंसे शत्रुसेनाको जीत लेता है ॥ ६ ॥

(आपः न सिन्धुं अभि) जैसे जलप्रवाह नदीकी ओर जाते हैं और (कुल्या ह्रदं इव) जैसे नाले तालाबके पास जाते हैं वैसे (सोमासः इन्द्रं समक्षरन्) सोमरस इन्द्रके पास बहते हैं। (सादने विप्राः अस्य महः वर्धयन्ति) यज्ञस्थानमें ब्राह्मण इस इन्द्रके महत्त्वको बढाते हैं, जैसी (दिव्येन दानुना वृष्टिः यवं न) आकाशसे दानरूप आयी वृष्टि जौको बढाती है ॥ ७ ॥

(क्रुद्धः वृषा न) क्रुद्ध हुए बैलके समान (रजःसु आ पतयत्) सारे स्थानोंमें वह पहुंचता है (यः इमाः आपः अर्यपत्नीः अकृणोत्) जिसने इन जलप्रवाहोंको आर्योंकी पत्नी सम बनाया- आर्योंका सहायक बनाया (सः मघवा) उस इन्द्रने (सुन्वते जीरदानवे हविष्मते मनवे) सोमयाग करनेवाले दान देनेवाले हवि अर्पण करनेवाले मनुष्यके लिये (ज्योतिः अविन्दत्) प्रकाश दिया ॥ ८ ॥

(ज्योतिषा सह परशुः उज्जायताम्) ज्योतिके साथ परशु ऊपर उठे विजय प्राप्त करे; (ऋतस्य सुदुघाः पुराणवत् भूयाः) सत्यकी दुधारू गौवें पुरानी जैसी- वैसी होवें। (अरुषः शुचिः भानुना विरोचताम्) अग्नि अपने तेजसे प्रकाशे; वैसी तरह (सत्पतिः स्वः न शुक्रं शुशुचीत) सज्जनोंका पालक इन्द्र सूर्यके समान तेजस्वी रीतिसे चमके ॥ ९ ॥

हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (वयं गोभिः दुरेवां अमतिं तरेम) हम गौओंसे दुर्मति और निर्धनता दूर करेंगे (विश्वां क्षुधं यवेन) सब भूखको जौसे दूर करेंगे (वयं राजभिः) हम राजाओंके साथ (प्रथमाः) मुखिया होकर (अस्माकेन वृजनेन धनानि जयेम) अपने निज बलसे धनोंको जीतेंगे ॥ १० ॥

(बृहस्पतिः नः अघायोः) बृहस्पति हमें पापीसे (पश्चात् उत्तरस्मात् अधरात्) पीछेसे ऊपरसे नीचेसे (परि पातु) बचावे। (नः सखा इन्द्रः) हमारा मित्र इन्द्र (पुरस्तात् उत मध्यतः) हमें सामनेसे

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥ (ऋ ७।९७।१०) (९८)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

सम्पत्ति बढावे और (सखिभ्यः वरिवः कृणोतु) हमारे मित्रोंके लिये धन देवे ॥ ११ ॥

हे बृहस्पते ! (युवं इन्द्रः च) तू और इन्द्र दोनों (दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः) दिव्य और पार्थिव धनके (ईशाथे) स्वामी हैं। इसलिये (स्तुवते कीरये चित् रयिं धत्तं) स्तुति करनेवाले ज्ञानीके लिये धन दो। और (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हमारी तुम कल्याणोंके साथ रक्षा करो ॥ १२ ॥ (ऋ. ७।९७।१०)

इस सूक्तमें बृहस्पति और इन्द्रको नमन करके जो वीरके गुण कहे हैं वे ये हैं—

१ न स्वर्विदः सध्रीचीः विश्वा उशतीः मतयः इन्द्रं मघवान् अनूषत— आत्मज्ञानसे युक्त मनकी युक्त सब प्रकाशवाली मेरी स्तुतियां इन्द्रकी ही होती हैं।

२ यथा जनयः शुन्ध्युं मर्यं पतिं परि ष्वजन्त— जैसी स्त्रियां शुद्ध मानव पतिको ही आलिंगन देती हैं उस तरह मेरी स्तुतियां इन्द्रकी ही स्तुति करती हैं।

३ मघवानं ऊतये— इन्द्रकी स्तुति हम अपनी रक्षाके लिये करते हैं।

४ हे पुरुहूत ! त्वे इत् मे मनः कामे शिश्रय, न चा त्वद्रिक् अपवेति— हे बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तेरे ऊपर मेरा मन अपेक्षा आश्रय करता है और वह तेरेसे कभी पीछे हटता नहीं।

५ हे इन्द्र ! राजा इव बर्हिषि अधि निषद— हे इन्द्र ! राजाके समान तू इस आसन पर बैठ।

६ इन्द्रः अमतिः उत क्षुधः विपूवत्— इन्द्र बारि द्र्य और भूखको दूर करता है।

७ सः मघवा वस्वः रायः इशाते— वह धनवान इन्द्र निवास करनेवाले धनोंका स्वामी है।

८ इम सप्त सिन्धवः प्रवणे वृषभस्य शुष्मिणः तस्य वयः वर्धन्ति— ये सात नदियां जैसी नीचेके स्थानमें बहती हैं उस तरह इस बलवान् समर्थ इन्द्रका बल बढाती हैं।

९ एनं अमर्धेः रायसा चिनवन्तम्— इसका प्रेम अन्नसे बढता।

१० मघवे आर्यं स्वः ज्योतिः विदत्— मानवके लिये आर्य तेज प्राप्त किया।

११ मघवा सूर्यं अजयत्— इन्द्रने सूर्यको प्राप्त किया।

१२ न पुराणाः न उत नूतनः अस्य ते तत् वीर्यं न अनुब्यापत्— पुराना या नया कोई दूसरा तेरे वीर्यका अनुकरण नहीं कर सकता।

१३ विश्वेविश्वा मघवा पर्यशायत— प्रत्येक मनुष्यमें इन्द्र रहता है।

१४ अनार्या येषा वृषा अवसात्कशात्— मानवोंके पासका अन्याय इन्द्र हटाता है।

१५ स वृतन्यतः सहते— वह सेना लेकर आनेवाले शत्रुका पराभव करता है।

१६ आह्वने विप्राः महः वर्धयन्ति— यज्ञमें ज्ञानी इसका महत्व बढाते हैं।

१७ न इव वृषा न स्वत्र सु वा पतयत्— जैसे बैलकी तरह वह सब स्थानोंमें जाता है।

१८ स मघवा वीरत्वाने मनवे ज्योतिः अविन्दत्— वह धनवान् इन्द्र शूर मानवके लिये प्रकाश देता है।

१९ तस्तुः ज्योतिषा सह उज्ज्ञायताम्— शत्रु तेजसे विजयी हो।

२० ऋतस्य सुदुघा भूया— यज्ञकी धनें बहुत हों।

२१ आशिषः मानुषाः विरोचताम्— सुद अपने तत्त्व बढावे।

२२ सत्पतिः क्यां न सखः स्वाधीत— सज्जनोंका पालक आत्मज्ञानिक समान विशुद्ध तेजसे प्रकाशता है।

२३ गोभिः दुर्मतिं अमतिं तरेम— गौओंसे हम अज्ञान और बुद्धिहीनताको दूर करेंगे।

२४ यवेन विश्वां क्षुधं तरेम— जौसे सब प्रकारकी भूखको दूर करेंगे।

२५ वयं राजभिः प्रथमा असामिन वृजनेन धनानि जयेम— हम क्षत्रियोंके साथ रहकर बलसे हम प्रथम अनगनत धनोंको जीतेंगे।

२६ बृहस्पतिः अघायाः नः परि पातु— ज्ञानी सर्वत्र हमारी रक्षा करे।

[सूक्त १८]

(ऋषिः — १-३ मधातिथिः प्रियमेधश्च; ४-६ वसिष्ठः। देवता — इन्द्रः।)

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥ (१०७)

---

४७ इन्द्रा य सखा सखिभ्यः [illegible] — [illegible] हमारा मित्र हम मित्रोंके लिए [illegible] ।

४८ [illegible] युवं इन्द्रः च दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः [illegible] — हे [illegible] । तू और [illegible] तुम दोनों दिव्य और पार्थिव धनके स्वामी हो। [illegible]

४९ [illegible] — स्तुति करनेवाले [illegible]

५० यूयं [illegible] — [illegible]

॥ यहां द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त १८)

हे इन्द्र ! (वयं उ तत्-इत् अर्थाः) हम [illegible] (त्वायन्तः सखायः) [illegible] (उक्थेभिः त्वा जरन्ते) [illegible] ॥ १ ॥ (ऋ. [illegible])

हे (वज्रिन्) [illegible] (अपसः नविष्टौ) [illegible] (न घ ईं अन्यत् आ पपन) [illegible] (तव इत् उ स्तोमं चिकेत) [illegible] ॥ २ ॥ (ऋ. [illegible])

[illegible] (सुन्वन्तं इच्छन्ति) [illegible] (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) [illegible] (अतन्द्राः प्रमादं यन्ति) [illegible] ॥ ३ ॥ (ऋ. [illegible])

हे इन्द्र ! हे (वृषन्) बलवान् ! (वयं त्वायवः) [illegible] (अभि प्र णोनुमः) [illegible] है। हे (वसो) बसानेवाले ! (नः अस्य तु विद्धि) हमारे इस कर्मको जान ॥ ४ ॥ (ऋ. [illegible])

(अर्यः) तू [illegible] (निदे वक्तवे) निन्दा [illegible] और (अराव्णे) [illegible] (मा रन्धीः) [illegible] (मम क्रतुः त्वे अपि) मेरा [illegible] ॥ ५ ॥ (ऋ. [illegible])

(त्वं सप्रथः वर्म असि) तू मेरा [illegible] (वृत्रहन्) [illegible] इन्द्र ! तू (पुरः-योधः च) आगे [illegible] युद्ध करनेवाला है। (त्वया युजा प्रति ब्रुवे) [illegible] ॥ ६ ॥ (ऋ. [illegible])

इस सूक्तके बोधप्रद वचन ये हैं—

१ [illegible] वज्रिन् — [illegible]
२ वृषन् — [illegible]
३ वसु — [illegible]
४ त्वं सप्रथाः वर्म असि — तू हमारा [illegible]
५ वृत्रहन् — [illegible]
६ पुरोयोधः — [illegible]

[illegible]

[illegible] —

१ वयं तदिदर्थाः त्वायन्तः सखायः — [illegible]
[illegible]
२ त्वा जरन्ते — [illegible]
३ न [illegible] — [illegible]

[सूक्त १९]

(ऋषिः — १-७ विश्वामित्रः । देवता — इन्द्रः ।)

(ऋ० ३।३७।१-७)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥ (१११)

---

४ तव स्तोमं चिकेत— तेरा स्तोत्र ही हम जानते हैं।

५ वयं त्वायवः अभि प्र णोनुमः— हम तेरे पास आते और तुझे ही प्रणाम करते हैं।

६ नः अस्य विद्धि— हमारे इस स्तोत्रको तू जान।

७ मम क्रतु त्वं अपि— मेरा यज्ञ तेरे लिये ही है।

८ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं— देव यज्ञकर्ताको चाहते हैं।

९ स्वप्नाय न स्पृहयन्ति— देव सुस्तको चाहते नहीं।

१० अतन्द्राः प्र मादं यन्ति— उद्योगी विशेष आनन्दको प्राप्त करते हैं।

११ सिंह वक्त्वे भराण्ये नः मा रन्धीः— सिंहके तुल्य भयानक तथा कंचुकके अर्धीन हमें देकर हमारा नाश न कर।

(सूक्त १९)

(वार्त्र-हत्याय) शत्रुओंको मारनेके लिये (शवसे) बल प्राप्तिके लिये (पृतनाषाह्याय) शत्रुसेनाओंको जीत लेनेके लिये हे इन्द्र ! (त्वा आ वर्तयामसि) तुझे हम अपनी ओर मोड लाते हैं ॥ १ ॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों शक्तियोंवाले इन्द्र ! (वाघतः) तेरे उपासक (ते मन उत चक्षुः) तेरे मनको और चक्षुको (अर्वाचीनं सु कृण्वन्तु) हमारी ओर उत्तम रीतिसे करें ॥ २ ॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों शक्तियोंवाले इन्द्र ! (अभि-माति षाह्ये) शत्रुओंपर विजय पानेके लिये (विश्वाभिः गीर्भिः) सब वाणियोंसे (ते नामानि ईमहे) तेरे नामोंको हम लेते हैं ॥ ३ ॥

(पुरुष्टुतस्य) अनेकों द्वारा प्रशंसित (चर्षणी-धृतः) मनुष्योंको सहारा देनेवाले (इन्द्रस्य) इन्द्रके (शतेन धामभिः) सौ स्थानों या सामर्थ्योंसे (महयामसि) उसकी महिमा गाते हैं ॥ ४ ॥

(पुरुहूत इन्द्रं) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रको (वृत्राय हन्तवे) शत्रुको मारनेके लिये और (भरेषु वाजसातये) युद्धोंमें धन प्राप्त करनेके लिये (उप ब्रुवे) बुलाते हैं ॥ ५ ॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (वाजेषु सासहिः भव) तू युद्धोंमें शत्रुको जीतनेवाला हो। (वृत्राय हन्तवे) शत्रुको मारनेके लिये (त्वां ईमहे) तुझे बुलाते हैं ॥ ६ ॥

(द्युम्नेषु) धन प्राप्त करनेमें (पृतनाज्ये) सेनाके साथ युद्ध करनेके समय (पृत्सु तूर्षु) सेनाओंका शीघ्र पराभव करनेके समय (श्रवःसु च) यश प्राप्तिके समय (अभिमातिषु) शत्रुओंका सामना करनेके समय हे इन्द्र ! (साक्ष्व) हमारे साथ रह ॥ ७ ॥

इसमें वीरताके निर्देश ये हैं—

१ वार्त्र-हत्य— शत्रुको मारना

२ शवः— बल

३ पृतना-साह— शत्रुसेनाका पराभव करना

४ शतक्रतुः— सैकडों शक्तिवाला

५ अभिमाति-साह— शत्रुका पराभव करना

६ चर्षणी धृत्— मनुष्योंका आधार

७ वृत्राय हन्तवे— इस शत्रुको मारना

[सूक्त १०]

(ऋषिः — १-४ विश्वामित्रः; ५-७ गृत्समदः। देवता — इन्द्रः।)

युध्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः। उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ५ ॥
इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥ ७ ॥ (११८)

---

८ नरेषु वाजसातये— युद्धमें धन प्राप्त करना
९ पार्येषु सासहिः— युद्धमें विजयी
१० पृतनाषाह्यं— शत्रुसेनाका पराभव
११ पृत्सु तूर्वे— शीघ्र पराभव करनेके लिये
१२ अभिमातिः— शत्रुको जीतना।

भक्ति— १ ते मनः चक्षुः अर्वाचीन कृणवत्— तेरा मन और आंख हमारी ओर आकर्षित हो।
२ ते नामानि ईमहे— तेरे नाम लेते हैं।
३ शतेन धामभिः मदयामसि— सबकी स्तोत्रोंसे तेरी महिमा गाते हैं।
४ त्वां हवामहे— तेरी प्रार्थना करते हैं।
५ सखाय— हमारे साथ रह।

(सूक्त १०)

हे (शतक्रतो इन्द्र) हे सैकडों सामर्थ्यवान् इन्द्र! (नः ऊतये) हमारी रक्षा करनेके लिये (युध्मिन्तमं) बल बढानेवाले (द्युम्निनं) बलदायी तेजस्वी (जागृविं सोमं) जागृति रखनेवाले सोमरसको (पाहि) पी॥ १॥ (ऋ. ३।३७।८)

हे शतक्रतो इन्द्र! (पञ्चसु जनेषु) पांच प्रकारके लोगोंमें (या ते इन्द्रियाणि) जो तेरी शक्तियां हैं (तानि ते आ वृणे) उनको तुमसे मैं प्राप्त करता हूं॥ २॥ (ऋ. ३।३७।९)

हे इन्द्र! (बृहत् श्रवः अगन्) तूने बडा यश प्राप्त किया है। (दुष्टरं द्युम्नं दधिष्व) दुस्तर तेजको धारण कर। (ते शुष्मं उत् तिरामसि) तेरे बलको हम बहुत बढाते हैं॥ ३॥ (ऋ. ३।३७।१०)

हे (शक्र) सामर्थ्यवान्! (अर्वावतः नः आ गहि) पाससे हमारे पास आ (अथ उ परावतः) और दूरसे भी आ। हे (अद्रिवः इन्द्र) पहाडी किलेमें रहनेवाले इन्द्र! (यः ते उ लोकः) जो तेरा स्थान हो (ततः इह आ गहि) वहांसे यहां आ॥ ४॥ (ऋ. ३।३७।११)

हे (अंग) प्रिय! (इन्द्रः महत् भयं) इन्द्र बडे भयके (अभी-षत्) साथ मुकाबला करता है और उसको (अप चुच्यवत्) दूर भगाता है (हि सः स्थिरः विचर्षणिः) क्योंकि वह स्थिर है और उत्तम देखनेवाला है॥ ५॥ (ऋ. २।४१।१०)

(इन्द्रः च नः मृळयाति) इन्द्र हमें सुखी करता है इसलिये (अघं नः पश्चात् न नशत्) पाप हमारे पीछे नहीं लगता और (भद्रं नः पुरः भवाति) कल्याण हमारे सन्मुख रहेगा॥ ६॥ (ऋ. २।४१।११)

(इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि) इन्द्र सब दिशाओंसे (अभयं करत्) निर्भयता करता है क्योंकि वह (शत्रून् जेता विचर्षणिः) शत्रुओंका जीतनेवाला और सबका विशेष रीतिसे देखभाल करनेवाला है॥ ७॥ (ऋ. २।४१।१२)

इस सूक्तमें और इन्द्रके गुण ये वर्णन किये हैं—
१ शतक्रतुः— सैकडों शक्तियोंवाला, सैकडों कर्मोंका कर्ता
२ इन्द्रः— (इन् द्रः) शत्रुका विदारण करनेवाला
३ शक्रः— सामर्थ्यवान्,
४ अंगः— प्रिय
५ नः ऊतये— हमारी रक्षा करनेके लिये यत्न कर

[सूक्त-२१]

(ऋषिः — १-११ सव्यः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ १।५३।१-११)

न्यूषु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥

---

६ पञ्चसु जनेषु ते इन्द्रियाणि आ वृणे— पञ्च जनोंमें जो तेरी शक्तियां हैं उनको मैं प्राप्त करता हूं।

७ बृहत् श्रवः असाम्— हमारा यश बडा है।

८ दुध्रं शुष्मं दधीष्व— तू दुर्धर तेज धारण करता है।

९ ते शुष्मं वयं तिरामसि— तेरे बलका हम बहुत वर्णन करके बढाते हैं।

१० अद्रिवः— वज्रधारी किलेमें रहनेवाला

११ महत् भयं अमीवत् अप चुच्यवत्— बडे भयका सुधार करके उसको दूर करता है।

१२ सः हि स्थिरः विचर्षणिः— वह स्थिर रहता है और सब प्रजाका विशेष निरीक्षण करता है।

१३ इन्द्रः नः मृळयाति— इन्द्र हमें सुखी करता है।

१४ अघं नः पश्चात् न नशत्— इस कारण पाप हमारा पीछा नहीं करता।

१५ भद्रं भवाति नः पुरः— कल्याण हमारे सामने रहता है।

१६ इन्द्रः सर्वाभ्य आशाभ्यः अभयं करत्— इन्द्र सब दिशाओंसे निर्भयता करता है।

१७ धामन् क्षेता विचर्षणिः— वह इन्द्र मनुष्योंको [illegible] और सब प्रजाजनोंकी देखभाल करता है।

इन्द्रका वर्णन—

१ द्युम्नितमः— बल बढानेवाला

२ शुभ्रः— चमकीला तेजस्वी मेघोंमें चमकनेवाला

३ मादयिष्णुः— आनंद देनेवाला सुखसे आने न देने वाला। सोमरस पीनेसे ये लाभ होते हैं।

(सूक्त २१)

(महे वाचं नि सु प्र भरामहे) महान् इन्द्रके लिये हम उत्तम स्तुति करेंगे। (विवस्वतः सदने इन्द्राय गिरः) विवस्वान्के स्थानमें इन्द्रके लिये स्तुतियें होती रहती हैं। (ससतां इव) सोनेवालोंके रत्न जैसे चोर चुराता है उस तरह (नू चित् हि रत्नं अविदन्) शीघ्र ही उस भक्तने रत्न इनसे प्राप्त किया। (दुष्टुतिः द्रविणोदेषु न शस्यते) निन्दा धनका दान करनेवालोंके लिये योग्य नहीं होती ॥ १ ॥

हे इन्द्र! (अश्वस्य दुरः) तू घोडोंका दान करता है (गोः दुरः असि) तू गौओंका दाता है (यवस्य दुरः) तू अन्नका दाता है (वसुनः इनः पतिः) तू धनका स्वामी और रक्षक है (शिक्षानरः प्रदिवः) तू पुराने कालसे मानवोंका सहायक है (अ-काम-कर्शनः) भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तू (सखिभ्यः सखा) मित्रोंके लिये मित्र है अतः (तं इदं गृणीमसि) उसकी यह स्तुति हम गाते हैं ॥ २ ॥

हे (शचीव पुरुकृत् द्युमत्तम इन्द्र) शक्तिमन् बहुत कर्मोंको करनेवाले तेजस्वी इन्द्र! (तव इत् इदं वसु अभितः चेकिते) तेरा ही यह सब धन है यह चारों ओर प्रतीत होता है। हे (अभिभूत) सबको पराभूत करनेवाले! (अतः संगृभ्य आ भर) इसलिये इस धनका इकट्ठा करके भर दे। (त्वायतः जरितुः कामं मा ऊनयीः) तेरी भक्ति करनेवाले स्तोताकी कामनामें न्यूनता न कर ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥
ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥
त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥

(एभिः द्युभिः सुमनाः) इन तेजोंसे उत्तम मनवाले हो (एभिः इन्दुभिः) इन सोमरसोंसे प्रसन्नचित्त हो (गोभिः अश्विना अमतिं निरुन्धानः) गौओं और घोडोंके साथ हमारी निर्बुद्धतारूप दरिद्रताको प्रतिबंध कर। (इन्दुभिः दस्युं) सोमरसोंके बलसे शत्रुको (इन्द्रेण) इन्द्रकी सहायतासे (दरयन्तः) फाडते हैं (युत-द्वेषसः इषा सं रभेमहि) और शत्रुओंको दूर करके अन्नके साथ हम संयुक्त होवें ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! (राया सं) हम धनसे युक्त हों (इषा सं रभेमहि) अन्नसे युक्त हों (अभिद्युभिः पुरुश्चन्द्रैः वाजेभिः सं) तेजस्वी आल्हाददायक धान्योंके साथ हम युक्त हों तथा (गो-अग्रया अश्वावत्या वीरशुष्मया) गौओंकी प्रधानता और घोडोंसे युक्त तथा वीरोंके बलसे प्रभावी (देव्या प्रमत्या सं रभेमहि) आनन्दमयी दिव्यमतिसे हम संयुक्त हों ॥ ५ ॥

हे (सत्पते) सज्जनोंके स्वामी! (वृत्रहत्येषु) शत्रुके मारनेके कर्मोंमें (ते मदाः ते सोमासः त्वा अमदन्) उन आनन्ददायक सोमरसोंने तुझे आनन्द दिया और (तानि वृष्ण्या) उन वीरोचित कर्मोंने तुझे प्रसन्न किया। (यत् कारवे बर्हिष्मते) जो तू यज्ञकर्ता स्तोताके लिये (दश सहस्राणि वृत्राणि) दस हजार शत्रुओंको (अप्रति नि बर्हयः) अप्रतिम रीतिसे मार डाला ॥ ६ ॥

तू (युधा युधं धृष्णुया) युद्ध करनेके उत्साहसे युद्धके प्रति शत्रुको पराभव करनेकी तैयारीसे (उप घ इत् एषि) जाता है। (पुरा इदं पुरं ओजसा सं हंसि) शत्रुके इस किलेको अपने बलसे तोडता है। हे इन्द्र! (यत् नम्या सख्या) शत्रुको नमानेवाले मित्रके साथ (परावति) दूर रहनेवाले (नमुचिं नाम मायिनं) मायावी नमुचिको (नि बर्हयः) मार डाला ॥ ७ ॥

(अतिथिग्वस्य वर्तनी) अतिथिको [illegible] देनेवालेके मार्गमें जानेवाले (करञ्जं उत पर्णयं) करञ्ज और पर्णयको (त्वं तेजिष्ठया वधीः) तूने तेजस्वी शस्त्रसे मार डाला। (ऋजिश्वना परिषूता) ऋजिश्वासे प्रेरित हुए (अनानुदः वङ्गृदस्य) अदानशील वंगृदके (शता पुरः) सौ पुर जो थे (त्वं अभिनत्) तूने तोड दिये ॥ ८ ॥

(अबन्धुना सुश्रवसा उपजग्मुषः) बिना बन्धुके सुश्रवाके ऊपर हमला किये [illegible] (एतान् द्विः दश जनराज्ञः) [illegible] बीस जनराजोंको तथा उनके (षष्टिं सहस्रा नवतिं नव) साठ हजार निन्नानवे सैनिकोंको (दुष्पदा रथ्या चक्रेण) [illegible] रथचक्रसे तुमने (नि अवृणक्) मार डाला इसलिये (श्रुतः) तुम्हारी ख्याति हुई ॥ ९ ॥

त्वमा॑विथ सु॒श्रव॑सं॒ तवो॒तिभि॒स्तव॒ त्राम॑भिरिन्द्र॒ तूर्व॑याणम् ।
त्वम॑स्मै॒ कुत्स॑मतिथि॒ग्वमा॒युं म॒हे राज्ञे॒ यूने॑ अरन्धनायः ॥ १० ॥
य उ॒दृ॒चीन्द्र॑ दे॒वगो॑पाः॒ सखा॑यस्ते शि॒वत॑मा॒ असा॑म ।
त्वां स्तो॑षाम॒ त्वया॑ सु॒वीरा॒ द्राघी॑य॒ आयुः॑ प्रत॒रं दधा॑नाः ॥ ११ ॥ (११९)

(त्वं तव ऊतिभिः) तू अपनी संरक्षणशक्तियोंसे (सुश्रवसं आविथ) सुश्रवाकी रक्षा की और हे इन्द्र! (तव त्रामभिः तूर्वयाणं) तूने अपनी रक्षाओंसे तूर्वयाणकी रक्षा की। (त्वं अस्मै महे यूने राज्ञे) तूने इस महान् तरुण राजाका हित करनेके लिये (कुत्सं अतिथिग्वं आयुं) कुत्स अतिथिग्व आयुको (अरन्धनायः) वशमें किया ॥ १० ॥

हे इन्द्र! (उदृचि) वेदमंत्रके पाठमें (ये देवगोपाः) जो देवोंके द्वारा सुरक्षित हुए थे (ते सखायः) तेरे मित्र हम हैं वे (शिवतमाः असाम) उत्तम कल्याणसे युक्त हों। (त्वां स्तोषामः) हम तेरी स्तुति करते हैं। (त्वया सुवीराः) तेरे साथ रहनेसे उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर हम (द्राघीयः आयुः प्रतरं दधानाः) दीर्घ आयुको अधिक लंबी बनाकर धारण करनेवाले हों ॥ ११ ॥

इस सूक्तमें वीरताका वर्णन करनेवाले ये मंत्रभाग हैं—

१ अश्वस्य दुरः गोः दुरः असि यवस्य दुरः— घोडे गौवें और जौका तू देनेवाला है।

२ वसुनः इनस्पतिः— धनका तू स्वामी है।

३ शिक्षानरः प्रदिवः अकामकर्शनः — उत्तम मान योग्य सहायक और उनके कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है।

४ सखिभ्यः सखा— मित्रोंका तू मित्र है।

५ शचीव इन्द्र! पुरुकृत् द्युमत्तम — हे शक्तिमान् तेजस्वी इन्द्र! अनेक कर्मोंके कर्ता तू हो।

६ तव इत् इदं अभितः वसु चेकिते— यह जो चारों ओर धन है वह तेरा ही है ऐसा सब जानते हैं।

७ अतः संगृभ्य हे अभिभूत! आ भर— इसलिये ग्रहण करके हे वीर! हमें धन लाकर भर दे।

८ स्तोतुः जरितुः कामं मा ऊनयीः — तेरे आश्रयमें आये स्तोताकी इच्छामें न्यून न कर।

९ एभिः द्युभिः सुमनाः— इन तेजस्वी विचारोंसे उत्तम मनवाला हो।

१० अमतिं गोभिः निरुन्धानः — दरिद्रताको गौओंसे प्रतिबन्धित कर।

११ दस्युं दारयन्तः— शत्रुको हम मारते हैं।

१२ युतद्वेषसः इषा सं रभेमहि— द्वेषियोंको दूर करके अन्नको प्राप्त करेंगे।

१३ राया सं इषा सं रभेमहि— धन और अन्नसे हम युक्त हों।

१४ अभिद्युभिः पुरुश्चन्द्रैः वाजेभिः सं रभेमहि— दिव्य तेजस्वी बलोंके साथ हम युक्त हों।

१५ गो-अग्रया अश्वावत्या वीरशुष्मया देव्या प्रमत्या सं रभेमहि— गाएं जिसमें अग्रस्थान रखती हैं घोडोंसे जो युक्त है वीरोंके बलसे युक्त दिव्य बुद्धिसे हम संपन्न हों।

१६ हे सत्पते! वृत्रहत्येषु तानि ते वृष्ण्या अमदन्— हे सज्जनोंके पालक! शत्रुओंको मारनेके समय तेरे पौरुष कर्म तुझे आनन्दित करते हैं।

१७ यत्कारवे बर्हिष्मते दश सहस्राणि वृत्राणि अप्रति नि बर्हयः— जो तूने यज्ञकर्ता कविके हित करनेके लिये दस हजार वृत्र शत्रुओंको अप्रतिम रीतिसे मारा।

१८ युधा युधं धृष्णुया उप एषि— एक युद्धसे दूसरे युद्धके प्रति तू धर्षक जाता है।

१९ पुरा पुरं ओजसा सं हंसि— एक किलेसे दूसरे किलेको बलसे तोडता है।

२० हे इन्द्र! सख्या नम्या परावति मायिनं नमुचिं नि बर्हयः— मित्रके साथ दूर रहे मायावी-कपटी नमुचिको तूने मारा।

२१ त्वं करञ्जं उत पर्णयं तेजिष्ठया वधीः— तूने करंज और पर्णयको तेजस्वी शस्त्रसे मारा।

२२ त्वं वंगृदस्य ऋजिश्वना परिषूता शता पुरः अभिनत्— तू ऋजिश्वाकी सहायतासे घेरी हुई सौ नगरें तोड दीं।

२३ त्वं एतान् जनराज्ञः द्विः दश अबन्धुना सुश्रवसा उपजग्मुषः षष्टिं सहस्रा नवतिं नव दुष्पदा चक्रेण नि अवृणक्— तूने इन बीस जन राजाओंको जो अकेले सुश्रवाके साथ लड रहे थे उनको तथा उनके

[सूक्त २२]

(ऋषिः — १-३ त्रिशोकः ४-६ प्रियमेधः । देवता — इन्द्रः ।)

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६ ॥ (१९५)

साठ हजार निन्नानवे सैनिकोंके समान रक्षकोंके मारके मार डाला।

१४ त्वं सुश्रवसं तवोतिभिः आविथ— तूने अपनी रक्षा साधनोंसे सुश्रवाकी रक्षा की।

१ तव वामभिः तूर्वयाणं— तेरे रक्षा साधनोंसे तूर्वयाणकी रक्षा की।

१५ त्वं कुत्सं अतिथिग्वं आयुं अस्मै महे यूने राज्ञे अरन्धयः— तूने कुत्स अतिथिग्व और आयुको इस बड़े तरुण राजाके लिये मारा।

१७ हे इन्द्र ! देवगोपाः ते सखायः शिवतमा असाम— हे इन्द्र ! देवोंसे सुरक्षित हुए हम उत्तम कल्याणसे युक्त हों।

१८ त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः— तुम्हारी सहायतासे हम उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर अपनी दीर्घ आयुको अधिक दीर्घ बनाकर धारण करेंगे।

इनमें वीरत्वके निर्देश पाठक देखें।

(सूक्त २२)

हे (वृषभ) बलिष्ठ इन्द्र ! (अभि सुते) सोमरस निकालनेपर (पीतये) पीनेके लिये (त्वा सुतं सृजामि) तेरे पास इस रसको भरता हूं। (तृम्प) इससे तृप्त हो (मदं व्यश्नुहि) आनंददायक इस रसको पी ॥ १ ॥ (ऋ. ८।४५।२२)

(अविष्यवः मूराः) अपना हीतकाय चाहनेवाले मूढ (त्वा मा दभन्) तुझे मत दबावें। (उपहस्वानः मा आ दभन्) उपहास करनेवाले तुझे न दबावें। (ब्रह्मद्विषः माकीं वनः) ज्ञानका द्वेष करनेवालोंके तुझे न प्राप्त कर सकें ॥ २ ॥ (ऋ. ८।४५।२३)

हे इन्द्र ! (इह) यहां (गोपरीणसा त्वा) गौके दूधसे मिश्रित सोमरससे युक्त (महे राधसे मन्दन्तु) बड़े धन प्राप्तिके लिये प्रसन्न करें। (गौरः यथा सरः) मृग जैसा तालाबपर पीता है वैसा तू इस रसको (पिब) पी ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।४५।२४)

(गोपतिं) गौओंके पालक (सत्यस्य सूनुं) सत्यके प्रचारक (सत्पतिं) सज्जनोंके पालक (इन्द्रं) इन्द्रकी (गिरा अभि प्र अर्च) अपनी वाणीसे स्तुति कर (यथा विदे) जैसी जानते हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।६९।४)

(अरुषीः हरयः आ ससृज्रिरे) लाल घोडे छोडे जा रहे हैं। (बर्हिषि अधि) वह आकर आसनपर बैठा है। (यत्र अभि संनवामहे) जहां हम मिलकर उसकी स्तुति गाते हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६९।५)

(वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिये (गावः मधु आशिरं दुदुह्रे) गौवें मधुर दूध दुहती हैं। (यत् सीं उपह्वरे विदत्) जो उसको समीपमें पाया ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।६९।६)

इस सूक्तमें वीरताका वर्णन यह है—

१ वृषभः— बैल जैसा शक्तिमान् इन्द्र।
२ गोपतिः— गौओंका पालक।
३ सत्यस्य सूनुः— सत्यका प्रचारक
४ सत्पतिः— सज्जनोंका पालक
५ वज्री इन्द्रः— वज्रधारी इन्द्र
६ वज्रिणे इन्द्राय गावः मधु आशिरं दुदुह्रे— वज्रधारी इन्द्रके लिये गौवें मीठा दूध देती हैं।

[सूक्त २२]

(ऋषिः — १-९ विश्वामित्रः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ. ३।४१।१-९)

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन्प्रातरद्रयः ॥ २ ॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥ (१४४)

(सूक्त २२)

हे (अद्रिवः इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (नः सोमपीतये हुवानः) हमारे सोमपानके लिये बुलाया हुआ तू (मद्र्यक्) मेरे पास (हरिभ्यां आ याहि) घोडोंसे आ जाओ ॥ १ ॥

(नः ऋत्वियः होता) हमारा ऋत्विक होता (सत्तः) बैठ गया है (बर्हिः आनुषक् तिस्तिरे) आसन योग्य रीतिसे बिछाया है, (प्रातः अद्रयः अयुज्रन्) प्रातःकालमें ही पत्थर [सोमरस निकालनेके लिए] जोडे गये हैं ॥ २ ॥

हे (ब्रह्मवाहः) मन्त्रोंके धारक ! (इमा ब्रह्म क्रियन्ते) ये मन्त्र पाठ किये जाते हैं (बर्हिः आ सीद) आसनपर बैठ। हे शूर ! (पुरोळाशं वीहि) इस अन्नको खा ॥ ३ ॥

हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (नः एषु) हमारे इन (सवनेषु स्तोमेषु उक्थेषु) यज्ञों स्तोत्रों और गीतोंमें (रारन्धि) आनन्द प्राप्त कर ॥ ४ ॥

(मातरः वत्सं न) माताएं बछडेको प्यार करती हैं उस तरह (सोमपां) सोमरस पीनेवाले (उरुं शवसस्पतिं) विशाल बलके स्वामी इन्द्रको (मतयः रिहन्ति) स्तुतियें वर्णन करती हैं। प्यार करती हैं ॥ ५ ॥

(सः अन्धसः मन्दस्व हि) वह तू इस सोमरससे आनन्दित हो (तन्वा महे राधसे) शरीरसे बडे धनके लिये बलवान् बन। (स्तोतारं निदे न करः) स्तुति करनेवालेकी निन्दा हो ऐसा न कर ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! (वयं त्वायवः हविष्मन्तः जरामहे) हम तेरा आश्रय करके हवि लेकर तेरी स्तुति करते हैं। हे (वसो) बसानेवाले ! (उत त्वं अस्मयुः) तू हमारा सहायक हो ॥ ७ ॥

हे (हरि-प्रिय) घोडोंसे प्यार करनेवाले ! (मा आरे अस्मत् मुमुचः) हमको हमसे दूर न छोड (अर्वाङ् याहि) पास आ। हे (स्वधावः इन्द्र) अपनी धारक शक्तिसे रहनेवाले इन्द्र ! (इह मत्स्व) यहां आनन्दित हो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! (केशिना घृतस्नू) बडे बालोंवाले घी जैसा जिनके शरीरसे रस टपकता है ऐसे घोडे (बर्हिः आसदे) आसन पर बैठनेके लिये (सुखे रथे) सुखकारक रथमें (त्वा अर्वाञ्चं वहतां) तुझे इधर लावें ॥ ९ ॥

१ अद्रिवः— वज्रधारी अथवा पहाडी किलेमें रहनेवाला
२ शूरः— शूरवीर
३ वृत्रहन्— वृत्रको मारनेवाला
४ शवसः पतिः— बलका स्वामी
५ वसु — बसानेवाला
६ हरिप्रियः— घोडोंपर प्रेम करनेवाला
७ स्व धा-व — निज शक्तिसे युक्त।

[सूक्त २४]

(ऋषिः — १-९ विश्वामित्रः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ० ३।४२।१-९)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृप्णवः ॥ २ ॥
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥
विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥ (९१)

(सूक्त २४)

हे इन्द्र ! (नः सुतं गवाशिरं सोमं) हमारे निचोडे दूध मिलाये सोमरसके समीप (हरिभ्यां) तुम्हारे दो घोडोंके साथ (उप आ गहि) आओ (यः ते अस्मयुः) जो तेरा हमारे पास आनेका स्वभाव है ॥ १ ॥

हे इन्द्र (बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतं) आसनपर रखे पत्थरोंसे कूटे (तं मदं आ गहि) उस आनन्ददायक सोम रसके समीप आओ। (कुविद नु अस्य तृप्णवः) इसके तृप्त होनेवाले बहुत हैं ॥ २ ॥

(इतः इषिताः मम गिरः) यहांसे भेजी मेरी स्तुतियां (इत्था इन्द्रं अच्छ अगुः) इस तरह इन्द्रके पास सीधी पहुंची हैं (आवृते सोमपीतये) उसको इधर लाने और सोम पीनेके लिये ॥ ३ ॥

(इन्द्रं सोमस्य पीतये) इन्द्रको सोमके पीनेके लिये (स्तोमैः इह हवामहे) स्तोत्रोंसे यहां हम बुलाते हैं। (उक्थेभिः कुवित् आगमत्) स्तोत्रोंसे बुलानेपर वह बहुत बार आया है ॥ ४ ॥

हे (शतक्रतो वाजिनीवसो इन्द्र) सैकडों कर्म करने वाले सेनारूप धन देनेवाले इन्द्र ! (इमे सोमाः सुताः) ये सोमके रस तैयार हैं। (तान् जठरे दधिष्व) उनको पेटमें धारण कर ॥ ५ ॥

हे (कवे) ज्ञानी ! (त्वा धनंजयं) तुझे हम धनको जीतनेवाला और (वाजेषु दधृषं) युद्धोंमें शत्रुको परास्त करनेवाला (विद्म) जानते हैं (अधा ते सुम्नं ईमहे) इसलिये तुमसे सुख मांगते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! (इमं नः गवाशिरं यवाशिरं च) इस हमारे गोदुग्ध मिलाये सत्तु मिलाये (वृषभिः सुतं) बलवानोंने निचोडे सोम रसको (आगत्य पिब) आकर पी ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! (स्वे ओक्ये) अपने स्थानमें (पीतये) पीनेके लिये (तुभ्य इत् सोमं चोदामि) तेरे लिये सोमको भरता हूं। (ते हृदि एष रारन्तु) वह तेरे हृदयमें आनन्द देवे ॥ ८ ॥

(अवस्यवः कुशिकासः) अपनी सुरक्षा चाहनेवाले कुशिक गोत्री हम (सुतस्य पीतये) निचोडे सोमरसको पीनेके लिये हे इन्द्र ! (प्रत्नं त्वां हवामहे) तुझ पुरातन वीरको हम बुलाते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्तमें वीरके विशेषण बोधप्रद हैं—

१ शतक्रतुः— सैकडों कर्म करनेवाला वीर

२ वाजिनीवसुः— सेनाको बसानेवाला, धनकी रक्षा करनेवाला, सेनाका संचालन करनेवाला।

३ धनंजयः— शत्रुके धनको जीतनेवाला

[सूक्त २५]

(ऋषिः — १-५ गोतमः, ७ [illegible] । देवता — इन्द्रः ।)

(ऋ० १।८३।१-६)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥

---

४ [illegible] — [illegible]
५ [illegible] — [illegible]
६ [illegible] — [illegible]

[illegible] —

१ [illegible] — [illegible]
२ [illegible] — [illegible]
३ [illegible] — [illegible]
४ [illegible] — [illegible]
५ [illegible] — [illegible]
६ [illegible] — [illegible]

(सूक्त २५)

हे इन्द्र ! (तव ऊतिभिः) [illegible] (सुप्रावीः) [illegible] (अश्वावति गोषु प्रथमः गच्छति) [illegible] (तं इत् भवीयसा वसुना पृणक्षि) [illegible] (यथा सिन्धुं आपः विचेतसः) [illegible] ॥ १ ॥

(देवीः आपः न) [illegible] (होत्रियं उपयन्ति) [illegible] ([illegible]) [illegible] (यथा रजः विततं) [illegible] (अवः पश्यन्ति) [illegible] (देवयुं देवासः प्राचैः प्र णयन्ति) [illegible] (ब्रह्मप्रियं वरा इव जोषयन्ते) [illegible] ॥ २ ॥

(द्वयोः अधि उक्थ्यं वचः अदधाः) [illegible] (या मिथुना यतस्रुचा सपर्यतः) [illegible] (असंयत्तः ते व्रते क्षेति पुष्यति) [illegible] (सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः) [illegible] ॥ ३ ॥

(अङ्गिराः आत् प्रथमं वयः दधिरे) [illegible] (ये इद्धाग्नयः) [illegible] (सुकृत्यया शम्या) [illegible] (नरः) [illegible] ([illegible] अश्वावन्तं पशुं सर्वं भोजनं) [illegible] ([illegible]) [illegible] ॥ ४ ॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥
बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ ७ ॥ (ऋ. १०।१०४।३) (१६०)

(अथर्वा यज्ञैः प्रथमः पथः तते) अथर्वाने पहिले यज्ञोंसे मार्ग फैलाया । (ततः व्रतपाः वेनः सूर्यः आजनि) पश्चात् व्रतपालक तेजस्वी सूर्य प्रकट हुआ । (काव्यः उशना सचा गाः आ आजत्) कविपुत्र उशनाने उस यज्ञके साथ गौओंको चलाया । इस तरह (यमस्य जातं अमृतं यजामहे) नियमोंसे कार्य करनेसे उत्पन्न हुए अमृतरूपी यज्ञ कर्म हम करते हैं ॥ ५ ॥

(यत् बर्हिः स्वपत्याय वृज्यते) जब कुश उत्तम कर्म करनेके लिये काटते हैं (अर्कः वा श्लोकं दिवि आघोषते) जब सूक्त बोलनेवाले अपने मंत्रको द्युलोकमें घोषित करते हैं (यत्र कारुः उक्थ्यः ग्रावा वदति) जहां निपुण स्तोता जैसा पत्थर [सोम कूटनेका] शब्द करता है (इन्द्रः तस्य अभिपित्वेषु) इन्द्र उसके समीप रहनेमें (रण्यति) आनन्द मनाता है ॥ ६ ॥

हे (हर्यश्व) लाल घोडोंवाले इन्द्र ! (वृष्णे तुभ्यं) बलवान् तुझ (सत्यां उग्रां पीतिं) सच्चे उत्साहवर्धक सोम पानके पास (प्रयै प्र इयर्मि) आनेके लिये मैं प्रेरित करता हूं । हे इन्द्र ! (धेनाभिः इह मादयस्व) स्तुतियोंसे यहां आनन्दित हो (विश्वाभिः धीभिः) सारी बुद्धियोंसे यहां (शच्या गृणानः) शक्तिके साथ तुम्हारी स्तुति होती है ॥

इस सूक्तमें इतने बोधवचन हैं—

१ हे इन्द्र ! तव ऊतिभिः सुप्रावीः मर्त्यः प्रथमः यानि गाय प्रथमः गच्छति— हे इन्द्र ! तेरी सुरक्षाओंसे सुरक्षित हुआ मनुष्य घोडों और गौओंवालोंमें पहिला होकर जाता है

२ इत् मर्त्यः पुरु वसुना पृणाति— वह मनुष्य बहुत धनसे भर देता है ।

३ निरत अथ पश्यन्ति— जो इधर उधर आकाश ओर फैल रहा है वह सब देखते हैं । चारों ओरसे तू उत्तम रक्षण करता है वह सब जानते हैं ।

४ सुवासः देवयुः प्रावीः प्र यन्ति— देव रक्षण प्राप्त करनेकी इच्छावालेका सीधे मार्गोंसे आगे ले जाते हैं ।

५ प्रशस्तिर्य ओपयन्ते— ज्ञान पर प्रेम रखनेवालेका प्रबंध रखते हैं ।

६ असंयतः ते व्रते क्षेति पुष्यति— जो संयम रहित है वह तेरे नियममें रहता है और पुष्ट होता है ।

७ भद्रा शक्तिः यजमानाय— यज्ञकर्ताका कल्याण करनेवाली शक्ति प्राप्त होती है ।

८ अंगिरसः प्रथमं वयः दधिरे— अंगिरसोंने प्रथम शक्ति प्राप्त की ।

९ ये इद्धाग्नयः सुकृत्यया शम्याः— जो अग्नि प्रदीप्त करके यज्ञ करते हैं वे अपने शुभ कर्मसे शान्ति स्थापन करते हैं ।

१० नरः पणेः अश्व्यावन्तं गोमन्तं पशुं सर्वं भोजनं समविन्दन्त— वीर मनुष्य पणिके घोडों गौओं और पशु आदि सब भोग भोजन आदि अपने कब्जेमें करते रहे । पणियोंसे भोग अंगिरसोंने वीरतासे प्राप्त किये ।

११ अथर्वा यज्ञैः प्रथमः पथः तते— अथर्वाने यज्ञोंसे प्रथमतः मार्ग फैलाया । लोगोंका यज्ञका मार्ग बताया ।

१२ काव्यः उशना सचा गाः आ आजत्— कविपुत्र उशनाने साथ गौवें भी चलाईं ।

१३ अमृतं यजामहे— अमर देवका हम यज्ञ कर रहे हैं ।

१४ हे हर्यश्व इन्द्र ! सत्यां सुतस्य उग्रां पीतिं वृष्णे तुभ्यं इयर्मि— हे घोडेवाले इन्द्र ! सच्चा सोमरसका उग्र पान तेरे पास मैं भेजता हूं ।

१५ शच्या गृणानः— इन्द्र सामर्थ्यवान् है ऐसी स्तुति होती है ।

[सूक्त २६]

(ऋषिः — १-३ शुनःशेपः, ४-६ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ १।३०।७-९)

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥ (ऋ १।६।१-३)
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ५ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥ (१९६)

[सूक्त २७]

(ऋषिः — १-६ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ ८।१४।१-६)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

(सूक्त २६)

(सखायः) हम सब मित्र मिलकर (योगे योगे) प्रत्येक संयोगमें (वाजे वाजे) प्रत्येक संग्राममें (तवस्तरं) अधिक शक्तिमान (इन्द्रं) इन्द्रको (ऊतये हवामहे) हमारी रक्षा करनेके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

(यदि श्रवत्) यदि वह हमारी प्रार्थना सुनेगा तो वह (सहस्रिणीभिः ऊतिभिः) हजारों संरक्षक सामर्थ्योंके और (वाजेभिः) बलोंके साथ (नः हवं उप आ गमत् घ) हमारी प्रार्थनाके प्रति वह निःसंदेह आ जायगा ॥ २ ॥

(प्रत्नस्य ओकसः) पुराने परिचित देश मेरे घरके पास (तुविप्रतिं नरं अनु हुवे) बहुतोंका सामना करनेवाले नेता इन्द्रको मैं बुलाता हूं (यं ते) जिस तुझको (पिता) मेरे पिताने (पूर्वं हुवे) पहिले बुलाया था ॥ ३ ॥

(तस्थुषः परि चरन्तं) स्थावरके चारों ओर घूमनेवाले दिव्य (अरुषं ब्रध्नं युञ्जन्ति) तेजस्वी सूर्यको जोडे जाते हैं। (रोचना दिवि रोचन्ते) वे किरण द्युलोकमें प्रकाशते हैं ॥ ४ ॥

(अस्य रथे विपक्षसा) इसके रथमें दोनों ओर (शोणा धृष्णू नृवाहसा काम्या हरी युञ्जन्ति) लाल रंगके धर्षक वीरोंको ले जानेवाले सुंदर घोडे जोते जाते हैं ॥ ५ ॥

(अकेतवे केतुं कृण्वन्) अज्ञानीको ज्ञान और (अपेशसे पेशः) रूपरहितको रूप बनाते हुए, हे (मर्याः) मानवो! (उषद्भिः सं अजायथाः) उषाओंके साथ सूर्य उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

इस सूक्तमें बोधप्रद मंत्रभाग ये हैं—

१ सखायः योगे योगे वाजे वाजे ऊतये तवस्तरं इन्द्रं हवामहे— हम सब एक विचारके लोग एक स्थानपर मिलकर प्रत्येक संग्राममें तथा प्रत्येक यज्ञमें प्रथम हमारी सुरक्षाके लिए शक्तिमान् इन्द्रको सहायतार्थ बुलाते हैं।

२ यदि श्रवत् सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः नः हवं घ उप आ गमत्— यदि वह हमारी प्रार्थना सुनेगा तो हजारों सुरक्षा साधनोंके साथ और बलोंके साथ वह हमारे समीप निःसंदेह आ जायगा।

३ यं ते पूर्वं पिता हुवे प्रत्नस्य ओकसः तुविप्रतिं नरं अनु हुवे— जिस तुझे मेरे पिताने बुलाया था, वह मेरे परिचित घरके पास बहुत शत्रुओंका सामना करनेवाले नेता इन्द्रको मैं बुलाता हूं।

४ अस्य रथे विपक्षसा शोणा धृष्णू नृवाहसा काम्या हरी युञ्जन्ति— इसके रथमें दोनों ओर लाल रंगके सुंदर घोडे जोते जाते हैं।

५ अकेतवे केतुं कृण्वन्— अज्ञानीको ज्ञान देना यह कर्तव्य है करना चाहिए।

६ अपेशसे पेशः कृण्वन्— रूपहीनको रूप देना।

(सूक्त २७)

हे इन्द्र! (यथा त्वं) जैसा तू बना (यत् अहं वस्वः एकः इत् ईशीय इत्) यदि मैं धनका अकेला स्वामी

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥ (१७२)

[सूक्त २८]

(ऋषिः — १-४ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ० ७।१४।७-१०)

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ १ ॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ २ ॥

होऊं तो (मे स्तोता गोपवान् स्यात्) मेरा स्तोता गौओंका स्वामी होगा ॥ १ ॥

(यत् अहं गोपतिः स्याम्) यदि मैं गौओंका स्वामी होऊं हे (शचीपते) शक्तिके स्वामी इन्द्र ! (अस्मै शिक्षेयं) इसको धन दूं और (मनीषिणे दित्सेयं) मनन करनेवालेको भी देदूं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (सुन्वते यजमानाय) सोमयागी यजमानके लिये (ते सूनृता धेनुः) तेरी प्रशंसित गौही है। (पिप्युषी गां अश्वं दुहे) वह पुष्ट होकर गौ और घोडा देती है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (न देवः न मर्त्यः) न देव और न ही मर्त्य (ते राधस वर्ता अस्ति) तेरे दानको रोकनेवाला कोई है (स्तुतः यत् मघं दित्ससि) जब स्तुति करनेपर तू धन देना चाहता है ॥ ४ ॥

(यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्) यज्ञने इन्द्रका महात्म्य बढाया (यत् भूमिं व्यवर्तयत्) जो इन्द्र भूमिको उपजाऊ बनाता है (दिवि ओपशं चक्राणः) और द्युलोकमें अपना सामर्थ्य प्रकट करता है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! (वावृधानस्य) बढनेवाले और (विश्वा धनानि जिग्युषः) सब धनोंको जीतनेवाले ऐसे तेरी (ते ऊतिं) तु का हमें मिले ऐसा (आ वृणीमहे) हम मांगते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रका महत्त्व मंत्रोंके इन्हमार्गोंमें प्रकट होता है —

इन्द्र ! न ... ते न राधसे वर्ता अस्ति
... देव और नाही मर्त्य तेरे
... करनेपर ... धन

२ यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत् — यज्ञ इन्द्रकी महिमा बढाता है
३ भूमिं व्यवर्तयत् — इन्द्रने भूमिको अधिक उपजाऊ बनाया है
४ दिवि ओपशं चक्राणः — इन्द्रने द्युलोकमें अपना सामर्थ्य प्रकट किया है।

५ हे इन्द्र ! विश्वा धनानि जिग्युषः वावृधानस्य ते ऊतिं आ वृणीमहे — हे इन्द्र ! सब धनोंको जिसने प्राप्त करनेवाले और अपनी महिमाको बढानेवाले तेरा रक्षण हमें प्राप्त हो यह हमारी मांग है।

प्रथम और द्वितीय मंत्रमें तेरे जैसा मैं यदि धनोंका स्वामी बनूं तो मैं धनका दान करूंगा ऐसा कहकर इन्द्रसे भक्त स्पर्धा कर रहा है। यह भाषाशास्त्रका एक उत्तम उदाहरण है। यहां स्तोता गौओंका स्वामी होगा। यह वाक्य भी इन्द्रकी बराबरी करनेवाला वाक्य है। तृतीय मंत्रमें पुष्ट गाय घी और घोडा देती है इससे गायके बदले घोडा मिलता है ऐसा समझना योग्य है।

(सूक्त २८)

(इन्द्रः) इन्द्रने (सोमस्य मदे) सोमरस पीनेसे उत्साह हुए उत्साहमें (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्षको तथा (रोचना) प्रकाशित स्थानोंको (व्यतिरत्) पार किया (यत् वलं अभिनत्) और तब वलको तोड दिया ॥ १ ॥

(अंगिरोभ्यः) अंगिराओंके लिये (गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन्) गुहामें रहनेवाली गायोंको बाहर निकालकर (उत् आ आजत्) प्रकट किया और (वलं अर्वाञ्चं नुनुदे) वलको नीचे गिरा दिया ॥ २ ॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥ ४ ॥ (१७१)

[सूक्त ६९]

(ऋषिः — १-५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ. ८।१४।११-१५)

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥
इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ३ ॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ ४ ॥
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥ (१७६)

(इन्द्रेण दिवः) इन्द्रने द्युके स्थानमें (रोचना दृळ्हानि दृंहितानि च) चमकनेवाले सुदृढ गुरुत्व पर स्थापित किये हैं (स्थिराणि न पराणुदे) स्थिर किये और वे हटाये नहीं जा सकते ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (अपां ऊर्मिः इव) जलोंकी लहरके समान (स्तोमः मदन् इव) यह स्तोत्र आनन्द बढाता हुआ (अजिरायते) शीघ्रतासे बाहर आ रहा है, और इससे (ते मदाः वि अराजिषुः) तेरे आनन्द विराजते हैं ॥ ४ ॥

वीरका वर्णन यह है—

१ वल अभिनत्— इन्द्रने वलको तोड दिया।

२ वलं अवाञ्चं नुनुदे— इन्द्रने वलको नीचे गिराया।

३ अंगिरोभ्यः गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन् अप अव्रजत्— [वलने गौवें पकड कर अपनी गुहामें बंद करके रखी थीं] उन गायोंको अंगिरा ऋषियोंके लिये इन्द्रने गुहासे उनको बाहर निकाला और आगेके पास ले जानेके लिये दे दिया।

४ इन्द्रेण दिवः रोचना दृळ्हानि दृंहितानि स्थिराणि न पराणुदे— इन्द्रने द्युलोकमें चमकदार नक्षत्र रखे जो स्थिर किये उनको दूसरा कोई हटा नहीं सकता। [यहां यह इन्द्र परमात्मा ही है।]

(सूक्त ६९)

हे इन्द्र ! (त्वं हि स्तोमवर्धनः) स्तोत्रों द्वारा जिसका महत्त्व बढता है ऐसा तू है और (उक्थवर्धनः) स्तुतियोंसे जिसका यश बढता है ऐसा है। और तू (स्तोतॄणां उत भद्रकृत्) स्तोताओंका कल्याण करनेवाला है ॥ १ ॥

(केशिना हरी) बालवाले दो घोडे (इन्द्रं सोमपेयाय वक्षतः) इन्द्रको सोमपानके लिये ले जाते हैं। (सुराधसं यज्ञं उप) उत्तम दाता इन्द्रको यज्ञके पास ले जाएंगे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (नमुचेः शिरः) तुमने नमुचिका सिर (अपां फेनेन) जलोंके झागसे (उदवर्तयः) उखाड दिया। (यत् विश्वाः स्पृधः अजयः) तब सब शत्रुओंको जीता ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (द्यां आरुरुक्षतः) द्युलोकपर चढनेकी इच्छा करनेवाले और (मायाभिः) कपटोंसे (उत्सिसृप्सतः) छिपनेकी इच्छावाले (दस्यून्) शत्रुओंको तूने (अव अधूनुथाः) नीचे गिरा दिया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! (असुन्वां संसदं) सोमयाग न करनेवालोंकी सभाको (विषूचीं व्यनाशयः) तूने छिन्न भिन्न करके विनष्ट किया और (सोमपाः उत्तरः भवन्) सोमरस पीकर तू विजयी हो गया ॥ ५ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके विषयके मंत्रभाग ये हैं—

१ हे इन्द्र ! स्तोतॄणां भद्रकृत्— हे इन्द्र ! तू स्तोताओंका कल्याण करता है।

२ स्तोमवर्धन उक्थवर्धनः— स्तोत्रोंसे इन्द्रका यश बढता है।

३ सुराधाः— उत्तम धन देनेवाला

४ नमुचेः शिरः अपां फेनेन इन्द्र ! उदवर्तयः— नमुचिका सिर जलोंके झागसे इन्द्रने उखाड़ दिया।

[सूक्त ३०]

(ऋषिः — १-५ वरु सर्वहरिर्वा । देवता — हरिः (इन्द्रः) ।)

(ऋ. १०।९६।१-५)

प्र ते मुहे विदथे शंसिषु हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यत मदम् ।
घृत न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥ १ ॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥ ४ ॥

न मुचि — वह रोग या रोगकृमि जो अपनी पकड छोडता नहीं। अपां फेनः — समुद्र झाग अर्थात् पानीकी झाग यह औषध है जिससे पूर्वोक्त रोग दूर होता है।

५ विध्यन् स्पृधः अजय — सब शत्रुओंको जीत लिया।

६ दस्यून् अव धूनुथाः — शत्रुओंको नीचे गिरा दिया दूर किया।

७ अपृणतां सख्यं विपूर्वी अपमायाः — अयाज्ञिकोंकी सभाको विनष्ट कर दिया।

८ सोमपा उत्तर अभवन् — सोमयाजक उच्च स्थानपर चढे।

अपां फेनः समुद्र झाग यह औषध है, इससे नमुचि नामक रोग दूर होता है। यह औषध प्रधान है। वैद्योंको इसका विचार करना चाहिये।

(सूक्त ३०)

(ते हरी) तेरे दोनों घोडोंकी (महे विदथे प्र शंसिष) बडे यज्ञमें मैं प्रशंसा करता हूं। (ते वनुषः हर्यतं मदं प्र वन्वे) तुझे इस आनन्दकारी रसको मैं तैयार करता हूं। (घृतं न) घी के समान (यः हरिभिः चारु सेचते) जो घोडोंके ऊपर प्रेमसे जलको सींचता है (हरिवर्पसं त्वा गिरः आ विशन्तु) ऐसे सुन्दर रूपवाले तुझमें हमारी स्तुतियां प्रविष्ट हों ॥ १ ॥

(हरिं योनिं ये हि अभि समस्वरन्) जो ऋषि इन्द्रके आगमनके मूल कारण इस घोडेकी स्तुति करते थे (यथा दिव्यं सदः हिन्वन्तः हरी) क्योंकि दिव्य स्थानके पास इनको ये ही घोडे लाते हैं। (यं हरिभिः न धेनवः आ पृणन्ति) जिसको घोडोंके समान गौवें पुष्ट करती हैं उस (इन्द्राय हरिवन्तं शूषं अर्चत) इन्द्रके सन्तोषके लिये घोडोंवाले बलकी पूजा करो ॥ २ ॥

(सः अस्य वज्रः) वह इस इन्द्रका वज्र (हरितः यः आयसः) पीला और फौलादका है (हरिः निकामः) वह प्राण हरण करनेवाला वज्र इसको बडा प्यारा है (हरिः आ गभस्त्योः) भुजाओंमें यह इन्द्र इस वज्रको पकडता है। (द्युम्नी सुशिप्रः) तेजस्वी उत्तम [illegible] का धारण करनेवाला इन्द्र है (हरि-मन्यु-सायकः) शत्रुके प्राण हरण करनेवाले क्रोध युक्त बाणको धारण करनेवाले (इन्द्रे हरिता रूपा मिमिक्षिरे) इन्द्रमें सारे रूपका रूप मिले हैं ॥ ३ ॥

(दिवि हर्यतः केतुः अधि धायि न) द्युलोकमें सुन्दर ध्वज जैसा बनाते हैं वैसा यह (वज्रः हरितः रंह्या न विव्यचत्) सुवर्णका वज्र मानो वेगसे चमकता है (यः आयसः हरिशिप्रः अहिं तुददत्) जिस फौलादके वज्रसे सुवर्णके शस्त्रको धारण करनेवाले इन्द्रने अहि नामक शत्रुको मारा। तब (हरिंभरः सहस्रशोकाः अभवत्) इन्द्रके भरा यह वज्र अत्यन्त दीप्तिवाला हो गया ॥ ४ ॥

त्वन्त्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५ ॥ (१-६)

[सूक्त ३१]

(ऋषिः — १-५ वरुः सर्वहरिर्वा । देवता — हरिः [इन्द्रः] ।)
(ऋ १०।९६।६-१०)

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ १ ॥
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥ २ ॥

हे (हरिकेश इन्द्र) सुनहरी बालोंवाले इन्द्र ! (पूर्वेभिः यज्वभिः उपस्तुतः) पूर्व समयके याजकोंने स्तुति किया हुआ (त्वं त्वं अहर्यथाः) तू ही स्तुतिके लिये योग्य है । (तव विश्वं उक्थ्यं) तेरी सब स्तुतिके लिये (त्वं हर्यसि) तू योग्य है । हे (हरिजात) हे दुःख हरण करनेवालोंमें प्रसिद्ध ! (हर्यतं राधः असामि) तेजस्वी धन तेरा ही है ॥ ५ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रकी वज्रताका वर्णन इस प्रकार—

१ इन्द्राय हरिवन्तं शूरं अर्चत— इन्द्रके अनुकूल शूरवीरकी पूजा करो ।

२ अस्य वज्रः हरितः आयसः हरिः निकामः— इस इन्द्रका वज्र सुवर्णसे युक्त लोहका है, वह शत्रुको दूर करनेवाला है इस कारण प्रिय है ।

३ हरिः मा गभस्त्योः — वह शत्रुका हरण करनेवाला वज्र दायें हाथोंमें वह पकडता है ।

४ द्युम्नी सुशिप्रः हरि मन्यु-सायकः— वह इन्द्र तेजस्वी उत्तम शस्त्र धारण करनेवाला शत्रुके प्राण हरण करनेवाला अर्थात् बाण जिसके पास रहता है ।

५ इन्द्रे हरिता रूपा मिमिक्षिरे— इन्द्रमें सब सौन्दर्यसे रूप रहे हैं ।

६ दिवि हर्यतः केतुः न अधि धायि— आकाशमें सुवर्ण ध्वज जैसा रहे [वैसा इन्द्रका वज्र चमक रहा है ।]

७ हरितः वज्रः रंहा न विव्यचत्— सुवर्णका वज्र वेगसे चला ।

८ हरिभिः यः आयसः अहिं सुहत्— सुवर्णरूप धारा धोषवान इन्द्र अपने पोलादके वज्रसे अहिनामक असुरको मारा ।

९ हरिमरः सहस्रशोकः अभवत्— सुवर्णसे भरा हुआ वह वज्र सहस्र तेजोंसे चमकनेवाला हुआ ।

१० त्वं त्वं अहर्यथाः— तू ही स्तुतिके लिये योग्य है ।

११ त्वं हर्यसि तव विश्वं उक्थ्यं— तू स्तुतिके लिये योग्य है सब स्तुति तुम्हारी है ।

१२ हे हरिजात ! हर्यतं असामि राधः— हे शत्रुके प्राण हरण करनेवालोंमें प्रसिद्ध इन्द्र ! तेरा धन अवर्णनीय है ।

इस सूक्तमें इन्द्र के लिये हरि-केश कहा है । सुवर्णके रंगके केशवाला इन्द्र है । सुवर्णके बालोंवाले लोग बडे होते हैं वैसा वह वीर है । तैत्तरीय संहितावालोंको हिरण्य केशी कहते हैं । वही भाव हरि केश में दीखता है ।

(सूक्त ३१)

(ता हर्यता हरी) वे घोडों प्रिय घोडे (वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं इन्द्रं) वज्रधारी आनन्द युक्त स्तुतिके योग्य इन्द्रको (मदे) आनन्द प्राप्त करनेके लिये (रथे वहतः) रथमें ले जाते हैं । (अस्मै हर्यते इन्द्राय) इस दुःख हरनेवाले इन्द्रके लिये (पुरूणि सवनानि) बहुतसे सवन और (हरयः सोमाः) तेजस्वी सोमरस (दधन्विरे) रखते हैं ॥ १ ॥

(कामाय हरयः अरं दधन्विरे) इन्द्रकी कामनानुसार सोमरस पूर्णतया रखे । (स्थिराय हरयः हरी तुरा हिन्वन्) स्थिर इन्द्रके लिये वेगवान मैमनरहीन दोनों घोडोंको लगाके चलाया । (अर्वद्भिः हरिभिः यः जोषं ईयते) वेगवाले घोडोंसे जो सुखपूर्वक जाता है (सः अस्य हरिवन्तं कामं आनशे) वह सबने इस इन्द्रकी सोमरसकी कामनाको पाया ॥ २ ॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥ ३ ॥
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥ ४ ॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥ ५ ॥ (१९१)

[सूक्त ३२]

(ऋषिः — १-३ बरुः सर्वहरिर्वा । देवता — हरिः [इन्द्रः] ।)

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ १ ॥

(हरि-श्मशारुः) पीली मूछोंवाला (हरि-केशः) पीले बालोंवाला (आयसः) फौलादका बना हुआ (तुरस्पेये यः हरिपा अवर्धत) त्वरासे पीनेमें भी घोडोंका पालनकर्ता बढता है, (अर्वद्भिः हरिभिः यः) वेगवान् घोडोंसे जो (वाजिनी-वसुः) सेनाको बसाता है वह (हरी) दोनों घोडोंको (विश्वा दुरिता अति पारिषत्) सारी कठिनताओंके पार ले गया ॥ ३ ॥

(स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः) दो स्रुवोंके समान जिसके दोनों जबडे अलग अलग चलते हैं । (शिप्रे हरिणी वाजाय दविध्वतः) दोनों जबडे वेगके लिये वह जब कंपाता है (यत्कृते चमसे) जिसके लिये चमस तैयार हुए हैं (मदस्य हर्यतस्य अन्धसः पीत्वा) आनंददायक प्रिय अन्नरसको पीकर वह अपने (हरी मर्मृजत्) दोनों घोडोंको पोंछता है ॥ ४ ॥

(उत हर्यतस्य पस्त्योः सद्म स्म) यदि इच्छा करनेवाले इन्द्रका घर द्यौ और पृथिवीमें है, तो जहांसे (अत्यः वाजं न) घोडा जैसा युद्धमें जाता है वैसा यह (हरिवान् अचिक्रदत्) घोडोंवाला इन्द्र आया है । (मही धिषणा चित्) बडी स्तुतिसे (ओजसा अहर्यत्) बलसे उसकी इच्छा करता है । और (हर्यतः चित् बृहत् वयः आ दधिषे) वह इच्छा करनेवालेने बडी आयु धारण की ॥ ५ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके और कर्म ये हैं—

१ हरी वज्रिणं इन्द्रं रथे वहतः— दो घोडे वज्रधारी इन्द्रको रथमें बिठलाकर ले जाते हैं ।

२ स्थिरस्य हरी युक्ता हिरण्यम्— युद्धमें स्थिर रहनेवाले इन्द्रके दो घोडे त्वरासे ले चलते हैं ।

३ अर्वद्भिः हरिभिः यः ओजं ईयते— वेगवान् घोडोंसे वह सत्वर जाता है ।

४ अर्वद्भिः हरिभिः यः वाजिनी-वसुः— वेगवान् घोडोंसे जो सेनाको बसाता है ।

५ हरी विश्वा दुरिता अति पारिषत्— दो घोडे सब संकटोंके पार करते हैं ।

६ अत्यः वाजं न हरिवान् अचिक्रदत्— घोडा युद्धमें जाता है उस तरह इन्द्र जाता है ।

इन्द्रका वर्णन—

१ हरिश्मशारुः— सोनेके रंगके मूछोंवाला
२ हरिकेशः— सोनेके रंगके बालवाला
३ आयसः— फौलादका वज्र धारण करता है
४ हरिपा— घोडोंका पालन करनेमें कुशल
५ वाजिनी-वसुः— सेनाओंको अच्छी तरह बसानेवाला
६ बृहत् वयः दधिषे— बडी आयु धारण करता है ।

(सूक्त ३२)

प्र (महित्वा) अपनी महिमासे (रोदसी आ हर्यमाणः) द्युलोक और पृथिवीको भर देता है । तथा (नव्यंनव्यं प्रियं मन्म) नवीन नवीन प्रिय स्तोत्रको प्र (हर्यसि) चाहता है । हे (असुर प्र) जीवन शक्ति देनेवाले इन्द्र ! (हरये सूर्याय) दुःखोंका हरण करनेवाले सूर्यके लिये (गोः हर्यतं पस्त्यं) गौओंके सुहावने स्थानको (प्र आविष्कृधि) प्रकट कर ॥ १ ॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥ २ ॥
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥ (१९४)

[सूक्त ३२]

(ऋषिः — १-३ मघवा । देवता — इन्द्रः ।)

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ १ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ २ ॥
ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ३ ॥ ऋ. १०।९६।११ १३ (१०७)

॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

महित्या रोदसी आ दयमानाः— और अपनी महिमासे [illegible] भर दे।

मध्व प्रिय मग्म दयसि— मधुर प्रिय [illegible] स्तोत्र [illegible] है।

दस्य सूर्याय गोः इयत परस्ये प्र माविष्टपि— [illegible] सूर्य प्रकाशमें [illegible] कर। सूर्य प्रकाशमें [illegible] दिया कर।

हे इन्द्र ! (जनानां प्रयुजः) [illegible] (हरिशिप्र रथा) तुम्हारे [illegible] (रथे आ वहन्तु) रथमें बिठाकर ले आवें। (सधमादे) साथ साथ बैठकर आनन्द [illegible] (दशोणिं यज्ञं हर्यन्) [illegible] (प्रतिभृतस्य मध्वः) [illegible] मधुर रसका (यथा पिब) [illegible] पान कर ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (हरि वः) घोडोंवाले वीर ! (पूर्वेषां सुतानां अपाः) इन सबके [illegible] पिया है। (अथो इदं सवनं ते केवलं) और यह [illegible] केवल तेरा लिये है। हे इन्द्र ! (मधुमन्तं सोमं ममद्धि) [illegible] हे इन्द्र ! (जठरे) [illegible] (वृषं सत्रा आ वृषस्व) [illegible] ॥ ३ ॥

१ (अथर्व [illegible])

जनानां प्रयुजः हरिशिप्रं रथा रथे आ वहन्तु— लोगोंके [illegible] रथमें बिठाकर [illegible] स्थान पर ले आवें।

सधमादे— साथ साथ बैठें और आनंद [illegible] कर।

हरिवः— घोडोंवाले वीर हो।

(सूक्त ३२)

हे (हरि वः) घोडोंवाले वीर ! (अप्सु धूतस्य) जलोंसे मिलाये सोमरसका (इह पिब) यहां पान कर। (नृभिः सुतस्य) मानवोंने निचोडे [illegible] (जठरं पृणस्व) पेटमें भर दे ॥ १ ॥

ह (हरि-अश्व) [illegible] इन्द्र ! (वृष्णे तुभ्य सुतस्य) [illegible] (सत्यां उग्रां पीतिं) [illegible] (प्रयै प्र इयर्मि) [illegible] हे इन्द्र ! (धेनाभिः इह मादयस्व) [illegible] (विश्वाभिः धीभिः) [illegible] (शच्या गृणानः) [illegible] ॥ २ ॥

([illegible] देखें)

हे (शचीवः) [illegible] इन्द्र ! (तव ऊती) [illegible] (तव वीर्येण) [illegible] (वयः दधानाः) [illegible] (उशिजः ऋतज्ञाः) [illegible]

[सूक्त ३४]

(ऋषिः — १-१८ गृत्समदः । देवता — इन्द्रः ।)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपितॉं अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥
यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥

शाली लोग मिले। हे इन्द्र! (प्रजावत्) प्रजासे युक्त होकर (सधमादासः सुवीराः) एकत्र आनन्दसे रहनेवाले तेरी स्तुति करते हुए (मनुषः दुरोणे तस्थुः) मानवोंके घरमें निवास करते रहें ॥ ३ ॥

हरिवः— घोडोंके साथ रहनेवाला वीर
शचीवः— सामर्थ्यवान् वीर

तव क्रत्वी तव वीर्येण वयः दधानाः— तेरे रक्षणसे सुरक्षित और तेरे पराक्रमसे अधिकार होनेवाले वीर हों।

सखित्वा जहानाः— प्रेमसे साथ बैठकर श्रेष्ठ कर्म करनेवाले हों और वे सबका त्याग जाननेवाले हों।

प्रजावत्— संतानोंसे युक्त हों कोई संतानहीन न हो।

सधमादासः सुवीराः मनुषः दुरोणे तस्थुः— एकत्र रहकर आनंद बढानेवाले तेरी स्तुति करनेवाले लोग मानवोंके रहने योग्य घरमें रहें। उत्तम वीर परम आनन्दसे रहें।

॥ यहां तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ३४)

(यः मनस्वान् प्रथम देवः) जो बुद्धिमान् पहिला देव (जातः एव) प्रकट होते ही (क्रतुना देवान् पर्यभूषत्) अपने कर्मसे सब देवोंको सुभूषित करता है, (यस्य शुष्मात्) जिसके बलसे और (नृम्णस्य मह्ना) वीरताकी महिमासे (रोदसी अभ्यसेताम्) दोनों लोक कांपते हैं हे (जनासः) लोगो! (स इन्द्रः) वह इन्द्र है ॥ १ ॥
(ऋ. २।१२।१)

(यः व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत्) जिसने दुःखित पृथिवीको सुदृढ बनाया (यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्) जिसने प्रकुपित पर्वतोंको रमणीय बनाया, (यः अन्तरिक्षं वरीयः विममे) जिसने अन्तरिक्षको बडा बनाया (यः द्यां अस्तभ्नात्) जिसने द्युलोकको स्थिर बनाया हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ २ ॥ (ऋ. २।१२।२)

(यः अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्) जिसने मेघको मार कर सात नदियोंको बहाया (यः वलस्य अपधा गाः उदाजत्) जिसने बलकी गुफासे गौओंको बाहर निकाला (यः अश्मनः अन्तः अग्निं जजान) जिसने पत्थरोंके अन्दर अग्निको उत्पन्न किया जो (समत्सु संवृक्) जो युद्धोंमें शत्रुको घेरता है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ ३ ॥
(ऋ. २।१२।३)

(येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि) जिसने ये सब भुवन हिलनेवाले बनाये हैं (यः दासं वर्णं अधरं गुहा अकः) जिसने दास वर्णको नीच और गुफामें रहनेवाला किया है, (यः अर्यः जिगीवान्) जो श्रेष्ठ विजयी होकर (श्वघ्नी इव लक्षं पुष्टानि आददत्) व्याधके समान लक्ष्यको और पोषक धनोंको प्राप्त करता है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ ४ ॥
(ऋ. २।१२।४)

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

(यं घोरं) जिस भयानकके विषयमें (पृच्छन्ति) पूछते हैं कि (सः कुह इति) वह कहाँ रहता है (उत एनम् आहुः) और इसके विषयमें कहते हैं कि (न एषः अस्ति इति) वह है ही नहीं। (सः अर्यः) वह श्रेष्ठ (विज इव पुष्टीः आमिनाति) [illegible] पुष्टि [illegible] करता है (अस्मै श्रत् धत्त) इसपर श्रद्धा धारण करो हे लोगो! वही इन्द्र है ॥५॥ (ऋ. २।१२।५)

(यः रध्रस्य) जो [illegible] (यः कृशस्य) जो दुर्बलका (यः ब्रह्मणः) जो ज्ञानीका और (नाधमानस्य कीरेः) याचना करनेवाले कविका (चोदिता) प्रेरक होता है (युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य यः अविता) जो पत्थरोंसे सोमरस निकालनेवालेका रक्षक है जो (सुशिप्रः) सुन्दर [illegible] है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥६॥ (ऋ. २।१२।६)

(यस्य प्रदिशि) जिसके अधिकारमें (अश्वासः) घोडे हैं (यस्य गावः) जिसकी गौवें हैं (यस्य ग्रामाः) जिसके [illegible] हैं (यस्य विश्वे रथासः) जिसके सब रथ हैं (यः सूर्यं यः उषसं जजान) जिसने सूर्य और उषाको उत्पन्न किया है (यः अपां नेता) जो जलोंका नेता है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥७॥ (ऋ. २।१२।७)

(संयती क्रन्दसी यं विह्वयेते) आपसमें युद्ध किया करती हुई सेनाएँ जिसको बुलाती हैं। (परे अवरे उभयाः अमित्राः) श्रेष्ठ और कनिष्ठ दोनों प्रकारके शत्रु जिसको बुलाते हैं (समानं रथं चित् आतस्थिवांसा) समान रथपर चढनेवाले वीर (नाना हवेते) जिसको नाना प्रकारसे बुलाते हैं हे लोगो! वह इन्द्र है ॥८॥ (ऋ. २।१२।८)

(यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते) जिसकी सहायताके बिना लोग विजय नहीं प्राप्त कर सकते (युध्यमानाः अवसे यं हवन्ते) युद्ध करनेवाले अपने रक्षणके लिये जिसको बुलाते हैं (यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव) जो विश्वका आदर्श [illegible] हुआ है (यः अच्युतच्युत्) जो न हिलनेवालोंको हिलानेवाला है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥९॥ (ऋ. २।१२।९)

(यः शर्वा) जिस [illegible] (शश्वतः मही एनः दधानान्) [illegible] (अमन्यमानान्) [illegible] (जघान) मारा। (यः शर्धते) [illegible] (शृध्यां न अनुददाति) [illegible] नहीं करता (यः दस्योः हन्ता) जो दस्युका [illegible] है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥१०॥ (ऋ. २।१२।१०)

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥
यः शम्बरं पर्यतरत्कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत्सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत्स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १५ ॥
जातो व्यख्यत्पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद्व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥ १६ ॥

(यः पर्वतेषु क्षियन्तं शंबरं) जिसने पर्वतोंमें रहने वाले मेघको (चत्वारिंश्यां शरदि) चालीसवें वर्ष (अन्वविन्दत्) ढूंढ निकाला (यः ओजायमानं अहिं) जिसने बल बढानेवाले अहिको-मेघको जो (दानुं शयानं) दानी और विश्राम करनेवाला था उसको (जघान) मारा है लोगो ! वह इन्द्र है ॥ ११ ॥ (ऋ. २।१२।११)

(यः कसीभिः शंबरं पर्यतरत्) जिसने बलोंसे शंबरको-मेघको पीछे किया (यः अचारुका-अस्ना) जो सुन्दर मुखसे (सुतस्य अपिबत्) सोमरसको पीता है (बहुं जनं यजमानं) यज्ञ करनेवाले बहुत जनोंको (अन्तः गिरौ यस्मिन् आ मूर्छत्) जिस पर्वतमें इकट्ठा करता है लोगो ! वह इन्द्र है ॥ १२ ॥

(यः सप्तरश्मिः वृषभः) जो सात किरणोंवाला बलवान् (तुविष्मान्) सामर्थ्यवान् देव (सप्त सिन्धून्) सात नदियोंको (सर्तवे अवासृजत्) बहनेके लिये छोड देता है। (यः वज्रबाहुः) जिस वज्रधारीने (द्यां आरोहन्तं रौहिणं अस्फुरत्) द्युलोकपर चढनेवाले रौहिणको नष्ट किया है, हे लोगो ! वह इन्द्र है ॥ १३ ॥ (ऋ. २।१२।१२)

(द्यावा पृथिवी अस्मै चित् नमेते) द्युलोक और पृथिवी इसके सामने नम्र होते हैं (अस्य शुष्मात् चित् पर्वताः भयन्ते) इसके बलसे पर्वत भयभीत होते हैं। (यः सोमपाः) जो सोमपान करनेवाला (यः वज्रबाहुः वज्रहस्तः निचितः) जो वज्रके समान बाहुवाला और हाथमें वज्र धारण करनेवाला प्रसिद्ध है हे लोगो ! वह इन्द्र है ॥ १४ ॥ (ऋ. २।१२।१३)

(यः सुन्वन्तं अवति) जो सोमरस निकालनेवालेकी रक्षा करता है (यः पचन्तं) जो अन्न पकानेवालेकी रक्षा करता है (यः शंसन्तं) जो मंत्र बोलनेवालेकी (यः शशमानं) जो अपने रक्षणके साथ दान देता है उसकी रक्षा करता है (ब्रह्म यस्य वर्धनं) ज्ञान जिसके यशका वर्धन करता है, (सोमः यस्य) सोम जिसका यशोवर्धन करता (इदं राधः यस्य) यह हवि जिसका वर्धन करता है हे लोगो ! वह इन्द्र है ॥ १५ ॥ (ऋ. २।१२।१४)

(जातः) प्रकट होते ही (पित्रोः उपस्थे व्यख्यत्) मातापिताकी गोदमें रहकर जो प्रसिद्ध होता है (यः भुवः) जो भूमिको और (परस्य जनितुः न वेद) श्रेष्ठ उत्पादकको भी नहीं जानता ! (यः नः स्तविष्यमाणः) जो हमसे स्तुति होनेपर (अस्मत् देवानां व्रता) हमारे देवोंके व्रतोंको पूर्ण करता है हे लोगो ! वह इन्द्र है ॥ १६ ॥

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद्रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १८ ॥ (२१५)

(यः सोमकामः) जो सोम चाहता है। जो (हर्यश्वः) भूरे रंगके घोडोंवाला (सूरिः) ज्ञानी है, (यस्मात् विश्वा भुवनानि रेजन्ते) जिससे सब भुवन कांपते हैं (यः शंबरं जघान) जिसने शंबरको मारा (यः च शुष्णं) जिसने शुष्णको मारा (यः एकवीरः) जो एक मात्र वीर है हे जनो ! वह इन्द्र है ॥ १७ ॥

(यः दुध्रः चित्) जो दुर्धर्ष होनेपर भी (सुन्वते पचते वाजं आ दर्दर्षि) सोमरस निकालनेवाले और अन्न पकानेवालेके लिये बल तथा अन्न देता है (सः सत्यः किल असि) वह निःसंदेह सत्य है। हे इन्द्र ! (वयं ते विश्वह प्रियासः) हम तेरे सदा प्रिय होकर (सुवीरासः) उत्तम वीर पुत्रोंके समेत (विदथं आ वदेम) तेरे गीत गाते रहेंगे ॥ १८ ॥ (ऋ. २।१२।१५)

इस सूक्तमें इन्द्रके गुणों और कार्योंका वर्णन किया है जो गुण देखकर इन्द्रको सब पहचान सकते हैं। वे गुण ये हैं—

१ यः मनस्वान् प्रथमः देवः— जो बुद्धिमान पहिला देव है। वह पहिला देव है। इससे पूर्व कोई देव नहीं है। सबमें जो आदिम देव है वह यह है। यह मनस्वान् अतः पूर्वक पूर्ण ज्ञानपूर्वक सब कार्य करता है।

२ यः जात एव क्रतुना देवान् पर्यभूषत्— जो प्रकट होते ही [सब देवोंको उत्पन्न करके] अपने सामर्थ्यसे उन सब देवोंको सुन्दर सुभूषित करता है। वह (प्रथमः देवः) पहिला देव है इसके पूर्व कोई देव था ही नहीं इसलिये इसको पहिला देव कहा है। इसने सब देव उत्पन्न किये और उनको सुन्दर भी बनाया। सुभूषित भी किया। अर्थात् सब देवोंमें पहिले देवकी शक्ति ही कार्य करती रही जिससे सब अन्य देव शक्तिमान दीखने लगे।

३ यस्य शुष्मात् नृम्णस्य मह्ना रोदसी अभ्यसेताम्— इस देवकी शक्तिसे इसके वीरत्वकी महिमासे द्यावा पृथिवी अपने अपने कार्य करनेमें दत्तचित्त रहते हैं। अभ्यसन – का अर्थ वारंवार वही कार्य करना। भूलोक तथा आकाशमें वारंवार वे वे कार्य होते रहते हैं। नियमपूर्वक कार्य होते रहते हैं सूर्यका प्रकाश वायुका बहना पर्जन्य होना आदि जो कार्य निरंतर हो रहे हैं वे इस आदिदेवकी शक्तिसे ही हो रहे हैं। और होते रहेंगे ॥ १ ॥

४ यः व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत्— जो दुःखी हुई पृथिवीको दृढ बनाता है। इससे स्पष्ट होता है कि पृथिवी प्रारंभमें कंप देनेवाली थी। उस पृथिवीको उस देवने (अदृंहत्) सुदृढ बनाया। यह पृथिवी आजके समान दृढ नहीं थी। पीछेसे दृढ हुई है।

५ यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्— जो प्रकुपित पर्वतोंको रमणीय बनाता है। जो क्षुब्ध पर्वत थे उनको शान्त तथा रमणीय इसी देवने बनाया।

इस वर्णनसे भूमि प्रथम परमाणुरूप थी पर्वत ज्वालामुखी थे पीछेसे भूमि और पर्वत रमणीय हुए। हरियाली पीछेसे हुई ऐसा दीखता है ॥ २ ॥

६ यः अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्— जिसने अहिको मारा और सात नदियोंको बहाया। अहि मेघका नाम है अहि नामक एक जाति भी थी। 'अहि'-क्षय न होनेवाला अ-हि पर्वतपर पड़े बर्फका भी नाम है। इस पर्वतपर पड़े बर्फको पिघलाकर नदियोंको बहाकर चलाना इन्द्रका ही सूचक कार्य है।

७ यः गाः वलस्य अपधा उदाजत्— जिसने वलके छिपकर रखी गौवें बाहर निकालीं। वल कौन है इसकी खोज करनी चाहिये। गौवें यहां सूर्यकी प्रकाश किरणें हैं ऐसा प्रतीत होता है। अन्धकारमें प्रकाश किरणें छिपी रहती हैं वे ऊपर आती हैं। वल अन्धकार है। उसने प्रकाश किरणें नीचे रखी थी उनको प्रकट होनेपर सूर्यदेवने ऊपर लायी यह रूपक अलंकार यहां होगा।

८ यः अश्मनोः अन्तः अग्निं जजान— जिसने पत्थरोंमें अग्नि उत्पन्न किया है। दो पत्थर एक दूसरेपर आघात करनेपर उनसे अग्नि उत्पन्न होता है। दो मेघ [illegible] उनमें विद्युत् अग्नि प्रकट हुए होता है। यह उस पहिले देवका सामर्थ्य है।

९ समत्सु सत्वा— यह वीरोंका देव संग्रामोंमें शत्रुओंको घेर कर उनका नाश करता है। संग्रामोंमें वीरोंमें बल उत्पन्न करता है जिस बलसे वीर शत्रुको घेरते और उनका नाश कर सकते हैं ॥ १ ॥

१० येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि— जिसने ये सब सूर्य चन्द्र भूमि आदि घूमनेवाले बनाये हैं। इस देवकी आयोजनासे यह सब विश्व नियत गतिसे घूम रहा है।

११ यः दासं वर्णं अधरं गुहा कः— जिसने दासको नीच और गुहा निवासी बनाया है। दास ज्ञानहीन है इस कारण नीच है। संस्कारहीन होनेके कारण गुहामें रहता है।

१२ जिगीवान्— आर्यको विजयी बनाया है। यहां आर्य और दास का वर्णन है। आर्य विजयी है और दास नीच होते हैं। आगे बढनेवाले और पीछे रहनेवाले यहां संस्कारोंके कारण बननेवाले गुण हैं।

१३ श्वघ्नी इव लक्षं पुष्टानि आदत्— व्याधके समान अपने लक्ष्यपर मन रखता है और पोषक पदार्थ प्राप्त करता है। यही श्रेष्ठ यशोरूप उपाय है अपने लक्ष्यपर ध्यान रखना और पोषक धन प्राप्त करना। इससे प्रयत्न करनेवाला श्रेष्ठ बनता है विजयी बनता है।

१४ यं स्मा पृच्छन्ति स कुह इति— इस महा भयंकर सामर्थ्यवानके विषयमें पूछते हैं कि वह कहां रहता है। भयकारी ज्ञानी यह प्रथम प्रश्न हुआ वह कहां रहता है इसीका विचार करते रहते हैं।

१५ उत एनं आहुः एषः न अस्ति इति— कई अविचारी लोग कहते हैं कि वह प्रथम प्रश्न हुआ ऐसा कोई देव है ही नहीं।

१६ अस्मै श्रत् धत्त— इस आदिदेवपर श्रद्धा धारण करो इससे श्रेष्ठता प्राप्त होती है।

१७ सः अर्यः— वह श्रेष्ठ होता है जो इस प्रथम देवपर श्रद्धा रखता है वह श्रेष्ठ होता है और—

१८ विज इव पुष्टीः आमिनाति— पक्षीके समान वह पोषक धन प्राप्त करता है। विज् पक्षी। पक्षी जिसतरह अपने लिये पुष्टिकारक अन्न प्राप्त करता है वैसा प्रयत्नशील मानव अपने लिये पोषणके साधन प्राप्त करेगा ॥ ५ ॥

१९ यः रध्रस्य कृशस्य नाधमानस्य ब्रह्मणः कीरेः चोदिता— जो उपासक कृश प्रार्थना करनेवाले ज्ञानी कविको प्रेरणा करनेवाला है। रध्र – धनी उदार निर्धन उपासक। नाधमान– उपासक प्रार्थना करनेवाला। कीरि– स्तोता कवि। प्रार्थना, प्रार्थना करनेवाला।

२० सुशिप्रः— उत्तम हनुवाला उत्तम साफा बांधनेवाला।

२१ युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य यः अविता— यह पर्वतोंका संरक्षक। पत्थरोंसे सोमरस निचोड कर उसका जो यज्ञ करता है उसका रक्षक। सोमयज्ञ करनेवालेका रक्षक ॥ ६ ॥

सोमयागमें धर्मसभा होती है और उसमें जनकल्याणके साधनोंका विचार होता है। इस कारण सोमयागकी प्रेरणा यह करता है। अर्थात इससे जनसमुदायका कल्याण होता है।

२२ यस्य प्रदिशि अश्वाः यस्य गावः यस्य ग्रामाः यस्य विश्वे रथासः— जिसकी आज्ञामें ये घोडे गौवें ग्राम और सब रथ रहते हैं। जिसकी आज्ञा सबको माननी पडती है। इतना जिसका सामर्थ्य है।

२३ यः सूर्यं उषसं जजान— जिसने उषा और सूर्यको बनाया

२४ यः अपां नेता— जो जलोंको चलानेवाला है जिसकी आज्ञासे नदियां बह रही है और वृष्टि होती है वह आदिदेव है ॥ ७ ॥

२५ यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते— परस्पर युद्ध करनेवाली सेनाएं जिसको अपनी सहायताके लिये बुलाती हैं।

२६ परे अवरे उभया अमित्राः (यं विह्वयेते)— श्रेष्ठ और कनिष्ठ दोनों प्रकारके शत्रु जिसको अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं।

२७ समानं रथं आतस्थिवांसा नाना हवेते— समान रथपर बैठनेवाले वीर जिसको अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं ॥ ८ ॥

२८ यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते— जिसकी सहायता न हुई तो वीर लोगोंको जय प्राप्त नहीं होता।

२९ युध्यमानाः अवसे यं हवन्ते— युद्ध करनेवाले वीर जिसको सहायताके लिये बुलाते हैं।

३० यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव— जो विश्वका आदर्श नमूना हुआ है।

३१ यः अच्युत-च्युत्— जो कभी न हिलनेवालोंको भी उखाडकर फेंक देता है ॥ ९ ॥

३२ यः शश्वतः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् जघान— जो बडा पाप करनेवाले अविचारी नास्तिकोंको नष्ट भ्रष्ट करता है।

३३ यः शर्धते शृध्यां न अनुददाति— जो घमंडीको घमंडको नहीं सहता उसको दंड उतार देता है,

३४ यः दस्योः हन्ता— जो दुष्टोंका विनाश करता है ॥ १० ॥

३५ पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं चत्वारिंश्यां शरदि अन्वविन्दत्— पर्वतोंमें रहनेवाले मेघको-वर्षाके चालीसवें वर्षमें जिसने प्राप्त किया।

यहां चालीसवें वर्ष मेघको प्राप्त किया इसका तात्पर्य ध्यानमें नहीं आता। विज्ञानकी दृष्टिसे इसकी खोज वैज्ञानिक करें। शम्बर का अर्थ मेघ हिम बर्फ आदि प्रसिद्ध है परन्तु इससे यहां कुछ भी बोध नहीं प्राप्त होता है। वैदिक विज्ञानकी दृष्टिसे इस विषयकी खोज करें।

३६ यः ओजायमानं दानुं शयानं अहिं जघान— विघ्न उत्पन्न होनेवाले दानी सोनेवाले अहिको मारा। अहि का अर्थ- सर्प मेघ वक्र शत्रु है। या शत्रु अपना बल बढाता रहा या उसको इन्द्रने मारा। अहि एक मानव जातीका भी नाम है। अहिके विषयमें भी खोज होनी चाहिये ॥ ११ ॥

३७ यः कसीभिः शंबरं पर्वतराम्— जिसने शक्तोंसे शंबरको मारा। यदि शंबर मेघ है तो अनेक वज्र उसके मारनेके लिये विद्युत काम करते हैं। (३५ वीं टिप्पणी देखिये।)

३८ यः [illegible] सुतस्य अपिबत्— जो सुन्दर मुखसे सोमरस पीता है।

३९ यस्मिन् गिरौ सन्तः यजमानं बहुतम अमूर्छत्— जिस पर्वतके अन्दर बैठकर यज्ञ करनेवाले बहुत लोगोंको जिसने बचाया। मूर्छ- शक्ति प्राप्त करना बढना ॥ १२ ॥

४० यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत्— जो सात किरणोंवाले बलवान्, सामर्थ्यवाले सात नदियोंको बहनेके लिये छोड दिया। सप्त रश्मिः - सूर्य सात किरण जिसमें हैं। (टिप्पणी ६ देखो) सूर्य प्रकाशता है और उसकी गर्मीसे बर्फ पिघलकर नदियां बहती हैं।

४१ यः वज्रबाहुः द्यां आरोहन्तं रौहिणं अस्फुरत्— जिस वज्रधारीने द्युलोकपर चढनेवाले सूर्यको स्फुरण बढाया। रौहिणः सूर्य मह अग्नि आदि ॥ १३ ॥

४२ द्यावापृथिवी अस्मै चित् नमेते— द्यावा पृथिवी इसके सामने नम्र हैं। इसके सामने शक्तिहीन दीखते हैं।

४३ अस्य शुष्मात् पर्वताः भयन्ते— इसके बलसे पर्वत भयभीत होते हैं।

४४ यः सोमपाः वज्रबाहुः वज्रहस्तः निचितः— जो सोमरस पीनेवाला वज्रसमान बाहुवाला वज्र हाथमें धारण करनेवाला प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥

४५ यः सुन्वन्तं पचन्तं शंसन्तं शशमानं अवति— जो याजक पाचक, स्तुति करनेवाले और दाताका रक्षण करता है।

४६ यस्य ब्रह्म सोमः राधः वर्धनम्— जिसका यजमान ज्ञान यज्ञ और हवि वर्धन करते हैं ॥ १५ ॥

४७ जातः पित्रोः उपस्थे अभवत्— जो प्रकट होते ही मातापिताका गोदमें प्रतिष्ठित होता है।

४८ यः भुवः परस्य अधिगुः न वेद ?— जो भूमिका और श्रेष्ठ बलवान्का भी नहीं जानता? अवश्य जानता है।

४९ नः स्तोषिष्यमाणः यः अस्मत् देवानां व्रता— जिसकी हमारे द्वारा स्तुति होनेपर सब देवोंके व्रतोंको वह परिपूर्ण करता है ॥ १६ ॥

५० सोमकामः हर्यश्वः सूरिः— जो सोमपर प्यार करता है जिसके भूरे रंगके घोडे हैं वह ज्ञानी है। यहां घोडेका अर्थ किरण लेना उचित है।

५१ यः शंबरं जघान यः शुष्णं— जो शंबरको और शुष्णको मारता है। (टिप्पणी ३५-३७ देखो)

५२ यः एकवीरः— जो एक वीर है ॥ १७ ॥

५३ यः दुध्रः चित् सुन्वते पचते वाजं आ दर्दर्षि— जो दुर्धर्ष प्रबल वीर है और सवनकर्ता और अन्नदान करनेवालोंके लिये बलवर्धक अन्न देता है।

५४ सः सत्यः किल असि— वही एक सत्यका रक्षक है। उसे असत्य कभी प्रवेश नहीं होता।

५५ वयं ते विश्वहा प्रियासः सुवीरासः विदथं आ वदेम— हम तेरे प्रभुके-सदा प्रिय हों उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त हों और तेरे गीत गाते रहें ॥ १८ ॥

इस सूक्तका विशेष मनन

यह सूक्त "हे जनासः ! स इन्द्रः" हे लोगो! यह इन्द्र यह है। इस तरह इन्द्रका स्वरूप बतानेवाला है। इसमें इन्द्रके गुण बताये हैं और इन्द्रका वर्णन भी किया है। इन्द्रका स्वरूप निश्चित करनेमें यह सूक्त बडी सहायता करनेवाला है।

१ पहिला देव इन्द्र है।

मनस्वान् प्रथमः देवः (मं १) बुद्धिमान् प्रथम देव इन्द्र है। सब देवोंमें जो प्रथम प्रकट हुआ वह यह इन्द्र है। इससे पूर्व और कोई देव प्रकट नहीं हुआ। सबके आदिमें

यह देव प्रकट हुआ है इसलिये हम इसको आदिदेव भी कह सकते हैं।

जात एव क्रतुना देवान् पर्यभूषत् (मं १) प्रकट होते ही अपने पुरुषार्थसे अन्य देवोंको उत्पन्न करके उन देवोंको सुभूषित भी इसीने किया अग्निमें तेज जलमें शान्ति वायुमें जीवनशक्ति सूर्यमें तेज चन्द्रमें आल्हाददायक शान्ति और रमणीय प्रकाश रखकर इन देवोंको सुभूषित इस आदि देवने किया है। ये देव इन गुणोंके कारण उपयोगी तथा सुभूषित हुए हैं।

यस्य शुष्मात् नृम्णस्य मह्ना रोदसी अभ्यसेतां (मं १)— इसके बलसे और पौरुषकी महिमासे द्यु और भूमि अपने अपने कार्य बारबार उसीके नियममें रहकर करते रहते हैं। जैसा कोई किसी विद्याका अभ्यास करता है वैसा ये देव अपने अपने कर्मका अभ्यास करते हैं। बारबार वही कार्य करते जाते हैं।

व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत् प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात् (मं २)— प्रथम पृथिवी व्यथा देनेवाली थी आज जैसी शांत है वैसी नहीं थी और पर्वत भी ज्वालामुखी जैसे थे। इस आदि देवने पृथिवीको सुदृढ और शांत बना दी और पर्वतोंको शान्ती उत्पन्न करके रमणीय बनाया। ऐसा होनेके लिये कितने वर्ष गये होंगे इसका अनुमान विज्ञानवेत्ता ही कर सकते हैं। पर्वत प्रकुपित थे वे रमणीय हुए हैं। यह सब आदि देवने ही बनाया है। ऐसा कोई दूसरा नहीं कर सकता।

अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात् (मं ३)— अहिको मारकर सात सिन्धुओंको बहाया। नदियां भरकर बहने लगीं। मेघसे वृष्टि करके या बर्फको पिघलाकर नदियोंको बहाया।

बलस्य अपधा गाः उदाजत् (मं ३)— उसने छिपाई गौवें उनके बाडेको तोडकर ऊपर लाया। सूर्यकी किरणें ये गौवें हैं। वर्षाकालमें सूर्य किरणे ऊपर आने लगती हैं। सूर्य व नीचे रहती है। उत्तर ध्रुव प्रदेशमें यह दृश्य अधिक सुंदर दीखता है। वह मास २ दिखता रहता है। इस समय प्रकाश किरण और अन्धकारका युद्ध हो रहा है और अन्धेरेको दूर करके प्रकाशके किरण बाहर आ रहे हैं। यह एक युद्धसा ही होता है। गौवें यहां किरणें हैं।

अश्मनोः अन्तः अग्निं जजान (मं ३)— पत्थरोंमें अग्नि रखा है। दो पत्थर एक दूसरेपर मारनेसे अग्नि उत्पन्न होता है। दो मेघोंमें विद्युत् चमकता है। यह सब आदि देवका सामर्थ्य है।

समत्सु संवृक् (मं ३)— संग्रामोंमें शत्रुनाशको करता है। वीरोंके अन्दरका सामर्थ्य इन्द्रसे प्राप्त हुआ सामर्थ्य है। इन्द्र ऐसा करता है।

इमा विश्वा च्यवना कृतानि (मं ४)— ये सब विश्व घूमनेवाले बनाये ये इस आदि देवने ही बनाये हैं। ये सब विश्व अपने नियत गतिसे घूम रहा है यह आदि देवकी योजनाके अनुसार ही है।

दासं वर्णं गुहा अधरं कः (मं ४)— दासको नीच स्थानमें रहनेवाला बनाया। दास वह है कि जो अपने अज्ञानपनके कारण दासको प्राप्त होता है। इस कारण जो अज्ञानी होता है वह गुहामें रहता है। बडे घर बना कर रहना यह ज्ञानके विना नहीं हो सकता। इसलिये दासको उसने नीचे रखा है। जो अज्ञानी होंगे वे नीचे ही रहेंगे।

यः सूर्यं उषसं जजान, यः अपां नेता (मं ७)— जिसने सूर्य और उषाको बनाया जो जलोंको चलाता है वह जलोंको चलाता है।

यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव (मं ९)— जो विश्वके लिये आदर्श नमूना हुआ है। जो 'अच्युतच्युत्' स्थिरोंको भी उखाडकर फेंक देता है ऐसा जो सामर्थ्यवान् है।

यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत् (मं ११)— जो सप्त किरणोंवाला बलवान् और सामर्थ्यवान् है उसने सात नदियोंको बहनेके लिये प्रेरित किया। जिसके सामर्थ्यसे ये सात नदियां प्रवाहित हो रही हैं। मानव देहमें दो आंख दो कान दो नाक और एक रसना ये सात इंद्रियां भी सात ज्ञानशक्तिके प्रवाह हैं। आत्मा बलवान् और सामर्थ्यवान् है उसमें सप्त किरण हैं और उससे ये सात प्रवाह चल रहे हैं। सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ। (यजु. ३४।५५)— सात नदियां सोनेके पश्चात् सोनेवाले आत्माके लोकमें जाती हैं उस समय दो देव प्राण और अपान जो इस यज्ञभूमिमें– इस शरीरमें– यज्ञके रक्षणके लिये दिनरात जागते हैं। ऐसा अध्यात्म सात प्रवाहोंका वर्णन आता है वह भी यहां देखने योग्य है। अध्यात्म क्षेत्रमें ये सात ज्ञानशक्तियोंके प्रवाह आत्मासे चलते रहते हैं।

यः वज्रबाहुः द्यां आरोहन्तं रौहिणं अस्फुरत् (मं १२)— जिस वज्रधारी इन्द्रने द्युलोकपर चढनेवाले सूर्यको स्फुरण दिया है। उत्तेजित किया है।

द्यावा पृथिवी अस्मै नमेते ' (मं १४)— द्युलोक और पृथिवी इस आदि देवके सामने नम्र होकर रहते हैं। तथा अस्य शुष्मात् पर्वता भयन्ते (मं १४)— इस आदि देवके भयसे पर्वत भी भयभीत होते हैं इस प्रकार रहते हैं।

उसपर श्रद्धा रखो

इस तरह इस आदि देवका वर्णन इस सूक्तमें है। इस आदि देवके विषयमें लोग पूछते हैं कि यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति (मं ५) इस भयंकर शक्तिमान आदि देवके विषयमें पूछते हैं कि वह कहां रहता है ? ऐसा प्रश्न करना योग्य है, पर इस विषयमें श्रद्धा रखनी चाहिये। अस्मै श्रद्धत्त (मं ५)— इस आदि देवपर श्रद्धा रखिये। श्रद्धा रखनेसे आपका यह सब होगा। कई नास्तिक कहते हैं कि नैष अस्तीत्येनम् आहुः नैष अस्ति इति (मं ५)— इस आदि देवके विषयमें कई नास्तिक कहते हैं कि वह है ही नहीं। ऐसी कल्पना रखना योग्य नहीं है क्योंकि वह—

स रध्रस्य कृशस्य नाधमानस्य ब्रह्मणः कीरेः चोदिता (मं ६)— वह निर्धन कृश प्रार्थना करनेवाले ज्ञानी ऋषिके लिये उत्तम प्रेरणा देनेवाला है। उसकी प्रेरणाएं चल रही हैं उनको भक्तसे सुनना चाहिये।

स अर्यः (मं ५); विजेता (मं ४)— वह श्रेष्ठ है और सदा विजयी है। विज इव पुष्टीः आ मिनाति (मं ५)— जैसे जीतनेवाला अपने लिये पुष्टिकारक सब धन प्राप्त करता है, उस तरह उसका भक्त उसकी शुभ प्रेरणासे अपनी उन्नतिके साधन प्राप्त करता है। श्वघ्नी इव लक्षं पुष्टानि आददे (मं ४)— व्याधके समान अपने लक्ष्यका वेध करे इससे वह अपने पौषक अन्न भरपूर प्राप्त करता है। अपना लक्ष्य ठीक तरह अपने सामने रखना चाहिये और उसको प्राप्त करना चाहिये।

वह अविता (मं ६)— सबका संरक्षक है यज्ञकर्ताका वह संरक्षण करता है। इसलिये यस्य प्रदिशि ग्रामाः विश्वे रथासः अश्वासः गावः (मं ७)— उसके आदेशमें सब गांव सब घोडे और गौएं अर्थात् संपूर्ण विश्व रहता है। इसीलिये यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते (मं ८)— दोनों युद्धमान सेनाएं अपनी सहायतार्थ इसको बुलाती हैं तथा ' परे अवरे अमित्राः (यं विह्वयन्ते) (मं ८)— दूरके और पासके शत्रु जिसको अपनी सहायतार्थ बुलाते हैं। समानं रथं आतस्थिवांसा नाना हवन्ते (मं ८)— समान रथपर बैठनेवाले नाना प्रकारके वीर युद्धमें सहायार्थ जिसको बुलाते हैं। ' युध्यमानाः यं अवसे हवन्ते ' (मं. ८)— युद्ध करनेवाले वीर अपनी सुरक्षाके लिये जिसकी प्रार्थना करते हैं। यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते (मं ९)— जिसकी सहायता न मिली तो युद्धमें वीर विजयी नहीं होते। ऐसा यह आदिम देवका सामर्थ्य है। इस कारण उसपर विश्वास रखना योग्य है।

पापीयोंको वह मारता है

यः शश्वतो महि एनः दधानान् अमन्यमानान् जघान (मं १)— जो भगवान् हमेशा पापी आचरण करनेवालोंको और अविश्वासियोंको मारता है। शर्धते शृध्यां न अनु ददाति (मं १)— घमंडीको घमंड नहीं सहता घमंड उतार देता है। वह दस्योः हन्ता (मं १)— दुष्टोंका विनाशक है।

शंबरं अन्वविन्दत्, अहिं जघान (मं ११); ' शंबरं पर्वतेषु (मं ११)— शंबर और अहिको इसीने मारा। इस तरह दुष्टोंको भी मारता है।

अस्य ब्रह्म सोमः राधः वर्धनं (मं १५)— इसका ज्ञान यज्ञ और हवि संवर्धन करते हैं उपासक भक्तको बढाते हैं। स्तविष्यमाणः यः असत् देवानां मता ' (मं १६)— हमारे द्वारा स्तुति हुई तो हमारे अन्दरके सब देवोंके अंशोंका पालन वह करता है। हमारे शरीरमें जो देव हैं उनसे हमारी उन्नतिमें आवश्यक सहायता प्राप्त होती है और उससे हमारी निःसंदेह उन्नति होती है। वह आदि देव स सत्यः इत् असि (मं १८)— वह सदा निःसंदेह है। इस कारण ' वयं ते विश्वहा प्रियासः सुवीरासः विदथं आ वदेम (मं १८)— हम सब सर्वदा तेरे लिये प्रिय होकर रहेंगे और उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंके साथ तुम्हारे ही गीत गाते रहेंगे।

वह आदि देवकी भक्ति करेंगे। इस तरह इस सूक्तमें उस आदि देवका वर्णन मनन करने योग्य है।

यह देव प्रकट हुआ है इसलिये हम इसको आदिदेव भी कह सकते हैं।

जात एव क्रतुना देवान् पर्यभूषत् (मं १)- प्रकट होते ही अपने पुरुषार्थसे अन्य देवोंको उत्पन्न करके उन देवोंको सुभूषित भी इसीने किया अग्निमें तेज वायुमें जीवनशक्ति सूर्यमें तेज चन्द्रमें आल्हाददायक शान्त और रमणीय प्रकाश रखकर इन देवोंको सुभूषित इस आदि देवने किया है। ये देव इन गुणोंके कारण उपयोगी तथा सुभूषित हुए हैं।

यस्य शुष्मात् नृम्णस्य महा रोदसी अभ्यसेताम् (मं १)— इसके बलसे और पौरुषकी महिमासे द्यु और भूमि अपने अपने कार्य वारंवार उसीके नियममें रहकर करते रहते हैं। जैसा कोई किसी विषयका अभ्यास करता है वैसा ये देव अपने अपने कर्मका अभ्यास करते हैं। वारंवार वही कार्य करते जाते हैं।

व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत् प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात् (मं २)— प्रथम पृथिवी कांपती थी। जैसी आज वैसी स्थिर है वैसी नहीं थी और पर्वत भी ज्वालामुखी जैसे थे। इस आदि देवने पृथिवीको सुदृढ और शांत बना दी और पर्वतोंको शांत उत्पन्न करके रमणीय बनाया। ऐसा होनेके लिये कितने वर्ष गये होंगे इसका अनुमान विज्ञानवेत्ता ही कर सकते हैं। पर्वत प्रकुपित थे वे रमणीय हुए हैं। यह सब आदि देवने ही बनाया है। ऐसा कोई दूसरा नहीं कर सकता।

अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात् (मं ३)— अहिको मारकर सात सिन्धुओंको प्रवाहित किया। नदियां भरकर बहने लगी। मेघको वृष्टि करके या बर्फको पिघलाकर नदियोंको बहाया।

बलस्य अपधा गा उदाजत् (मं ३)— बलने छिपाई गौवें उसके बाडेको तोडकर ऊपर लाया। सूर्यकी किरणें ये गायें हैं। प्रातःकालमें सूर्य किरणें ऊपर आने लगती हैं। सूर्य ये नीचे रहती हैं। उत्तर ध्रुव प्रदेशमें यह दृश्य अधिक सुंदर दीखता है। वह काल २ दिनतक रहता है। इस समय प्रकाश किरण और अन्धकारका युद्ध हो रहा है और अन्धेरको नष्ट करके प्रकाशके किरण बाहर आ रहे हैं। यह एक युद्धसा ही दीखता है। गौवें यहां किरणें हैं।

अश्मनः अन्तः अग्निं जजान (मं ३)— पत्थरोंके बीच अग्नि रखा है। दो पत्थर एक दूसरेपर मारनेसे अग्नि उत्पन्न होता है। दो मेघोंमें विद्युत् भी चमकता है। यह सब आदि देवका सामर्थ्य है।

समत्सु संवृक्[1] (मं ३)— संग्रामोंमें शत्रु [illegible] करता है। वीरोंके अन्दरका सामर्थ्य इसीसे प्राप्त हुआ है। इन्द्र ऐसा करता है।

इमा विश्वा च्यवना कृतानि (मं ४)— विश्व घूमनेवाले बनाये ये इस आदि देवने ही बनाये हैं सब विश्व अपने नियत गतिसे घूम रहा है यह आदि योजनाके अनुसार ही है।

दासं वर्णं गुहा अधरं कः (मं ४)— नीच स्थानमें रहनेवाला बनाया। दास वह है कि जो अज्ञानके कारण दासत्वको प्राप्त होता है। इस कारण जो होता है वह गुहामें रहता है। वहां घर बना कर [illegible] ज्ञानके बिना नहीं हो सकता। इसलिये दासको [illegible] रखा है। जो अज्ञानी होंगे वे नीचे ही रहेंगे।

यः सूर्यं उषसं जजान यः अपां नेता [illegible] जिसने सूर्य और उषाको बनाया जो जलोंको चलाता [illegible] लोगोंको करता है।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव (मं [illegible]) जिसके लिये आदर्श नमूना हुआ है। जो अच्युत [illegible] स्थिरोंको भी हटाकर फेंक देता है, ऐसा वह [illegible]

यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् [illegible] **सर्तवे अवासृजत्** (मं १२)— जो [illegible] बलवान् और सामर्थ्यवान् है उसने सात नदियों [illegible] छोड दिया। जिसके सामर्थ्यसे ये सात नदियां [illegible] रही हैं। मानव देहमें दो आंख दो कान दो [illegible] त्वचा ये सात इंद्रियां भी सात आत्मशक्तिके [illegible] बलवान और सामर्थ्यवान है उसमें सात [illegible] ये सात प्रवाह चल रहे हैं। सप्त [illegible] इषुः तान आपतो अप्रमादी [illegible] (यजु. ३४/५५)— सात नदियां अप्रमादसे शरीरमें जाती हैं उस समय जो इस यज्ञभूमिमें- इस शरीरमें जागते हैं। ऐसा अन्यत्र सात यहां देखने योग्य है। आत्म[illegible] प्रवाह आत्मिक बलसे चल [illegible]

[1] यः वज्रबाहुः (मं १२)— जि[illegible] सूर्यको स्फुरण [illegible]

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवांचार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

(कियेधाः ईशानः) अनेक भूमिकाओंमें रहनेवाले ईश्वर इन्द्रने (येन शुष्मता शुष्मन्) जिस वज्रको फेंकनेके समय (वृत्रस्य मर्म विदद्) इसका मर्मस्थान पहचाना था ॥ ६ ॥ (ऋ. १।६१।६)

(अस्य इत् उ मातुः सवनेषु) इसके माताके यज्ञोंमें (सद्यः) तत्काल ही (महः पितुं पपिवान्) बडे सोम रसको इसने पीया और (चारु अन्ना) उत्तम अन्न खाये । (सहीयान् विष्णुः) शक्तिमान् विष्णुने (पचतं मुषायत्) पकानेवालेको उठा लिया (अद्रिं अस्ता) वज्रको फेंकनेवालेने (वराहं तिरो विध्यत्) वराहको-मेघको बीचमें बींधा ॥ ७ ॥ (ऋ. १।६१।७)

(अस्मै इत् उ इन्द्राय) इसी इन्द्रके लिये (देवपत्नीः ग्नाः चित्) देवपत्नी स्त्रियोंने भी (अहिहत्ये अर्कं ऊवुः) अहिका वध करनेके समयमें स्तोत्र बोले । (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोकपर (उर्वी परि जभ्रे) इसने बडा प्रहार किया (ते अस्य महिमानं न परि स्तः) वे दोनों लोक इसकी महिमाको घेर सकते नहीं ॥ ८ ॥ (ऋ. १।६१।८)

(अस्य इत् एव महित्वं) इसकी महिमा (दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात्) द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्षसे भी (परि प्र रिरिचे) बढ गई है । (विश्वगूर्तः स्वराट् इन्द्रः) सबके द्वारा स्तुति किया हुआ यह स्वराट् इन्द्र (दमे) अपने घरमें (स्वरिः अमत्रः) शक्तिमान और सामर्थ्यवान् होकर (रणाय आ ववक्षे) युद्धके लिये तैयार रहता है ॥ ९ ॥ (ऋ. १।६१।९)

(अस्य इत् एव शवसा) इसके अपने बलसे (वज्रेण) वज्रसे (शुषन्तं वृत्रं) जलते हुए वृत्रको (इन्द्रः वि वृश्चत्) इन्द्रने टुकडे कर डाले । (व्राणाः गाः न) रोकी हुई गौओंको जैसे मुक्त करते हैं उस तरह (सचेताः दावने) देनेमें चतुर इस इन्द्रने (श्रवः) अन्नके लिये (अवनीः अभि अमुञ्चत्) नदियोंको बहाया ॥ १० ॥ (ऋ. १।६१।१०)

(अस्य इत् उ त्वेषसा) इसीके बलसे (सिन्धवः रन्त) नदियां रमणीय बनीं (यत् वज्रेण सीं परि अयच्छत्) जब वज्रसे उनकी चारों ओर मर्यादा बनायी। (ईशानकृत्) राजाओंको बनानेवाले (दाशुषे दशस्यन्) दाताको धन देनेवाले (तुर्वणिः) त्वरासे कार्य करनेवाले इन्द्रने (तुर्वीतये गाधं कः) तुर्वीतिके लिये जलको थाह बनाया ॥ ११ ॥ (ऋ. १।६१।११)

(ईशानः कियेधाः) स्वामी और शक्तिमान् (तूतुजानः) तथा त्वरासे काम करनेवाला तू इन्द्र (अस्मा इत् उ वृत्राय) इसी वृत्रके ऊपर (वज्रं प्र भर) वज्रका प्रहार कर । (गोः न पर्व) गायके पर्वोंकी तरह (अपां चरध्यै)

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥ (१११)

बलोंके प्रकाशित होनेके लिये (मर्माणि इष्णन्) मर्मोंकी इच्छा करता हुआ तू (तिरश्चा वि वृश्च) वज्रसे तिरछा वृत्रपर मार ॥ १२ ॥ (ऋ. १।६१।१२)

(अस्य तुरस्य इत् उ) इस त्वरासे कर्म करनेवाले इन्द्रके (पूर्व्याणि कर्माणि) पूर्व समयके वीरताके कर्मोंकी (प्र ब्रूहि) स्तुति कर औ (उक्थैः नव्यः) स्तोत्रोंसे स्तुति करने योग्य है। (युधे यत् इष्णानः) युद्धमें जब इच्छा करता है तब (आयुधानि ऋघायमाणः) शस्त्रोंको प्रेरित करता है तब वह (शत्रून् नि रिणाति) शत्रुओंको नीचे गिराता है ॥ १३ ॥ (ऋ. १।६१।१३)

(अस्य इत् उ भिया) इसके भयसे (गिरयः च दृळ्हाः) पर्वत दृढ हुए और (द्यावा च भूमा) द्युलोक और भूलोक ये (जनुषः तुजेते) जन्मसे ही कांपते रहे हैं। (वेनस्य ओणिं) इस स्तुतियोग्यकी रक्षाशक्तिकी (उप उ जोगुवानः) स्तुति करनेवाला (नोधाः सद्यः वीर्याय भुवत्) स्तोता तत्काल वीरताके कर्म करनेके लिये योग्य हुआ ॥ १४ ॥ (ऋ. १।६१।१४)

(अस्मै इत् उ) इसके लिये ही (एषां त्यत् अनुदायी) इनमेंसे वह एक स्तोत्र दिया गया गाया गया। (भूरेः वस्वः ईशानः यत् वव्ने) बहुत धनके एक स्वामी इन्द्रने वह स्वीकारा। (इन्द्रः) इन्द्रने (सुष्विं एतशं) उत्तम सोमरस निकालनेवाले एतशकी (प्र आवत्) रक्षा की (सौवश्व्ये सूर्ये पस्पृधानं) जब अपनी वेगवान सूर्यसे स्पर्धा कर रही थी ॥ १५ ॥ (ऋ. १।६१।१५)

१६ (हारियोजन इन्द्र) घोडोंको जोडनेवाले इन्द्र! (गोतमासः ते एव सुवृक्ति ब्रह्माणि अक्रन्) गोतमोंने तेरे लिये ही उत्तम भावनावाली प्रार्थनाएं की हैं। (एषु विश्वपेशसं धियं आधाः) इनमें सब प्रकारकी उत्तम बुद्धि रख। (धियावसुः प्रातः मक्षु आजगम्यात्) बुद्धिसे बसनेवाला इन्द्र प्रातःकाल शीघ्र ही आ जाय ॥ १६ ॥ (ऋ. १।६१।१६)

इस सूक्तमें इन्द्रका वर्णन इन शब्दोंसे हुआ है—

१ तवसे तुराय महिनाय ऋचीषमाय अध्रिगवे इन्द्राय राततमा ब्रह्माणि प्र हर्मि (मं. १)— बलवान् त्वरा करनेवाले महिमायुक्त मंत्रोंको चाहनेवाले, आगे बढनेवाले इन्द्रके लिये हम स्तोत्र करते हैं।

२ अस्मै पत्ये प्रत्नाय इन्द्राय बाधे सुवृक्ति आङ्गूषं प्र भरामि (मं. २)— प्राचीन स्वामी ऐसे इन्द्रके लिये दुष्ट विचार दूर करनेके लिये स्तोत्र करता हूं। इस स्तोत्रके पढनेसे पाठकके मनमें रहनेवाले सब दुष्ट विचार दूर हो सकते हैं और अच्छे विचार उसके मनमें आ सकते हैं। वेदके मंत्रोंमें इस तरह विचारोंको परिवर्तित करनेकी शक्ति है।

३ हृदा मनसा मनीषा धियः मर्जयन्त (मं. २) हृदय मन मनकी इच्छा और बुद्धियोंको वेदमंत्र परिशुद्ध करते हैं।

४ मतीनां मंहिष्ठं सूरिं सुवृक्तिभिः अच्छोक्तिभिः वावृधध्यै (मं. ३)— बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्रको उत्तम वचनोंसे हम बढाना चाहते हैं। वह स्तोत्र हमारे दुष्ट भाव दूर करता है और हमारे अन्दर अच्छे भाव उत्पन्न कर सकता है।

५ तष्टा रथं तत्सिनाय प्र (मं. ४)— कारीगर जैसा अपने स्वामीके लिये रथ बनाता है उस तरह हम (गिर्वा

हसे मेधिराय इन्द्राय सुवृक्तिं विश्वं इन्वं स्तोमं गिरः सं हिनोमि)— स्तुतियोग्य बुद्धिमान् इन्द्रके लिये उत्तम वर्णनीयवाला सुख देनेवाला स्तोत्र हम अपनी भाषामें गाते हैं। ईशस्तुतिका स्तोत्र मनुष्यमें विचारोंकी शुद्धता करता है, इसलिये उसके पाठसे मनुष्यका लाभ होता है।

६ वीरं दानौकसं गूर्तश्रवसं पुरां दर्माणं वन्दध्यै अर्कं जुह्वा समञ्जे (मं ५)— वीर दानी यशस्वी शत्रुके नगरोंका तोडनेवाले इन्द्रकी वन्दना करनेके लिये स्तोत्र हम अपनी जिह्वासे बोलते हैं। ऐसे सूक्त बोलनेसे हमारेमें धारता वीरता आती है।

७ कियेधाः ईशानः तुजता तुजन् वृत्रस्य मर्म विदत् (मं ६)— अनेक स्थानोंमें रहनेवाला इन्द्र वज्रको शत्रुपर फेंकनेके समय उसका मर्मस्थान जानता है और उस मर्मस्थानपर अपना वज्र फेंकता है। इसी तरह शत्रुके मर्मस्थानपर ही वीर अपना शस्त्र फेंके। शत्रुको मारनेको यह लिखा है।

८ अद्रिं अस्ता वराहं तिरो विध्यत् (मं ७)— वज्र फेंकनेवाला इन्द्र वराहरूपी शत्रुपर तिरछा वज्र फेंकता है। वराह (वर+आहर)— उदक के लानेवाला मेघ। शत्रु। शत्रुपर अपने शस्त्र योग्य रीतिसे फेंकने चाहिये।

९ ते द्यावा पृथिवी अस्य महिमानं न परि स्तः (मं ८)— द्युलोक तथा भूलोक इस प्रभुकी महिमाको घेर नहीं सकते। इसकी महिमा द्यावा पृथिवीसे बहुत बडा है।

१० अस्य महित्वं दिवः अन्तरिक्षात् पृथिव्याः परि प्र रिरिचे—(मं ९) इस प्रभुकी महिमा द्यु अन्तरिक्ष और पृथिवीसे बडा है।

११ शवसा इन्द्रः वज्रेण वृत्रं विवृश्चत् अवनीः अभि मुञ्चत् (मं १०)— बलसे इन्द्रने वज्रसे वृत्रको काटा और अपना बल जलप्रवाहोंके रूपसे पृथ्वी पर छोडा।

मेघोंको छिन्न किया और वृष्टिके द्वारा नदियां बहने लगीं। यहां प्रमुख यह है। मेघके युद्धसे युद्ध करनेकी रीति यहां बताई है।

११ अस्य त्वेषसा सिन्धवः रन्त (मं ११)— इसके बलसे नदियां बहने लगीं।

१३ ईशानकृत् दाशुषे दशस्यन् तुर्वणिः तुर्वीतये गाधं कः (मं १२)— दाताओंको बनानेवाला प्रभु दाताको धन देता है त्वरासे कार्य करनेवालोंके लिये पार जाने लायक जलप्रवाह बनाता है। अर्थात् पुरुषार्थ करनेवालेके लिये सर्वत्र सुगम मार्ग होता रहता है।

१४ अस्य तुरस्य पूर्व्याणि कर्माणि प्र ब्रूहि (मं १३)— इस त्वरासे कार्य करनेवाले इन्द्रके पूर्व कर्मोंका वर्णन कर।

१५ युधे इष्णानः आयुधानि ऋघायमाणः शत्रून् नि रिणाति (मं १३)— युद्धकी इच्छा करनेवाला वीर आयुधोंको शत्रुपर फेंकता हुआ शत्रुओंको गिराता है। युद्ध ऐसे करने चाहिये।

१६ वेनस्य ओणिं उप जोगुवानः नोधाः सद्यः वीर्याय भुवत् (मं. १४)— प्रशंसनीय वीरकी संरक्षण शक्तिका वर्णन करनेवाला वीर उसके स्तोत्र गानसे तत्काल वीरताके कर्म करनेके लिये योग्य होता है। वीर इन्द्रके काव्यका यह प्रभाव है कि जो यह काव्य पढेगा वह स्वयं वीर बनकर वीरोचित काम करने लगेगा।

१७ इन्द्रः सुष्विं एतशं प्र आवत् (मं. १५)— इन्द्र यज्ञकर्ताकी सुरक्षा करता है। यह यज्ञकर्ता सौवश्व्ये सूर्ये पस्पृधानः (मं १५)— सूर्यके साथ स्पर्धा करता है। सूर्य जैसा नियमानुसार सब कार्य करता है वैसा जो कार्य करेगा उसकी सुरक्षा प्रभु अवश्य करेगा। सूर्य हमारा आदर्श है।

१८ गोतमासः ते सुवृक्ति ब्रह्माणि अक्रन् (मं १६)— गोतमोंने तेरी उत्तम मननवाली स्तुतियें की हैं। इनके गानेसे गानेवालेके मनमें उत्तम भाव स्थिर होते हैं और वह गायक श्रेष्ठ बनता है। इस तरह मंत्रपाठ मनुष्यको श्रेष्ठ बनानेवाला है।

१९ एषु विश्वपेशसं धियं धाः (मं १६)— इन मंत्रोंमें अपनी सब कार्य करनेवाली बुद्धिको स्थिर रख। इससे मानव उन्नतिको प्राप्त होगा।

२० धियावसुः प्रातः मक्षु आजगम्यात् (मं १६)— बुद्धियोंके साथ बसनेवाला प्रातः जल्दी उठे और काम करनेके लिये जावे। कर्म शुरू करे। प्रातःकाल जल्दी उठकर अपने कार्योंमें लगना चाहिये।

इस सूक्तमें अनेक बोध दिये हैं। पाठक उनको अपने जीवनमें धारण करें

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

(स्वोजाः) अपनी शक्तिसे बलवान् (विरप्शिन्) महान् सामर्थ्यवान् इन्द्र! तूने (मन्दसाना चित् वीळिता दृळ्हा) न हिलनेवाली अचलाकी और दृढ शत्रुकी पुरियोंको (धृषता) धर्षक शक्तिसे भग्न किया और तोडा ॥ ६ ॥

१ हे स्व-तवः! मनोजुवा पर्वतेन वज्रेण वावृधानस्य चित् दृळ्हा— हे निज सामर्थ्यवान् इन्द्र! मनके समान अत्यन्त वेगसे शत्रुपर प्रहार करनेवाले पर्ववान् वज्रसे अपने बलके कारण बढनेवाले उस शत्रुका तुमने नाश किया।

स्व-तवः अपने निज सामर्थ्यसे युक्त। पर्वत— (पर्ववान्) जिसमें पर्व हैं ऐसा वज्र जिसमें गांठें और तथा धाराएँ अनेक होती हैं वह वज्र। धारावाला वज्र।

१ हे स्वोजः विरप्शिन्! मन्दसाना वीळिता दृळ्हा धृषता विरुजः— हे अपने बलसे बलवान् और महाव्यापी इन्द्र! न हिलनेवाले सुस्थिर बलवान् और सुदृढ शत्रुके नागरिक कीलोंको अपने धर्षक सामर्थ्यसे तुमने तोड दिये।

इस मन्त्रमें युद्धनीति कही है। शत्रुका अतितीक्ष्ण अस्त्रसे मारना योग्य है। तथा शत्रुकी नगरियोंको भी तोडना तथा अपने आधीन करना उचित है। इस मंत्रके पद वीरकी शक्तिका वर्णन करनेवाले हैं।

(नव्यस्या धिया) इस नयी बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतिके द्वारा (शविष्ठं प्रत्नं वः तं) अत्यन्त बलवान् पुरातन उस इन्द्रका (प्रत्नवत् परितंसयध्यै) प्राचीन रीतिके अनुसार और बढाकर विस्तार करनेके लिए मैं प्रयत्न करता हूं। इसके उपरान्त (अनिमानः सुवह्मा) अपार महिमावाला सुन्दर वाहनवाला (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (विश्वानि दुर्गहाणि) समस्त संकटोंसे (नः अति वक्षत्) हमें पार ले जावे ॥ ७ ॥

१ नव्यसा धिया तं शविष्ठं प्रत्नं वः प्रत्नवत् परितंसयध्यै— नयी और बुद्धियुक्त स्तुति द्वारा लोगोंके उस बलवान् पुरातन इन्द्रका प्राचीनोंके समान बढ़ाने के लिये मैं सम्मान करता हूं।

२ इस स्तोत्रका सुनकर अनिमानः सुवह्मा सः इन्द्रः विश्वानि दुर्गहाणि नः अति वक्षत् — अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला वह इन्द्र सब प्रकारके संकटोंसे हमें बचाकर पार ले जावे।

हे इन्द्र! (द्रुह्वणे जनाय) सज्जनोंसे द्रोह करनेवाले दुष्टोंके हटानेके लिये (पार्थिवानि दिव्यानि) पृथिवी और द्युलोक (अन्तरिक्षा) और अन्तरिक्षके स्थानोंको (आ दीपयः) अत्यन्त तप्त करे। हे (वृषन्) बलवान् देव! (विश्वतः तान्) चारों ओरसे उन दुष्टोंको (शोचिषा तप) अपने तेजसे तपाओ। (ब्रह्मद्विषे क्षां च अपः) ज्ञानके द्वेषियोंके दमन करनेके लिये पृथिवी और जलोंको भी तपाओ ॥ ८ ॥

दुष्ट चाहे कहीं भी रहें उनको हटानेका प्रयत्न करना चाहिये। और उनको पीडित करना चाहिये जिससे वे वहां न रहें।

(त्वेषसंदृक् अ-जुर्य इन्द्र) दीप्तिमान् जराहीन इन्द्र! (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य लोगोंका और (पार्थिवस्य जगतः) पृथ्वीतलके लोगोंका भी (राजा भुवः) तू राजा है। (दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व) दाहिने हाथमें वज्रको धारण कर। और (विश्वाः मायाः वि दयसे) सब दुष्टोंके कपटजालोंका नाश कर ॥ ९ ॥

१ त्वेषसंदृक् अजुर्य इन्द्र— तेजयुक्त दीखनेवाला जरा-क्षय आदि रहित इन्द्र है।

२ दिव्यस्य जनस्य पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— द्युलोकमें तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका तू राजा हुआ है।

३ दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व— अपने दाहिने हाथमें वज्र धारण कर और कपटों—

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥ (१४१)

[सूक्त १७]

(ऋषिः — १-११ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥

४ विश्वाः मायाः वि दयसे— शत्रुके सब कपट चालोंका नाश कर।

यह मंत्र राज्यशासनका उपदेश कर रहा है। अपने पास शस्त्रास्त्रोंका उत्तम संग्रह करना और शत्रुके कपट प्रयोगोंको दूर करना चाहिये।

हे (इन्द्र) इन्द्र! (शत्रु-तूर्याय) शत्रुओंके नाश करनेके लिये (बृहतीं अ-मृध्रां) बडी अविनाशी (संयतं स्वस्तिं) संयममें रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति (नः आ भर) हमें दे। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र! (यया दासानि आर्याणि करः) जिससे दासोंको आर्य बनाया जाता है और (नाहुषाणि) मनुष्योंके (वृत्रा) घेरनेवाले शत्रुओंको (सुतुका) सहजहीसे नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है ॥ १० ॥

१ शत्रुतूर्याय बृहतीं अमृध्रां संयतं स्वस्तिं आ भर— शत्रुओंका नाश करनेके लिये विशाल अविनाशी स्वाधीन रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे दो।

२ यया दासानि आर्याणि करः— जिससे दासोंके आर्य किये जाते हैं। दास — दास सेवक दस्यु दुष्ट। इनका श्रेष्ठ आर्य नागरिक बनाया जाता है। राज्यशासन व्यवस्था और समाज व्यवस्था ऐसी चाहिये कि जिससे दुष्ट मनुष्य श्रेष्ठ आर्य नागरिक बन जांय।

३ नाहुषा वृत्रा सुतुका— मानवोंको घेरनेवाले शत्रु दूर किये जांय। वे फिरसे मनुष्योंको कष्ट न दे सकें ऐसी अवस्थामें वे पहुंचाये जांय।

दुष्टोंको सज्जन बनानेका काम यही है यह सबसे उत्तम कार्य है। प्रथम यह प्रयत्न किया जाय। उसमें यश न मिला तो दुष्टोंको दण्ड देना योग्य है।

हे (पुरुहूत) बहुत लोगोंसे बुलाने योग्य (वेधः) विधाता (प्रयज्यो) विशेष पूजनीय इन्द्र! (सः) तू (विश्ववाराभिः नियुद्भिः) सब लोगोंसे प्रशंसित अश्वोंसे (नः आ गहि) हमारे पास आओ। (अदेवः) असुर (याः न वरते) जिन घोडोंको रोक नहीं सकता (देवः न) और देव भी नहीं रोक सकता (आभिः तूयं आ) उन घोडोंसे शीघ्र ही (मद्र्यद्रिक् आ याहि) मेरे पास आओ ॥ ११ ॥

हमारे घोडे अच्छे हों। उत्तम शिक्षित हों जिससे उनकी उत्तम प्रशंसा होती रहे।

(सूक्त १७)

(यः तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः) जो तीखे सींग-वाले बैलके समान भयंकर (एकः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) अकेला ही सभी शत्रुओंको स्थानसे भ्रष्ट कर देता है। (यः अदाशुषः शश्वतः गयस्य) जो दान न देनेवालेके अनेक घरोंको भी स्थानभ्रष्ट कर देता है वह (सुष्वितराय वेदः प्रयन्ता असि) तू यज्ञ करनेवालोंके लिये धन देता है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।१९।१)

मानवधर्म— वीर तीक्ष्ण सींगवाले बैलके समान बलवान और भयंकर हो। वह सब शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करे। कोई शत्रु अपने स्थानपर स्थिर न रह सके। कंजूस तथा अनुदार लोगोंके स्थान भी स्थिर न हों। ऐसे लोग राष्ट्रमें बलवान् न होने पावें। जो यज्ञ करता है और दान देता है उसको पर्याप्त धन प्राप्त हो।

१ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति— अकेला शूर वीर सब शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड देता है।

[सूक्त ३६]

(ऋषिः — भरद्वाजः । देवता — इन्द्रः ।)

(ऋ. ६।२२।१-३)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

(सूक्त ३६)

(यः इन्द्रः) जो इन्द्र (एकः इत् आभिः गीर्भिः हव्यः) एक ही निश्चयसे इन स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य है। (तं इन्द्रं अभ्यर्चे) उस इन्द्रकी अर्चना करता हूं। (यः वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः) जो बल देनेवाला स्वयं बलवान् और सत्यनिष्ठ है और (सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते) अपने बलसे अनेक कौशल्यसे कर्म करने वाला और शत्रुओंका पराभव करनेवाला है उस इन्द्रकी स्तुति की जाती है ॥ १ ॥

१ एकः इन्द्रः इत् आभिः गीर्भिः हव्यः— एक ही प्रभु इन स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य है।

२ तं इन्द्रं अभ्यर्चे— उस इन्द्रकी मैं अर्चना करता हूं।

३ यः वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः— वही अद्वितीय बलवान् तथा सामर्थ्यवान् है और वही सत्य है।

४ सत्वा पुरु-मायः सहस्वान् पत्यते— वह बलवान् अनेक कौशल्योंसे युक्त, शत्रुका पराभव करनेवाला होनेके कारण वही सबका स्वामी हुआ है। वही स्तुति करने योग्य है।

मनुष्य बलवान्, सामर्थ्यवान्, सत्यनिष्ठ, सत्त्ववान् तथा अनेक कौशल्यसे कार्य करनेवाला बने।

(पूर्वे नव-ग्वाः) पुरातन नव महिनेतक यज्ञ करनेवाले (सप्त विप्रासः) सात बुद्धिमान् ज्ञानी (वाजयन्तः) हविष्यान्न सिद्ध करनेवाले (नः पितरः) हमारे पितरोंने (नक्षत्-दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठां) शत्रुनाशक तारक और पर्वतपर रहनेवाले (अद्रोघ-वाचं शविष्ठं तं उ) द्रोहरहित भाषण करनेवाले अतिशय बलवान् ऐसे उस इन्द्रकी (मतिभिः अभि) बुद्धिपूर्वक स्तुति की थी ॥ २ ॥

नक्षत्-दाभ— आक्रमणकारी शत्रुको दबानेवाला। ततुरिः – तारक तारनेवाला। अ-द्रोघ-वाच् – द्रोहरहित भाषण करनेवाला। नव ग्वाः – नौ गौवें जिसके पास हैं, नौ मास तक यज्ञ करनेवाला। यौ सत्पथ दिखाय देता है– ६ मास सूर्य प्रकाशके और प्रारंभिक तथा और अन्तिम सायंकालके प्रकाशके ३ मास मिलकर प्रकाशके ९ महिने उत्तर ध्रुवके पास होते हैं। ६ मास सूर्य दिखते हैं और ३ महिने उषःप्रकाश तथा सायं प्रकाशके बिना सूर्यके मिलकर ९ महीने यज्ञ करनेके समझनेवाले नव–ग्व कहलाते थे। इसी तरह दश–ग्व भी थे जो दस मास यज्ञ करते थे। अर्थात् इस पक्षके ऋषि और एक मास किंचित् प्रकाशमय स्वीकार करते थे। और दस मास यज्ञ करते थे। नव–ग्व और दश–ग्व ये दो पक्ष थे यज्ञ विधिके संबंधमें। प्रकाशकी संभावना इस महिनेतक ही थी। इसके पश्चात पूरे दो मास दीर्घतम–अर्थ अन्धकार रहता था। इस कालमें पानीका प्रवाह बंद होना, बर्फसे भूमि आच्छादित होना आदि कष्ट होता था। वह असुर समय था। वह अमंगलीय समय था। इस समय गौएं घरोंमें बंद रहती थीं। उस कालके अन्तमें साथ गौएं छूटी भी जाती थीं। गौएं इसी समय चुरायी जाती थीं जिनको राक्षसोंकी चोरीसे वापस लाते थे। ये सब बातें मन्त्रोंमें पाठक देख सकते हैं। नव ग्वाः – नौ गौवें जिनके पास हैं, दश–ग्व – दस गौवें जिनके पास हैं।

५ नक्षत्-दाभं ततुरिं पर्वते स्थां अद्रोघवाचं शविष्ठं तं मतिभिः अभि अर्च— शत्रुका दबानेवाले तारक पर्वतपर रहनेवाले द्रोहरहित भाषण करनेवाले बलिष्ठ उस वीरकी बुद्धिपूर्वक उपासना कर। ऐसे वीरका सत्कार करना चाहिये।

(पुरु वीरस्य नृ-वतः पुरु क्षोः अस्य) बहुत वीरोंसे युक्त, बहुत सहायकोंसे युक्त बहुत अन्नसे युक्त इस (रायः) धनको (तं इन्द्रं ईमहे) उस इन्द्रके पास हम

तवो धियो यदि ते पुरा जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥

मांगते हैं । हे (हरिवः) अश्वयुक्त इन्द्र ! (यः अस्कृधोयुः अजरः स्वर्वान्) जो धन अविनाशी क्षीण न होनेवाला और सुख देनेवाला है । (तं मादयध्यै आ भर) वह धन हमें आनन्दके लिये भरपूर भर दे ॥ ३ ॥

१ तं इन्द्रं पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः अस्य रायः ईमहे — उस प्रभुके पास हम ऐसा मांगते हैं कि जिसके साथ बहुत वीर रक्षणके लिये रहते हों जो अनेक सहायकोंको अपने पास रखता है और जिसके साथ पर्याप्त अन्न होता है अर्थात् हमें धन चाहिये अन्न चाहिये सहायक चाहिये और हमारे संरक्षणके लिये संरक्षक वीर भी चाहिये ।

२ वह धन (अ-स्कृधोयुः) विनष्ट न होनेवाला, (अ-जरः) क्षीण न होनेवाला और (स्व-र्वान्) सुख बढानेवाला हो । इस धनसे (मादयध्यै) हमारा आनन्द बढता जाय । हमें किसी तरह दुःख न हो । ऐसा धन हमें चाहिये ।

हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यदि ते जरितारः पुरा चित्) या तेरे स्तोताओंने पहिले समयमें (सुम्नं आनशुः) सुख प्राप्त किया था (तत् नः वि वोचः) तो वह सुखका मार्ग हमें बताओ । हे (दुध्र) दुर्धर (खिद्वः) शत्रुओंका नाश करनेवाले (पुरु हूत) बहुतोंसे बुलाये जानेवाले (पुरु-वसो) बहुत ऐश्वर्यवाले इन्द्र ! (असुर-घ्नः ते) असुरोंका नाश करनेवाला तेरा (कः भागः वयः किं) कर्तव्यका कौनसा भाग है तथा सामर्थ्यका भाग भी कौनसा है । वह भी कहो ॥ ४ ॥

१ ते जरितारः सु-म्नं आनशुः — तेरे स्तोतागण उत्तम मन प्राप्त करते हैं । प्रभुकी स्तुति गानेसे शोभन विचार वाला मन होता है ।

२ दु ध्र खिद्-वः पुरु-हूत पुरु-वसो ! असुर-घ्नः ते कः भागः ? — शत्रुके लिये असह्य शत्रुनाशक, बहुतोंसे प्रशंसित, बहुत धनवाले वीर ! तेरे पास जो असुरोंका नाश करनेवाला कर्तव्य भाग है वह कौनसा है ? तुम जिस सामर्थ्यसे असुरोंका नाश करते हैं वह तुम्हारा सामर्थ्य कौनसा है ।

१ ते वयः किं ? — तेरी आयु क्या थी तेरा सामर्थ्य कौन-सा था जिससे तुम शत्रुका नाश करते हो ?

मनुष्य अपना मन शुभ विचारवाला करे शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य प्राप्त करे बहुत धन कमावे असुरोंका नाश करे ।

(वज्रहस्तं रथेष्ठां तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां तं इन्द्रं) हाथमें वज्र धारण करनेवाले रथारूढ बहुत शत्रुओंको पकडनेवाले बहुत कर्म करनेवाले बल देनेवाले उस इन्द्रकी (पृच्छन्ती वेपी) अर्चना करनेवाली यागादि कर्म करनेवाली (वक्वरी गीः) गुणोंका वर्णन करनेवाली इस प्रकार स्तुति (यस्य) जिस यजमानकी होती है । वह (गातुं इषे) सुखको प्राप्त होता है और (तुम्रं अच्छ नक्षते) शत्रुका सामना करता है ॥ ५ ॥

१ वज्रहस्तं रथेष्ठां तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां तं इन्द्रं पृच्छन्ती वेपी वक्वरी गीः यस्य सः गातुं इषे तुम्रं अच्छ नक्षते — वज्र हाथमें धारण करनेवाला रथपर आरूढ होकर लडनेवाला अनेक शत्रुओंको एक ही समयमें पकडनेवाला अनेक प्रकारके कर्म करनेवाला बल बढानेवाला वह इन्द्र है इस तरह उस इन्द्रकी अर्चना जो करती है तथा साथ साथ यज्ञ कर्मोंको करती है ऐसी स्तुति जिसकी वाणी करती है वह सुख प्राप्तिके मार्गसे जाता है और सुख प्राप्त करता है और शत्रुका पराभव करनेका मार्ग भी ठीक तरह जानता है । तथा शत्रुका पराभव भी करता है ।

इस प्रकारके गुणोंका ध्यान करनेसे वे गुण मनके अन्दर आते हैं वह इन गुणोंसे युक्त होता है और उससे वह गुणी होता है और शत्रुको दूर करके विजय देता है । ईश्वरके गुणोंसे मनुष्यकी उन्नति इस तरह होती है ।

हे (स्व-तवः) अपने निज बलसे युक्त इन्द्र ! (मनो-जुवा पर्वतेन) मनोवेगी अपने अनुप वज्रसे (अया मायया वावृधानं त्यं) अपने कपट जालसे बढनेवाले उस शत्रुको तुमने (वि रुजः) विशेष प्रकारसे वध किया । हे

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

(स्वोजः) अपनी शक्तिसे बलवान् (विराप्शिनम्) महान् सामर्थ्यवान् इन्द्र! तूने (अच्युता चित् वीळिता स्वोजः) न हिलनेवाली बलवाली और दृढ शत्रुकी पुरियोंको (धृषता) घर्षक शक्तिसे भग्न किया तोड डाला ॥ ६ ॥

१ हे स्व-तवः! मनोजुवा पर्वतेन अया वावृधानं त्वं वि वृश्चः— हे निज सामर्थ्यवान् इन्द्र! मनके समान अत्यन्त वेगसे शत्रुपर प्रहार करनेवाले पर्ववान् वज्रसे अपने बलके कारण बढनेवाले उस शत्रुका तुमने नाश किया।

स्व-तवः अपने निज सामर्थ्यसे युक्त। पर्वत — (पर्ववान्) जिसमें पर्व हैं ऐसा वज्र जिसमें कांटे कोने तथा धाराएँ अनेक होती हैं वह वज्र। धारावाला वज्र।

२ हे स्वोजः विराप्शिन्! अच्युता वीळिता स्वोजः धृषता विरुजः— हे अपने बलसे बलवान् और महाप्रतापी इन्द्र! न हिलनेवाले सुस्थिर बलवान् और सुदृढ शत्रुके नागरिक कीलोंको अपने घर्षक सामर्थ्यसे तुमने तोड दिये।

इस मन्त्रमें युद्धनीति कही है। शत्रुको अतितीक्ष्ण शस्त्रसे मारना योग्य है। तथा शत्रुके नगरियोंको भी तोडना तथा अपने आधीन करना उचित है। इस मंत्रके पद वीरकी शक्तिका वर्णन करनेवाले हैं।

(नव्यस्या धिया) इस नवीन बुद्धिपूर्वक की गई स्तुति द्वारा (शविष्ठं प्रत्नं यः तं) अत्यन्त बलवान् पुरातन उस इन्द्रका (प्रत्नवत् परितंसयध्यै) प्राचीन रीतिके अनुसार और बहुत विचार करनेके लिये मैं प्रयत्न करता हूं, इसको सुन्दर (अनिमानः सुवह्मा) अपार महिमावाला सुन्दर वाहनवाला (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (विश्वानि दुर्गहाणि) समस्त संकटोंसे (नः अति वक्षत्) हमें पार ले जावे ॥ ७ ॥

१ नव्यसा धिया तं शविष्ठं प्रत्नं यः प्रत्नवत् परितंसयध्यै— नई और बुद्धियुक्त किये इस स्तोत्रसे उस बलवान् पुरातन इन्द्रका प्राचीनों जैसा सब सेवाके लिये मैं वाग्यत्न करता हूं।

२ इस स्तोत्रका सुनकर अनिमानः सुवह्मा स इन्द्रः विश्वानि दुर्गहाणि नः अति वक्षत् — अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला वह इन्द्र सब प्रकारके संकटोंसे हमें बचाकर पार ले जावे।

हे इन्द्र! (द्रुह्वणे जनाय) सज्जनोंका द्रोह करनेवाले दुष्टोंके हटानेके लिये (पार्थिवानि दिव्यानि) पृथिवी और द्युलोक (अन्तरिक्षा) और अन्तरिक्षके स्थानोंको (आ दीपयः) अत्यन्त तप्त करो। हे (वृषन्) बलवान् देव! (विश्वतः तान्) चारों ओरसे उन दुष्टोंको (शोचिषा तप) अपने तेजसे तपाओ। (ब्रह्मद्विषे क्षां च अपः) ज्ञानके द्वेषियोंका दमन करनेके लिये पृथिवी और जलोंको भी तपाओ ॥ ८ ॥

दुष्ट जहां होंवे वहांसे उनको हटानेका प्रयत्न करना चाहिये। और उनका दमन करना चाहिये जिससे वे वहां न रहें।

(त्वेषसंदृक् अ-जुर्य इन्द्र) तेजस्वी अविनाशी इन्द्र! (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य जनोंका और (पार्थिवस्य जगतः) पृथ्वीपरके लोगोंका भी (राजा भुवः) तू राजा है। (दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व) दाहिने हाथमें वज्रको धारण कर। और (विश्वाः मायाः वि दयसे) उन दुष्टोंके कपटजालोंका नाश कर ॥ ९ ॥

१ त्वेषसंदृक् अजुर्य इन्द्र— तेजयुक्त दीखनेवाला जरा-क्षय आदि रहित इन्द्र है।

२ दिव्यस्य जनस्य पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— द्युलोकमें तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका तू ही राजा हुआ है।

३ दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व— अपने दाहिने हाथमें वज्र धारण कर और उससे—

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥ (१४१)

[सूक्त ३७]

(ऋषिः — १-११ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥

४ विश्वाः मायाः वि दयसे— शत्रुके सब कपट प्रयोगोंका नाश कर।

यह मंत्र राज्यशासनका उपदेश कर रहा है। अपने पास शस्त्रास्त्रोंका सुयोग्य संग्रह करना और शत्रुके कपट प्रयोगोंको दूर करना चाहिये।

हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शत्रु-तूर्याय) शत्रुओंके नाश करनेके लिये (बृहतीं अ-मृध्रां) बडी अविनाशी (संयतं स्वस्तिं) संयममें रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति (नः आ भर) हमें दे। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (यया दासानि आर्याणि करः) जिससे दासोंको आर्य बनाया जाता है और (नाहुषाणि) मनुष्योंके (वृत्रा) घेरनेवाले शत्रुओंको (सुतुका) सहजहीसे नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है ॥ १० ॥

१ शत्रुतूर्याय बृहतीं अमृध्रां संयतं स्वस्तिं नः आ भर— शत्रुओंका नाश करनेके लिये विशाल अविनाशी स्वाधीन रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे दो।

२ यया दासानि आर्याणि करः— जिससे दासोंको आर्य किये जाते हैं। दास — दास सेवक दस्यु, शूद्र। इनको श्रेष्ठ आर्य नागरिक बनाया जाता है। राज्यशासन व्यवस्था और समाज व्यवस्था ऐसी चाहिये कि जिससे शूद्र मनुष्य श्रेष्ठ आर्य नागरिक बन जांय।

३ नाहुषा वृत्रा सुतुका— मानवोंको घेरनेवाले शत्रु दूर किये जांय। वे फिरसे मनुष्योंको कष्ट न दे सकें ऐसी अवस्थामें वे पहुंचाये जांय।

शूद्रोंको सज्जन बनानेका कार्य यहां है वह मनन करने योग्य है। प्रथम यह प्रयत्न किया जाय। उसमें यश न मिला तो शूद्रोंको दण्ड देना योग्य है।

हे (पुरुहूत) बहुत लोगोंसे बुलाने योग्य (वेधः) विधाता (प्रयज्यो) विशेष पूजनीय इन्द्र ! (सः) तू (विश्ववाराभिः नियुद्भिः) सब लोगोंसे प्रशंसित अश्वोंसे (नः आ गहि) हमारे पास आओ। (अदेवः) असुर (याः न वरते) जिन घोडोंको रोक नहीं सकता (देवः न) और देव भी नहीं रोक सकता (आभिः तूयं आ) उन घोडोंसे शीघ्र ही (मद्र्यद्रिक् आ याहि) मेरे पास आओ ॥ ११ ॥

हमारे घोडे अच्छे हों। उत्तम शिक्षित हों जिससे उनकी उत्तम प्रशंसा होती रहे।

(सूक्त ३७)

(यः तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः) जो तीखे सींगवाले बैलके समान भयंकर (एकः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) अकेला ही सभी शत्रुओंको स्थानसे भ्रष्ट कर देता है। (यः अदाशुषः शश्वतः गयस्य) जो दान न देनेवालेके अनेक घरोंको भी स्थानभ्रष्ट कर देता है वह (सुष्वितराय वेदः प्रयन्ता असि) तू यज्ञ करनेवालोंके लिये धन देता है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।१९।१)

क्षात्रधर्म— वीर तीक्ष्ण सींगवाले बैलके समान बलवान् और भयंकर हो। वह सब शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करे। कोई शत्रु अपने स्थानपर स्थिर न रह सके। कंजूस तथा अनुदार लोगोंके स्थान भी स्थिर न हों। एवं कंजूस राष्ट्रमें बलवान् न होने पावें। जो यज्ञ करता है और दान देता है उसको पर्याप्त धन प्राप्त हो।

१ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति— अकेला शूर वीर सब शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड देता है।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

---

१ अद्राशुषः शासवतः गयस्य प्रयन्ता— कंजूसके घरोंको उखाडनेवाला वीर हो। कंजूस राष्ट्रमें न रहें।

१ सुष्विततराय वेदः प्रयन्ता— यज्ञकर्ताको धन दो। सब लोग यज्ञकर्ताको धनका दान करते रहें। धनके अभावके कारण यज्ञ बंद करना न पडे। शत्रुके वाला भाग राष्ट्रमें यज्ञ होते रहें इतना दान यज्ञकर्ताओंको देवें।

हे इन्द्र ! (त्वं ह त्यत् तन्वा शुश्रूषमाणः) तूने तब अपने शरीरसे शुश्रूषा करके (समर्ये कुत्सं आवः) युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा की। (यत् आर्जुनेयाय अस्मै शिक्षन्) जब अर्जुनीके पुत्र इसको धन दिया और (दासं शुष्णं कुयवं नि अरंधयः) दास शुष्ण और कुयवका नाश किया ॥ २ ॥ (ऋ. ७।१९।२)

दास उसको कहते हैं कि जो (दस उपक्षये) नाश करता है घातपात करता है लोगोंको नष्टभ्रष्ट करता है। समाजमें उपद्रव मचाता है। शुष्ण वह है कि जो दूसरोंके धनों भोगों और सुखोंका शोषण करता है। अपने सुखके लिये दूसरोंका नाश करता है। कुयव वह है कि जो अपने बुरे खेतोंका अपथ्य धान्यकर लोगोंको देता है। इससे खानेवालोंके स्वास्थ्यका बिगाड होता है। इनका समाजके हितके लिये नाश करना चाहिये।

१ तन्वा शुश्रूषमाणः समर्ये कुत्सं आवः— अपने शरीरसे प्रयत्नसे युद्धमें अपने अनुयायी कुत्सकी रक्षा की। अपने अनुयायी होंगे उनकी सुरक्षा करनी चाहिये।

२ दासं शुष्णं कुयवं निरंधयः— घातपाती शोषक तथा बुरे धान्य आदिका व्यवहार करनेवालोंका नाश कर। समाजसे इनको दूर कर।

३ शिक्षन्— इनको उत्तम शिक्षा दे। उत्तम ज्ञान प्राप्त कर जिससे वे वैसे घातपातके काम न कर सकें ऐसा कर।

हे (धृष्णो) शत्रुधर्षक इन्द्र ! तूने (धृषता वीतहव्यं सुदासं) अपने बलसे अन्नका दान करनेवाले सुदासका (विश्वाभिः ऊतिभिः प्र आवः) अनेक संरक्षणके साधनोंसे संरक्षण किया। (वृत्रहत्येषु क्षेत्रसाता) शत्रुका वध करनेके युद्धमें तथा क्षेत्रका बंटवारा करनेके समय (पौरुकुत्सिं त्रसदस्युं पूरुं च प्र आवः।) पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु तथा पुरुका संरक्षण किया ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।१९।३)

१ धृषता विश्वाभिः ऊतिभिः प्रावः— शत्रुको दबानेके बलसे सब सुरक्षाके साधनों द्वारा प्रजाका संरक्षण करो। अर्थात् शत्रुका दबाव करो और संरक्षणके साधनोंसे प्रजाका संरक्षण करो।

हे (नृ-मणः) मनुष्योंके मनोंको आकर्षित करनेवाले इन्द्र ! अथवा जिसका मन मनुष्योंका हित करनेमें लगा है ऐसे इन्द्र ! (देववीतौ त्वं नृभिः भूरीणि वृत्रा हंसि) युद्धमें तू अपने वीरोंके द्वारा बहुत शत्रुओंको मारता है। हे (हर्यश्व) हरिद्वर्णके घोडोंवाले इन्द्र ! तूने (दभीतये सुहन्तु) दभीतिके लिये वज्रके द्वारा दस्यु, चुमुरि और धुनिको (नि अस्वापयः) सुलाया नाश किया ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।१९।४)

नृ-मणः – मनुष्योंका प्रजाजनोंका हित करनेमें जिसका मन तत्पर रहता है इसलिये प्रजाओंका मन जिसपर लगा है जिसने प्रजाओंका मन आकर्षित किया है। देव-वीती – जहां देवोंका सत्कार होता है नमस्कार करनेवाले जहां एकत्रित होते हैं और जहां एकत्रित होते हैं। यज्ञ तथा अथवा युद्ध। हर्यश्व – लाल रंगके घोडे जिसके रथको जोते हैं। सु हन्तु – जिससे शत्रु अच्छी तरह मारे जाते हैं वह वज्र शत्रुको मारनेवाला शस्त्र। दस्युः – घातपात करनेवाला। चुमुरिः – चुम चुम कर खा के देकर नाश करनेवाला धुनिः – हिलानेवाला कंपानेवाला या अपने स्थानमें स्थिर सुखसे रहने नहीं देता ये सब समाजके शत्रु हैं। इनको दूर

तव॒ च्यौ॒त्नानि॑ वज्रहस्त॒ तानि॒ नव॒ यत्पुरो॑ नव॒तिं च॑ स॒द्यः ।
नि॒वेश॑ने शत॒तमावि॑वेषी॒रह॑ञ्च वृ॒त्रं नमु॑चिमु॒ताह॑न् ॥ ५ ॥
सना॒ ता त॑ इन्द्र॒ भोज॑नानि रा॒तह॑व्याय दा॒शुषे॑ सु॒दासे॑ ।
वृष्णे॑ ते॒ हरी॒ वृष॑णा युनज्मि॒ व्यन्तु॒ ब्रह्मा॑णि पुरुशाक॒ वाज॑म् ॥ ६ ॥
मा ते॑ अ॒स्यां स॑हसाव॒न्परि॑ष्टाव॒घाय॑ भूम हरिवः परा॒दै ।
त्राय॑स्व नोऽवृ॒केभि॒र्वरू॑थै॒स्तव॑ प्रि॒यासः॑ सू॒रिषु॑ स्याम ॥ ७ ॥

करना चाहिये। 'दृ-भीतिः – दमनके कारण जो भयभीत हुआ है।

१ नृ-मनाः— मनुष्योंका हित करनेके लिये अपना मन लगा। प्रजाका हित करनेमें तत्पर हो। प्रजाके मनोंको आकर्षित कर।

२ देववीतौ नृभिः भूरीणि हंसि— युद्धोंमें अपने वीरों द्वारा बहुत शत्रुओंका नाश कर।

३ दस्युं चुमुरिं धुनिं नि स्वापय— घातपाती घबराने और घबराहट करनेवाले शत्रुओंका वध कर। वे फिरसे न उठें ऐसा कर।

४ दभीतये भूरीणि हंसि— दमनके कारण जो भयभीत हुआ है उसकी सुरक्षा करनेके लिये बहुत दुष्टोंका वध कर। प्रजापर कोई दमन न करे ऐसा कर।

हे (वज्रहस्त) वज्रधारी इन्द्र! (तव तानि च्यौत्नानि) तेरे वे प्रसिद्ध बल हैं कि जो (यत् नव नवतिं च पुरः सद्यः) तूने उनके भी और नब्बे नगरीका भेदन तत्काल ही किया था और (निवेशने शततमा अविवेषीः) अपने ठहरनेके लिये सब सौ नगरीमें तूने प्रवेश किया उसी समय (वृत्रं च अहन्) वृत्रको तूने मारा और (उत नमुचिं अहन्) नमुचिको भी मारा ॥ ५ ॥

(ऋ. ७।१९।५)

भावार्थ— शत्रुके किलों, प्राकारों तथा नगरोंका नाश करना चाहिये और उनपर अपना स्वामित्व स्थापन करना चाहिये। तथा उनमें या अपना दूसरोंमें जो छिपे हुए शत्रु रहते हों उनका [illegible] करना चाहिये।

वज्र हस्त— हाथमें वज्र लेकर धारण करनेवाला वीर। वह वीर नव च नवतिं पुरः शत्रुके स्थानमें नगरियोंका भेदन करता है नगरीके अन्दरके किले तथा उनके प्राकारोंका नाश करके किसी दावर जब नगर-

रोमें प्रवेश करता है और जब सौवी नगरीमें प्रवेश करके वहां रहता है। वृत्र' (आवृणोति) आ घेरकर हमला करता है और न मुचि (न मुञ्चति) जो प्रसन्न करनेपर भी छोडता नहीं किसी न किसी रूपमें वहां रहता है और वह वैसा ही रहता है वह नमुचि है। ये सब शत्रु हैं। इनका नाश इन्द्र करता है।

हे इन्द्र! (ते रातहव्याय दाशुषे सुदासे) तुझे हव्य देनेवाले दानी सुदासके लिये (ता भोजनानि सना) जो तूने भोगने योग्य धन दिये वे सदा टिकनेवाले थे। हे (पुरु शाक) बहुत शक्तिमान् वीर! (वृष्णे ते) बलशाली ऐसे तुझे लानेके लिये रथको (वृषणा हरी युनज्मि) बलशाली घोडे जोतता हूं। (ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) स्तोत्र बलशाली ऐसे तेरे पास पहुंचें ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।१९।६)

१ दाशुषे सना भोजनानि— दाताके लिये उपभोग करने योग्य शाश्वत टिकनेवाला भोग दो।

२ पुरु शाकः— बहुत शक्तिमान् बन। अपनेमें बहुत सामर्थ्य बढाओ। वृषा – बलवान् बैल जैसा शक्तिमान्।

३ वाजं ब्रह्माणि व्यन्तु— बलवान् वीरके पास प्रशंसा के वचन पहुंचें। बलवान्की ही प्रशंसा होती रहे।

४ वृषणा हरी रथे युनज्मि— बलवान् घोडे मैं रथको जोतता हूं। रथमें बलवान् घोडे जोतने चाहिये।

हे (सहसावन् हरिवः) बलशाली और घोडोंवाले इन्द्र! (तव अस्यां परिष्टौ) तेरी इस प्रशंसामें (पराद अघाय मा भूम) दूसरोंके अधीन ऐसा [illegible] हम न हों। (न अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व) हमें [illegible] करनेवाले [illegible] बचाओ। (सूरिषु तव प्रियासः स्याम) ज्ञानियोंमें हम तेरे प्रिय बनें ॥ ७ ॥

(ऋ. ७।१९।७)

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥

मानवधर्म— मनुष्य अतिथिसत्कार करे। दूसरेकी सहायता से ही सब कार्य करनेका पाप कोई न करे। अपनी शक्तिसे अपने कार्य करे। स्वावलम्बनशील बने। क्रूरता रहित संरक्षक साधनोंसे प्रजाजनोंका बचाव होता रहे और ज्ञानियोंमें भी अधिक विद्वान् बनकर प्रभुके प्यारे भक्त बनें।

१ सहसावान्— परिश्रम करनेकी शक्ति, शत्रुका पराजय करनेकी शक्ति ऐसी अनेक शक्तियोंसे युक्त। हरिवः — घोडे पास रखनेवाला वीर।

२ परादे अघाय मा भूम— दूसरोंसे सहायता लेकर ही अपने काम करनेकी स्थिति (परा-आ दा) यह अत्यन्त निकृष्ट स्थिति है। अतः यह पापकी अवस्था है। ऐसी स्थितिमें हमें रहना न पडे। अर्थात् हम अपनी शक्तिसे ही अपने सब कार्य करें इतनी हमारी शक्ति बढ चुकी हो।

३ अवृकेभिः वरूथैः पायस्व— वृक क्रूरताका रूप है। अवृकसे क्रूरता रहित वीरताका बोध होता है। वरूथ संरक्षणके साधनोंका नाम है। क्रूरता रहित रक्षाके साधनोंसे हमारा रक्षण हो।

४ सूरिषु तव प्रियासः स्याम— हम ज्ञानियोंमें अधिक ज्ञानी बनें और इस हमारे ज्ञानकी अधिकताके कारण हम प्रभुके प्यारे बनें।

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (ते अभिष्टौ) तेरी स्तुति करते हुए (नरः सखायः प्रियासः शरणे इत् मदेम) हम सब नेता समान कार्य करनेवाले तुम्हें प्रिय होकर अपने घरमें आनन्दसे रहें। (अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्) अतिथिसत्कार करनेवालेके लिये प्रशंसनीय सुखकी व्यवस्था निर्माण करके (तुर्वशं याद्वं नि नि शिशीहि) तुर्वश और याद्व इन शत्रुओंको अपने वशमें कर ॥ ८ ॥

(ऋ. ७।१९।८)

मानवधर्म— धनवान् बनो क्योंकि धनसे सब काम होते हैं। अपने देशमें दुर्जन रहकर अपने ही देशमें दुःख भोगनेका अवसर न आवे। अतिथिसत्कार करो। शत्रुओंको वशमें रखो। उनको बढने न दो।

१ मघवन्— धनवान् बनना चाहिये क्योंकि धनसेही सब कार्य होते हैं। मघवन् इन्द्र ही अवश्य ऐसे कार्य करनेवाला होता है।

२ सखायः प्रियासः नरः शरणे मदेम— हम सब एक कार्य करनेवाले परस्पर प्रीति करनेवाले नेता बनकर होकर कार्यको संपन्न करनेवाले होकर अपने स्थानमें आनंदसे रहें। दुःखमें न रहें। हमें अपने देशमें दुःख भोगना न पडे।

३ अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्— अतिथिसत्कार करनेवालेका हित करो।

४ तुर्वशं याद्वं नि शिशीहि— त्वरासे वशमें होनेवाले तथा क्रूरकर्मी शत्रुओंको दूर करो। याद्वः (यादोगण) जलोंमें विशेष स्थान है ऐसोंमें रहनेवाला शत्रु।

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (ते नु अभिष्टौ) तेरी स्तुति करनेके कार्यमें (उक्थशासः ये नरः) स्तोत्र गानेवाले जो नेता (सद्यः चित् उक्था शंसन्ति) तत्काल ही स्तोत्रोंको बोलते हैं। (ते हवेभिः पणीन् वि अदाशन्) उन्होंने अपने दानोंसे पण्य व्यवहारियोंको भी दान करनेवाला बना दिया है। (तस्मै युज्याय अस्मान् वृणीष्व) उस मित्रताके लिये हमारा स्वीकार कर ॥ ९ ॥ (ऋ. ७।१९।९)

पणी वे होते हैं कि जो पण्य करते हैं। वस्तुका क्रयविक्रय करते हैं। व्यापार-व्यवहार करनेवाले वे होते हैं। वे अपना धन बढाना चाहते हैं। ऐसे लोगोंसे भी (पणीन् वि अदाशन्) पण्य व्यवहार करनेवालोंको भी दाता बना दिया। यह परिणाम स्तुतिके कारण पढनेसे हुआ। इसलिये इन्द्रकी स्तुति करनी तथा पढनी चाहिये।

हे (नृतम इन्द्र) नेताओंमें अत्यन्त श्रेष्ठ इन्द्र! (तुभ्यं एते स्तोमाः मघानि ददतः) तुम्हें ये मंत्र धन देते हुए (अस्मद्र्यञ्चः) हमारी ओर आ रहे हैं। (तेषां वृत्रहत्ये

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥ (१५३)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

[सूक्त ३८]

(ऋषिः — १-२ इरिम्बिठिः ३-४ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

शिवा भूः) उनके लिये अनुकूल भाव करनेके युद्धमें तुम कल्याण करनेवाला हो तथा तुम (नृणां सखा च शूरः अविता च) मानवोंका मित्र और शूर संरक्षक हो ॥ १० ॥ (ऋ. ७।१९।१०)

मानवधर्म— मनुष्योंमें श्रेष्ठ बन। धनका दान कर। युद्धके समय मनुष्योंकी सहायता करके उनका कल्याण कर। मनुष्योंका संरक्षण कर और इसके लिये शूर बन तथा मनुष्योंके साथ मित्रवत् व्यवहार कर।

१ नृतमः— नेताओंमें श्रेष्ठ नेता बन।

२ मघानि ददतः अस्मद्र्यञ्चः— धन देते हुए ये नेता हमारी ओर आ रहे हैं। हमें भी ये धन देंगे और उस धनसे हम यज्ञ करेंगे।

३ वृत्रहत्ये तेषां शिवः भूः— युद्धमें उन मानवोंका कल्याण हो ऐसा करो। युद्धमें उनका नाश न हो।

४ नृणां सखा शूरः अविता च भूः— मानवोंका मित्र तथा शूर संरक्षक हो।

हे शूर इन्द्र! (स्तवमानः ब्रह्मजूतः) स्तुतिसे और ज्ञानसे प्रेरित होकर (तन्वा ऊती वावृधस्व) अपने शरीरसे और संरक्षण शक्तिसे बढता जा। (नः वाजान् उप मिमीहि) हमें अन्न और बल दो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित करो ॥ ११ ॥ (ऋ. ७।१९।११)

मानवधर्म— मनुष्य शूर हो। देवताकी स्तुतिसे और ज्ञान विज्ञानसे उसको श्रेष्ठतम कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती रहे। शरीर स्वस्थ नीरोग और बलवान बने और उसमें श्रम करनेका सामर्थ्य बढे। अन्न ऐसे प्राप्त हों कि जिससे बल बढे। रहनेके लिये उत्तम घर हों। मानवोंका कल्याण हो और उनका संरक्षण भी हो।

१ शूरः— नेता शूर हो भीरु न हो।

२ स्तवमानः ब्रह्मजूतः— स्तुति और ज्ञानसे उसको प्रेरणा मिले। श्रेष्ठ कर्म करनेकी प्रेरणा उसको (स्तव) ईश स्तुतिसे मिले। ईश्वर स्तुतिसे मैं ईश्वर जैसा बनूंगा इस भावसे सत्कर्मकी प्रेरणा मिलती है। वैसी प्रेरणा मिले।

३ तन्वा ऊती वावृधस्व— अपना शरीर और अपने अन्दरकी संरक्षण करनेकी शक्ति बढती जाय। देवत की स्तुति और ज्ञानसे अपने शरीरके संवर्धनके उपाय तथा संरक्षणकी शक्ति बढानेके उपाय विदित होते हैं।

४ वाजान् नः उप मिमीहि— अन्न और बल हमें प्राप्त हों। उत्तम बल बढानेवाले अन्न हमें मिलें और अन्न मिलनेपर उससे हमारे बल बढें। अन्नका उपयोग ऐसा किया जावे कि शरीरका बल बढे पर कभी न घटे।

५ स्तीन् उप मिमीहि— रहनेके लिये घर हों। बिना घरके जीवित रहना पडे ऐसा कभी न हो।

६ स्वस्तिभिः नः पात— कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमारी सुरक्षा हो। ऐसा न हो कि हम सुरक्षित तो हों पर हमारी हानि ही हानि होती जाय। तात्पर्य हमारा कल्याण भी हो और हमारा उत्तम संरक्षण भी हो।

॥ यहां चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ३८)

हे इन्द्र! (आ याहि) आ (ते हि सुषुम) हमने तेरे लिये सोमरस निचोडा है। (इमं सोम पिब) इस सोमको पी। (मम इदं बर्हिः) मेरा यह आसन है (आ सदः) इस पर बैठ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।१)

हे इन्द्र! (केशिना) बालोंवाले (ब्रह्मयुजा हरी) स्तोत्रोंसे जुडनेवाले दो घोडे (त्वा आ वहतां) तुम्हें यहां ले आवें। (नः ब्रह्माणि उप शृणु) हमारी प्रार्थनाओंको सुन ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।२)

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥ (२९१)

[सूक्त १९]

(ऋषिः — १ मधुच्छन्दाः; २-५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥
व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ २ ॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥ ४ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥ ५ ॥ (२९६)

हे इन्द्र ! (वयं सोमिनः ब्रह्माणः) हम सोम वालेवाले ब्राह्मण (सुतावन्तः) सोमरस निकालनेपर (त्वा सोमपां युजा हवामहे) तुझ सोम पीनेवालेको अपने यज्ञके साथ बुलाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१७।३)

कोई अतिथि आया तो (इदं बर्हिः । मं. १) यह आसन आपके लिये है ऐसा बोलकर उसको बैठनेके लिये आसन देना चाहिये ।

कल्पिता ब्रह्मयुजा हरी (मं. २)— मंत्र बोलनेसे हमारेसे रथके साथ जुडनेवाले घोडे हों । घोडे ऐसे सिखाये जांय ।

(गाथिनः इन्द्रं इत्) गाथा पढनेवाले इन्द्रका ही (बृहत्) बडे स्वरसे गान करते हैं । (अर्किणः अर्केभिः इन्द्रं) मंत्रपाठ करनेवाले सूक्तोंसे इन्द्रकी ही स्तुति गाते हैं । (वाणीः इन्द्रं अनूषत) हमारी वाणियां इन्द्रकी ही स्तुति गाती हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. १।७।१)

(इन्द्रो वज्री हिरण्ययः) इन्द्र वज्र धारण करता है और सुनहरी पोषाक करता है वह इन्द्र (वचोयुजा आ संमिश्लः) वाणीके साथ जुडनेवाले (हर्योः सचा इत्) दो घोडोंका साथी ही है ॥ ५ ॥ (ऋ. १।७।२)

इन्द्रने (दीर्घाय चक्षसे) दूरतक देखनेके लिये (सूर्यं दिवि आ रोहयत्) सूर्यको द्युलोकमें चढाया है और (गोभिः) गौओंसे किरणोंसे (अद्रिं वि ऐरयत्) पर्वतको-मेघको दूर किया ॥ ६ ॥ (ऋ. १।७।३)

१ इन्द्रः वज्री हिरण्ययः— इन्द्र वज्र धारण करता है और सुवर्णके भूषण धारण करता है या सुवर्ण जैसा चमकने वाला पोषाक करता है ।

२ इन्द्रः हर्योः सचा— इन्द्र घोडोंका मित्र है, घोडोंके साथ रहनेवाला है । वचोयुजा आ संमिश्लः — शब्दसे जुडनेवाले घोडोंके साथ वह रहता है ।

घोडे पालनेवाले घोडोंको अपने साथी समझें । घोडोंको ऐसे शिक्षित करें कि जिससे वे शब्दसे रथके साथ जुड जांय ।

३ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे सूर्यं दिवि आ रोहयत्— इन्द्रने दूरतक देखनेके लिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर चढाया है । इससे सूर्यसे इन्द्र पृथक् है यह सिद्ध होता है । इन्द्रने सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया है । सूर्यसे इन्द्र अधिक शक्तिमान् है ।

४ गोभिः अद्रिं वैरयत्— किरणोंसे मेघको दूर किया । गौ– किरण तथा भूमि । अद्रि– पर्वत तथा मेघ । इस मंत्रभागका अर्थ समझना विचाराधीन है । सहज समझने योग्य यह मंत्र नहीं है ।

(सूक्त १९)

(विश्वतः परि जनेभ्यः) सब ओरसे लोगोंसे पृथक् करके (वः इन्द्रं हवामहे) तुम्हारे लिये हम बुलाते हैं । (केवलः अस्माकं अस्तु) वह केवल हमारा होकर रहे ॥ १ ॥ (ऋ. १।७।१०)

२-५ (२९३–२९६) मंत्र अथर्व २०।२८।१-४ देखो ।

[सूक्त ४०]

(ऋषिः — १-३ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः मरुतश्च १-३ मरुतः ।)

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥ (११७)

[सूक्त ४१]

(ऋषिः — १-३ गोतमः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ (१२०)

(सूक्त ४०)

(अबिभ्युषा इन्द्रेण संजग्मानः) निडर इन्द्रके साथ जानेवाला (सं दृक्षसे हि) तू दीखता है। (मन्दू समानवर्चसा) आनन्ददायक और समान कान्तिवाले तुम दो हो ॥ १ ॥ (ऋ. १।६।७)

(अनवद्यैः) दोष रहित (अभिद्युभिः) तेजस्वी और देखनेवाले (इन्द्रस्य काम्यैः गणैः) इन्द्रके प्रिय गणोंके साथ (मखः सहस्वत् अर्चति) यह यज्ञ बल बढानेवाले गीत गाता है। बलके बढानेवाले स्तोत्र गाये जाते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. १।६।८)

(आत् अह पुनः) इसके बाद पुनः (स्वधां अनु) अपनी धारण शक्तिके अनुसार वे (यज्ञियं नाम दधानाः) पूज्य नाम धारण करते हुए (गर्भत्वं एरिरे) गर्भ भावको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ (ऋ. १।६।९)

१ अबिभ्युषा इन्द्रेण— निडर इन्द्र है। वैसा निडर वीर हो।

२ अबिभ्युषा संजग्मानः— निडर वीरके साथ जाना योग्य है।

३ मन्दू समानवर्चसा— हर्षित और तेजस्वी वीर हों।

४ अनवद्यैः अभिद्युभिः गणैः— निर्दोष और तेजस्वी मित्रगणोंके साथ रहना योग्य है।

५ मखः सहस्वत् अर्चति— यज्ञमें बलयुक्त गीत गाये जाते हैं।

६ यज्ञियं नाम दधानाः— पवित्र नाम धारण करके रहना उत्तम है।

यह मरुतोंका वर्णन है। मरुत् इन्द्रके साथ रहते हैं और वे युद्धादि करते हैं।

(सूक्त ४१)

(इन्द्रः अप्रतिष्कुतः) जिसका कोई सामना नहीं कर सकता ऐसे इन्द्रने (दधीचो अस्थिभिः) दधीचकी हड्डियोंसे (नवतीः नव वृत्राणि जघान) निन्यानवे वृत्रोंको मारा ॥ १ ॥ (ऋ. १।८४।१३)

(पर्वतेषु अपश्रितं) पर्वतोंमें पडा हुआ (यत् अश्वस्य शिरः इच्छन्) जो घोडेका सिर था उसको प्राप्त करना चाहा। (तत् शर्यणावति विदत्) उसको शर्यणावतीमें पाया ॥ २ ॥ (ऋ. १।८४।१४)

(इत्था चन्द्रमसो गृहे) इस तरह चन्द्रमाके घरमें (अत्र अह) यहीं (त्वष्टुः अपीच्यं गोः नाम) त्वष्टाकी-सूर्यकी गौ (किरण) थी (अमन्वत) यह है ऐसा माना ॥ ३ ॥ (ऋ. १।८४।१५)

१ दधीचके हड्डियोंका वज्र बनाकर निन्यानवे वृत्रोंको मारा। दधीच (दधि-अच्) दही जिससे होता है वह दूध है। दूध पीनेवालेकी हड्डी सेंकडा निन्यानवे रोगोंको दूर करती है। दूध पीनेवालेकी हड्डीका चूर्ण औषधके रूपमें काम आता है। निन्यानवे रोग वे निर्बलता ऐसा नहीं है। हड्डियाँ भी वज्र बन नहीं

[सूक्त ४२]

(ऋषिः — १-३ कुरुस्तुतिः । देवता — इन्द्रः ।)

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात्परि तन्वं ममे ॥ १ ॥
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ २ ॥
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥ (१७१)

[सूक्त ४३]

(ऋषिः — १-३ त्रिशोकः । देवता — इन्द्रः ।)

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥
यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥ (१७४)

सकता। यह औषध चिकित्सा विषयक मंत्र है। वैद्योंको इसका विचार करना चाहिये।

२ पक्षीयोंमें पता नौकेका सिर वर्तमानविधि मिला। यह भी वैसी ही गूढ विद्या है। इसकी खोज होनी चाहिये।

३ चन्द्रमसः गृहे त्वष्टुः अपीच्यं गोः नाम अमन्वत— चन्द्रमाके घर त्वष्टाका गुप्त पता किरण मिल गया। सूर्यका किरण चन्द्रमामें पहुंचता है और वह किरण चन्द्रमाके घर मिलता है।

यह सूक्त गूढ अर्थ बतानेवाला है अतः इसके विज्ञानकी खोज विशेष होनी अत्यंत आवश्यक है।

(सूक्त ४२)

(अष्टापदीं) आठ पदवाली (नव-स्रक्तिं) नौ कोनों-वाली (ऋत-स्पृशं) सत्यको स्पर्श करनेवाली (तन्वं वाचं) सूक्ष्म वाणीको (इन्द्रात् परि ममे) इन्द्रसे सब ओरसे माना है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।७६।१२)

हे इन्द्र! (यत् दस्युहा अभवः) जब तू दस्युओंका मारनेवाला हुआ तब (उभे रोदसी) दोनों द्यु और भूलोक (त्वा) तुझ (क्रक्षमाणं अनु अकृपेतां) गर्जन करनेके पीछे कांप गये ॥ २ ॥ (ऋ. ८।७६।११)

हे इन्द्र! (सुतं सोम चमू पीत्वी) सोमरसको चम पात्रोंमें रखे हुएको पीकर (ओजसा सह उत्तिष्ठन्) बलके साथ उठने पर तूने (शिप्रे अवेपयः) दोनों हनुओंको कंपाया ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।७६।१०)

१ अष्टापदीं नव-स्रक्तिं ऋतस्पृशं वाचं परि ममे— आठ चरणवाली नौ प्रकारकी रचनावाली सत्य कथन करनेवाली कविताकी वाणी-छन्द रचनाको मापकर बनाता है। कवित इस तरह योग्य मापकी बनानी चाहिये। चरणोंमें अक्षर, ह्रस्व दीर्घ मात्रा चरणोंकी संख्या इसका विचार छन्दरचनामें अत्यंत आवश्यक होता है।

२ यत् दस्युहा अभवः उभे रोदसी त्वा क्रक्षमाणं अनु अकृपेतां— जब इन्द्र दस्युओंको मारने लगा तब उसके पराक्रमको देखकर द्यावा पृथिवी कांपने लगी। इस वीरके पराक्रम इस तरह करने चाहिये।

३ सुतं सोमं चमू पीत्वी ओजसा सह उत्तिष्ठन् शिप्रे अवेपयः— सोमरस चमसोंसे पीकर जब इन्द्र उठने लगा तब उसके दोनों ऊपर और नीचेके हनु कांपने लगे।

शिप्र का अर्थ हनु और साफा ये दो हैं। यहां उसे शिप्रे दोनों शिप्र हैं इस कारण यहां शिप्र का अर्थ हनु बनता है। वेगसे उठनेसे जबडा या हनु कांपते हैं।

(सूक्त ४३)

(विश्वा द्विषः अप भिन्धि) सब शत्रुओंको चारों ओरसे भेद डाल। (बाधः मृधः परि जहि) बाधा करनेवाले शत्रुओंको मारकर हटा (तत् स्पार्हं वसु आ भर) इच्छा करने योग्य धन लाकर भर दो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।४५।४०)

हे इन्द्र! (यत् वीळौ) जो बलवाली चट्टानोंमें (यत् स्थिरे) जो स्थिर स्थानमें (यत् पर्शाने) जो भूमिमें रखा (पराभृतं) हुआ है वह इच्छा करने योग्य धन लाकर भर दो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।४५।४१)

(यस्य ते भूरेः दत्तस्य) जो तेरे दिये गये बडे धनको (विश्वमानुषः वेदति) सब मनुष्य जानता है। वह इच्छा करने योग्य धन लाकर भर दो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।४५।४२)

[सूक्त ४४]

(ऋषिः — १-३ इरिम्बिठिः । देवता — इन्द्रः ।)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥ (१७९)

[सूक्त ४५]

(ऋषिः — १-३ शुनःशेपो देवरातापरनामा । देवता — इन्द्रः ।)

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

---

१ विश्वाः द्विषः अप सिन्धि— सब शत्रुओंको काट डालो।

२ विश्वाः बाधः मृधः परि जहि— सब बाधा करनेवाले हुए शत्रुओंको पराजित करके दूर भगा दो।

३ यत् वीळौ स्थिरे पर्वते पराभृतं— जो धन बलवानोंके स्थानमें सुस्थिर स्थानमें और भूमिमें रखा है।

४ तत् स्पार्हं वसु आ भर— वह स्पृहणीय धन लाकर भर दो।

५ यस्य ते भूरेः वरस्य विश्वमानुषः वेदति— जिस तेरे दिये बडे धनको सब मनुष्य जानते हैं कि वह धन मिला है। वैसा धन हमें लाकर भर दो। धन इच्छा करने योग्य उन्नति करनेवाला हो। विनाशकारी न हो।

(सूक्त ४४)

(चर्षणीनां सम्राजं) प्रजाजनोंके सम्राट् (नृषाहं मंहिष्ठं नरं) शत्रुके वीरोंको पराजित करनेवाले बडे सामर्थ्यवान् वीर (नव्यं इन्द्रं) स्तुत्य इन्द्रकी (गीर्भिः स्तोता) वाणीसे स्तुति करो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१६।१)

(यस्मिन्) जिस इन्द्रमें (श्रवस्या विश्वानि उक्थानि) यश देनेवाले सारे स्तोत्र (रण्यन्ति) रमणीय होते हैं (अपां अवो समुद्रे न) जैसे जलोंके प्रवाह समुद्रमें जाकर मिलते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१६।२)

(तं ज्येष्ठराजं) उस बडे राजा (भरे कृत्नुं) युद्धमें कुशल (सनिभ्यः महो वाजिनं) दानोंके लिये बडे बलवान् (तं सुष्टुत्या विवासे) उस इन्द्रको उत्तम स्तुतिसे प्रशंसित करते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१६।३)

१ (अथर्व भाष्य काण्ड २)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण कहे हैं—

१ चर्षणीनां सम्राजं— लोगोंका सम्राट्

२ नृ-षाहं— शत्रुके वीरोंका पराभव करनेवाला

३ मंहिष्ठं नरं— बडा श्रेष्ठ वीर

४ ज्येष्ठ राजं— श्रेष्ठ राजा

५ भरे कृत्नु— युद्ध करनेमें अत्यंत कुशल

६ महो वाजिन— बडा बलवान्

७ यस्मिन् विश्वा उक्थानि श्रवस्या रण्यानि— इस इन्द्रमें जो भी स्तुतियां गाय कह गयी उसके यशका वर्णन करनेवाली होनेके कारण वह स्तोत्र रमणीय ही होते हैं। वे सब उसमें जाते होते हैं जैसे (अपां अवो समुद्रे न) नदियोंके प्रवाह समुद्रमें अधिक नहीं होते। वे प्रवाह समुद्रमें मिल जाते हैं वैसी ही वीर इन्द्रकी स्तुतियां इन्द्रमें उसकी सब जाती होती हैं।

(सूक्त ४५)

(अयं उ ते) यह सोम तेरा है (सं अतसि) इसको प्राप्त कर। (कपोतः गर्भधिं इव) जैसे कबूतर अपनी मादीके पास जाता है (नः तत् वचः) हमारे इस वचनका (ओहसे) तू प्यार करता है ॥ १ ॥ (ऋ. १।३०।४)

हे (राधानां पते) धनोंके स्वामी (गिर्वाहः) स्तुतिके स्वीकारनेवाले (वीर) वीर इन्द्र ! (यस्य ते स्तोत्रं) जिस तेरा स्तोत्र (सूनृता विभूतिः अस्तु) हमारे लिए सच्ची उसकी विभूति हो ॥ २ ॥ (ऋ. १।३०।५)

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ २ ॥ (१८९)

[सूक्त ४६]

(ऋषिः — १-३ इरिम्बिठिः । देवता — इन्द्रः ।)

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १ ॥
स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २ ॥
स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ ३ ॥ (१८९)

[सूक्त ४७]

(ऋषिः — १-३ सुकक्षः ७-९ इरिम्बिठिः ४-६ १०-१२ मधुच्छन्दाः १३-२१ प्रस्कण्वः । देवता — इन्द्रः १३-२१ सूर्यः ।)

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥

हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (अस्मिन् वाजे) इस युद्धमें (न ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (ऊर्ध्वः तिष्ठ) खडा रह (अन्येषु सं ब्रवावहै) अन्योंकी इस स्थितिमें भी हम तेरी ही प्रशंसा करेंगे ॥ २ ॥ (ऋ. १।३०।६)

१ राधानां पतिः— धनोंका स्वामी इन्द्र है।

२ वीर ! यस्य ते स्तोत्रं सूनृता विभूतिः अस्तु— हे वीर इन्द्र ! तेरा स्तोत्र हमारे लिये सच्ची विभूतिके समान हमारे सामने रहे।

३ शतक्रतो— सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र।

४ अस्मिन् वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ— इस युद्धमें हमारी रक्षा करनेके लिये खडा रह और हमारी रक्षा करनेके लिये जो करना योग्य है वह सब कर।

५ अन्येषु सं ब्रवावहै— अन्य लोग उपस्थित हों तो भी हम ऐसा ही तेरे विषयमें आदर भावके वचन ही बोलेंगे।

(सूक्त ४६)

(वस्यो अच्छ प्रणेतारं) जो उत्तम वस्तुकी ओर ले चलता है (समत्सु ज्योतिः कर्तारं) संग्रामोंमें ज्योति करता है, और (युधा अमित्रान् सासह्वांसं) युद्धसे शत्रुओंको पराभूत करता है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१६।११)

(सः पुरुहूतः) वह अनेकों द्वारा प्रार्थित हुआ (पप्रिः इन्द्रः) प्रतिपालक इन्द्र (नावा) नौकासे (नः स्वस्ति पारयाति) हमें कल्याणके लिये पार ले जाता है (विश्वा द्विषः अति) सब शत्रुओंको दूर करता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१६।११)

हे इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः च गातुया च) अन्नोंसे और मार्गसे (दशस्य) परिपूर्ण कर (नः अच्छ सुम्नं नेषि) और हमें आनन्दकी ओर ले जा ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१६।१२)

१ वस्यो अच्छ प्रणेतारं— इन्द्र उत्तमताकी ओर पहुंचाता है।

२ समत्सु ज्योतिः कर्तारं— युद्धोंमें ज्योति प्रकाश विजयका मार्ग दर्शाता है।

३ युधा अमित्रान् सासह्वान्— युद्धसे शत्रुओंको पराभूत करता है।

४ सः पुरुहूतः— वह इन्द्र अनेकोंके द्वारा प्रार्थित होता है।

५ पप्रिः इन्द्रः— वह सच्चा पालक है।

६ नावा नः स्वस्ति पारयाति— नौकासे हमें कल्याणके लिये पार ले जा।

७ विश्वा द्विषः अति— सब शत्रुओंको दूर कर।

८ सः त्वं वाजेभिः गातुया च दशस्य— वह तू अन्नोंसे तथा मार्गसे हमें परिपूर्ण कर।

९ नः अच्छ सुम्नं नेषि — हमें आनन्दकी ओर ले जा।

(सूक्त ४७)

(महे वृत्राय हन्तवे) बडे वृत्रके मारनेके लिये (तं इन्द्रं वाजयामसि) उस इन्द्रको हम बढाते हैं (सः वृषा वृषभः भुवत्) वह बलिष्ठ वीर होवे ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९३।७)

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १० ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ११ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ १२ ॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १३ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ १४ ॥
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १५ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥ १६ ॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ १७ ॥

(इन्द्रः स दामने कृतः) वह इन्द्र दानके लिये ही प्रसिद्ध है (ओजिष्ठः स मदे हितः) वह बलवान् और आनन्दमें रहता है। (द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः) वह तेजस्वी यशस्वी और सोमके योग्य है॥ २॥ (ऋ. ८।९३।८)

(गिरा वज्रः संभृतः न) स्तुतिसे वज्र जैसा वह तैयार हुआ है (स बलः अनपच्युतः) वह बडे बलवान् और न गिरनेवाला है (ऋष्वः अस्तृतः ववक्षे) वह बडा न क्षीण हुआ और ऊंचा है॥ ३॥ (ऋ. ८।९३।९)

४-६ देखो १।३८।४-६। ७-९ देखो १।३८।१-३। १०-११ देखो १।३६।४-६।

(उदु त्यं जातवेदसं देवं सूर्यं) उस उत्पन्न बने हुए सबको जाननेवाले सूर्य देवको (विश्वाय दृशे) समस्त संसारके देखनेके लिये (केतवः उत् उ वहन्ति) उसके किरण ऊपर प्रकाशित करते हैं॥ १३॥

(ऋ. १।५०।१; यजु. ७।४१; अथर्व. १३।२।१६)

७

(यथा त्ये तायवः) जैसे वे चोर (नक्षत्रा अक्तुभिः अप यन्ति) वे नक्षत्र रात्रीके साथ भाग जाते हैं और (विश्वचक्षसे सूराय) विश्वको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके लिये स्थान करते हैं॥ १४॥

(ऋ. १।५०।२; अथर्व. १३।२।१७)

(यथा भ्राजन्तः अग्नयः) जैसे चमकनेवाले अग्नि होते हैं (अस्य केतवः रश्मयः) इसके ध्वज रूपी किरण (जनान् अनु वि अदृश्रन्) लोगोंके प्रति आते हैं ऐसा दीखता है॥ १५॥

(ऋ. १।५०।३; यजु. ८।४०; अथर्व. १३।२।१८)

हे (रोचन सूर्य) हे प्रकाशक सूर्य! तू (तरणिः विश्वदर्शतः) तारक और विश्व दर्शनीय है तथा (ज्योतिष्कृत् असि) प्रकाश करनेवाला है। (विश्वं आभासि) तू सबको प्रकाशित करता है॥ १६॥

(ऋ. १।५०।४)

(देवानां विशः प्रत्यङ्) देवोंकी प्रजाओंके प्रति और (मानुषीः प्रत्यङ् उदेषि) मानवी प्रजाओंके प्रति तू उदित

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ १९ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २० ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २१ ॥ (१०१)

[सूक्त ४८]

(ऋषिः — (१-३) खिलम्, ४-६ सर्पराज्ञी । देवता — सूर्यः, गौः ।)

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥
ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥ २ ॥
वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥ ३ ॥
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥ ५ ॥

होता है तथा (स्वः विश्वं विभासि प्रकाशय) प्रकाशके दर्शनके लिये सब विश्वके प्रति तू जाता है ॥ १७ ॥ (ऋ. १।५०।५)

हे (पावक वरुण) पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ देव ! (येन चक्षसा) जिस आंखसे (त्वं जनान् भुरण्यन्तं अनु पश्यसि) तू मनुष्योंमें भरण-पोषण करनेवाले मनुष्यको देखता है उससे मुझे देख ॥ १८ ॥ (ऋ. १।५०।६)

सूर्य ! (अक्तुभिः अहः मिमानः) रात्रियोंसे दिनको मापता हुआ (पृथु रजः द्यां एषि) विस्तृत अन्तरिक्ष और द्युलोकमें जाता है और (जन्मानि पश्यन्) सब जन्म लेनेवालोंको देखता है ॥ १९ ॥ (ऋ. १।५०।७)

हे सूर्य देव ! (सप्त हरितः) सात किरण (शोचिष्केशं विचक्षणं त्वा) तेज फैलानेवाले किरण तथा दर्शक ऐसे तुझको (रथे वहन्ति) रथमें चलाते हैं ॥ २० ॥ (ऋ. १।५०।८)

(सूरः रथस्य) सूर्यने रथको (नप्त्यः सप्त शुन्ध्युवः अयुक्त) न गिरनेवाले सात शुद्ध किरण जोडे हैं। (ताभिः स्वयुक्तिभिः याति) उन अपनी जोडी हुई किरणोंसे वह जाता है ॥ २१ ॥ (ऋ. १।५०।९)

इस सूक्तमें १-१२ मंत्र इन्द्र देवताके हैं और १३-२१ ये मंत्र सूर्य देवताके हैं।

(सूक्त ४८)

(आचरण्यवः) बारंबार प्राप्त होनेवाली (गिरः) हमारी स्तुतियां (वर्चसा त्वा सिञ्चन्तीः) तेजसे तेरे पास सिंचन करती हैं (वत्सं धेनवः अभि न) बछडेके पास जैसी गौवें चारों ओर जाती हैं ॥ १ ॥

(जातं जात्रीः यथा हृदा) उत्पन्न हुए बच्चेके पास माताएं हृदयके प्रेमसे जाती हैं उस तरह हमारी स्तुतियां (वर्चसा पृञ्चन्तीः) तेजसे संयुक्त होती हैं (प्रियाः शुभ्रियः ताः अर्षन्ति) और प्रिय शुभ्र स्तुतियां तुझको प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

(वज्रापवसाध्यः) वज्र प्रकाशका धारण आदि (कीर्तिः) तथा कीर्ति (म्रियमाणं आवहन्) मरनेवालेके पास आते हैं। (मह्यं आयुः घृतं पयः) मुझे दीर्घ आयु घी और दूध मिले ॥ ३ ॥

(आयं गौः) यह गतिमान् चन्द्रमा (मातरं पुरः असदत्) अपनी माता भूमिके आगे बैठा है। (पितरं च प्रयन्) और अपने पिता स्वर्ग प्रकाशी सूर्यकी चारों ओर घूमता हुआ (पृश्निः अक्रमीत्) आकाशमें चलता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१८९।१)

(अस्य रोचना) इसकी ज्योति (प्राणात् अपानतः) प्राण और अपान करनेवालोंके (अन्तः चरति) अन्दर

त्रिंशद्धामा वि राजति वाक्पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६ ॥ (११९)

[सूक्त ४९]

(ऋषिः — १-७ खिलम् । ४-५ मोधा; ६-७ मेध्यातिथिः ।)

पश्चक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिपासथः । सं देवा अमदन्वृपा ॥ १ ॥
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदुर्दिवि ॥ २ ॥
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन्विराजति । विमदन्बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥
त यो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥ (११९)

संचार करती है और वह (महिषः स्वः वि अख्यत्) बड़े स्वर्ग प्रकाशी सूर्यको ही प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

(ऋ १ ।१८९।२)

(वस्तोः त्रिंशत् धाम) महोरात्रके तीस धाम अर्थात् मुहूर्त (अहः द्युभिः प्रति वि राजति) दिवसको इसके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं । उसकी प्रशंसाके लिये (वाक् पतङ्गः अशिश्रियत्) हमारी वाणी सूर्यका आश्रय करती है ॥ ६ ॥

(ऋ. १ ।१८९।३)

चन्द्र पृथिवीके चारों ओर भ्रमण करता है और भूमि सहित चन्द्र सूर्यके चारों ओर घूमता है । इस प्रकार भूमि सहित चन्द्र सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है और अपने मार्ग आकाशमें संचार करता है ।

इसके लिए [illegible] व्यापक अवकाशके कारण प्रकाशित होते हैं और वे सूर्य प्रकाशके महत्वको व्यक्त करते हैं ।

अहोरात्रके तीस मुहूर्तोंमें इसीका प्रकाश अथवा तेजस्वी बनाता है । इसलिए इस सूर्यकी प्रशंसा हमारी वाणीका करती रहती है ।

(सूक्त ४९)

(यत् दाम्ना वाचं आरुहन्) जब ऋषियोंने वाणीपर आरोहण किया (अन्तरिक्षं सिपासथः) अन्तरिक्षको जीतना चाहा तब (वृषा देवाः सं अमदन्) बलवान् देवोंने आनन्द मनाया ॥ १ ॥

(शक्रः वाचं अधृष्टाय) शक्तिवालेने वाणीको धैर्य वाली बनाया (उरुवाचः अधृष्णुहि) बड़ी वाणीको प्रबल बनाया । (मंहिष्ठः दिवि आ मदः) बड़ेने द्युलोकमें हर्ष बनाया ॥ २ ॥

(शक्रो वाचं अधृष्णुहि) शक्तिवालेने वाणीको प्रबल बनाया (धामधर्मन् विराजति) प्रति स्थानपर वह शासन करता है । (विमदन् बर्हिः आसरन्) आनन्द मनाता हुआ वह आसनपर बैठा है ॥ ३ ॥

४ ७ देखो (। १३ ४)

१ दाम्ना वाचं आरुहन्— ऋषियों वाणीपर चढ़ीं । वाणीमें शक्ति रहनी चाहिए । शक्तिसे युक्त वाणीपर चढ़ नहीं तो वाणीमें बड़ा ज्ञान है उत्पन्न होता है ।

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १९ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २० ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २१ ॥ (१०६)

[सूक्त ४८]

(ऋषिः — (१-३) खिलम्, ४-६ सर्पराज्ञी। देवता — सूर्यः गौः।)

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥
ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥ २ ॥
वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥ ३ ॥
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥ ५ ॥

होता है तथा (स्वः विश्वं विश्वम् अभ्यसि) प्रकाशके दर्शनके लिये सब विश्वके प्रति तू जाता है ॥ १७ ॥ (ऋ. १।५०।५)

हे (पावक वरुण) पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ देव ! (येन चक्षसा) जिस आंखसे (त्वं जनान् भुरण्यन्तं अनु पश्यसि) तू मनुष्योंमें भरण-पोषण करनेवाले मनुष्यको देखता है उससे हमें देख ॥ १८ ॥ (ऋ. १।५०।६)

सूर्य ! (अक्तुभिः अहः मिमानः) रात्रियोंसे दिनको मापता हुआ (पृथु रजः द्यां एषि) विस्तृत अन्तरिक्ष लोकको और द्युलोकको प्राप्त होता है और (जन्मानि पश्यन्) सब जन्म लेनेवालोंको देखता है ॥ १९ ॥ (ऋ. १।५०।७)

हे सूर्य देव ! (सप्त हरितः) सात किरण (शोचिष्केशं विचक्षणं त्वा) शुद्ध करनेवाले किरण तथा दर्शक ऐसे तुझको (रथे वहन्ति) रथमें चलाते हैं ॥ २० ॥ (ऋ. १।५०।८)

(सूरः रथस्य) ज्ञानमय रथको (नप्त्यः सप्त शुन्ध्युवः अयुक्त) सात शुद्ध करनेवाले किरण जोडे हैं। (ताभिः स्वयुक्तिभिः याति) उनसे अपनी योजनाओंसे वह जाता है ॥ २१ ॥ (ऋ. १।५०।९)

इस सूक्तमें १-१२ मंत्र इन्द्र देवताके हैं और १३-२१ तकके मंत्र सूर्य देवताके हैं।

(सूक्त ४८)

(आचरण्यवः) बारंबार प्राप्त होनेवाली (गिरः) हमारी स्तुतियां (वर्चसा त्वा सिञ्चन्तीः) तेजसे तेरे पास सिंचन करती हैं (वत्सं धेनवः अभि न) बछडेके पास जैसी गौवें बारंबार आती हैं ॥ १ ॥

(जातं जात्रीः यथा हृदा) उत्पन्न हुए बच्चेको जैसी माताएं हृदयके साथ मिलाती हैं उस तरह हमारी स्तुतियां (वर्चसा पृञ्चन्तीः) तेजसे संयुक्त होती हैं (प्रियाः शुभ्रियः ताः अर्षन्ति) और प्रिय शुभ्र मनको प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

(वज्रापवसाध्यः) वज्र अवास रोग आदि (कीर्तिः) तथा कीर्ति (म्रियमाणं आवहन्) मरनेवालेके पास आते हैं। (मह्यं आयुः घृतं पयः) मुझे दीर्घ आयु घी और दूध मिले ॥ ३ ॥

(अयं गौः) यह गतिशील चन्द्रमा (मातरं पुरः असदत्) अपनी माता भूमिको आगे करता है (पितरं च प्रयन्) और अपने पिता रूपी स्वर्ग प्रकाशी सूर्यकी चारों ओर घूमता हुआ (पृश्निः आक्रमीत्) आकाशमें भ्रमण करता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१८९।१)

(अस्य रोचना) इसकी ज्योति (प्राणात् अपानतः) प्राण और अपान करनेवालोंके (अन्तः चरति) अन्दर

त्रिंशद्धामा वि राजति वाक्पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥ (११२)

[सूक्त ४९]

(ऋषिः — १-३ त्रिशोकः । ४-६ नोधाः । ७ मेध्यातिथिः ।)

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा अमदन्वृषा ॥ १ ॥
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥ २ ॥
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन्विराजति । विमदन्बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥ (११९)

संचार करती है और वह (महिषः स्वः वि अचक्षत्) बड़े सर्व प्रकाशी सूर्यको ही प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

(ऋ. १० ।१८९।२)

(वस्तोः त्रिंशत् धाम) अहोरात्रके तीस धाम अर्थात् मुहूर्त (अह द्युभिः प्रति वि राजति) नियमसे इसके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं। उसकी प्रशंसाके लिये (वाक् पतङ्गः अशिश्रियत्) हमारी वाणी सूर्यका आश्रय करती है ॥ ६ ॥

(ऋ. १० ।१८९।३)

यह भूमिके चारों ओर भ्रमण करता है और भूमि सहित यह सूर्यके चारों ओर घूमता है। इस प्रकार भूमि सहित यह सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है और अपने मार्गसे आकाशमें संचार करता है।

इसके किरण सब स्थावर जंगमके ऊपर प्रकाशित होते हैं और वे सूर्य प्रभावके महत्त्वको व्यक्त करते हैं।

अहोरात्रके तीस मुहूर्तोंमें इसीका प्रकाश फैलता रहता है। इसलिये इस सूर्यकी प्रशंसा हमारी वाणी करती रहती है।

(सूक्त ४९)

(यत् शक्राः वाचं आरुहन्) जब शक्तिशालियोंने वाणीपर आरोहण किया (अन्तरिक्षं सिषासथः) अन्तरिक्षको जीतना चाहा तब (वृषा देवाः सं अमदन्) बलवान् देवोंने आनंद मनाया ॥ १ ॥

(शक्रः वाचं अधृष्टाय) शक्तिमान्ने वाणीको धैर्य वाली बनाया, (उरुवाचः अधृष्णुहि) बड़ी वाणीको प्रबल बनाया। (मंहिष्ठः दिवि आ मदः) बड़ेने द्युलोकमें हर्ष बनाया ॥ २ ॥

(शक्रो वाचं अधृष्णुहि) शक्तिमान्ने वाणीको प्रबल बनाया (धामधर्मन् विराजति) प्रति स्थानपर वह शासन करता है। (विमदन् बर्हिः आसरन्) आनन्द मनाता हुआ वह आसनपर बैठा है ॥ ३ ॥

४-७ देखो (१ । ११ ४)

१ शक्रा वाचं आरुहन्— ये वक्ता वर्णनपर चढ़ें। वर्णनमें शक्ति रहनी चाहिये। शक्तिमान् वक्ता वर्णनपर चढ़ें तभी तो वाणीमें बड़ा आकर्षण उत्पन्न होता है।

[सूक्त ५०]

(ऋषिः — १-२ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १ ॥
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ २ ॥ (१११)

[सूक्त ५१]

(ऋषिः — १-२ प्रस्कण्वः ३-४ पुष्टिगुः । देवता — इन्द्रः ।)

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

---

२ अन्तरिक्षे सिषासथा— अन्तरिक्षको जीतनेकी शक्ति वाणीमें रहती है ।

३ कृपा देवा स्तं अमदन्— यज्ञमान् देव इससे हर्ष करते हैं । जिनकी वाणीमें शक्ति उत्पन्न हुई तो देवता उससे हर्षित होते हैं और वे उसकी सहायता करते हैं । उसकी वाणीमें दैवी शक्ति उत्पन्न होती है ।

४ धाम्ना धार्ष्णं अभूदाय— सामर्थ्यवान अपनी वाणीको शक्तिवाली बनाता है ।

५ उक्थाधः अपृण्णुहि— वाणीकी अपनी शक्ति है उसको जो बढाता है वह शक्तिशाली होता है ।

६ मंहिष्ठ दिवि आमदः— शक्तिशाली द्युलोकमें हर्षसे बढता है । अपनी सामर्थ्यवाली वाणीसे द्युलोकमें भी हर्ष बढाता है ।

७ धाम्ना धार्ष्णं अपृण्णुहि— सामर्थ्यवानने अपनी वाणीको बलवती बनाया ।

८ आमधमन् विराजती— उससे स्वर्ग स्थानपर वह अपना शासन चलाता है ।

९ विमदन् बर्हि आसदम्— आनंदित होकर वह आसनपर बैठता है और स्थानपर विराजता है ।

(सूक्त ५०)

(तुरः मर्त्यः) त्वराले काम करनेवाला मनुष्य (मर्त्यः) नवीन गीत (कः अतसीनां गृणीत) किस समय प्रेरित होते हुए गायेगा । (अस्य महिमानं इन्द्रियं गृणन्तः) इसकी महिमा और शक्तिका गान करते हुए कौन (स्वः नहीं आनशुः) स्वर्गधाम नहीं पाता ! ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३।१३)

त्वरासे कार्य करनेवाला भक्त अपनी बुद्धियोंसे नवीन गीत गाता है और उस प्रभुकी महिमाका गान करके वह भक्त स्वर्गधामको प्राप्त करता है । सुख प्राप्त करता है । मंत्रोंका गान करनेसे मनुष्य सुखी होता है ।

(कद् उ स्तुवन्तः) कब स्तुति करनेवाले (ऋतयन्तः) सत्यकी उपासना करनेवाले (देवता ऋषिः) देवता और ऋषि (कः विप्रः ओहते) कौन विशेष ज्ञानी करके तुम्हें बुलाते हैं ? हे इन्द्र ! हे (मघवन्) धनवान् ! (कदा सुन्वतः हवं) कब सोमरस निचोडनेवालेकी प्रार्थना सुनकर (कद् उ स्तुवतः आगमः) कब तुम स्तुति करनेवालेके पास आते हो ? (ऋ. ८।३।१४)

(सूक्त ५१)

(वः) तुम्हारे हितके लिये (सुराधसं इन्द्रं) जो धनी इन्द्रका (यथा विदे) जैसा मालूम है वैसा उसे (अभि प्र अर्च) स्तोत्र गाओ । (यः पुरूवसुः मघवा) जो बहुत धनवाला इन्द्र (जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति) स्तोताओंको सहस्र गुना देता है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।४९।१)

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३ ॥
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४ ॥ (११५)

[सूक्त ५२]

(ऋषिः — १-४ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

उप त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

(शतानीक इव) सैंकडों सैनिक जिसके साथ हैं ऐसे वीरके समान (धृष्णुया प्र जिगाति) धैर्यसे वह आगे बढता है और (दाशुषे वृत्राणि हन्ति) दाताके लिये शत्रुओंको मारता है। (गिरेः रसाः इव) पर्वतसे जल आता है उस तरह (अस्य पुरुभोजसः दत्राणि प्र पिन्विरे) इस बहुत भोग देनेवाले इन्द्रके दान फैलते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।४९।२)

(श्रुतं सुराधसं शक्रं) प्रसिद्ध दानी इन्द्रकी (अभिष्टये) विजयके लिये (प्र सु अर्च) अर्चना उत्तम प्रकार कर। (यः) जो (सुन्वते स्तुवते) सोमरस निकालनेवाले और स्तुति करनेवालेको (काम्यं वसु) इष्ट धन (सहस्रेण इव मंहते) सहस्र गुना देता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।४९।३)

(अस्य इन्द्रस्य) इस इन्द्रकी (महीः दुष्टराः) बडी तथा दुस्तर (समिषः) इच्छाएं तथा (शतानीकाः हेतयः) सैंकडों नोकोंवाले इसके शस्त्र हैं। (यत् ईं सुताः अमन्दिषुः) जब इस इन्द्रको सोमरस आनन्द देते हैं तब (गिरिः न) पर्वतके समान वह (मघवत्सु भुज्मा पिन्वते) धनिकोंको भोग देता है ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।४९।४)

१ सुराधसं इन्द्रं यथा विदे अभि प्र अर्च— उत्तम दान देनेवाले इन्द्रकी जैसी जानी है वैसी स्तुति गाओ। उसका गुणवर्णन करो।

२ पुरुवसुः मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति— बहुत धनवाला इन्द्र है वह स्तोताओंको सहस्र प्रकारसे धन देता है। अतः उसकी स्तुति करना लाभदायक है।

३ शतानीक इव धृष्णुया प्र जिगाति— सैंकडों सैनिकोंको अपने साथ रखनेवाला वीर जैसा धैर्यसे शत्रुसैन्यमें घुसता है वैसा वह इन्द्र युद्धमें घुसता है।

४ दाशुषे वृत्राणि हन्ति— दाताकी रक्षा करनेके लिये शत्रुको मारता है और दाताकी रक्षा करता है।

५ गिरेः रसाः इव अस्य पुरुभोजसः दत्राणि प्र पिन्विरे— पर्वतसे जैसा जल निकलता है उस तरह इस बहुत भोग देनेवाले इन्द्रसे प्राप्त होनेवाले दान चारों ओर फैल रहे हैं।

६ श्रुतं सुराधसं शक्रं अभिष्टये प्र सु अर्च— सुप्रसिद्ध उत्तम दान देनेवाले इन्द्रकी अपने कल्याणके लिये उत्तम अर्चना कर।

७ यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेण इव मंहते— जो इन्द्र सोमरस निकालनेवाले स्तोताके लिये इष्ट धन सहस्र प्रकारसे देकर उसको बडा महान् बनाता है।

८ अस्य इन्द्रस्य महीः दुष्टराः समिषः शतानीकाः हेतयः— इस इन्द्रके बडे दुस्तर मनोभाव हैं और सैंकडों सैनिकोंके साथ रहनेवाले शस्त्र भी इसके साथ हैं।

९ यत् ईं सुताः अमन्दिषुः गिरिः न मघवत्सु भुज्मा पिन्वते— जब इस इन्द्रको सोमरस आनन्दित करते हैं तब वह पहाडके समान धनिकोंको अनेक भोग देता है। पर्वत जैसे फल मूल फूल देता है वैसा वह इन्द्र भी नाना भोग देता है।

(सूक्त ५२)

(उप सुतावन्तः वृक्तबर्हिषः) हम सोमरस लिये आसन बिछाए (स्तोतारः) तेरे स्तोतागण (पवित्रस्य

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥ (११८)

[सूक्त ५३]

(ऋषिः — १-३ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ १ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ २ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥ (१२१)

प्रस्रवणेषु) पवित्र जलधाराएं जहां बहती हैं वहां हे (वृत्रहन्) वृत्रके मारनेवाले! (आपः न) जलोंके समान (त्वा च परि आसते) तेरे चारों ओर बैठते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३३।१)

हे (वसो) निवासक! (उक्थिनः निरेके नरः) स्तोत्र पाठ करनेवाले कई मनुष्य (सुते) सोमरस निकलने पर (त्वा नि स्वरन्ति) तुझे प्रेमसे बुलाते हैं। हे इन्द्र! (कदा सुतं तृषाण) कब सोमरसके प्रति प्यासा होकर (स्वब्दी वंसगः इव) सुन्दर शब्द करनेवाले बैलकी तरह (ओकः आगमः) घरमें तू आ जायगा ॥ २ ॥ (ऋ. ८।३३।२)

हे (धृष्णो धृषत्) वीरोंके साथ वीर! (कण्वेभिः सहस्रिणं वाजं आ दर्षि) कण्वोंके द्वारा प्रार्थित होनेपर तू सहस्र गुना धन ला देता है। हे (विचर्षणे मघवन्) ज्ञानी शक्तिमान् इन्द्र! हम (पिशङ्गरूपं गोमन्तं) पीले रंगवाले सोनेके समान गौओंसे युक्त धन (मक्षु ईमहे) शीघ्र मिले ऐसा चाहते हैं ॥ ३ ॥

१ धृष्णो धृषत्— वीरके साथ वीर इन्द्र ।

२ विचर्षणे मघवन्— बुद्धिमान् धनवान् इन्द्र ।

३ पिशङ्गरूपं गोमन्तं मक्षु ईमहे— सोना और गौएं हमें शीघ्र मिलें ऐसा चाहते हैं। पिशङ्गरूपं – पीले रंगवाला सुवर्ण हमें चाहिये। गौएं भी चाहिये।

(सूक्त ५३)

(सुते सचा पिबन्तं ईं कः वेद) सोमरस साथ बैठकर पीनेवालेको कौन ठीक तरह जानता है? (कद् वयः दधे) उसने किस शक्तिको धारण किया है? (अयं यः ओजसा पुरः विभिनत्ति) यह जो बलसे शत्रुके नगरोंके किलोंको तोडता है वह (शिप्री अन्धसः मन्दानः) शिरस्त्राणधारी सोमरससे आनन्दित होनेवाला है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३३।७)

(वारणः मृगः न) मस्त हाथीकी तरह (दाना) मदमत्त होनेके कारण (पुरुत्रा चरथं दधे) इधर उधर भ्रमण करता है। (सुते आ गमः) सोमरसके तैयार होनेपर तू आ गया तो (त्वा न किः आ नि यमत्) तुझे कोई रोक नहीं सकता। (महान् ओजसा चरसि) बडा होकर बलसे तू घूमता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।३३।८)

(यः उग्रः सन्) जो उग्रवीर है (अनिष्टृतः) और शत्रुसे पीछे हटाया नहीं जा सकता (स्थिरः रणाय संस्कृतः) स्थिर रहकर संग्रामके लिये तैयार है। (मघवा) धनवान् इन्द्र (यदि स्तोतुः हवं शृणवत्) यदि वह स्तोताकी प्रार्थना सुनता है (इन्द्रः न योषति) तो इन्द्र दूर नहीं रहेगा (आ गमत्) पास आयेगा ही ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।३३।९)

[सूक्त ५४]

(ऋषिः — १-३ रेभः । देवता — इन्द्रः ।)

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १ ॥
समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ २ ॥
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ ३ ॥ (११४)

---

१ कद् यथः वृधे— यह इन्द्र किस तरहका सामर्थ्य धारण करता है यह (कः वेद) कौन जानता है। उसके सामर्थ्यको कोई नहीं जानता।

२ अय ओजसा पुरः बिभिनत्ति— यह इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुकी नगरियोंका तोडता है उनपर अपना प्रभुत्व स्थापन करता है। पहिले शत्रुकी नगरियां भी शत्रुका पराभव करके उनके किले इसने तोडे।

३ चारथः न पुरुधा चरथ वृधे— हाथीके समान यह इन्द्र चारों ओर घूमता है।

४ त्वा न किः आ मि यमत्— तुझे कोई रोक नहीं सकता।

५ महान् ओजसा चरसि— तू बडा शक्तिसे विचरता है। वीरकी ऐसी शक्ति चाहिये। जिसे कोई भी रोक न सके।

६ यः उग्रः सन् अनिष्टृतः— जो वीर है और उसे कोई रोक नहीं सकता।

७ स्थिरः रणाय संस्कृतः— यह वीर युद्धमें स्थिर रहकर युद्ध करनेमें तैयार होता है। कुशलतासे युद्ध करता है।

८ मघवा इन्द्रः स्तोतुः हवं शृणवत् न योषति आ गमत्— इन्द्र धनवान् है जब वह किसीकी पुकार सुनता है वह ठहरता नहीं तत्काल उसके पास पहुंचता है। वीर ऐसे होने चाहिए।

(सूक्त ५४)

(विश्वाः पृतनाः अभिभूतरं नरं) सब शत्रुकी सेनाओंका पराभव करनेवाले नेता (इन्द्रं सजूः ततक्षुः) इन्द्रको देवोंने मिलकर उत्पन्न किया और (राजसे जजनुः च) राज्यशासन करनेके लिये बनाया। (वरे क्रत्वा वरिष्ठं) श्रेष्ठ कर्मोंमें श्रेष्ठ (आमुरिं) युद्धमें शत्रुको मारनेवाले (उत उग्रं) उग्रवीर (ओजिष्ठं तवसं तरस्विनं) बलवान सामर्थ्यवान् और साहसी युद्ध ऐसा यह इन्द्र है ॥ १ ॥　　(ऋ. ८।९७।१०)

(ईं स्वर्पतिं इन्द्रं) इस स्वर्गके पति इन्द्रकी (सोमस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिये (रेभासः सं अस्वरन्) स्तोताओंने मिलकर स्तुति की। (यत् धृतव्रतः ओजसा ऊतिभिः स वृधे) तब नियमोंके अनुसार चलनेवाला बलसे और संरक्षक साधनोंसे बढा ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९७।११)

(अभिस्वरा विप्राः) एक स्वरसे ब्राह्मण लोग (चक्षसा) अपनी दृष्टिसे (मेषं नेमिं नमन्ति) इस वीरको अपना संरक्षक मानते हैं। (सुदीतयः अद्रुहः) तेजस्वी द्रोहरहित (तरस्विनः समृक्वभिः) बलवान् स्तोताओंके साथ (वः कर्णे) आपके कानमें सुनाते हैं ॥ ३ ॥　　(ऋ. ८।९७।१२)

वीर इन्द्र इन गुणोंसे युक्त है—

१ विश्वाः पृतनाः अभिभूतरं नरं इन्द्रं सजूः ततक्षुः— सब शत्रुसेनाओंका पराभव करनेवाले नेता इन्द्रको सब देवोंने मिलकर एकमतसे अपना अग्रगामी बना दिया।

२ राजसे जजनुः— राज्यशासन करनेके लिए निर्माण किया। चुनाव करके सबने एकमतसे पसंद किया।

३ क्रत्वा वरे वरिष्ठं आमुरिं उग्रं ओजिष्ठं तवसं तरस्विनं ततक्षुः— पुरुषार्थके श्रेष्ठ कर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ शत्रुका वध करनेवाला उग्रवीर सामर्थ्यवान् बलवान् और त्वरासे कार्य करनेवाले ऐसे वीर इन्द्रको सब देवोंने अपना राज्य शासन करनेके लिए चुनकर रखा।

४ धृतव्रतः ओजसा समूतिभिः ईं स्वर्पतिं वृधे नियमोंके अनुसार चल सके अपनी संरक्षक साथ ले

[सूक्त ५५]

(ऋषिः — १-३ रेभः। देवता — इन्द्रः।)

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन्तं धेहि मा पणौ ॥ ३ ॥ (११७)

युक्त देवे सर्वक राज्यके शासनपर अपनी वृद्धि हो इस इच्छासे देवोंने एकमतसे इन्द्रको नियुक्त किया।

५ अभिस्वरा विप्राः अवसा मेषं नेषि नमस्ति— एक स्वरसे ज्ञानी लोग अपनी रक्षाके लिये नेताको रक्षक नियुक्त करते हैं।

४ सुदीतयः अद्रुहः तरस्विनः समृक्तभिः यः कर्मे— उत्तम तेजस्वी आपसमें द्रोह न करनेवाले वेगवान् इन ऋचाओंसे आपके कार्यमें कहते हैं कि यह इन्द्र श्रेष्ठ है।

(सूक्त ५५)

(त मघवानं) उस धनवान् (उग्र सत्रा शवांसि दधानं) उग्रवीर सदा बलोंको धारण करनेवाले (अप्रतिष्कुतं) पीछे न हटनेवाले (इन्द्रं जोहवीमि) इन्द्रको मैं बार बार बुलाता हूं। (मंहिष्ठ) यह महान् (यज्ञियः) पूजनीय इन्द्र (नः राये) हम सबकि देनेके लिये (गीर्भिः आ ववर्तत्) स्तुतियोंसे हमारी ओर आ जाय। यह (वज्री) वज्रधारी (नः विश्वा सुपथा कृणोतु) हमारे सब मार्ग उत्तम बनावे ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९७।११)

हे (स्वर्वान् इन्द्र) तेजस्वी इन्द्र! (या भुजः असुरेभ्य आभरः) जो भोग तूने असुरोंसे लाये हैं हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (स्तोतारं अस्य वर्धय) स्तोत्रपाठ करनेवालेके लिये इन भोगोंका वर्धन करो तथा (ये च त्वे वृक्तबर्हिषः) जो तेरे लिये आसन देते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९७।१)

हे इन्द्र! (यं त्वं) जिसके लिये तू (अश्वं गां अव्ययं भागं दधिषे) घोडा गौ तथा अक्षय भाग धारण करता है (तस्मिन् दक्षिणावति सुन्वति यजमाने) दक्षिणा देनेवाले सोमरस निकालनेवाले यजमानमें (तं धेहि) उसको तू दे। (मा पणौ) पण्य व्यवहार करनेवालेको न दे ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९७।२)

१ तं उग्रं शवांसि सत्रा दधानं अप्रतिष्कुतं इन्द्रं जोहवीमि— उस उग्रवीर सब बलोंको साथ साथ धारण करनेवाले पीछे न हटनेवाले इन्द्रको बारबार मैं बुलाता हूं। उसकी मैं बारबार स्तुति करता हूं।

२ मंहिष्ठः यज्ञियः नः राये गीर्भिः आ ववर्तत्— महान् पूजनीय यह इन्द्र हमें धन देनेके लिये हमारी स्तुतियोंसे हमारी ओर आ जाय।

३ वज्री नः विश्वा सुपथा कृणोतु— यह वज्रधारी इन्द्र हमारे उन्नतिके सब मार्ग उत्तम निष्कंटक हमारे लिये सुकर बनावें।

४ स्वर्वान् इन्द्र! या भुजः असुरेभ्यः आभरः— हे तेजस्वी इन्द्र! जो भोग तून असुरोंसे लाये हैं। स्तोतारं अस्य वर्धय— स्तुति करनेवालोंको वे भोग अधिक प्रमाणमें मिलें ऐसा कर।

५ ये च त्वे वृक्तबर्हिषः— जो तेरे लिये आसन देते हैं उनको भी व भोग अधिक प्रमाणमें मिलें।

राक्षसोंका पराभव करके उनका इन्द्र लूटे और जो भोग मिले वे भोग अपने अनुयायियोंको देव।

६ यं त्वं अव्ययं भागं गां अश्वं दधिषे तं यजमाने धेहि मा पणौ— जिस भागको जो अब अविरोध तू धारण करता है वह आप यजमानोंको ही दे दो। कंजूसको न दो। दान देनेवालोंको दो दान न देनेवालेको केवल व्यापार करनेवालेको ही न दे।

[सूक्त ५९]

(ऋषिः — १-६ गोतमः। देवता — इन्द्रः।)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ४ ॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ५ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ६ ॥ (१४१)

(सूक्त ५९)

(नृभिः) मनुष्योंने (वृत्रहा इन्द्रः) शत्रुको मारनेवाले इन्द्रको (शवसे मदाय वावृधे) बल और आनन्दके लिये बढाया है। (तं इत् महत्सु आजिषु) उसको हम बडे युद्धोंमें (उत ईं अर्भे) और छोटे छोटे युद्धोंमें (हवामहे) बुलाते हैं (सः वाजेषु नः प्र अविषत्) वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करता है ॥ १ ॥ (ऋ. १।८१।१)

हे वीर! तू (सेन्यः असि हि) अकेला सेनाके बराबर है। (भूरि पराददिः) तू बहुत शत्रुओंको दूर करनेवाला है। तू (दभ्रस्य वृधः चित् असि) छोटेको बढानेवाला है। (यजमानाय शिक्षसि) यजमानके लिये तू धन देता है। (सुन्वते ते भूरि वसु) सोमरस निकालनेवालेके लिये तेरे पास बडा धन है ॥ २ ॥ (ऋ. १।८१।२)

(यत् आजयः उदीरते) जब संग्राम शुरु होते हैं (धना धृष्णवे धीयते) तब धन वीरके लिये रखे जाते हैं। (मदच्युता हरी युक्ष्व) मद गिरानेवाले दो घोडोंको जोत (कं हनः) किसको तूने मारा? (कं वसौ दधः) किसको धनमें रखा? हे इन्द्र! (अस्मान् वसौ दधः) हमें धनमें रखा है ॥ ३ ॥ (ऋ. १।८१।३)

हे (ऋजुक्रतुः) सरल इन्द्र! (मदेमदे) प्रसन्न होने पर तू (गवां यूथा नः ददिः हि) गौओंके झुंडोंको देता है। (उभया हस्त्या) दोनों हाथोंसे (पुरू शता) सैकडों प्रकारका (वसु) धन (सं गृभाय) इकट्ठा कर (शिशीहि) हमें तीक्ष्ण बुद्धिमान् कर और हमें (रायः आ भर) धन लाकर दे ॥ ४ ॥ (ऋ. १।८१।७)

(सुते मादयस्व) सोमरस निकालनेपर अपनेको हर्षित कर दे। हे शूर! (शवसे राधसे सचा) बल और धन देनेके लिये साथ साथ तैयार रह। (त्वा पुरूवसुं विद्म हि) हम तुझे धनवाला करके जानते हैं। (कामान् उप ससृज्महे) अपनी कामनाएं तेरे पास रखी हैं। (अथ नः अविता भव) अब हमारा रक्षक हो ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८१।८)

हे इन्द्र! (ते एते जन्तवः) ये तेरे उपासक लोग (विश्वं वार्यं पुष्यन्ति) सब स्वीकार करने योग्य धनको बढाते हैं। (जनानां अर्यः) तू जनोंका स्वामी है। (अदाशुषां जनानां वेदः) कंजूस मानवोंके पासका धन (अन्तः ख्यः हि) तू जानता है (तेषां वेदः नः आ भर) उनका धन हमारे लिये भर दे ॥ ६ ॥ (ऋ. १।८१।९)

[सूक्त ५७]

(ऋषिः — १-३ मधुच्छन्दाः। ४-७ विश्वामित्रः। ८-१० गृत्समदः, ११-१६ मेध्यातिथिः। देवता — इन्द्रः।)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

---

१ नृभिः वृत्रहा इन्द्रः शवसे मदाय वावृधे— मनुष्य धनुर्धारक इन्द्रकी बल और आनंद बढानेके लिये महिमा गाते हैं। जो इस इन्द्रकी स्तुति गाते हैं उनका बल बढता है और बल बढनेसे हर्ष भी बढता है।

२ तं महत्सु आजिषु उत अर्भे हवामहे— उस इन्द्रको जैसे हम बडे युद्धोंमें बुलाते हैं उसी तरह छोटी स्पर्धामें भी सहायताके लिये बुलाते हैं।

३ सः वाजेषु नः प्र अविषत्— वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करता है।

४ हे वीर ! सैन्यः असि— हे वीर ! तू अकेला होता हुआ सैन्य जैसा प्रभावी है। सब सैन्यकी शक्ति तुम्हारी अकेलेकी शक्तिके बराबर है।

५ भूरि पराददिः— बहुत शत्रुओंको दूर तू करता है।

६ दभ्रस्य वृधः असि— छोटे सामर्थ्यवालेका सामर्थ्य बढानेवाला तू है।

७ सुन्वते यजमानाय भूरि वसु शिक्षसि— यज्ञ करनेवालेको तू बहुत धन देता है।

८ यद् आजयः उदीरते धना धृष्णवे धीयते— जब युद्ध छिड जाते हैं तब धन शूर वीरके लिये ही रखा जाता है। शूरका विजय होता है इसलिये उसका ही धन मिलता है।

९ कं हनः ?— किस शत्रुको तूने मारा ?

१० कं वसौ दधः ?— किसको धनमें रखा है ?

११ हे इन्द्र ! अस्मान् वसौ दधः— हे इन्द्र ! तूने हमें धनमें रखा है।

१२ हे ऋजुक्रतुः ! मदेमदे गवां यूथा आ ददिः— हे सरल कर्मवाले इन्द्र ! प्रत्येक हर्षमें गौओंके झुण्ड तूने हमें दिये।

१३ उभया हस्त्या पुरुशता वसु सं गृभाय— दोनों हाथोंसे सैकडों प्रकारके धन इकट्ठा करके हमें दे।

१४ शिशीहि, रायः आ भर— हमें तीक्ष्ण बुद्धिवाले कर और हमें धन लाकर भर दे।

१५ शवसे राधसे सखा— बल और धनके लिये तू तैयार है।

१६ त्वा पुरुवसुं विद्म— तुझे बडा धनवान हम जानते हैं।

१७ कामान् उप ससृज्महे— हमारी इच्छाएं तुम्हारे सामने रखते हैं।

१८ नः अविता भव— हमारा रक्षक हो।

१९ हे इन्द्र ! ते एते जन्तवः विश्वं वार्यं पुष्यन्ति— हे इन्द्र ! तेरे ये उपासक सब प्रकारके धनको बढाते हैं।

२० जनानां अर्यः अदाशुषां वेदः अन्तः ख्यः। तेषां वेदः आ भर— तू सबका स्वामी है। कंजूसोंका धन ढूंढ निकाल और वह धन हमें दे दो। हम इस धनसे बडे बडे यज्ञ करेंगे जिनसे सबका कल्याण होगा।

(सूक्त ५७)

(गोदुहे सुदुघां इव) दोहन करनेके समय जिस तरह उत्तम दूध देनेवाली गौको बुलाते हैं उस तरह (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन हम (सुरूपकृत्नुं ऊतये जुहूमसि) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रको हम अपनी सुरक्षा करनेके लिये बुलाते हैं ॥ १ ॥ (ऋ० १।४।१)

(नः सवना उप आ गहि) हमारे यज्ञोंमें आओ। तू (सोमपाः) सोम पीनेवाला है अतः (सोमस्य पिब) सोमरस पी। (रेवतः मदः गोदा इत्) धन जैसे धनवालेका हर्ष गौओंको देनेवाला है ॥ २ ॥ (ऋ० १।४।२)

(अथ ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम) अब हम तेरी अन्तरकी सुमतियोंको हम प्राप्त करें। (नः मा अति ख्यः) हमें परे न हटा (आ गहि) हमारे पास आ ॥ ३ ॥ (ऋ० १।४।३)

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ५ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ ६ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः । उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ७ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ८ ॥
इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ९ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥ १० ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ११ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १४ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ १५ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ ॥ (१५१)

[सूक्त ५८]

(ऋषिः — १-३ नृमेधः । ४ जमदग्निः । देवता — १-३ इन्द्रः । ४ सूर्यः ।)

भ्राजन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ १ ॥

४-६ ॥ अथर्व० २० ।१-३ ।
११-१३ देखो अथर्व० २० । [illegible] ।
१४-१६ देखो अथर्व० [illegible] ।

१ इन्द्र सुतपदातु — [illegible] है। [illegible] है।

२ ऊतये पवित्रपवि सुदमासे — [illegible] है।

३ रेवतः सधः मादाः — [illegible] होता है।

(सूक्त ५८)

(सूर्यं भ्राजन्त इव) सूर्यकी [illegible] (इन्द्रस्य विश्वा वसूनि इत् भक्षत) [illegible] (जाते जनमाने) [illegible] (प्रति भागं न) [illegible] (ओजसा दीधिम) [illegible] है।
([illegible])

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३ ॥
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४ ॥ (१।१)

[सूक्त ५९]

(ऋषिः — १-२ मेध्यातिथिः ३-४ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १ ॥
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥
उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३ ॥

(अनर्शरातिं वसुदां उप स्तुहि) जिसके दानको कभी हानि नहीं पहुंचती उस धनदाताकी स्तुति कर। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान उत्तम हैं। (मनः दानाय चोदयन्) अपने मनको वह दानके लिये प्रेरित करता है इस कारण (अस्य कामं विधतः) इसकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेवाले पर वह (न रोषति) क्रोध नहीं करता ॥२॥ (ऋ० ८।९९।४)

हे सूर्य ! (बट् महाँ असि) तू निःसंदेह बडा है। हे आदित्य ! (बट् महाँ असि) तू निश्चयसे बडा है। (ते सतः महः महिमा) तुझ बडेकी महिमा महान् (पनस्यते) मानी जाती है। हे देव ! (अद्धा महाँ असि) तू निश्चय बडा है ॥ ३ ॥ (ऋ० ८।१०१।११; अथर्व० १३।२।२९)

हे सूर्य (श्रवसा बट् महाँ असि) यशसे तू बडा है। हे देव (सत्रा महाँ असि) तू सदा महान् है। (मह्ना) महत्त्वसे (देवानां असुर्यः पुरोहितः) तू देवोंका हितकारी अग्रणी हुआ अग्रसर है ऐसा (ज्योतिः) तेरा तेज (अदाभ्यं विभु) न दबनेवाला और व्यापक है ॥ ४ ॥ (ऋ० ८।१०१।१२)

१ ज्ञान अभिमानी अभिमान न करनेवाला, दानशील हुए तथा सत्य हैं। इसलिये आपको सबसे ऐसा धारण करते हैं वैसा हम सबके सबको धारण करेंगे। सबके ही सबकी धारणा हो सकती है।

१ अनर्शरातिं वसुदां उप स्तुहि — जिसके दानमें कभी भी कमी नहीं होती वैसा धनदाता इन्द्रकी स्तुति कर।

२ इन्द्रस्य भद्राः रातयः — इन्द्रके दान कल्याण करनेवाले हैं।

४ मनः दानाय चोदयन् — मन दानके लिये प्रेरित कर।

५ अस्य कामं विधतः न रोषति — यह इसके अनुकूल कार्य करनेवाले पर कदापि रोष नहीं करता।

६ महान् असि — तू बडा है।

७ देवानां असुर्यः पुरोहितः अदाभ्यं विभु ज्योतिः — देवोंका यह बलवान् अग्रेसर है उसका तेज न दबनेवाला और चारों ओर फैला है।

(सूक्त ५९)

१-२ देखो (अथर्व० २०।१०।१-२) (ऋ० ८।३।१५-१६)

(अस्य अंशः उत् रिच्यते इत् नु) इसका भाग बढता ही जाता है ना ! (जिग्युषः धनं न) विजयी वीरके धनके समान। (यः इन्द्रः हरिवान्) जो इन्द्र घोडोंवाला है (तं रिपवः न दभन्ति) उसे शत्रु नहीं

मन्द्रमजरं सुचितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ ४ ॥ (१००)

[सूक्त ६०]

(ऋषिः — १-३ श्रुतकक्षः सुतकक्षो वा ४-६ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥ (१०१)

मना करता। यह (सोमिनो वसु दधाति) सोमयाग करनेवालेमें धन रखता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।३२।१२)

(मजरं सुचितं सुपेशसं मन्त्रं) उत्तम ऊंचा और सुन्दर रचनावाला मंत्र (यज्ञियेषु आ दधात) यज्ञकर्मोंमें प्रयुक्त करो। (ये इन्द्रे कर्मणा भुवत्) जो इन्द्रमें कर्मसे आश्रित होते हैं वे (पूर्वीः प्रसितयः चन तरन्ति) बहुतसे बन्धनोंको पार करते हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।३२।१३)

१ जिष्णुः धर्म न अस्य वीर्यः कद् रिष्यते— विजयी वीरका धन घटता है उस तरह इस इन्द्रका धन घटता ही जाता है। क्योंकि यह इन्द्र सदा विजयी रहता है।

२ तं रिपः न दभन्ति— उसको शत्रु नहीं दबाते क्योंकि यह विजयी शूर है।

३ ये इन्द्रे कर्मणा भुवत् पूर्वीः प्रसितयः तरन्ति— जो इन्द्रमें शुभ कर्म आश्रय करते हैं उनके सब पूर्वके बन्धन दूर होते हैं। यह इन्द्रका प्रभाव है।

(सूक्त ६०)

(एवा वीरयुः हि असि) ऐसा तू वीरोंके साथ रहने वाला है। (शूरः उत स्थिरः एव) तू शूर और स्थिर है। (एवा ते मनः राध्यं) ऐसा तेरा मन आराधनीय है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९२।२८)

हे (तुवीमघ) बहु धनवाले! (विश्वेभिः धातृभिः) सब धारण करनेवालोंने (एवा रातिः धायि) तेरी दान धारण की है। हे इन्द्र! (अधा मे सखा चित्) तू अब मेरे साथ रह ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९२।२९)

हे (वाजानां पते) बलोंके स्वामिन्! (ब्रह्मा इव) ब्रह्माके समान (तन्द्रयुः मा सु भुवः) आलसी न हो। (गोमतः सुतस्य मत्स्व) दूध मिले सोमरससे आनन्दित हो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९२।३०)

(पक्वा शाखा न) पके फलोंवाली शाखाकी तरह (दाशुषे) दाताके लिये (अस्य सूनृता विरप्शी मही गोमती एव) इस इन्द्रकी शुभ वाणी, महिमावाली और बड़ी गौओंवाली होती है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।८।८)

हे इन्द्र! (मावते) मेरे जैसे (दाशुषे) दाताके लिये (ते विभूतयः ऊतयः) तेरी विभूतियां और रक्षाएं (एवा ते सद्यः चित् सन्ति) निःसंदेह तत्काल प्राप्त होनेवाली हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८।९)

(सोमपीतये इन्द्राय) सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये (अस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या एव) इसके प्रिय स्तोत्र और गीत गाने योग्य हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. १।८।१०)

१ वीरयुः शूरः उत स्थिरः असि— हे इन्द्र! तू वीरोंके साथ रहनेवाला शूर और युद्धमें स्थिर रहकर युद्ध करने वाला है।

२ एवा ते मनः राध्यं— ऐसा तेरा मन आराधनीय है।

३ हे तुवीमघ! विश्वेभिः धातृभिः एवा रातिः धायि— हे धनवाले इन्द्र! सब धारकोंने तेरी दानकी धारणा की है। धारकोंका तेरी दान धारणपर विश्वास है।

४ अधा मे सखा चित्— अब मेरा मित्र होकर तू रह।

[सूक्त ६१]

(ऋषिः — १-६ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। देवता — इन्द्रः।)

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्। उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्॥ १॥
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ। मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि॥ २॥
तदुद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे॥ ३॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत॥ ४॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी। गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना॥ ५॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे। इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे॥ ६॥ (१७७)

५ तन्द्रयुः मा भुवः— आलसी न बन। उद्यमी होकर रह।

६ पक्वा शाखा न दाशुषे अस्य सूनृता विरप्शी मही गोमती एव— पके फलोंसे युक्त शाखाके समान दाताके लिये इसकी सुमति बडी आनन्ददायक और गौवें देनेवाली होती है।

७ हे इन्द्र! मावते दाशुषे ते विभूतयः ऊतयः सद्यः चित् सन्ति— हे इन्द्र! मेरे जैसे दाताके लिये तेरी विभूतियां और तेरे संरक्षण तत्काल प्राप्त होते हैं।

(सूक्त ६१)

हे (अद्रिवः) वज्रधारी! (ते तं मदं गृणीमसि) हम तेरे उस आनन्दकी प्रशंसा करते हैं कि जो (वृषणं) बलवान्, (पृत्सु सासहिं) युद्धोंमें विजयी (लोककृत्नुं) लोगोंके लिये आश्रय देनेवाला और (हरिश्रियं) जो सुवर्णकी शोभावाला है ॥ १॥ (ऋ. ८।१५।४)

(येन ज्योतींषि) जिससे तेज (आयवे मनवे च विवेदिथ) आयु और मनुके लिये दिया था (मन्दानो) तू आनंदित होकर (अस्य बर्हिषो विराजसि) इस आसन पर विराजमान हो ॥ २॥ (ऋ. ८।१५।५)

(तत् अद्य) सो आज (उक्थिनः पूर्वथा अनु ष्टुवन्ति) हम स्तोत्रपाठक पूर्वकी तरह स्तुति गाते हैं तू (दिवे दिवे वृषपत्नीः अपः जय) प्रतिदिन बलवानोंके पालन करनेवाले जल प्राप्त कर ॥ ३॥ (ऋ. ८।१५।६)

(तं उ पुरुहूतं पुरुष्टुतं) उस अनेकों द्वारा बुलाये और अनेकों द्वारा प्रशंसित (इन्द्रं) इन्द्रकी (गीर्भिः तविषं) स्तोत्रोंसे स्तुति किये हुए की (आ विवासत) पूजा करो ॥ ४॥ (ऋ. ८।१५।१)

(यस्य द्विबर्हसः बृहत् सहः) जिस द्विगुणित बलवाले इन्द्रके बडे सामर्थ्यने (रोदसी दाधार) द्युलोक और भूलोकका धारण किया है और (वृषत्वना) जिसकी शक्तिने (गिरीन् अज्रान्) पर्वतों और मैदानोंको (अपः स्वः) जलों और तेजको धारण किया है ॥ ५॥ (ऋ. ८।१५।२)

(स राजसि) वह तू अकेला शासन करता है। हे (पुरुष्टुत) बहुतों द्वारा स्तुति किये गये (एकः वृत्राणि जिघ्नसे) तू अकेला शत्रुओंको मारता है। हे इन्द्र! (जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे) विजय और यशके लिये ही यह तू करता है ॥ ६॥ (ऋ. ८।१५।३)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण कहे हैं—

१ अद्रिवः वृषणं पृत्सु सासहिं, लोककृत्नुं हरिश्रियं— वज्रधारी बलवान् युद्धोंमें विजयी लोगोंको आश्रयस्थान देनेवाला और सुवर्णकी कान्तिवाला इन्द्र है।

२ यस्य बृहत् सहः रोदसी दाधार— जिसके बलने द्युलोक और भूलोकका धारण किया है।

३ वृषत्वना गिरीन् अज्रान् अपः स्वः— जिसके सामर्थ्यने पर्वत मैदान जलप्रवाह और ज्योतिका धारण किया है।

४ स राजसि— वह इन्द्र तू शासन करता है।

५ पुरुष्टुत! एकः वृत्राणि जिघ्नसे— हे अनेकों द्वारा प्रशंसित इन्द्र! तू अकेला ही अनेक शत्रुओंसे- अनेक शत्रुओंको मारता है।

६ जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे— विजय और यश प्राप्त करता है।

[सूक्त ९२]

(ऋषिः — १-४ सोभरिः; ५-७ नृमेधः; ८-१० गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥
विभ्राजं ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ८ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ९ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥ (१८९)

[सूक्त ९३]

(ऋषिः — १-३ भुवनः साधनो वा ३ (द्वि०) भरद्वाजः; ४-६ गोतमः; ७ ९ पर्वतः । देवता — इन्द्रः ।)

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीकॢपाति ॥ १ ॥

(सूक्त ९२)

१-४ देखो अथर्व २०।१४।१- ।

(इन्द्राय साम गायत) इन्द्रके लिये सामगान करो। (बृहते विप्राय) बडे ज्ञानी (धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे) धर्मका आचरण करनेवाले ज्ञानी तथा स्तुतिके योग्यके लिए (बृहत्) बृहत् नामक साम गाओ ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९८।१)

हे इन्द्र ! (त्वं अभिभूः असि) तू विजयी है (त्वं सूर्यं अरोचयः) तूने सूर्यको प्रकाशित किया है तू (विश्वकर्मा) तू सबका बनानेवाला (विश्वदेवः महान् असि) तू सब विश्वका देव और बडा है ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।९८।२)

(ज्योतिषा विभ्राजन्) ज्योतिसे चमकते हुए (दिवः रोचनं स्वः अगच्छः) द्यौके चमकनेवाले तेजस्वी स्थानको तू पहुंचा है। हे इन्द्र ! (देवाः ते सख्याय येमिरे) सब देव तेरी मित्रताके लिए यत्न करते हैं ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।९८।३)

८-१ देखो अथर्व २ ६।१४-६ ।

इन्द्रके ये गुण हैं—

१ धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे विप्राय— धर्मका आचरण करनेवाला ज्ञानी स्तुत्य विद्वान् ।

२ अभिभूः विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि— तू विजयी विश्वका निर्माण करनेवाला विश्वका स्वामी देव और बडा इन्द्र है।

३ देवाः ते सख्याय येमिरे— सब देव मित्रता करना चाहते हैं।

(सूक्त ९३)

(इन्द्रः विश्वे च देवाः) इन्द्र और सब देव तथा हम (इमा भुवना कं सीषधाम) इन भुवनोंको आनंदयुक्त बनाकर बढावें वो। (इन्द्रः आदित्यैः सह) इन्द्र और द्यौके साथ (यज्ञं) यज्ञको (नः तन्वं) हमारे शरीरको

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ २ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ३ ॥
य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥
येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥ (१११)

(प्रजां च) और प्रजाको (चीक्लृपाति) समर्थ बनावे ॥ १ ॥ (ऋ. १।१५७।१)

(आदित्यैः) आदित्योंके साथ (मरुद्भिः सगणः इन्द्रः) मरुतोंके गणोंके साथ इन्द्र (अस्माकं तनूनां अविता भूतु) हमारे शरीरोंका रक्षक होवे। (देवाः असुरान् हत्वाय) देवोंने असुरोंको मारकर (यदा आयन्) जब आये तब (देवत्वं अभिरक्षमाणाः देवाः) देवोंने अपने देवत्वकी रक्षा की ॥ २ ॥ (ऋ. १।१५७।२)

(शचीभिः प्रत्यञ्चं अर्कं अनयन्) अपनी शक्तियोंके साथ व सूर्यको इधर लाये (आत् इत् इषिरां स्वधां पर्यपश्यन्) इसके पश्चात् प्रिय स्वधाको उन्होंने देखा। (अया देवहितं वाजं सनेम) इससे देवोंके रखे हुए अन्नको हमोंने प्राप्त किया (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम पुत्रोंके साथ सौ वर्ष आनंदसे रहें ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१५।१)

(दाशुषे मर्ताय) दानी मनुष्यके लिये (यः एकः इत्) जो अकेला ही (वसु विदयते) धन देता है (अप्रतिष्कुतः ईशानः इन्द्रः अङ्ग) हे प्रिय ! वही किसीसे पराजित न होनेवाला ईश्वर इन्द्र ही है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।८४।७)

(अंग) प्रिय ! (कदा अराधसं मर्तं) कब दान न करनेवाले मनुष्यको (पदा क्षुम्पं इव स्फुरत्) पांवसे अहीके तरह वह दबा देगा ? (इन्द्रः कदा नः गिरः शुश्रवत्) इन्द्र कब हमारी स्तुतियां सुनेगा ? ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८४।८)

(यः चित् हि) जो कोई (बहुभ्यः) बहुतोंमेंसे (सुतावान् त्वा आ आविवासति) एक सोमवाला तेरी सेवा करता है (तत् उग्रं शवः इन्द्रः पत्यते) उस उग्र बलका स्वामी वह इन्द्र होता है हे (अंग) प्रिय ! ॥ ६ ॥ (ऋ. १।८४।९)

हे इन्द्र ! (यः सोमपातमः शविष्ठः मदः चेतति) जो तेरा सोमपान करनेसे बलवाला आनन्द प्रकट होता है (येन अत्रिणं नि हंसि) जिससे तू खानेवाले शत्रुको मारता है (तं ईमहे) उस सामर्थ्यकी हम मांग करते हैं ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१२।१)

(येन दशग्वं अध्रिगुं) जिससे दशग्व अध्रिगुको (वेपयन्तं स्वः नरं) शत्रुको कंपानेवाले प्रकाशके नेता वीरको तथा (येन समुद्रं आविथ) जिससे समुद्रको सुरक्षा की (तं ईमहे) वह सामर्थ्य हम मांगते हैं ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।१२।२)

(येन सिन्धुं महीः अपः) जिससे सिन्धु तथा बडे प्रवाहोंको (रथान् इव) रथोंके समान (ऋतस्य पन्थां यातवे) सत्यके मार्गपर जानेके लिये (प्रचोदयः) प्रेरित किया (तं ईमहे) उस शक्तिकी मांग हम करते हैं ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।१२।३)

१ इन्द्रः नः पशवे तन्वे प्रजायै च चीक्लृपाति— इन्द्र हमारे पशुओं हमारे शरीरोंको और प्रजाको समर्थ बनाता है।

२ इन्द्रः अस्माकं तनूनां अविता भूतु— इन्द्र हमारे शरीरोंका संरक्षक बने।

३ असुरान् हत्वाय देवत्वं अभिरक्षमाणा देवाः

[सूक्त ६४]

(ऋषिः — १-३ नृमेधः; ४-६ विश्वमनाः। देवता — इन्द्रः।)

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥
एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥
इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥ (४०४)

यथा भावयत्— असुरोंको मार कर देवताकी रक्षा करनेवाले देव बल का धले।

४ सधा एवाहितं वाजं सनेम— इससे हितकारक बल प्राप्त करेंगे।

५ सुवीराः शतहिमा मदेम— उत्तम संतानोंके साथ सौ वर्ष आनंदसे हम रहें।

६ दाशुषे मर्ताय च एकः वसु विदयते— दाता मानवके लिये वह अकेला ही इन्द्र धन देता है।

७ अप्रतिष्कुतः ईशानः इन्द्रः— वह किसीसे पराजित न होनेवाला इन्द्र है।

८ कदा मर्तम् अराधसं पदा क्षुम्पम् इव स्फुरत्— कब दान न देनेवाले मानवको पांवसे वह दबाता है?

९ इन्द्रः कदा नः गिरः शुश्रुवत्— इन्द्र कब हमारी प्रार्थना सुनेगा?

१० इन्द्रः शर्धं वाजः पत्यते— इन्द्र बल धन प्राप्त करता है।

११ यः शविष्ठः मदः वेदति येन जामिनां मिहिरसि तं ईमहे— जो सामर्थ्यवान् आनन्द प्रकट करता है जिससे जामिके शत्रुको वह मारता है वह बल हम मांग रहे हैं।

१२ येन आविथ तं ईमहे— जिससे सुरक्षा करता है वह बल हम प्राप्त करना चाहते हैं।

१३ येन ऋतस्य पन्थां यातवे प्रचोदयः तं ईमहे— जिससे सत्य मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा वह लोगोंको देता है वह बल हम मांगते हैं।

(सूक्त ६४)

हे इन्द्र! (आ गहि) हमारे पास आ। तू (प्रियः) हम प्रिय है (सत्रा जित्) तू सदा जीतनेवाला (अगोह्यः) छिपकर न रहनेवाला (गिरिः न विश्वतः पृथुः) पर्वतके समान चारों ओरसे पृथु (दिवः पतिः) द्युलोकका पति है॥१॥ (ऋ. ८।९८।४)

हे (सत्य सोमपा) सच्चे सोमके पीनेवाले इन्द्र! (उभे रोदसी अभि बभूथ हि) तुम दोनों द्यु और भू लोकोंको पराजित करता है। हे इन्द्र! तू (दिवः पतिः) द्युलोकका पति और (सुन्वतः वृधः) सोमयाग करनेवालेको बढानेवाला है॥२॥ (ऋ. ८।९८।५)

हे इन्द्र! (त्वं शश्वतीनां पुरां दर्ता असि हि) तू शत्रुके सारे किलोंको तोडनेवाला है (दस्योः हन्ता) शत्रुओंको मारनेवाला (मनोः वृधः) मनुष्यको बढानेवाला और (दिवः पतिः) द्युलोकका पालक है॥३॥ (ऋ. ८।९८।६)

हे (अध्वर्यो) अध्वर्यु! (अन्धसः मध्वः मदिन्तरं आ सिञ्च इत् उ) मधुर सोमरसके अधिक मीठे भागको इसमें डाल। (सदावृधः वीरः एवा हि स्तवते) सदा बढानेवाला वीर इन्द्र इसी तरह प्रशंसित होता है॥४॥ (ऋ. ८।२४।१६)

हे (हरीणां स्थातः इन्द्र) हे घोडोंके स्वामी इन्द्र! (ते पूर्व्यस्तुतिं) तेरी पुरानी स्तुतिको (न कि शवसा उदानंश) बलसे कोई नहीं पा सकता (न भन्दना) न प्रशंसासे पा सकता है॥५॥ (ऋ. ८।२४।१७)

(श्रवस्यवः) यश चाहनेवाले हम (अप्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यम्) सतत चलनेवाले यज्ञोंसे बढनेवाले (तं वाजानां पतिं) उस बलोंके स्वामी इन्द्रको (अहूमहि) बुलाते हैं॥६॥ (ऋ. ८।२४।१८)

[सूक्त ६५]

(ऋषिः — १-३ विश्वमनाः । देवता — इन्द्रः ।)

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥
यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥ (४०७)

[सूक्त ६६]

(ऋषिः — १-३ विश्वमनाः । देवता — इन्द्रः ।)

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १ ॥

इन्द्रके ये गुण इन सूक्तोंमें कहे हैं—

१ प्रियः सत्राजित् अगोह्यः विश्वतः पृथुः विश्पतिः— इन्द्र सबका प्रिय सर्वदा विजयी छिपकर न रहनेवाला चारों ओरसे पुष्ट प्रजाओंका स्वामी है। अ-गोह्यः किसी तरह छिपकर न रहनेवाला सदा प्रकट होनेवाला इन्द्र है।

२ शश्वतीनां पुरां दर्ता रुजः अस्ति— शाश्वत नगरियोंको शत्रुके किलोंको तोडनेवाला है।

३ दस्योः हन्ता— शत्रुको मारनेवाला

४ मनोवृधः— मननशील मानवोंका संवर्धन करनेवाला है।

५ सदावृधः वीरः यश आवते— जो सदा बढनेवाला वीर है उसकी ही प्रशंसा होती है।

६ हरीणां स्थाता इन्द्रः— घोडोंका रक्षक इन्द्र है। घोडोंकी पालना करनेकी विद्या वह जानता है।

७ न पूर्व्यस्तुतिं न किः त्वावता अन्यः न मघवन्— तेरे जैसी स्तुतिको कोई दूसरा नहीं प्राप्त कर सकता न तुमसे प्राप्त कर सकता है। तेरी जैसी प्रशंसा प्राप्त करना किसीको भी असंभव है।

८ अवस्यवः वाजानां पतिं त्वा अहूमहि— अन्न चाहनेवाले हम सब अन्नोंके स्वामी इन्द्रको ही अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं।

(सूक्त ६५)

हे (सखायः) हे मित्रो ! (आ इत नु) आओ। (स्तोम्यं नरं स्तवाम) स्तुतिके योग्य वीर इन्द्रकी स्तुति करें। (यः एकः इत्) जो अकेला ही (विश्वाः कृष्टीः अभ्यस्ति) सब मनुष्योंपर विराजता है ॥ १ ॥

(ऋ. ८।२४।१९)

(अ गो रुधाय) जो कभी गायोंको रोकता नहीं और (गविषे) गौओंको ढूंढ निकालनेवाला है (द्युक्षाय) उस द्युलोकमें रहनेवालेके लिये (घृतात् मधुनः च स्वादीयः) घी और शहदसे अधिक स्वादु (दस्म्यं वचः वोचत) सुन्दर स्तुतिके वचन कहो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।२४।२०)

(यस्य अमितानि वीर्या) जिसके अपरिमित पराक्रम हैं (यस्य राधः न पर्येतवे) जिसके धन सब घेरे नहीं जाते जिसकी (दक्षिणा ज्योतिः न) दक्षिणा ज्योतिके समान (विश्वं अभ्यस्ति) सबके ऊपर ज्योति है ॥ ३ ॥

(ऋ. ८।२४।२१)

१ हे सखायः ! स्तोम्यं नरं स्तवाम— हे मित्रो ! आओ प्रशंसनीय वीरकी ही प्रशंसा हम गाते हैं तुम भी इसमें शामिल हो जाओ।

२ यः एक इत् विश्वाः कृष्टीः अभ्यस्ति— जो अकेला ही सब मानवोंके ऊपर रहता है।

३ अ गो रुधाय गविषे द्युक्षाय— जो गायोंको रोकता नहीं परंतु गौओंको खोजकर जनताको देता है। जो द्युलोकमें रहता है।

४ दस्म्यं वचः वोचत— उसकी स्तुति सुंदर वाणीसे करो।

५ अस्य अमितानि वीर्या— इस इन्द्रके पराक्रम अपरिमित हैं।

६ यस्य राधः न पर्येतवे— जिसके धन घेरे नहीं जाते इतने वे अपरिमित हैं।

७ दक्षिणा ज्योतिः न विश्वं अभ्यस्ति — दक्षिणा ज्योतिके समान उसका तेज सर्वत्र फैलता है।

(सूक्त ६६)

(व्यश्ववत्) व्यश्वकी तरह (अनूर्मिं वाजिनं यमं) क्षोभ रहित बलवान् और नियन्ता (इन्द्रं स्तुहि) इन्द्रकी स्तुति कर, जो (दाशुषे) दाताको (अर्यः) प्रभु (मंहमानं गयं) धन दान कर (वि) देता है ॥ १ ॥

(ऋ. ८।२४।२२)

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥ (४१०)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

[सूक्त ६७]

(ऋषिः — १-३ परुच्छेपः ४-७ गृत्समदः । देवता — १ इन्द्रः २ मरुतः ३ अग्निः ।)

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः ।
यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ २ ॥

हे (वैयश्व) व्यश्वके पुत्र! (नवं दशमं) जो नवमां या दसवां है तथा जो (सुविद्वांसं चरणीनां चर्कृत्यं) उत्तम विद्वान् है और प्रयत्नशील मानवोंके सराहने योग्य है (एवा नूनं उप स्तुहि) उसकी निश्चयसे स्तुति कर ॥ २ ॥ (ऋ. ८।२४।२३)

हे (वज्रहस्त) वज्र हाथमें धारनेवाले इन्द्र! तू (निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ हि) आपत्तियोंका परिमार्जन करनेके उपायको जानता ही है (परिपदां अहः अहः शुन्ध्युः इव) पांवसे चलनेवालेको जिस तरह प्रतिदिन शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥ (८। २४।२४)

१ अनूर्मिं वाजिनं यमं इन्द्रं स्तुहि— जिसमें लहरियोंके समान क्षोभ नहीं जो बलवान् और नियामक है उस इन्द्रकी स्तुति कर। अन्-ऊर्मिः – जिसमें लहरियां नहीं वे क्षुब्ध नहीं होता जो शान्त रहता है।

२ दाशुषे मघानि अर्यः। तर्ये चित्— जो दाताके लिये शत्रुधन दे देता है। अर्यः – अरि = शत्रु। अर्यः– शत्रुका।

३ नवं दशमं सुविद्वांसं चरणीनां चर्कृत्यं उप स्तुहि— नवम या दशम स्थान (९ वें या १० वें पद) में विद्यमान उत्तम विद्वान् और कार्यकर्ताओंमें उत्तम प्रयत्नशील जो है उसकी स्तुति कर।

४ हे वज्रहस्त! निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ— हे वज्रधारी! तू आपत्तियोंको दूर करनेका उपाय जानते हो।

५ परिपदां अहः अहः शुन्ध्युः— पांवपर चलनेवालों को जैसा प्रतिदिन शुद्ध करते हैं वैसे प्रतिदिन प्रयत्न करनेवाले आपत्तियां दूर कर सकते हैं।

॥ यहां पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ६७)

(सुन्वन् हि परीणसः क्षयं वनोति) सोमयाग करनेवाला धन युक्त घरको प्राप्त करता है। (सुन्वानः हि) सोमयाग करनेवाला ही (द्विषः अव यजति स्म) शत्रुओंको दूर करता है (देवानां द्विषः अव) देवोंके शत्रुओंको दूर करता है। (सुन्वानः अवृतः वाजी) सोमयाग करनेवाला शत्रुसे घेरा न जाता हुआ बलवान् बनकर (सहस्रा सिषासति इत्) सहस्रों प्रकारके धनोंको बांटना चाहता है। (इन्द्रः सुन्वानाय आभुवं रयिं ददाति) इन्द्र सोमयाग करनेवालेको बहुत धन देता है (आभुवं ददाति) पर्याप्त धन देता है ॥ १ ॥ (ऋ. १।१३३।७)

(अस्मत् अभि) हमारे सामने (वः तानि पौंस्या) आपके वे पौरुष कर्म (सना मा उ षु भुवन्) पुराने न हों (उत द्युम्नानि मा जारिषुः) और तुम्हारे तेज क्षीण न हों। (अस्मत् पुरः उत जारिषुः) हमारे सामने क्षीण न हों। (यत् वः चित्रं युगे युगे नव्यं) जो आपका आश्चर्यकारक कर्म युगयुगमें नया होता रहता है, (अमर्त्यं घोषात्) वह तुम्हारे देवत्वकी घोषणा करे। हे मरुतो! (यत्

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ३ ॥
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ ४ ॥
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ५ ॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥ ६ ॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ७ ॥ (४१०)

(स दुष्टर अस्मासु निधत्त) जो दुष्टर धर्म है वह हममें स्थापित करो (यत् च दुष्टरं) जो दुष्प्राप्य है वह हममें रखो। ॥ २ ॥ (ऋ. १।१२९।८)

(अग्निं होतारं मन्ये) अग्निको मैं होता मानता हूं। (दास्वन्तं वसुं सहसः सूनुं) वह दान देनेवाला धन यानि बलका पुत्र (जातवेदसं) उत्पन्न हुएको जाननेवाला (जातवेदसं विप्रं न) ज्ञानी विशेष ज्ञान देनेवाला है। (यः ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा स्वध्वरः देवः) जो ऊंचे उठी सामर्थ्यसे युक्त उत्तम यज्ञ करनेवाला देव है। (आ जुह्वानस्य सर्पिषः शोचिषा) हवन किये गये घीके तेजसे (घृतस्य विभ्राष्टिं अनु वष्टि) घीकी तेजस्विताको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१२७।१)

(यज्ञैः संमिश्लाः) यज्ञोंमें लगे हुए (पृषतीभिः ऋष्टिभिः यामन्) चितकबरी घोडियोंपर भालोंके साथ बैठकर जानेवाले (अञ्जिषु शुभ्रासः) आभूषणोंमें चमकनेवाले (उत प्रियाः) और सबके मित्र (भरतस्य सूनवः) भरतके पुत्रो। हे (दिवः नरः) दिव्य नेताओ! (बर्हिः आसद्य) आसनपर बैठकर (पोत्रात् सोमं आ पिबत) पोताके पात्रसे सोमरसको पीओ ॥ ४ ॥ (ऋ. २।३६।२)

(देवान् इह आ वक्षि) देवोंको यहां ले आओ। हे (विप्र) ज्ञानी! (यक्षि च) उनका यजन कर। हे (होतः) होता! (त्रिषु योनिषु आ निषद) तीनों स्थानोंमें बैठ। (प्रस्थितं सोम्यं मधु प्रति वीहि) तैयार किये गये मीठे सोमका स्वीकार कर। (आग्नीध्रात् पिब) आग्नीध्रके पात्रसे सोम पी और (तव भागस्य तृप्णुहि) अपने भागसे तृप्त हो ॥ ५ ॥ (ऋ. २।३६।४)

(एषः स्य) यह यह (ते तन्वः नृम्णवर्धनः) तेरे शरीरका पौरुष बढानेवाला है (सहः ओजः प्रदिवि बाह्वोः हितः) बल और सामर्थ्य सदा तेरी बाहुओंमें रखा है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (तुभ्यं सुतः) यह सोमरस तेरे लिये निचोडा है (तुभ्यं आभृतः) तुम्हारे लिये लाकर रखा है। (अस्य ब्राह्मणात्) इस ब्राह्मणके पात्रसे (त्वं आ तृपत् पिब) तू तृप्त होनेतक पी ॥ ६ ॥ (ऋ. २।३६।५)

(यं उ पूर्वं हुवे) जिसको मैंने पहिले बुलाया था (तं इदं हुवे) उसको इस समय मैं बुलाता हूं। (सः इत् उ हव्यः) वही बुलाने योग्य है (ददिः) वह दाता है (यः नाम पत्यते) वह प्रसिद्ध रीतिसे पालन करता है। (अध्वर्युभिः सोम्यं मधु प्रस्थितं) अध्वर्युओंसे यह मधुर सोमरस तैयार किया गया है। हे (द्रविणोदः) धनके दाता! (ऋतुभिः पोत्रात् सोमं पिब) ऋतुओंके साथ पोताके पात्रसे सोम पी ॥ ७ ॥ (ऋ. २।३७।१)

[सूक्त ४८]

(ऋषिः — १-१२ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥ (८१९)

(सूक्त ४८)

१-३ देखो अर्थ २।५७१-३।

(विग्रम् अस्तृतं परा इहि) ज्ञानी अपराजितके पास जा। (विपश्चितं इन्द्रं पृच्छ) ज्ञानी इन्द्रसे पूछ। (यः सखिभ्य वरं आ) जो तेरे मित्रोंमें श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।४।४)

(नः निदः उत ब्रुवन्तु) हमारे निंदक लोग भी कि (अन्यतः चित् निः आरत) यहांसे निकल जाओ (इन्द्रे इत् दुवः दधानाः) क्योंकि तुम इन्द्रमें भक्ति रखते हो ॥ ५ ॥ (ऋ. १।४।५)

हे (दस्म) दर्शनीय! (कृष्टयः) मनुष्य तथा (अरिः) शत्रु भी (उत नः सुभगान् वोचेयुः) हमें सौभाग्यवाले कहें, तथापि (इन्द्रस्य शर्मणि इत् स्याम) हम इन्द्रके ही आश्रयमें रहेंगे ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४।६)

(यज्ञश्रियं) यज्ञकी शोभा बढानेवाले (नृमादनं) वीरोंको आनंदित करनेवाले (पतयत् मन्दयत्सखं) गति करनेवाले और मित्रोंका आनंद बढानेवाले (ईं आशुं) इस वेगवान् सामर्थ्यको (आशवे भर) वेगवान् इन्द्रके लिये भर दे ॥ ७ ॥ (ऋ. १।४।७)

हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र! (अस्य पीत्वा) इस सोमका पीकर (वृत्राणां घनः अभवः) शत्रुओंको तू मारनेवाला हुआ है अब (वाजेषु वाजिनं प्रावः) संग्राममेंभी योद्धाकी रक्षा कर ॥ ८ ॥ (ऋ. १।४।८)

हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र! (तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः) उस तुझको संग्रामामें बलवान बनाते हैं। हे इन्द्र! (धनानां सातये) धनोंके दानके लिये यह हम करते हैं ॥ ९ ॥ (ऋ. १।४।९)

(यः रायः महान् अवनिः) जो धनोंका बडा रक्षक है (सुन्वतः सुपारः सखा) सोमयाजीको दुःखसे पार करनेवाला मित्र है (तस्मै इन्द्राय गायत) उस इन्द्रके लिये स्तोत्रोंका गान करो ॥ १० ॥ (ऋ. १।४।१०)

हे (स्तोमवाहसः सखायः) स्तोत्रोंके गानेवाले मित्रो! (आ तु इत) आओ (नि षीदत) बैठो (इन्द्रं अभि प्र गायत) इन्द्रका गायन करो। ॥ ११ ॥ (ऋ. १।५।१)

(पुरूणां पुरूतमं) बहुतोंमें बहुत (वार्याणां ईशानं) स्वीकार करने योग्य वस्तुओंके स्वामी (इन्द्रं) इन्द्रके स्तोत्र (सोमे सचा सुते) सोमरस तैयार होनेपर गाते रहो ॥ १२ ॥

[सूक्त ६९]

(ऋषिः — १-१२ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम् । गमद्वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥
यस्यं संस्थे न वृण्वते हरीं समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥ ३ ॥
त्वं सुतस्यं पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ५ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन्विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ९ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ १० ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ११ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥ (४४१)

(सूक्त ६९)

(सः घ नः योगे आ भुवत्) वह हमारे उद्योगमें साथ रहे (सः राये) वह धनमें तथा (स पुरन्ध्यां) वह बड़ी महत्त्वाकांक्षाओंमें हमारे साथ रहे (सः वाजेभिः नः आ गमत्) वह शक्तियोंके साथ हमारे पास आ जावे ॥ १ ॥ (ऋ. १।५।३)

(शत्रवः) शत्रु (समत्सु) युद्धोंमें (यस्य संस्थे हरी न वृण्वते) जिसके जोते घोड़ोंको नहीं रोक सकते (तस्मै इन्द्राय गायत) उस इन्द्रके गीत गाओ ॥ २ ॥ (ऋ. १।५।४)

(इमे दध्याशिरः शुचयः सोमासः सुताः) ये दही मिलाये शुद्ध छाने हुए सोमरस (सुतपाव्ने वीतये यन्ति) सोम पीनेवाले इन्द्रके भावके लिये जाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. १।५।५)

हे (सुक्रतो इन्द्र) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र! (ज्येष्ठ्याय) श्रेष्ठ होनेके लिये और (सुतस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिये (सद्य वृद्धः अजायथाः) तत्काल बड़ा हो गया है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।५।६)

हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र! (आशवः सोमासः त्वा विशन्तु) शीघ्र सोम तेरे अन्दर प्रवेश करें। (ते प्रचेतसे शं सन्तु) तुझ ज्ञानवान्के लिये वे कल्याण करनेवाले हों ॥ ५ ॥ (ऋ. १।५।७)

(स्तोमाः त्वां अवीवृधन्) स्तोत्रोंने तुझे बढाया है हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र (उक्था त्वां) उक्थोंने तेरा वर्धन किया है। (नः गिरः त्वां वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां तुझे बढावें ॥ ६ ॥ (ऋ. १।५।८)

(यस्मिन् विश्वानि पौंस्या) जिसमें सारे पौरुष हैं (इमं सहस्रिणं वाजं) यह वह सहस्रों बलोंसे बढानेवाला सोमरस (अक्षितोतिः इन्द्रः सनेत्) जिसका रक्षण कभी कम नहीं होता वह इन्द्र स्वीकार करे ॥ ७ ॥ (ऋ. १।५।९)

हे (गिर्वणः) प्रशंसायोग्य इन्द्र! (मर्ताः नः तनूनां मा अभिद्रुहन्) मानव हमारे शरीरोंका द्रोह न करें। तू (ईशानः) ईश्वर है (वधं यवय) वध हमसे दूर कर ॥ ८ ॥ (ऋ. १।५।१०)

९-११ देखो अथर्व २०।२६।४-६।
१२ देखो अथर्व २०।४०।३।

[सूक्त ७०]

(ऋषिः — १-२० मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥ १ ॥
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ५ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥ ६ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ७ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ९ ॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ १० ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ १२ ॥
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

(सूक्त ७०)

(वीळु चित् आरुजत्नुभिः वह्निभिः) सुदृढोंको भी तोडनेवाले और रथ के चलनेवाले मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्र ! (उस्रियाः गुहा अनु अविन्दः) गौओंको गुफामें रखे प्राप्त किया ॥ १ ॥ (ऋ. १।६।५)

(देवयन्तः गिरः) देवताकी भक्ति करनेवालोंकी वाणियोंने (विदद्वसुं महां श्रुतं) धन प्राप्त करनेवाले बडे यशवाले इन्द्रकी (यथा मतिं अच्छ अनूषत) यथामति स्तुति की है ॥ २ ॥ (ऋ. १।६।६)

३-४ देखो अथर्व २०।४०।१-२ (ऋ. १।६।७-८)

हे (परिज्मन्) घूमनेवाले ! (अतः आ गहि) यहांसे आ। (रोचनात् दिवः वा अधि) अथवा तेजस्वी द्युलोकसे आ (अस्मिन् गिरः समृञ्जते) यहां हमारी स्तुतियां उत्तम रीतिसे चल रही हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. १।६।९)

(इतः पार्थिवात् अधि) यहां पृथिवीसे अथवा (दिवः वा) द्युलोकसे अथवा (महः रजसः वा) बडे अन्तरिक्षसे (इन्द्रं सातिं ईमहे) इन्द्रसे धन मांगते हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. १।६।१०)

७-९ देखो अथर्व २०।३८।४-६ । (ऋ. १।७।१-३)

(हे उग्र इन्द्र) शूरवीर इन्द्र ! (उग्राभिः ऊतिभिः) वीरताके संरक्षणोंसे (सहस्रप्रधनेषु वाजेषु नः अव) सहस्रों प्रकारके धन जिसमें मिलते हैं उन युद्धोंमें हमारी रक्षा कर ॥ १० ॥ (ऋ. १।७।४)

(इन्द्रं वयं महाधने) इन्द्रको हम बडे संग्राममें (इन्द्रं अर्भे हवामहे) इन्द्रको छोटे युद्धमें भी सहायतार्थ बुलाते हैं (वृत्रेषु युजं वज्रिणं) शत्रुओंको वज्रसे मारनेवाले हमारे मित्र इन्द्रको हम बुलाते हैं ॥ ११ ॥ (ऋ. १।७।५)

हे (नः सत्रादावन् वृषन्) हमारे लिये सदा देनेवाले बलवान् वीर ! (सः) वह तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये (अमुं चरुं अपा वृधि) इस मेघको खोल दे (अप्रतिष्कुतः) तेरा प्रतिकार करनेवाला कोई नहीं है ॥ १२ ॥ (ऋ. १।७।६)

(वज्रिणः इन्द्रस्य) वज्रधारी इन्द्रके (तुञ्जे तुञ्जे ये उत्तरे स्तोमाः) प्रत्येक युद्धमें जो ऊंचे स्तोत्र हैं उनमें (अस्य सुष्टुतिं न विन्धे) इसके योग्य स्तुतिमें प्राप्त नहीं करता ॥ १३ ॥ (ऋ. १।७।७)

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ १४ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ १५ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १६ ॥
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥ १८ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥ १९ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥ २० ॥ (४११)

(वृषा वंसगः यूथा इव) जैसा बलवान् बैल गौओंके झुण्डमें होता है वैसा जो (ओजसा कृष्टीः इयर्ति) अपने बलसे सब मनुष्योंपर रहता है वह (अप्रतिष्कुतः ईशानः) प्रतिकार जिसका नहीं होता वैसा वह ईश्वर इन्द्र है ॥ १४ ॥ (ऋ. १।७।८)

(यः एकः) जो अकेला इन्द्र (पञ्च क्षितीनां) पांचों प्रकारके मानवोंका (चर्षणीनां वसूनां इरज्यति) उन मानवोंके धनोंका स्वामित्व करता है ॥ १५ ॥ (ऋ. १।७।५)

१६ देखो अथर्व. २०।३९।१। (ऋ. १।७।१०)

हे इन्द्र ! (सानसिं) लाभ देनेवाले (सजित्वानं सदासहं रयिं) विजयी शत्रुको पराभूत करनेवाले (वर्षिष्ठं) श्रेष्ठ धनको (ऊतये आ भर) हमारी सुरक्षाके लिये लाकर भर दे ॥ १७ ॥ (ऋ. १।८।१)

(येन मुष्टिहत्यया) जिससे मुष्टिप्रहारसे (वृत्रा नि रुणधामहै) शत्रुओंको रोक देते हैं (त्वा ऊतासः अर्वता नि) तुमसे सहायता लिये घोडेसे हम शत्रुको रोक देंगे ॥ १८ ॥ (ऋ. १।८।२)

हे इन्द्र ! (त्वोतासः वयं) तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम (घना वज्रं आ ददीमहि) भारक वज्र पकडते हैं और उससे (युधि स्पृधः सं जयेम) युद्धमें शत्रुओंको जीतेंगे ॥ १९ ॥ (ऋ. १।८।३)

हे इन्द्र ! (वयं अस्तृभिः शूरेभिः) हम शस्त्र फेंकनेवाले वीरोंके साथ तथा (त्वया युजा वयं) तेरे साथ हम रहकर (पृतन्यतः सासह्याम) सेनाके साथ चढाई करनेवाले शत्रुओंका पराभव करेंगे ॥ २० ॥ (ऋ. १।८।४)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ देवयन्तः गिरः विश्रुतं महां भृतं यथाविदे अनूषत— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली हमारी वाणियां धनी और बड़े प्रसिद्ध वीर इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं।

२ हे उग्र इन्द्र ! उग्राभिः ऊतिभिः सहस्रप्रधनेषु वाजेषु नः अव— हे वीर इन्द्र ! वीरताके संरक्षक साधनोंसे सहस्रों प्रकारके धन जहां मिलते हैं उन युद्धोंमें हमारी रक्षा कर । सहस्रप्रधनं वाज — युद्धमें हजारों प्रकारके धन मिलते हैं ये धन शत्रुसे लडनेसे मिलते हैं । इसलिये युद्धका नाम धन भी है और महाधन भी है।

३ वयं वृत्रेषु युजं वज्रिणं इन्द्रं महाधने अर्भे च हवामहे— हम शत्रुके ऊपर वज्र फेंकनेवाले इन्द्रको बडे और छोटे युद्धमें सहायताके लिये बुलाते हैं।

४ सत्रादावन् वृषन् ! अप्रतिष्कुतः अस्मभ्यं अमुं चरुं अपा वृधि— हे सदा दान देनेवाले बलवान् वीर ! तू प्रतिबंध रहित होकर हमारे लिये यह सोम कुम्भ खुला कर दो। जिससे हम उसका प्राप्त करके उसका उपभोग लेंगे।

५ वृषा वंसगः यूथा इव अप्रतिष्कुतः ईशानः ओजसा कृष्टीः इयर्ति— बलवान् बैल जैसा गौओंके झुण्डमें जाता है उस तरह जिसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता ऐसा ईश्वर वह इन्द्र अपनी शक्तिसे शत्रुके सैनिकोंका पराभूत करता है।

६ यः एकः पञ्च क्षितीनां चर्षणीनां वसूनां इरज्यति— जो अकेला वीर इन्द्र पांचों मानवोंके धनोंका स्वामित्व करता है । सबके धनोंपर इसी अकेलेका अधिकार है।

७ हे इन्द्र ! सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं ऊतये आ भर— हे इन्द्र ! लाभदायक विजयी शत्रुका पराभव करनेवाले शक्तिशाली धनको हमारी सुरक्षाके लिये लाकर भर दो । धन ऐसा हो कि जो विजय करनेवाला शत्रुका पराभव करनेवाला और श्रेष्ठ हो और वह हमारी रक्षा करनेवाला हो।

८ येन मुष्टिहत्यया वृत्राणि न्यरुणधामहै त्वा ऊतासः अर्वता नि— जिससे हम मुष्टियुद्धसे शत्रुको मारते

[सूक्त ७१]

(ऋषिः — १-१६ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ २ ॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

है और तुमसे सहायता किये वीरोंसे हम शत्रुको दूर करते हैं। ऐसी शक्ति हमारे पास हो।

९ हे इन्द्र! त्वोतासः वयं घना वज्र आ ददीमहि युधि स्पृधः सं जयेम— हे इन्द्र! तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम भारक वज्र पकडते हैं और उससे युद्धमें शत्रुओंको जीतते हैं।

१० हे इन्द्र! अस्तृभिः शूरेभिः वयं त्वया युजा पृतन्यतः सासह्याम— हे इन्द्र! शस्त्र फेंकनेवाले वीरोंके साथ रहकर हम तेरी सहायतासे शत्रुओंको पराभूत करेंगे।

(सूक्त ७१)

(इन्द्रः महान् परः च नु) इन्द्र महान है और श्रेष्ठ भी है। (वज्रिणे महित्वं अस्तु) वज्रधारी इन्द्रके लिये महत्त्व प्राप्त हो (द्यौः न शवः प्रथिना) द्युलोकके समान बल बढा हुआ है ॥ १ ॥ (ऋ. १।८।४)

(ये समोहे आशत) जो युद्धमें लगे रहते हैं (तोकस्य सनितौ वा ये नरः) अथवा पुत्रोंकी प्राप्तिमें जो यत्न करते हैं (धियायवः विप्रासः वा) वा बुद्धिके अर्थ ज्ञानी यत्न करते हैं (वे इन्द्रकी स्तुति करते हैं) ॥ २ ॥ (ऋ. १।८।५)

(यः सोमपातमः कुक्षिः) जो अधिक सोम पीनेवाला पेट है (समुद्र इव पिन्वते) समुद्रके समान वा पुष्ट होता है (काकुदः उर्वीः आपः न) जिह्वामेंसे बडे जलप्रवाह जैसे जाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. १।८।६)

४-६ देखो अथर्व २०।६०।४-६।

हे इन्द्र (आ इहि) आओ (अन्धसः विश्वेभिः सोमपर्वभिः) सारे सोमके भागोंसे (मत्सि) आनंदित हो। तू (ओजसा महान् अभिष्टिः) अपनी शक्तिसे बडे शत्रुको दबानेवाला है ॥ ७ ॥ (ऋ. १।९।१)

(सुते) रस निकलने पर (मन्दिने इन्द्राय) आनन्दित होनेवाले (विश्वानि चक्रये) सब कार्योंको करनेवाले इन्द्रके लिये (एनं मन्दिं चक्रिं ई आ सृजत) इस आनंददायक तथा उत्साहवर्धक रसको दे दो ॥ ८ ॥ (ऋ. १।९।२)

हे (सुशिप्र विश्वचर्षणे) उत्तम हनुवाले और सब मनुष्योंके स्वामिन् इन्द्र! (एषु सवनेषु आ सच) इन यज्ञोंमें आकर संमिलित हो। और (मन्दिभिः स्तोमेभिः मत्स्व) हर्ष देनेवाले स्तोत्रोंसे आनन्दित हो ॥ ९ ॥ (ऋ. १।९।३)

हे इन्द्र! (ते गिरः असृग्रम्) तेरे लिये स्तोत्र रचे हैं। (त्वां प्रति उदहासत) तेरे पास वे जाते हैं (अजोषाः वृषभं पतिम्) जैसी अतृप्त स्त्री बलवान् पतिके पास जाती है ॥ १० ॥ (ऋ. १।९।४)

स चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ १२ ॥
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ १३ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ १४ ॥
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥ १५ ॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद्बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १६ ॥ (२०७)

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! (चित्रं वरेण्यं राधः) विलक्षण श्रेष्ठ धन हमारे (अर्वाक् सं चोदय) पास भेज दो। (ते विभु प्रभु असत् इत्) तेरे पास वह व्यापक और सामर्थ्यवान् है ॥ ११ ॥ (ऋ. १।९।५)

हे (तुविद्युम्न इन्द्र) बडे तेजस्वी इन्द्र ! (रभस्वतः यशस्वतः अस्मान्) प्रयत्नशील और यशस्वी हमको (तत्र राये सु चोदय) वहां धन प्राप्त करनेके लिये प्रेरित कर ॥ १२ ॥ (ऋ. १।९।६)

हे इन्द्र ! (अस्मे बृहत् पृथु श्रवः) हमें बडा विस्तृत यश दे जो (गोमत् वाजवत्) गौ आदि पशुओंसे तथा बलसे पूर्ण है। (विश्वायुः अक्षितं धेहि) जो संपूर्ण आयुतक रहनेवाला और समाप्त न होनेवाला हो ॥ १३ ॥ (ऋ. १।९।७)

हे इन्द्र ! (सहस्रसातमं द्युम्नं बृहत् श्रवः) सहस्रों आनंद देनेवाला तेजस्वी बडा यश तथा (रथिनीः ताः इषः) रथोंके साथ रहनेवाले वे अन्न (अस्मे धेहि) हमें दे ॥ १४ ॥ (ऋ. १।९।८)

(वसोः वसुपतिं) धनके स्वामी (ऋग्मियं) स्तुति योग्य (ऊतये गन्तारं इन्द्रं) रक्षण करनेके लिये जानेवाले इन्द्रको (गीर्भिः गृणन्तः होम) स्तुति करते हुए हम बुलाते हैं ॥ १५ ॥ (ऋ. १।९।९)

(सुते सुते) प्रत्येक सोमयागमें (बृहते ओकसे इन्द्राय) बडे पराक्रमी इन्द्रके लिये (बृहत् शूषं) बडा स्तोत्र (अरिः आ अर्चति इत्) भक्त गाता है ॥ १६ ॥ (ऋ. १।९।१०)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ इन्द्रः महान् परः च— इन्द्र बडा श्रेष्ठ है।

२ वज्रिणे महित्वं अस्तु— वज्रधारी इन्द्रका महत्त्व प्रकट हो।

३ द्यौः न शवः प्रथिता— द्युलोकके समान उसका बल फैला है।

४ ओजसा महान् अभिष्टिः— तू अपने बलसे शत्रुको दबाता है।

५ विश्वानि चक्रये चक्रिं आ सृजत— सब पुरुषार्थ करनेवालेके लिये स्तुतिका यज्ञ चलाओ।

६ सुशिप्र विश्वचर्षणे— उत्तम हनुवाला या उत्तम साफा बांधनेवाला और मानवोंका हित करनेवाला स्वामी इन्द्र है।

७ वृषभः पतिः— बलवान् स्वामी।

८ ते विभु प्रभु चित्रं वरेण्यं राधः अस्मान् अर्वाक् सं चोदय— तेरे पास व्यापक प्रभूत विलक्षण श्रेष्ठ धन है वह हमारे पास भेजो।

९ अस्मे गोमत् वाजवत् बृहत् पृथु श्रवः विश्वायुः अक्षितं धेहि— हमें गौओंवाला बलवाला बडा श्रेष्ठ और संपूर्ण आयुतक रहनेवाला अक्षय धन अन्न या यश दे दो।

१० सहस्रसातमं द्युम्नं बृहत् श्रवः रथिनीः इषः अस्मे धेहि— सहस्रों आनंद देनेवाला बडा यशस्वी तथा रथके साथ रहनेवाला अन्न हमें दे दो।

॥ यहां षष्ठ अनुवाक समाप्त ॥

[सूक्त ७२]

(ऋषिः — १-३ परुच्छेपः । देवता — इन्द्रः ।)

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक्स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ १ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ २ ॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ३ ॥ (४८०)

[सूक्त ७३]

(ऋषिः — १-३ वसिष्ठः ४-६ वसुक्रः । देवता — इन्द्रः ।)

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥

(सूक्त ७२)

(विश्वेषु सवनेषु) सब सोम यज्ञोंमें (त्वा समानं एकं) तुझ एकको ही (पृथक् पृथक्) अलग अलग (वृषमण्यवः) बलयुक्त मनवाले (स्वः सनिष्यवः) स्वर्ग प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले लोग (तुञ्जते) प्रशंसित करते हैं। (तं त्वा) उस तुझको ही (पर्षणिं नावं इव) पार ले जानेवाली नौकाके समान मानकर (शूषस्य धुरि धीमहि) बलका केन्द्र करके तुझे ही अपने ध्यानके लिये करते हैं। (आयवः यज्ञैः चितयन्तः) मनुष्य यज्ञोंसे सेवा देते हुए (इन्द्रं न) इन्द्रकी ही जैसी स्तुति करते हैं वैसी (आयवः स्तोमेभिः इन्द्रं चितयन्तः) मनुष्य स्तोत्रोंसे इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १।१३१।२)

(अवस्यवः मिथुना) संरक्षणकी इच्छा करनेवाले पति पत्नीके जोडे जब (त्वा वि ततस्रे) तुझे स्तुतिसे प्रशंसित करते हैं। (गव्यस्य व्रजस्य साता) गौओंके बाडेको पानेके वास्ते हे इन्द्र! जब (निः सृजः सक्षन्ते) भेंट देते हैं तब (निःसृजः) तुझे भेंट देते हैं। (यत् गव्यन्ता स्वर्यन्ता द्वा जना) जब गौओंको चाहनेवाले स्वर्ग प्राप्त करनेवाले दो जनोंको (समूहसि) तू इकट्ठा करता है तब (वृषणं सचाभुवं वज्रं) बलवान्की साथ रहनेवाले वज्रको (सचाभुवं) साथ रहनेवाले वज्रको तू (आविः करिक्रत्) प्रकट करता है ॥ २ ॥ (ऋ. १।१३१।३)

(अस्याः उषसः) इस उषाका (उत उ नः जुषेत) वह हमें प्रेम करे, (हवीमभिः हविषः अर्कस्य बोधि) हमारे बुलावोंके साथ हवि और स्तोत्रको वह स्वीकार। (हवीमभिः स्वर्षाता) बुलावोंके साथ स्वर्गकी प्राप्तिके लिये वह स्तोत्रको स्वीकारे। हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र! (यत् वृषा मृधः हन्तवे चिकेतसि) जब बलवान् शत्रुओंको मारनेके लिये तू इच्छावान् है तब (मे अस्य नवीयसः वेधसः मन्म श्रुधि) मेरे इस नवीन ऋषिके स्तोत्रको तू सुन (नवीयसः) नयेको तू सुन ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१३१।६)

(सूक्त ७३)

हे शूर इन्द्र! (इमा सवना) ये यज्ञ (तुभ्य इत्) तेरे लिये ही हैं। (विश्वा ब्रह्माणि) सब स्तोत्र (तुभ्यं वर्धना कृणोमि) तुम्हारी महिमा बढानेके लिये करता हूं (त्वं विश्वधा नृभिः हव्यः असि) तू सब प्रकारसे मानवोंके द्वारा बुलाने योग्य है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।२२।७)

न चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र । न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ २ ॥
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् । विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥ ४ ॥
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ६ ॥ (४८१)

हे (दस्म उग्र इन्द्र) दर्शनीय उग्र इन्द्र ! (ते मन्यमानस्य) तेरी स्तुति होनेपर (नु चित् नु) निश्चयसे (महिमानं न अश्नुवन्ति) तेरी महिमाको कोई प्राप्त नहीं होते (न वीर्यं) तेरे पराक्रमको और (न ते राधः) न तेरे धनदानको कोई दूसरे पहुंचते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।२४।८)

(वः महे महिवृधे प्र भरध्वं) आपके बड़े बड़े महत्त्वके स्तोत्र करनेवालेके लिये आप दान दे दो (प्रचेतसे सुमतिं प्र कृणुध्वम्) विशेष बुद्धिमान् इन्द्रके लिये स्तोत्र बनाओ । (चर्षणिप्राः) प्रजाओंका पालनेवाला इन्द्र (पूर्वीः विशः प्र चर) पहिली प्रजाओंके पास उनकी रक्षाके लिये जाता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।२४।१९)

(यदा हिरण्यं वज्रं इत्) जब सोनेके वज्रको इन्द्र धारण करता है (अथा यमस्य रथं हरी वहतः) तब उस नियामकके रथको दो घोडे ले जाते हैं । (वाजस्य दीर्घश्रवसः पतिः) बलका और बडे यशका स्वामी (सनश्रुतः मघवा इन्द्रः) विख्यात स्वामी धनवान् इन्द्र (सूरिभिः आ वि तिष्ठति) ज्ञानियोंके साथ उस रथपर चढकर बैठता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।२३।१)

(वृष्टिः चित् नु) वृष्टि (यूथ्या) समूहके समान आती है तब (इन्द्रः स्वा हरिता श्मश्रूणि सचा) इन्द्र अपने हरे श्मश्रुओंपर धारासारसे साथ साथ (अभि प्रुष्णुते) वर्षाको गिराता है । (सुते सुक्षयं अव वेति) यज्ञमें उत्तम घरमें यह उत्तम सहायको बताना जानता है (मधु इत् धूनोति) उस मधुर रसका यह हिलाता है (यथा वातः वनं) जैसा वायु वनको हिलाता है ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।२३।४)

(वाचा विवाचः) विरुद्ध बोलनेवाले (मृध्रवाचः) कठोर भाषण करनेवाले (पुरू सहस्रा अशिवा) सहस्रों अशुभ बोलनेवालोंको (यः जघान) जिसने मारा है (तत् तत् इत् पौंस्यं) वह इसका पौरुष (गृणीमसि) हम प्रशंसित करते हैं (यः) जो (पिता इव) पिताके समान (तविषीं शवः वावृधे) शक्तिको तथा बलको बढाता है ॥ ६ ॥ (ऋ. १०।२३।५)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ हे दस्म उग्र इन्द्र ! ते महिमानं वीर्यं राधः न अश्नुवन्ति— हे दर्शनीय उग्र इन्द्र ! तेरे महिमा, पराक्रम तथा धनदानकी कोई बराबरी नहीं कर सकता ।

२ चर्षणिप्राः ! पूर्वीः विशः प्र चर— हे प्रजापालक ! तू पूर्व प्रजाजनोंके पास जाकर उनका निरीक्षण करता रह ।

३ यदा हिरण्यं वज्रं यमस्य रथं हरी वहतः सनश्रुतः वाजस्य दीर्घश्रवसः पतिः, मघवा इन्द्रः सूरिभिः आ वि तिष्ठति— जब सुवर्णमय वज्र धारण करता है तब उस नियामकके रथको दो घोडे खींच जाते हैं तब प्रसिद्ध बल और यशका स्वामी धनवान् इन्द्र ज्ञानियोंके साथ उस रथपर चढकर बैठता है ।

४ वाचा विवाचः मृध्रवाचः पुरू सहस्रा अशिवा यः जघान तत् इत् अस्य पौंस्यं गृणीमसि यः पिता इव तविषीं शवः वावृधे— अशुभभाषी सहस्रों मनुष्य दुष्टोंको जिसने मारा वह इसका पौरुष हम वर्णन करते हैं । यह पिताके समान शक्ति और सामर्थ्य बढाता है ।

[सूक्त ७४]

(ऋषिः — १-७ शुनःशेपः । देवता — इन्द्रः ।)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥
शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥ (८९१)

(सूक्त ७४)

हे (सत्य सोमपाः) सच्चे सोम पीनेवाले इन्द्र ! (यत् चित् हि) जो भी (अनाशस्ता इव स्मसि) हम निराश से हुए हैं, हे (तुवीमघ इन्द्र) बहुत धनवाले इन्द्र ! (गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु) गौओं और घोड़ोंमें तथा हजारों तेजस्वी धनोंमें (नः तू आ शंसय) हमें तू प्रशंसायुक्त बनाओ ॥ १ ॥ (ऋ. १।२९।१)

हे (शिप्रिन् वाजानां पते शचीवः) उत्तम हनुवाले बलोंके सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (तव दंसना) तेरे अद्भुत कर्म हैं ॥ २ ॥ (ऋ. १।२९।२)

(मिथूदृशा नि ष्वापय) परस्पर वैरभावसे देखनेवालोंको सुला। (अबुध्यमाने सस्ताम्) वे न जागते हुए सो जावें ॥ ३ ॥ (ऋ. १।२९।३)

(त्या अरातयः ससन्तु) वे शत्रु सोवें। हे शूर ! (रातयः बोधन्तु) दान देनेवाले जागें ॥ ४ ॥ (ऋ. १।२९।४)

(अमुया पापया नुवन्तं) इस पापभावसे स्तुति करनेवाले हे इन्द्र ! (गर्दभं सं मृण) गदहेको नष्ट करो ॥ ५ ॥ (ऋ. १।२९।५)

(कुण्डृणाच्या दूरं पताति) कुटिल शत्रु दूर जावे (वातः वनात् अधि) वायु जैसा वनसे दूर जाता है ॥ ६ ॥ (ऋ. १।२९।६)

(सर्वं परिक्रोशं जहि) सब आक्रोश करनेवाले दुष्ट नष्ट कर (कृकदाश्वं जम्भय) हिंसक आचरणवालेको मार डाल ॥ ७ ॥ (ऋ. १।२९।७)

हे इन्द्र ! तू हमें प्रशंसित कर, निराशाको हमसे दूर कर।

[सूक्त ७५]

(ऋषिः — १-३ परुच्छेपः । देवता — इन्द्रः ।)

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ १ ॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ २ ॥
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ३ ॥ (७९१)

[सूक्त ७६]

(ऋषिः — १-८ वसुक्रः । देवता — इन्द्रः ।)

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥

(सूक्त ७५)

१ देखो अथर्व २० ।७२।३ (ऋ. १।१३१।३)

हे इन्द्र ! (पूरवः ते अस्य वीर्यस्य विदुः) सब लोग तेरे इस वीरताके कर्मको जानते हैं। हे इन्द्र ! (शारदीः पुरः अवातिरः) जो शरदके किलोंको तूने नाश किया (सासहानः अवातिरः) विजय करते हुए शत्रुका नाश किया। हे (शवसस्पते इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (तं अयज्युं मर्त्यं शासः) उस यज्ञ न करनेवाले मनुष्यको तूने दण्ड दिया। (महीं पृथिवीं) बडी पृथिवीको और (इमाः अपः अमुष्णाः) इन जलप्रवाहोंको (अमुष्णाः) अपने आधीन कर लिया। हे (मन्दसान) आनंदमें रहने वाले इन्द्र ॥ २ ॥ (ऋ. १।१३१।४)

हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र ! (ते अस्य वीर्यस्य उशिजः आत् इत् चर्किरन्) तेरे इस वीरके कार्यकी कीर्ति का वर्णन गाते हैं। (यत् आविथ) जब तूने इनकी सुरक्षा की (सखीयतः यत् आविथ) मित्रता चाहनेवालोंकी जब तूने सुरक्षा की थी। (पृतनासु प्रवन्तवे) युद्धोंमें जीतनेके लिये (एभ्यः कारं चकर्थ) इनके हितके लिये पुरुषार्थ किया। (ते अन्यां अन्यां नद्यं सनिष्णत) उन्होंने अन्य नदीप्रवाहको प्राप्त किया (श्रवस्यन्तः सनिष्णत) यश चाहनेवालोंने प्राप्त किया ॥ ३ ॥
(ऋ. १।१३१।५)

(सूक्त ७६)

(यस्य इत्) जिसके विषयमें (नृणां नर्यः) मनुष्योंमें मुख्य नेता (नृतमः) वीरोंमें मुख्य (क्षपावान्) पृथिवीका अधिपति (पुरुदिनेषु होता इन्द्रः) बहुत दिनतक स्पर्धा करनेवाला इन्द्र याद रखता है वह (शुचिः स्तोमः) यह शुद्ध स्तोत्र है (भुरणौ) पुष्टि देनेवाले आप (वां अजीग) तुम्हारे पास गया है तुमने वह लिया है। (यः वने न न्यधायि) जिसने वनमें घर रखा होता है उसको आर जैसा धन रखा होता है ॥ १ ॥
(ऋ. १०।२९।१)

प्र ते॑ अ॒स्या उ॒षसः॒ प्राप॑रस्या नृ॒तौ स्या॑म॒ नृत॑मस्य नृ॒णाम् ।
अनु॑ त्रि॒शोकः॑ श॒तमाव॑ह॒न्नॄन्कुत्से॑न॒ रथो॒ यो अस॑त्ससा॒वान् ॥ २ ॥
कस्ते॒ मद॑ इन्द्र॒ रन्त्यो॑ भू॒द्दुरो॒ गिरो॑ अ॒भ्यु॑ग्रो वि धा॑व ।
कद्वाहो॑ अ॒र्वागुप॑ मा मनी॒षा आ त्वा॑ शक्यामुप॒मं राधो॒ अन्नैः॑ ॥ ३ ॥
कदु॑ द्यु॒म्नमि॑न्द्र॒ त्वाव॑तो॒ नॄन्कया॑ धि॒या क॑रसे॒ कन्न॒ आग॑न् ।
मि॒त्रो न स॒त्य उ॑रुगाय भृ॒त्या अन्ने॑ सम॒स्य यदस॑न्मनी॒षाः ॥ ४ ॥
प्रेर॑य॒ सूरो॒ अर्थं॒ न पा॒रं ये अ॑स्य॒ कामं॑ जनि॒धा इ॑व॒ ग्मन् ।
गिर॑श्च॒ ये ते॑ तुविजात पू॒र्वीर्नर॑ इन्द्र प्रति॒शिक्ष॒न्त्यन्नैः॑ ॥ ५ ॥
मात्रे॒ नु ते॒ सुमि॑ते इन्द्र पू॒र्वी द्यौर्म॒ज्मना॑ पृथि॒वी काव्ये॑न ।
वरा॑य ते घृ॒तव॑न्तः सु॒तासः॒ स्वाद्म॑न्भवन्तु पी॒तये॒ मधू॑नि ॥ ६ ॥
आ मध्वो॑ अस्मा असिच॒न्नम॑त्र॒मिन्द्रा॑य पू॒र्णं स हि स॒त्यरा॑धाः ।
स वा॑वृधे॒ वरि॑म॒न्ना पृ॑थि॒व्या अ॒भि क्रत्वा॒ नर्यः॒ पौंस्यै॑श्च ॥ ७ ॥

(अस्याः उषसः प्र) इस उषाके (अपरस्याः प्र) और दूसरी उषाके (नृतौ) नाचनेमें (नृणां नृतमस्य स्याम) वीरोंके वीर इन्द्रके हम हों। (यः ससवान् असत्) जो विजयी था वह (त्रिशोकः रथः) तीन आर्भाओंवाला रथ (कुत्सेन) कुत्सके साथ (शतं नॄन् अनु आवहत्) सौ वीरोंको साथ ले जावे ॥ २ ॥ (ऋ. १०।२९।२)

हे इन्द्र! (कः मदः ते रन्त्यः भूत्) कौनसा आनंद तेरे लिये रमण करने योग्य हुआ है? तू (उग्र) तपस्वी है। (दुरः गिरः अभि वि धाव) हमारे द्वारों और स्तुतियोंके पास दौड़ता आ। (मा मनीषा कद् अर्वाक् उप वाहः) कब मेरा ध्यान तुझे मेरी ओर लायेगा? (अन्नैः उपमं राधः त्वा आ शक्याम्) मैं हविष्यान्नोंके साथ तेरे उत्तम धनदानको प्राप्त कर सकूं ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।२९।३)

हे इन्द्र! (कद् उ द्युम्नं त्वावतः नॄन्) कब उत्तम धन तेरे जैसे वीरोंको मिलेगा? (कया धिया करसे) किस बुद्धिसे तू कार्य करता है? (कद् नः आगन्) कब तू हमारे पास आयेगा? (सत्यः मित्रः न) सच्चे मित्रके समान है (उरुगाय) बड़ी कीर्तिवाले इन्द्र! (यत् मनीषाः असन्) जो बुद्धियां हैं (भृत्या अन्ने समस्य) उनका भरणपोषण हेतु अन्नमें रख ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।२९।४)

(प्रेरय) अन्नको प्रेरणा दे (सूरः पारं अर्थं न) जैसा सूर्य दूर स्थित धनको पहुंचाता है। (ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्) जो इसकी इच्छाके साथ पति-पत्नीकी तरह मिले हैं। हे (तुविजात इन्द्र) अनेक प्रकारके काम करनेवाले इन्द्र! (ये ते) और जो वे (पूर्वीः नरः गिरः च अन्नैः प्रतिशिक्षन्ति) पूर्व वीर अपनी स्तुतियोंको अन्नोंके साथ भाते हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।२९।५)

हे इन्द्र! (ते मात्रे नु सुमिते) तेरे बड़े दो माप अच्छे किये हुए हैं। (द्यौः पूर्वी मज्मना) द्यौ व इनके तेरे बलसे और (काव्येन पृथिवी) तेरी प्रज्ञासे पृथिवी। (घृतवन्तः सुतासः ते वराय) घीसे मिले हुए सोमरस तेरे स्वीकारके लिये हों आज (मधूनि पीतये स्वाद्मन् भवन्तु) मधुर रस तेरे पीनेके लिये मीठे हों ॥ ६ ॥ (ऋ. १०।२९।६)

(मध्वः पूर्णं अमत्रं) मधुका पूर्ण पात्र (अस्मा इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये (आ असिचन्) भर कर रखा है। (सः हि सत्यराधाः) वही सच्चा दानी है। (स पृथिव्याः वरिमन्ना अभि वावृधे) वह पृथिवीकी श्रेष्ठतासे चारों ओरसे बढा (पौंस्यैः च क्रत्वा नर्यः) बलसे कर्मोंसे और प्रज्ञासे वह मानवोंका हितकारी है ॥ ७ ॥ (ऋ. १०।२९।७)

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८ ॥ (५०४)

[सूक्त ७७]

(ऋषिः — १-८ वामदेवः । देवता — इन्द्रः ।)

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥
स्वर्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥

(स्वोजाः इन्द्रः) शक्तिशाली इन्द्र (पृतनाः व्यानट्) शत्रुकी सेनाओंको जीतता है (पूर्वीः अस्मै सख्याय आ यतन्ते) बहुतसी प्रजाएं इसकी मित्रताके लिये यत्न करती हैं। (यं भद्रया सुमत्या चोदयासे) जिसको तू अपनी शुभमतिसे प्रेरित करता है (अस्मा पृतनासु रथं न आ तिष्ठ) इस पर युद्धोंमें रथपर बैठते हैं उस तरह बैठ ॥ ॥ (ऋ. १०।२९।८)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ नृणां नर्यः नृतमः क्षपावान्— मनुष्योंमें श्रेष्ठ मनुष्योंका हित करनेवाला पृथिवीपति इन्द्र है।

२ स सत्यवान् असत् । त्रिशोकः शतं नॄन् अनु आवहत्— वह विजयी था। तीन ज्योतियोंवाले उस इन्द्रने सैकडों वीरोंको लाया।

३ हे उरुगाय ! यत् मनीषा असत् सुग्या अस्मे आ नमस्व— हे यशस्वी वीर, जो तेरी बुद्धियां हैं उनको हमारे मार्गदर्शनके लिये अपने प्रेरित कर।

४ वीर्यैः शम्या च मयः— पुरुषार्थों और बुद्धिसे वह मानवोंका हित करनेवाला है।

५ स्वोजाः इन्द्रः पृतनाः व्यानट्— शक्तिशाली इन्द्र शत्रुके सैनिकोंका पराभव करता है।

(सूक्त ७७)

(सत्यः ऋजीषी मघवान् आ यातु) सत्य सोमपान करनेवाला इन्द्र यहां आवे। (अस्य हरयः नः उप द्रवन्तु) इसके घोडे हमारे पास दौडते आ जांय। (तस्मै इत् सुदक्षं अन्धः सुषुम) इसके लिये ही उत्तम बलवर्धक सोम रस निचोडा है। (गृणानः इह अभिपित्वं करते) स्तुति करनेवाला यह यहां पहुंचेगा ॥ १ ॥ (ऋ. ४।१६।१)

हे शूर ! (अव स्य) छोड दे [अपने घोडोंको]। (अध्वनः अन्ते न) मानो मार्गका अन्त हुआ है (अद्य अस्मिन् सवने मन्दध्यै) हमारे आज इस यज्ञमें आकर आनन्द मनानेके लिये। (उशना इव वेधाः) उशनाकी तरह ज्ञानिष्ठ (उक्थं शंसाति) स्तोत्र गाया है। यह (चिकितुषे असुर्याय मन्म) ज्ञानी बलवान् इन्द्रका यह स्तोत्र है ॥ २ ॥ (ऋ. ४।१६।२)

(वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्) बलवान् जब यज्ञमें सोमको पीता हुआ गाता है (कविः न निण्यं विदथानि साधन्) कवि जैसा एकान्तमें यज्ञोंको करता हुआ [गाता है]। (दिवः इत्था सप्त कारून् जीजनत्) द्युमें इस तरह उसने सात स्तोताओंको उत्पन्न किया (अह्ना चित् गृणन्तः वयुना चक्रुः) दिनभर स्तुति करते हुए उन्होंने दिनभर कर्म किये ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।१६।३)

(अर्कैः सुदृशीकं स्वः यत् वेदि) स्तोत्रपाठोंके साथ जब दर्शनीय तेज दीख पडा (यत् ह वस्तोः महि ज्योतिः रुरुचुः) जब दिनमें बडी ज्योतिसे प्रकाशित

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु1भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥ (५११)

त्वा (नृभ्यः विचक्षे) मानवोंके देखनेके लिये (अभिष्टी सुतमः) जिसकी नेताओंके अपने (अन्धा तमांसि बुधिता चकार) को अन्धकारको दूर किया ॥ ४ ॥ (ऋ. ४।१६।४)

(ऋजीषी इन्द्रः अमितं ववक्ष) सोमप्रिय इन्द्र अपरिमित बल बढ़ा। (महित्वा उभे रोदसी आ पप्रौ) अपने महत्वसे उसने दोनों लोकोंको भर दिया। (अतः चित् अस्य महिमा वि रेचि) इससे इसकी महिमा बढ़ गयी (यः विश्वा भुवना अभि बभूव) जिसने सारे भुवनोंको पराभूत किया ॥ ५ ॥ (ऋ. ४।१६।५)

(शक्रः विश्वानि नर्याणि विद्वान्) सामर्थ्यवान् इन्द्र सब मानवोंके हितके कार्य जानता है। (निकामैः सखिभिः अपः रिरेच) अपने निष्काम मित्रों- मरुतोंके साथ जलप्रवाहोंको उसने खोल दिया। (ये वचोभिः अश्मानं चित् बिभिदुः) जिन्होंने वचनोंसे पत्थरोंको छिन्नभिन्न किया और (उशिजः गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) उन इच्छा करनेवाले [मरुतोंने] गौओंवाले बाड़ेको खोल दिया ॥ ६ ॥ (ऋ. ४।१६।६)

(अपः वव्रिवांसं वृत्रं पराहन्) जलके बहावको रोकनेवाले वृत्रको मारा। (सचेताः पृथिवी ते वज्रं प्रावत्) चेतना युक्त प्रकाशवाली पृथिवीने तेरे वज्रकी रक्षा की। हे (धृष्णो शूर) शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र! (शवसा पतिः भवन्) सामर्थ्यसे पति होकर (समुद्रियाणि अर्णांसि प्र ऐनोः) समुद्रीय जलोंको प्रवाहित किया आगे चलाया ॥ ७ ॥ (ऋ. ४।१६।७)

हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित इन्द्र! (यत् अपः अद्रिं दर्दः) जब जलोंके पहाड़को तुमने तोड़ा तब (सरमा ते पूर्व्यं आविः भुवत्) सरमा तेरे सामने प्रकट हुई। (अंगिरोभिः गृणानः) अंगिरोंसे स्तुति किया हुआ (गोत्रा रुजन्) पहाड़ोंको तोड़ता हुआ (सः नः नेता) वह हमारा नेता इन्द्र (भूरिं वाजं आ दर्षि) बहुत बल दिलाता है ॥ ८ ॥ (ऋ. ४।१६।८)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण कहे हैं—

१ विचित्तुष असुर्याय मन्म— ज्ञानी शक्तिमानके लिये यह स्तुत्र है।

२ महित्वा उभे रोदसी आ पप्रौ— अपने महत्वसे द्यावापृथिवीको भर दिया।

३ अस्य महिमा वि रेचि— इसकी महिमा बढ़ गया।

४ यः विश्वा भुवना अभि बभूव— जिसने सब भुवनोंको पराभूत किया।

५ शक्रः विश्वानि नर्याणि विद्वान्— समर्थ इन्द्र मानवोंके हितके सब कार्य जानता है।

६ धृष्णो शूर! शवसा पतिः भवन्— शत्रुका पराभव करनेवाले शूर! बलसे तू स्वामी होता है।

७ गोत्रा रुजन्— पहाड़ोंको तोड़ा।

८ सः नः नेता भूरिं वाजं आ दर्षि— वह हमारा नेता बहुत सामर्थ्य बनाता है।

[सूक्त ७८]

(ऋषिः — १-३ शंयुः । देवता — इन्द्रः ।)

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥ २ ॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥ (५१५)

[सूक्त ७९]

(ऋषिः — १-२ वसिष्ठः शक्तिर्वा । । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्योऽ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥ (५१७)

(सूक्त ७८)

(सुते) सोमरस निकालनेपर (पुरुहूताय सः सत्वने) बहुतों द्वारा बुलाये गये आपके बलवान् वीरके लिये (सचा वः तत् गाय) साथ साथ वह सामर्थ्ययुक्त वा सुखदायी स्तोत्र गाओ (यत् शाकिने गवे न) जैसा शक्तिशाली बलके लिये गाया जाता है ॥ १ ॥ (ऋ. ६।४५।२२)

(यत् सीं गिरः उप श्रवत्) जब वह हमारी स्तुति योंको सुनता है तब वह (गोमतः वाजस्य दानं) गौओंवाले बलके दानको तथा (वसुः घ न नियमते) धनको नहीं रोकता ॥ २ ॥ (ऋ. ६।४५।२३)

(दस्युहा) शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र (कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं) कुवित्सके गौओंवाले बाडेके पास (हि प्र गमत्) जावेगा और (शचीभिः नः अप वरत्) अपनी शक्तियोंसे हमारे लिये उसे खोलेगा ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।४५।२४)

१ यत् सीं गिरः उपश्रवत् गोमतः वाजस्य दानं वसुः न नि यमते— जब वह इन्द्र हमारी स्तुतियोंको सुनता है तब गौओंवाले बलके दानको अथवा धनका देना वह बन्द नहीं करेगा ।

२ दस्युहा गोमन्तं व्रजं प्र गमत् शचीभिः नः अप वरत्— शत्रुनाशक इन्द्र गौओंके बाडेके पास जाता है और अपनी शक्तियोंसे उसको हमारे लिये खोलता है ।

(सूक्त ७९)

हे इन्द्र ! (नः क्रतुं आभर) हमारे लिये कर्तृत्वबुद्धि भर दे (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसा पिता पुत्रोंको देता है । हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (अस्मिन् यामनि नः शिक्ष) इस मार्गमें हमें शिक्षा दे (जीवा ज्योतिः अशीमहि) जीवित रहनेपर हम ज्योतिको प्राप्त करेंगे ॥ १ ॥ (ऋ. ७।३२।२६)

(अज्ञाता वृजना दुराध्यः) अज्ञात बुरा चाहनेवाले हमारे शत्रु (मा नः) हमें मत दबावें (अशिवासः मा अव क्रमुः) अशुभ शत्रु हमपर आक्रमण न करें । हे शूर ! (त्वया वयं) तेरे साथ रहकर हम (शश्वतीः प्रवतः अपः) शाश्वत बहनेवाले जलप्रवाहोंको (अति तरामसि) तैर कर परे हो जाय ॥ २ ॥ (ऋ. ७।३२।२७)

१ हे इन्द्र ! नः क्रतुं आ भर— हे इन्द्र ! हमें कर्तृत्व करनेकी बुद्धि भरपूर दे । जिससे हम पुरुषार्थ प्रयत्न कर सकें ।

२ यथा पुत्रेभ्यः पिता क्रतुं— जैसा पिता पुत्रोंको कर्तृत्वशक्तिसे युक्त करता है । पिताका यह कर्तव्य है कि वह अपने पुत्रोंको कर्तृत्वशक्तिसे युक्त करे ।

३ अस्मिन् यामनि नः शिक्ष— शत्रुपर चढाईके मार्ग गमनके विषयमें हमें योग्य और आवश्यक ज्ञान दे जिससे हम आक्रमण करके शत्रुको पराजित कर सकें ।

४ जीवा ज्योतिः अशीमहि— जीवित रहेंगे तो तेज-स्विता प्राप्त करेंगे ।

५ अज्ञाता वृजना दुराध्यः अशिवासः मा अवक्रमुः— कोई अज्ञात दुष्ट दुर्जन शत्रु हमपर आक्रमण न करें ।

६ त्वया वयं शश्वतीः प्रवतः अपः अति तरामसि— तुम्हारे साथ रहकर हम शाश्वत वेगसे बहनेवाले जल प्रवाहोंको तैर कर पार कर देंगे ।

[illegible]

[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] ॥ २ ॥

[illegible]

[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] ॥ २ ॥

[illegible]

[सूक्त ८२]

(ऋषिः — १-२ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १ ॥
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ २ ॥ (५११)

[सूक्त ८३]

(ऋषिः — १-२ शंयुः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ १ ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥ (५१४)

---

१ हे इन्द्र ! शत द्यावः शत भूमीः सहस्रं सूर्याः त्वा शतं न अनु अष्ट— हे इन्द्र ! सौ भी द्यौ या सौ भूमियां हों या सहस्र सूर्य हों तेरे प्रकट होनेपर तेरी बराबरी कोई कर नहीं सकता। ऐसा तेरा सामर्थ्य बडा विशाल है।

२ हे वृषन् शविष्ठ मघवन् वज्रिन् ! विश्वा शवसा वृष्ण्या महिना आ पप्राथ— हे बलवान् सामर्थ्य वाले धनवान् वज्रधारी इन्द्र ! तू अपनी सामर्थ्ययुक्त महिमासे सबको भरपूर भर दिया है।

३ गोमति व्रजे चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अव— गौओंवाले बाडेमें हम रहें और वहां हमारी सुरक्षा तू अपने विलक्षण सुरक्षाके साधनोंसे कर। हमें गायें मिलें और हमारा संरक्षण भी हो।

(सूक्त ८२)

हे इन्द्र ! (यत् यावतः त्वं) जितनेका तू (एतावत् अहं ईशीय) उतनेका मैं स्वामी होऊंगा तो (स्तोतारं इत् दिधिषेय) स्तुति करनेवालेको मैं आश्रय देऊं, हे (रदावसो) धनके दाता इन्द्र ! (पापत्वाय न रासीय) पाप करनेके लिये नहीं दाऊंगा ॥ १ ॥ (ऋ. ७।३२।१८)

(दिवे दिवे महयते) प्रतिदिन स्तुति करनेवालेको मैं (रायः आ शिक्षेय इत्) धन देऊंगा ही (कुह चित् विदे) कहीं भी वह हो। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (त्वत् अन्यत् आप्यं नहि) तेरे सिवाय दूसरा कोई बन्धु नहीं है (वस्यो) धनवान् (पिता चन न अस्ति) पिता भी तुमसे बढकर नहीं है ॥ २ ॥ (ऋ. ७।३२।१९)

(सूक्त ८३)

हे इन्द्र ! (त्रिधातु त्रिवरूथं) तीन धातुओंका तीन मंजिलोंवाला (स्वस्तिमत् शरणं) कल्याण करनेवाला आश्रय स्थान (छर्दिः) घर (मघवद्भ्यः च मह्यं च) धनी लोगोंके लिये और मुझे (यच्छ) दे दो। (एभ्यः दिद्युं यावय) इनसे शस्त्र दूर कर दे ॥ १ ॥ (ऋ. ६।४६।९)

(ये गव्यता मनसा) जो गौओंको चाहते हुए मनसे (शत्रुं आ दभुः) शत्रुको मारते हैं और (धृष्णुया अभि प्रघ्नन्ति) धैर्यसे प्रहार करते हैं हे (मघवन् गिर्वणः इन्द्र) धनवान् स्तुतियोंसे सुननेवाले इन्द्र ! (अध नः अन्तमः तनूपाः भव स्म) हमारे शरीरोंका तू समीप स्थित रक्षक हो ॥ २ ॥ (ऋ. ६।४६।१०)

१ त्रिधातु त्रिवरूथं स्वस्तिमत् शरणं छर्दिः मह्यं मघवद्भ्यः यच्छ— तीन धातुओंका बनवाया जिसमें तीन मंजिलें हैं तीन बडे आश्रयस्थान जिसमें हैं आरामपूर्वक रहनेका जो स्थान है वह रहनेका घर मुझे और धनियोंका दे दो।

२ गव्यता मनसा शत्रुं आ दभुः— गौएं प्राप्त करनेकी इच्छावाली बुद्धिसे वे शत्रुका वध करते हैं, धृष्णुया अभि प्रघ्नन्ति – धैर्यसे शत्रुपर वे प्रहार करते हैं उस समय नः अन्तमः तनूपाः भव – हमारे समीप रहकर रक्षण करनेवाला तू हो।

[सूक्त ८४]

(ऋषिः — १-३ मधुच्छन्दाः। देवता — इन्द्रः।)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥ (५२८)

[सूक्त ८५]

(ऋषिः — १-२ प्रगाथः ३ ४ मेध्यातिथिः। देवता — इन्द्रः।)

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥ (५३२)

(सूक्त ८४)

(चित्रभानो इन्द्र) हे आश्चर्यकारक तेजस्वी इन्द्र! (आ याहि) आ। (इमे सुता त्वायवः) ये सोमरस तेरे लिये निकाले (अण्वीभिः तना पूतासः) और अंगुलियोंसे छान कर पवित्र किये हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १।३।४)

हे इन्द्र! (धिया इषितः) बुद्धिसे प्रेरित हुआ (विप्रजूतः) ब्राह्मणोंसे उत्तेजित हुआ (सुतावतः वाघतः ब्रह्माणि) सोमरस निकालनेवाले स्तोताके स्तोत्रोंके (उप आ याहि) पास आ ॥ २ ॥ (ऋ. १।३।५)

हे (हरिवः इन्द्र) घोडोंवाले इन्द्र! (तूतुजानः) त्वरा करता हुआ (ब्रह्माणि उप आ याहि) स्तोत्रोंके पास आ। (नः सुते चनः दधिष्व) हमारे सोमरसमें आनंद मान ॥ ३ ॥ (ऋ. १।३।६)

(सूक्त ८५)

हे (सखायः) मित्रो! (अन्यत् चित् मा वि शंसत) किसी अन्यकी प्रशंसा न करो। (मा रिषण्यत) मत कष्ट पाओ। (सुते) सोमरस निकालने पर (सचा) साथ बैठकर (वृषणं इन्द्रं इत् स्तोत) बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो। (मुहुः उक्था च शंसत) बारबार उसके ही स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१।१)

(अवक्रक्षिणं) शत्रुको नीचे फेंकनेवाले (वृषभं) बलवान्, (अजुरं) वृद्ध न होनेवाले (गां न यथा) गौ जैसे उत्तम अन्न देनेवाले (चर्षणीसहं) मनुष्योंका पराभव करनेवाले (विद्वेषणं) दुष्टोंका द्वेष करनेवाले (संवननं - उभयंकरं) भक्तोंकी सहायता करनेवाले ये दोनों काम करनेवाले (मंहिष्ठं) बडे श्रेष्ठ (उभयाविनं) दोनोंको मिलानेवाले इन्द्रके स्तोत्र गाओ ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१।२)

(इमे नाना जनाः) ये नाना प्रकारके लोग (ऊतये) सुरक्षाके लिये (यत् चित् हि त्वा हवन्त) जो इस तेरी ही प्रार्थना करते हैं। हे इन्द्र! (अस्माकं इदं ब्रह्म) हमारा यह स्तोत्र (अहा ते विश्वा च वर्धनं भूतु) सदा तेरा महत्त्व बढानेवाला हो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१।३)

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (जनानां विपश्चितः विपः अर्यः) लोगोंके ज्ञानी भी श्रेष्ठ (वि

[सूक्त ८६]

(ऋषिः — १ विश्वामित्रः । देवता — इन्द्रः ।)

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १ ॥ (५११)

[सूक्त ८७]

(ऋषिः — १-७ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥
यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥ २ ॥
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥
यद्योधया महतो मन्यमानान्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥

तर्तुर्यन्ते) विजय स्तुति गाते हैं। उनके (उप क्रमस्व) पास जा। (ऊतये) उनके संरक्षणके लिए (मेदिरं पुरु रूप वाजं) पालनेवाला अनेक रूपोंमें मिलनेवाला शक्तिवर्धक अन्न (आ भर) भरपूर भर दे ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१।४)

इस सूक्तमें द्वितीय मंत्र इन्द्रके गुणोंका वर्णन करता है।

(सूक्त ८६)

(ब्रह्मणा) ज्ञानसे (ब्रह्मयुजा सखाया ते हरी) इशारेसे जुडनेवाले मित्र रूप घोडे (आशू) शीघ्र जानेवाले (सधमादे युनज्मि) आनंद देनेवाले रथमें जोडता हूं। हे इन्द्र ! (स्थिरं सुखं रथ) सुदृढ सुखकारी रथपर (अधितिष्ठन्) चढकर (प्रजानन् विद्वान्) जानता हुआ ज्ञानी तू (सोमं उप याहि) सोमके समीप आ ॥ १ ॥ (ऋ. ३।३५।४)

(सूक्त ८७)

हे (अध्वर्यवः) अध्वर्युगण ! (क्षितीनां वृषभाय) सब मनुष्योंके मुख्य इन्द्रके लिए (दुग्धं अरुणं अंशुं) दोहे हुए लाल रसका (जुहोतन) हवन करो। (गौरात् अवपानं वेदीयान्) और मृगसे अधिक अच्छी तरह अपने पीनेके स्थानको जाननेवाला इन्द्र (सुतसोमं इच्छन्) सोम रस निकालनेवालेकी इच्छा करता हुआ (विश्वाहा इत् याति) प्रतिदिन उसके पास जाता है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।९८।१)

(प्रदिवि यत् चारु अन्नं दधिषे) प्रतिदिन जिस सुन्दर अन्नकी इच्छा तू रखता है और (दिवे दिवे अस्य पीतिं इत् वक्षि) प्रतिदिन इसके पान करनेकी प्रशंसा करता है। हे इन्द्र ! (उत हृदा उत मनसा जुषाणः) हृदय और मनसे प्रीति करता हुआ और (उशान्) इच्छा करता हुआ तू (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) देवोंके सोमरसोंको पी ॥ २ ॥ (ऋ. ७।९८।२)

(जज्ञानः सोमं सहसे प पपाथ) जन्मते ही सोमको बलके लिए पीया था। (माता ते महिमानं उवाच) तेरी माता- अदितिने तेरी महिमाका वर्णन किया था। हे इन्द्र ! (उरु अन्तरिक्षं आ पप्राथ) विस्तीर्ण अन्तरिक्षको तूने भर दिया और (युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) युद्धसे देवोंके लिये श्रेष्ठपन प्राप्त कर दिया ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।९८।३)

(यत् महतो मन्यमानान् योधय) जब तूने अपनेको बडा माननेवालोंको युद्धमें प्रवृत्त किया (तान् अदेवान् बाहुभिः साक्षाम) उन घमंड माननेवालोंको हम अपने बाहुओंसे पराभूत करेंगे। (यत् वा) जिस हे इन्द्र ! (नृभिः वृतः अभियुध्याः) वीरोंसे घिरा हुआ तू युद्ध करता है (तं आजिं त्वया सौश्रवसं जयेम) उस युद्धमें हम तेरे साथ रहकर यशस्वी होकर जीतेंगे ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।९८।४)

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ (५४०)

[सूक्त ८८]

(ऋषिः — १-६ वामदेवः । देवता — बृहस्पतिः ।)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

(इन्द्रस्य प्रथमा कृतानि) इन्द्रके पहिले किये हुए कर्मोंका (प्र वोचं) मैं वर्णन करता हूं (मघवा नूतना या प्र चकार) और इन्द्रने जो नवीन कर्तव्य किये हैं। (यदा अदेवीः मायाः इत् असहिष्ट) जब असुरोंके कपटोंका पराभव किया (अथ अस्य केवलः सोमः अभवत्) तब केवल इसीका सोम हुआ ॥ ५ ॥ (ऋ. ७।९८।५)

(इदं विश्वं पशव्यं अभितः तव) तेरा यह सब पशुधन चारों ओर है। (यत् सूर्यस्य चक्षसा पश्यसि) जो तू सूर्यकी आंखसे देखता है (इन्द्र! गवां एकः गोपतिः असि) हे इन्द्र! तू गौओंका अकेला पालक है (ते प्रयतस्य वस्वः भक्षीमहि) तेरे दिये धनका हम भोग करेंगे ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।९८।६)

देखो। अथर्व २।१७।१२। (ऋ. ७।९८।७)

इस सूक्तमें इन्द्रका विशेष वर्णन यह है—

१ यत् महतो मन्यमानान् योधय ताम् दासान् बाहुभिः साक्षाम— जब बड़े मानी वीरोंसे युद्ध हुआ तब उनको बाहुओंसे हमने पराभूत किया।

२ भूमिः वृता अभियुध्या त आजिं त्वया सीभवर्षं अयेम— जब तू वीरोंके साथ युद्ध करने आता तब सब युद्धमें तेरे साथ रहकर हम सबको जीतके विजयी होंगे।

३ इन्द्रस्य प्रथमा कृतानि प्र वोचं— इन्द्रके पहिले पराक्रमोंका वर्णन मैंने किया।

४ मघवा नूतना या प्र चकार— इन्द्रने नये पराक्रम किये उनका भी वर्णन किया।

५ यदा अदेवीः मायाः असहिष्ट— असुरोंकी कपट नीतिका जब उसने पराभव किया।

६ इन्द्र! गवां एकः गोपतिः असि ते प्रयतस्य वस्वः भक्षीमहि— हे इन्द्र! तू गौओंका एक स्वामी है तेरे दिये धनका हम भोग करेंगे।

(सूक्त ८८)

(त्रिषधस्थः बृहस्पतिः) तीन स्थानोंमें रहनेवाले बृहस्पतिने (ज्मः अन्तान्) पृथिवीके अन्तोंको (रवेण सहसा वि तस्तम्भ) गर्जनावाले बलसे स्थिर किया। (तं मन्द्रजिह्वं) उस आनंदित भाषण करनेवाले बृहस्पतिको (प्रत्नासः दीध्यानाः विप्राः ऋषयः) प्राचीन ध्यान करनेवाले विशेष ज्ञानी ऋषियोंने (पुरः दधिरे) सामने स्थापन किया ॥ १ ॥ (ऋ. ४।५०।१)

हे बृहस्पते! (धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तः) गतिमान् ज्ञान विज्ञानसे आनंदित होनेवाले (ये नः अभि ततस्रे) जिन्होंने हमपर हमला किया है उनसे (पृषन्तं) सिंचन करनेवाले (सृप्रं अदब्धं ऊर्वं) गतिमान् अहिंसित और विस्तीर्ण (अस्य योनिं) ऐसे इसके उत्पत्तिस्थानकी हे बृहस्पते! (रक्षतात्) सुरक्षा कर ॥ २ ॥ (ऋ. ४।५०।२)

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ ४ ॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ (७३१)

[सूक्त ८९]

(ऋषिः — १-११ कृष्णः। देवता — इन्द्रः।)

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम्।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥

हे बृहस्पते! (या परमा) जो दूर स्थान हैं (ते ऋतस्पृशः) वे सत्यको स्पर्श करनेवाले (परावत् आ निषेदुः) उस दूर स्थानसे आकर यहां बैठे हैं। (तुभ्यं खाताः अवताः) तेरे लिये खोदे कूपोंके समान (अद्रिदुग्धाः) पत्थरोंसे कूटकर निकाली (मध्वः विरप्शम् अभितः श्चोतन्ति) मधुर रसकी नदी चारों ओर बह रही है ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।५०।३)

बृहस्पति (प्रथम) पहिले (महो ज्योतिषः परमे व्योमन्) बडी ज्योतिसे परम आकाशमें (जायमानः) उत्पन्न हुआ। (सप्त आस्यः) सात मुखोंवाला (तुविजातः) बहुतोंमें प्रकट हुआ वह (सप्तरश्मिः) सात किरणोंवालेने (रवेण तमांसि अधमत्) शब्दसे अन्धकारको दूर किया ॥ ४ ॥ (ऋ. ४।५०।४)

(स सुष्टुभा) उसने उत्तम स्तुतिसे (स ऋक्वता गणेन) उसने स्तोत्रोंके गणोंके (रवेण फलिगं वलं रुरोज) शब्दसे दुष्ट वलको तोड दिया। (बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (हव्यसूदः उस्रियाः) हव्यको प्रेरक गौओंको (वावशतीः कनिक्रदत् उदाजत्) शब्द करनेवाली गौओंको गर्जना करते हुए हांक दिया ॥ ५ ॥ (ऋ. ४।५०।५)

(एवा वृष्णे पित्रे विश्वदेवाय) इस तरह बलवान् पिता विश्वदेवका (यज्ञैः नमसा हविर्भिः विधेम) यज्ञ नमस्कार और हविसे सत्कार करें। हे बृहस्पते! (सुप्रजाः वीरवन्तः वयं स्याम) उत्तम प्रजा और पुत्रपौत्रोंसे युक्त हम हों तथा हम (रयीणां पतयः) धनोंके स्वामी बनेंगे ॥ ६ ॥ (ऋ. ४।५०।६)

(सूक्त ८९)

(अस्ता इव लायं प्रतरं सु अस्यन्) जैसा बाण फेंकनेवाला बाणको [illegible] फेंकता है और मिट्टीका बेला (भूषन् इव) सुभूषित करता है उस तरह (अस्मै स्तोमं प्र भर) इस इन्द्रके लिये स्तोत्र अर्पण करो। हे (विप्राः) ज्ञानियो! (वाचा अर्यः वाचं तरत) अपनी शुभवाणीसे शत्रुकी दुष्ट वाणीका तैर कर परे जाओ। हे (जरितः) स्तुति करनेवाले! (इन्द्रं सोमे नि रामय) इन्द्रको सोममें रममाण करो ॥ १ ॥ (ऋ. १०।४२।१)

(दोहे न गां) दोहन कालमें जैसे गौको बुलाते हैं, उस तरह (सखायं उप शिक्ष) मित्र इन्द्रको अपने पास बुलाओ। हे (जरितः) स्तोता! (जारं इन्द्रं प्र बोधय) प्यार करनेवाले इन्द्रको जगाओ। (पूर्णं कोशं न) धनसे

किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४ ॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥
यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥ ६ ॥
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥ ८ ॥

से भरे थैलेके समान (वसुना स्पूर्हं शूर) धनके बोझसे भरे हुए घर हमको (मघदेयाय आ च्यावय) धन देनेके लिये दिया हो ॥ २ ॥ (ऋ. १०।४२।२)

हे (अंग मघवन्) प्रिय धनवान् इन्द्र ! (किं त्वा भोजं आहुः) क्या तुझे उदार दाता कहते हैं ? (मा शिशीहि) मुझे तीक्ष्ण कर। (त्वा शिशयं शृणोमि) तुझे तीक्ष्ण बनानेवाला करके सुनता हूं। हे (शक्र) समर्थ इन्द्र ! (मम धीः अप्नस्वती अस्तु) मेरी बुद्धि कर्म करनेमें प्रेम रखनेवाली हो। हे इन्द्र ! (वसुविदं भगं नः आ भर) धन देनेवाला भाग्य हमारे लिये ला दे ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।४२।३)

हे इन्द्र ! (जनाः ममसत्येषु संतस्थानाः) लोग युद्धमें खडे रहे (समीके त्वां विह्वयन्ते) युद्धमें तुझे बुलाते हैं। (अत्र यः हविष्मान्) यहां जो हविष्यान्नका दान करता है (युजं कृणुते) वह इन्द्र उसको मित्र बनाता है (असुन्वता सख्यं शूरः न वष्टि) सोम रस न निकालनेवालेके साथ शूर इन्द्र मित्रता नहीं करना चाहता ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।४२।४)

(यः प्रयस्वान्) जो प्रयत्न करनेवाला (बहुलं स्पन्द्रं धनं न) बडे रमणीय धनकी तरह (तीव्रान् सोमान् आसुनोति) तीव्र सोमरस निकालता है (तस्मै अह्नः प्रातः) उसके लिये दिनके सबेरेके समय (सुतुकान् स्वष्ट्रान् शत्रून् नि युवति) उत्तम संतानवाले और उत्तम शस्त्रवाले शत्रुओंको भी यह इन्द्र दूर करता है और (वृत्रं हन्ति) घेरनेवाले शत्रुको मारता है ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।४२।५)

(यस्मिन् इन्द्रे वयं शंसं दधिम) जिस इन्द्रमें हम अपना स्तोत्र करते वा गाते हैं (यः मघवा अस्मे कामं शिश्राय) जो इन्द्र हमारे विषयमें प्रेम रखता है (अस्य शत्रुः आरात् चित् सन् भयतां) इसका शत्रु दूरसे भी डरा करता है (अस्मै द्युम्ना जन्या नि नमन्तां) इसके सामने मानवोंके वैभवके सारे तेज विनम्र होकर रहेंगे ॥ ६ ॥ (ऋ. १०।४२।६)

(शत्रुं आरात् दूरं) शत्रुको दूरसे दूर हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (यः उग्रः शम्बः तेन) जो तुम्हारा उग्र वज्र है उससे (अप बाधस्व) मार कर हटा दे। हे इन्द्र ! (अस्मे यवमत् गोमत् धेहि) हमें जौ और गौओंके साथ रहनेवाला धन दे। (जरित्रे धियं वाजरत्नां कृधि) स्तोताके लिए उसकी बुद्धि अन्न और रत्नोंसे युक्त कर ॥ ७ ॥ (ऋ. १०।४२।७)

(वृषसवासः यं अन्तः) बलवान् इन्द्रके अन्दर (तीव्राः सोमाः बहुलान्तासः) तीव्र रस बहुत प्रकारके

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ ११ ॥ (५९७)

[सूक्त ९०]

(ऋषि: — १-३ भरद्वाजः । देवता — बृहस्पतिः ।)

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

(प्र अगमन्) गये। (मघवा तामार्ये न आह नि यसत्) धनवान् इन्द्र अपने दानको नहीं रोकता (सुन्वते भूरि वामं नि यच्छति) सोमरस निकालनेवालेके लिये बहुत धन देता है ॥ ८ ॥ (ऋ. १०।४२।८)

—९ देखो अथर्व ७।५ (५२) ।६-७;

११ देखो अथर्व ७।५१ (५३) १।

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण दिखाये हैं—

१ वसुना नूनं धनं मघवेयाय आप्यायय— धन धारण कर इनको धन देनेके लिये प्रेरित कर।

२ त्वा तिग्मवं स्तुमोमि— तू तीक्ष्ण करनेवाला है, तुझे मैं स्तुता हूं।

३ धमुविदं मनं नः आ भर— धनसे परिपूर्ण ज्ञान हमें भर दे।

४ ममसत्येषु संस्थाना अमा समीके इन्द्रं विश्व यत— युद्धोंमें पड रहे लोग युद्धके समय तुझ सहायार्थ बुलाते हैं।

५ युजं कृणुते— वह मित्र करता है।

६ अनुकामं शरूपम् (सु अश्वान) शत्रून् नि गुणाति— उत्तम घर बनानेवाले और उत्तम घोडोंसे युक्त शत्रुको भी वह दूर करता है।

७ वृत्रं हन्ति— इन्द्र मारता है घेरनेवाले शत्रुको मारता है।

८ अस्य शत्रुः आरात् चित् सन् भयते— इस इन्द्रके शत्रु दूरसे भी इससे डरते हैं।

९ अस्मै वृष्ण्या ज्योत्या नि नमन्ते— इसके सामने मानवोंके सारे तेजस्वी बलशाली नम्र होते हैं।

१० हे पुरुहूत ! यः उग्रः शम्बः तेन आरात् शत्रुं दूरे अप बाधय— हे बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! जो तुम्हारा उग्र वज्र है उससे दूरसे ही शत्रुको परामूत कर।

११ अस्मे यवमत् गोमत् धेहि— हमें जौ और गौ युक्त धन दे।

१२ जरित्रे धियं वाजरत्नां कृधि— स्तोताकी बुद्धिको अन्न और रत्नोंसे युक्त कर।

१३ मघवा वामार्ये न नि यंसत्— इन्द्र दानको रोकता नहीं।

१४ सुन्वते भूरि वामं नि यच्छति— सोमयाजकको बहुत उत्तम धन देता है।

(सूक्त ९०)

(यः अद्रिभित्) जो पहाडों किलोंको तोडनेवाला (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न (ऋतावा) सत्यवाले युक्त (हविष्मान्) हविसे युक्त (आंगिरसः बृहस्पतिः) अंगिरसका पुत्र बृहस्पति (द्विबर्हज्मा) दो मार्गोंवाला (घर्मसत्) प्रकाशस्थानमें रहनेवाला (नः पिता) हमारा पिता (वृषभः) बलवान् (रोदसी आ रोरवीति) द्यौ और पृथ्वीके बीच बडा शब्द करता है ॥ १ ॥
(ऋ. ६।७३।१)

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥ २ ॥
बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान्गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥ (५६०)

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

[सूक्त ९१]

(ऋषिः — १-१२ अयास्यः । देवता — बृहस्पतिः ।)

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥

(यः बृहस्पतिः ईवते जनाय चित् लोकं उ) जो बृहस्पति उत्तम लोगोंके लिये उच्च स्थान (देवहूतौ चकार) देवोंके आवाहन करनेके यज्ञमें करता है। (वृत्राणि घ्नन्) शत्रुओंको मारता है (पुरः वि दर्दरीति) शत्रुके किलोंको तोड़ता है (शत्रून् जयन्) शत्रुओंको जीतता है और (अमित्रान् पृत्सु साहन्) संग्रामोंमें अमित्रोंको पराभूत करता है ॥ २ ॥ (ऋ. ६।७३।२)

(बृहस्पतिः वसूनि समजयत्) बृहस्पतिने धनोंको जीत लिया। (एष देवः महः गोमतः व्रजान्) इस देवने बड़े गौओंवाले बाड़ोंको जीता। (अपः सिषासन्) जलोंको प्राप्त करना चाहा और (स्वः) प्रकाशको प्राप्त करना चाहा (अप्रतीतः बृहस्पतिः) पीछे न हटनेवाले बृहस्पतिने (अर्कैः अमित्रं हन्ति) स्तोत्रोंसे-तेजोंसे-शत्रुको मारा ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।७३।३)

बृहस्पतिके ये गुण इस सूक्तमें कहे हैं—

१ अद्रिभित् ऋतावा घर्मसत् हविष्मान् वृषभः द्विबर्हज्मा प्रथमजाः— शत्रुके किलोंको तोड़ता है सत्य मार्गसे जानेवाला यज्ञमें बैठनेवाला हविसे युक्त बलवान्, दोनों मार्गोंसे जानेवाला प्रथम उत्पन्न बृहस्पति है। द्विबर्हज्मा— दो विभागोंमें या मार्गोंसे जानेवाला।

२ वृत्राणि घ्नन्— शत्रुओंको मारता है।

३ पुरः दर्दरीति— शत्रुके किलोंको तोड़ता है।

४ शत्रून् जयन्— शत्रुओंको जीतता है।

५ अमित्रान् पृत्सु साहन्— शत्रुको युद्धोंमें पराभूत करता है।

६ बृहस्पतिः वसूनि समजयत्— बृहस्पति धनोंको जीतता है।

७ एष देवः महो गोमतः व्रजान् समजयत्— इस देवने बड़े गौओंवाले बाड़ोंको जीता।

८ अप्रतीतः बृहस्पतिः अर्कैः अमित्रं हन्ति— पीछे न हटनेवाला बृहस्पति अपने तेजस्वी साधनोंसे शत्रुको मारता है। अर्क- किरण तेजस्वी शस्त्र।

॥ यहां सप्तम अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ९१)

(नः पिता) हमारे पिताने (इमां सप्तशीर्ष्णीं ऋतप्रजातां बृहतीं धियं) इस सात सिरोंवाली सत्यसे उत्पन्न हुई बड़ी स्तुतिको (अविन्दत्) प्राप्त किया। (अयास्यः इन्द्राय उक्थं शंसन्) अयास्यने इन्द्रके लिये स्तुति करनेके समय (विश्वजन्यः) सब प्राणियोंका हित करनेवाले इसने (तुरीयं स्वित् जनयत्) चतुर्थको निर्माण किया ॥ १ ॥ (ऋ. १०।६७।१)

(ऋतं शंसन्तः) सत्यको कहनेवाले (ऋजु दीध्यानाः) सरल रीतिसे सोचनेवाले (असुरस्य वीराः) बलवान्के वीर (दिवस्पुत्रासः) द्युके पुत्र (विप्रं पदं दधानाः

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४ ॥
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥
इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६ ॥
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥

अंगिरसः) विप्रत्व पद धारण करनेवाले अंगिरसोंने (यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त) यज्ञके स्थिर प्रथम स्थान किये अथवा माने ॥ २ ॥ (ऋ. १०।६७।२)

(हंसैः इव) हंसोंके समान (वावदद्भिः सखिभिः) बोलनेवाले मित्रोंके साथ [मरुतोंके साथ] (अश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्) पत्थरोंके बन्धनोंको खोलकर (बृहस्पतिः गाः अभिकनिक्रदत्) बृहस्पतिने गौओंकी ओर गर्जना की (उत प्रास्तौत्) और स्तुति की (विद्वान् उत् च अगायत्) जानते हुए उसीने उच्च स्वरसे गायन किया ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।६७।३)

(अवः द्वाभ्यां) नीचे दोनोंके साथ (परः एकया) और पर एकके साथ (गुहा तिष्ठन्तीः अनृतस्य सेतौ) गुहामें अनृतके सेतुमें रहनेवाली (तिस्रः गाः) तीन गौओंको (बृहस्पतिः तमसि ज्योतिः इच्छन्) बृहस्पतिने अन्धकारमें तेजकी इच्छा करके (आवः वि आकः) प्रकट किया ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।६७।४)

(अपाचीं पुरं विभिद्य) पश्चिमी किलेको तोडकर (शयथा) साथ रहकर (साकं त्रीणि उदधेः निः अकृन्तत्) साथ साथ तीन को समुद्रसे निकाला । (द्यौः इव स्तनयन्) द्युलोक समान गर्जना करते हुए बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (उषसं सूर्यं गां) उषा सूर्य गौ और (अर्कं विवेद) विद्युत्को प्राप्त किया ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।६७।५)

(इन्द्रः दुघानां रक्षितारं वलं) इन्द्रने गौओंके रक्षण करनेवाले वलको (करेण इव रवेण वि चकर्त) हाथसे तथा गर्जनासे काटा । (स्वेदाञ्जिभिः आशिरं इच्छमानः) स्वेदबिन्दुवाले मरुतोंके साथ दुग्धपानकी इच्छा करनेवाले इन्द्रने (गाः अमुष्णात्) गौओंको छीन लिया और (पणिं अरोदयत्) पणिको रुलाया ॥ ६ ॥ (ऋ. १०।६७।६)

(सः ईं) उसने (सत्येभिः शुचद्भिः धनसैः सखिभिः) सत्य शुचि धनके दान करनेवाले मित्रों [मरुतों] के साथ रहकर (गो-धायसं वि अदर्दः) गौओंको धारण करनेवाले [वल] का नाश किया । (ब्रह्मणस्पतिः घर्मस्वेदेभिः वराहैः वृषभिः) ब्रह्मणस्पतिने घर्मके साथ स्वेद निकलता है ऐसे बलवान् बलवर्धक [मरुतों] के द्वारा (द्रविणं व्यानट्) धनको प्राप्त किया ॥ ७ ॥ (ऋ. १०।६७।७)

(ते गाः इयानासः) वे गौओंके पास जाते हुए (सत्येन मनसा) सच्चे मनसे (धीभिः गोपतिं इषणयन्त) और बुद्धिसे गौओंके पतिकी इच्छा करते हुए (बृहस्पतिः मिथोअवद्यपेभिः स्वयुग्भिः) बृहस्पतिने निन्दाका नाश करनेवाले मित्रोंके साथ (उस्रियाः असृजत) गौओंको प्राप्त किया ॥ ८ ॥ (ऋ. १०।६७।८)

व मुर्धयन्त्वा मुनिर्मिः श्रिपामि सिंहर्मिव नार्नदव सघस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ १० ॥
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२ ॥ (५७०)

(सं[illegible] सिंह नानदतं इव) [illegible] के समान [illegible] के समान (धियाभिः मतिभिः सं वर्धयन्तः) [illegible] (वृषणं जिष्णुं बृहस्पतिं) [illegible] बृहस्पतिको (भरे भरे शूरसातौ अनु मदेम) [illegible] [illegible] ॥ (ऋ. १ ।६७।)

(यदा विश्वरूपं वाजं असनत्) जब उसने [illegible] (उत्तराणि सद्म द्यां अरुक्षत्) [illegible] (वृषणं बृहस्पतिं वर्धयन्तः) [illegible] (आसा ज्योतिः बिभ्रतः सन्तः नाना) [illegible] ॥ १० ॥ (ऋ. १ ६ ।१)

(आशिषं सत्यां कृणुत) [illegible] (वयोधै कीरिं [illegible] हि अवथ) [illegible] (विश्वाः मृधः पश्चा अप भवन्तु) [illegible] (विश्वं इन्व रोदसी) [illegible] (शृणुतं) [illegible] ॥ ११ ॥ (ऋ. १ [illegible])

(इन्द्रः मह्ना) [illegible] (महतः अर्णवस्य) [illegible] (मूर्धानं वि अभिनत्) [illegible] (अहिं अहन्) [illegible] (सप्त सिन्धून् अरिणात्) [illegible] (द्यावापृथिवी देवैः) [illegible] (नः प्रावतं) [illegible] ॥ (ऋ. १ ।[illegible])

इस सूक्तमें [illegible] इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ नः पिता इमां सप्तशीर्ष्णीं ऋतप्रजातां बृहतीं धियं अविन्दत्— हमारा पिता—बृहस्पति—[illegible] बुद्धि [illegible] । सप्तशीर्ष्णी धी— [illegible] बुद्धि [illegible] है। [illegible] चाहिये। [illegible] है। [illegible] करें।

[illegible] अयास्य आंगिरसः [illegible] ।

[illegible] अयास्यः [illegible] [illegible] विश्वजन्यः तुरीय [illegible]

[illegible]

[सूक्त ९२]

(ऋषिः — १-१९ प्रियमेधाः, १६-२१ पुरुहन्मा। देवता — इन्द्रः।)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥
उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि । मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥

बृहस्पतिने गर्जना करके गौओंको बुलाया। अर्थात् असुरोंने गौओंको चुराकर पत्थरोंके बने किलेमें रखी थी। बृहस्पतिने मरुतोंके द्वारा वे किले तोडे और गौओंको छुडाया।

५ अवः द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीः अनृतस्य सेतौ तिष्ठः गाः बृहस्पतिः ज्योतिः इच्छन् आवः वि आवः— दो और एक परे ऐसी अवस्थामें गुहामें रहने वाली असत्यकारी दुष्टके अधिकारमें तीन गौवें थीं बृहस्पतिने प्रकाशकी इच्छा की और उन गौओंको बाहर निकाला।

यहां प्रकाश किरणें गौवें प्रतीत हो रहीं हैं। प्रभातके पूर्व अन्धकार रहता है और प्रकाश किरण रूपी गौवें अन्धकारके कारण छिपी रहती हैं। उषःकाल होते ही अन्धकारका किला टूट जाता है और प्रकाशकी किरणें बाहर आती हैं। यह आलंकारिक वर्णन यहां है ऐसा प्रतीत हो रहा है।

६ बृहस्पतिः उषसं सूर्यं गां अर्कं विवेद— बृहस्पतिने उषा सूर्य गौ (किरण) और विद्युतको प्राप्त किया। इससे प्रकाश किरणें गौवें हैं ऐसा प्रतीत होता है।

७ इन्द्रः वलं वि अभिनत्, गाः अमुष्णात्, पणिं आरोदयत्— इन्द्रने वलको मारा गौओंको छुडाया पणिको रुलाया।

वल और पणि ये गौओंको चुरानेवाले हैं इन्द्रने वलको मारा गौवें प्राप्त कीं और पणिको रुलाया। गौवें इन्द्रने प्राप्त कीं इसलिये पणि रोने लगे।

८ सः सखिभिः गो आयन्तं वि अवधीत्— उस इन्द्रने अपने मित्रों-मरुतोंके द्वारा गौओंको पकडकर रखने वालेको मार दिया।

९ वृषभिः द्रविणं व्यानट्— बलवान् मरुतोंके द्वारा शत्रुसे धन प्राप्त किया। वल और पणि ये शत्रु हैं इनको पराभूत करके उनका धन इन्द्रने या बृहस्पतिने अपने अधीन किया। शत्रुका धन लूटना यह युद्धनीतिका नियम ही है।

१० वृषणं बिभ्रतु बृहस्पतिं भरे भरे सुरक्षतो अनु मदेम— बलवान् जीतनेवाले बृहस्पतिका प्रत्येक युद्धमें यहां घर वीरोंका ही धन होता है उस युद्धमें हम अनुमोदन करें।

११ वृषभं बृहस्पतिं वर्धयन्तः— बलवान् बृहस्पति की हम स्तुति करके उसकी महिमाको बढाते हैं।

१२ इन्द्रः मह्ना अर्बुदस्य मूर्धानं वि अभिनत्— इन्द्रने अपनी महा शक्तिसे अर्बुदके सिरको काटा।

१३ अहिं अहन्— अहिको मारा।

१४ सप्त सिन्धून् अरिणात्— सात नदियोंको बहाया।

शत्रुको मारा और नदियोंको बहाया। इन वर्णनोंसे ये मेघ या पहाडपर रहनेवाला वर्ण है ऐसा प्रतीत होता है।

(सूक्त ९२)

१-३ देखो अथर्व २०।२२।४-६ (ऋ. ८।६९।४-६)

(यद् ब्रध्नस्य विष्टपं) जब चमकनेवाले सूर्यके स्थानपर (इन्द्रः च) इन्द्र और मैं (उद् गन्वहि) जाते (मध्वः पीत्वा) मधुर सोमरस पीकर (सख्युः त्रि सप्त पदे सचेवहि) इस दोनों सखाके स्थानपर तीन बार सात २१ बार इकठ्ठे हुए ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।६९।७)

(अर्चत प्रार्चत) उपासना करो खूब उपासना करो। (प्रियमेधासः अर्चत) हे प्रिय मेधो उपासना करो (उत पुत्रकाः अर्चन्तु) छोटे बच्चे भी उपासना करें। (धृष्णु पुरं न अर्चत) यह अजेय किला है ऐसा मानकर उपासना करो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६९।८)

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् । पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥
आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः । अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ८ ॥
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः । अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥
यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे । तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥
अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः । भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११ ॥
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् । स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२ ॥
आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १३ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते । अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥१४॥

(गर्गरः अव स्वराति) वीणा बज रही है (गोधा परि सनिष्वणत्) तंबूरेने स्वर मिलाया है (पिङ्गा परि चनिष्कदत्) मधुर स्वरवालेने आलाप किया है (इन्द्राय ब्रह्म उद्यतम्) इन्द्रके लिये स्तोत्र गाये जा रहे हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।६९।९)

(यत् एन्यः सुदुघाः अनपस्फुरः) जब रंगीवाली उत्तम दूध देनेवाली न हिलनेवाली (अनपस्फुरः आ पतन्ति) चपल न होनेवाली गौवें आकर दूध पिलाती हैं (इन्द्राय पातवे सोमं गृभायत) इन्द्रके पीनेके लिये सोमका ग्रहण करो ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।६९।१०)

(इन्द्रः अपात्) इन्द्रने पीया है (अग्निः अपात्) अग्निने पीया है (विश्वे देवाः अमत्सत) सब देवोंको आनन्द हुआ है। (वरुणः इत् इह क्षयत्) वरुण तो यहां रहा है। (आपः तं अभ्यनूषत) जल शब्द करते हुए उसके समीप पहुंचा है (संशिश्वरीः वत्सं इव) गौवें बछडेके पास जाती हैं ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६९।११)

हे (वरुण ! सुदेवः असि) वरुण ! तू उत्तम देव है। (सप्त सिन्धवः यस्य ते काकुदं अनुक्षरन्ति) सात नदियां जिसकी तालुकी ओर बहती हैं (सूर्म्यं सुषिरां इव) वैसी वह एक छेदवाली होती है ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।६९।१२)

(यः दाशुषे उप) जो दाताके पास (सुयुक्तान् व्यतीन् अफाणयत्) उत्तम जोते हुए दौडनेवाले घोडोंको चलाता है। (तक्वः नेता) वह तेज नेता है (तत् इत् वपुः उपमा) वह एक उपमा देने योग्य वीरका शरीर है (यः अमुच्यत) जो दुष्टोंके द्वारा छोडा जाता है। दुष्ट उसको पकड नहीं सकते ॥ १० ॥ (ऋ. ८।६९।१३)

(शक्रः इन्द्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्र (विश्वाः द्विषः) सब शत्रुओंको (अति इत् अति ओहते) पार करता है। (कनीनः) छोटे होते हुए उस इन्द्रने (गिरा पच्यमानं ओदनं परो भिनत्) शब्दसे पकनेवाला ओदन-मेघ-को तोड दिया ॥ ११ ॥ (ऋ. ८।६९।१४)

(अर्भकः कुमारकः न नवं रथं अधि तिष्ठन्) बहुत छोटा बालक होनेपर भी वह नये रथपर चढा। (सः) उसने (पित्रे मात्रे) अपने पिता और माताके लिये (विभुक्रतुं महिषं मृगं) बडी शक्तिवाले मेघ जैसे पशुको (पक्षन्) पकाया [अपने मेघका स्वीकार किया] ॥ १२ ॥ (ऋ. ८।६९।१५)

हे (सुशिप्र) उत्तम हनुवाले इन्द्र ! हे (दंपते) गृहस्वामिके स्वामिन् ! (हिरण्ययं रथं आ तिष्ठ) सुवर्णमय रथपर चढ (अध) और बडा तेजस्वी (द्युक्षं सहस्रपादं अरुषं) धुलोकमें रहनेवाले सहस्रों किरणोंसे युक्त (स्वस्तिगां अनेहसं सचेवहि) कल्याणकारक मार्गसे निष्पाप [सूर्य] के मिलेंगे ॥ १३ ॥ (ऋ. ८।६९।१६)

(तं स्वराजं घ ईं इत्था उप आसते) उस स्वराट् की ऐसी उपासना करते हैं (नमस्विनः) और उसको नमस्कार

[सूक्त ९२]

(ऋषिः — १-१४ प्रियमेधः। १५-२१ पुरुहन्मा। देवता — इन्द्रः।)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥
उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि । मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥

बृहस्पतिने गर्जना करके गौओंको बुलाया। अर्थात् असुरोंने गौओंको गुप्त पत्थरोंसे बने किलेमें रखी थी। बृहस्पतिने मरुतोंके द्वारा वे किले तोडे और गौओंको छुडाया।

५ अवः द्वाभ्यां पर एकया गुहा तिष्ठन्तीः अनृतस्य सेतौ तिस्रः गाः बृहस्पतिः ज्योतिः इच्छन् आवः वि आवः— दो और एक परे ऐसी अवस्थामें गुफामें रखी गयी असत्यवादी पुरुषके अधिकारमें तीन गौवें थी बृहस्पतिने ज्योतीकी इच्छा की और उन गौओंको बाहर निकाला।

यहां प्रकाश किरणें गौवें प्रतीत हो रही हैं। प्रकाशके पूर्व अन्धकार रहता है और प्रकाश किरण कभी तीन अन्धकारके कारण छिपी रहती है। उषःकाल होते ही अन्धकारका किला टूट जाता है और प्रकाशकी किरणें बाहर आती हैं। यह आलंकारिक वर्णन यहां है ऐसा प्रतीत हो रहा है।

६ बृहस्पतिः उषसं सूर्यं गां अर्कं विवेद— बृहस्पतिने उषा, सूर्य गाय (किरण) और विद्युत्को प्राप्त किया। इससे प्रकाश किरणें गौवें है ऐसा प्रतीत होता है।

७ इन्द्रः वलं वि अभर्त् गाः अमुष्णात्, पणिं आरोदयत्— इन्द्रने वलको मारा गौओंको छुडाया पणिको रुलाया।

वल और पणि ये गौओंको चुरानेवाले हैं इन्द्रने वलको मारा गौवें प्राप्त की और पणिको रुलाया। गौवें इन्द्रने प्राप्त की इसलिये पणि रोने लगे।

८ सः सखिभिः गो धायसं वि अदर्दः— उस इन्द्रने अपने मित्रों-मरुतोंके द्वारा गौओंको पकडकर रखनेवालेको मार दिया।

९ वृषभिः प्रविदं उपामहत्— बलवान् मरुतोंके द्वारा शत्रुसे धन प्राप्त किया। वल और पणि ये शत्रु हैं इनको पराभूत करके उनका धन इन्द्रने या बृहस्पतिने अपने अधीन किया। शत्रुका धन छीनना यह युद्धनीतिका नियम ही है।

१० वृषभं विश्वं बृहस्पतिं भरे भरे शूरसातौ अनु मदेम— बलवान् जीतनेवाले बृहस्पतिका प्रत्येक युद्धमें जहां शूर पुरुषोंका ही जय होता है उस युद्धमें हम अनुमोदन करें।

११ वृषभं बृहस्पतिं वर्धयन्तः— बलवान् बृहस्पति को हम स्तुति करके उसकी महिमाको बढाते हैं।

१२ इन्द्रः मह्ना अर्बुदस्य मूर्धानं वि अभिनत्— इन्द्रने अपनी महा शक्तिसे अर्बुदके सिरको काटा।

१३ अहन् अहिम्— अहिको मारा।

१४ सप्त सिन्धून् अरिणात्— सात नदियोंको बहाया।

शत्रुको मारा और नदियोंको बहाया। इन वर्णनोंसे ये वृत्र मेघ या पहाडपर पडनेवाला बर्फ है ऐसा प्रतीत होता है।

(सूक्त ९२)

१-३ देखो अथर्व २०।२२।४-६ (ऋ. ८।६९।४-६)

(यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहं) जब चमकनेवाले सूर्यके जैसे स्थानपर (इन्द्रः च) इन्द्र और मैं (उद् गन्वहि) जावें (मध्वः पीत्वा) मधुर सोमरस पीकर (सख्युः त्रिः सप्त पदे सचेवहि) हम दोनों सखाके स्थानपर तीन बार सात– २१ बार इकठे हुए ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।६९।७)

(अर्चत प्रार्चत) उपासना करो खूब उपासना करो। (प्रियमेधासः अर्चत) हे प्रिय मेधो उपासना करो (उत पुत्रकाः अर्चन्तु) छोटे बच्चे भी उपासना करें। (धृष्णु पुरं न अर्चत) यह अजेय किला है ऐसा मानकर उपासना करो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६९।८)

गायनमें स्वरके साथ

१ गर्गरः धमस्वराति— वीणा स्वर दे रही है गाने वालेके स्वरके साथ वीणाका स्वर मिलता रहे।

४ गोधा परि सनिष्वणत्— तंबूरा चारों ओरसे स्वर देता रहे। चर्मवाद्य स्वरसे स्वर मिलावे।

५ पिंगा परि चनिष्कदत्— मधुर स्वरवाला आलाप मिलावे और स्वरमें स्वर मिलावे।

६ इन्द्राय ब्रह्म उद्यतं— इन्द्रके लिये स्तोत्र गाये जांय। इस समय वीणा तंबूरा मृदंग (चर्मवाद्य) आलाप देनेवाला इनके साथ हो। स्तोत्र ऐसे गाये जांय।

७ गौओंका दूध सोमरसके साथ मिलाया जाय और पश्चात् वह पिया जाय। इन्द्राय पातवे सोमं धुनुयाः आप उम्नि – इन्द्रके पीनेके लिये सोमरसमें गौवें जाती हैं, और दूध देती हैं। सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है।

८ इन्द्र अग्नि सब देव वरुण इन सबने सोमरस पिया है।

(मं ८)

९ वरुणः सुदत्र — वरुण उत्तम देव है। सप्त सिन्धवः अस्य काकुदं अनुक्षरन्ति – सात नदियों जिसके ताळूतक पहुंचती हैं। सात नदियोंका जल सोमरसमें मिलाया जाता है। वह रस पिया जाता है उसके साथ नदीजल भी ताळूको स्पर्श करता है।

१० सुयुकान् अश्वान् अफाययत्, तकः नेता वपुः वपसा अनुकल्पत— उत्तम शिक्षित घोडोंको चलाता हुआ इन्द्र आता है वह बलवान् नेता है उसका शरीर सुंदर है सब दुष्ट शत्रु उसके भय दते हैं कोई शत्रु उसके सामने नहीं ठहरता।

११ शाक्मा इन्द्रः विश्वाः द्विषः अति ओहत— सामर्थ्यवान् इन्द्र सब शत्रुओंको दूर करता है।

१२ कनीनः गिरा पक्वयामं ओधृनं पचा भिनत्— इन्द्र छोटा होता हुआ भी शत्रुके रथोंके बलिमाल जलका पूर्ण रीतिसे विनाश करता है। पकाया अन्न सूखता है। वा मेघको विनाश करता है। पक्वयामं ओदनं- पकनेवाला अन्न। मेघ विनाश इस होनेवाली हो।

१३ अर्भकः सन् रथं अधि तिष्ठन्— बालक होते हुए भी वह रथपर उत्तम रीतिसे चढकर बैठता है। बचपनसे ही वह वीर है।

१४ सुशिप्र— उत्तम हनुवाला उत्तम शस्त्रवाला इन्द्र।

१५ हिरण्ययं रथं आ तिष्ठ— सुवर्णके रथपर बैठ।

१६ धुक्षे सहस्रपार्द अरुष स्वस्तिगां अनेहसे सचेवहि— धुरोंमें रहनेवाले हजारों किरणोंवाले लाल कल्याण देनेवाली जिसकी गति है निष्पाप सूर्यको प्राप्त करेंगे।

१७ स्वराजं उप आसते— सब तेजस्वीका उपासना करते हैं। स्वराट्की उपासना करते हैं।

१८ अस्य सुधितं अर्ध्यं सावमे आसत्यन्ति— इसके उत्तम रीतिसे प्राप्त किये धनका दान करनेके लिये उसको प्रेरित करते हैं। धन उत्तम रीतिसे प्राप्त किया जाय और उसका विनियोग उत्तम कार्यमें हो।

१९ वृक्तबर्हिषः हितप्रयसः प्रियमेधासः प्रत्नस्य ओकस अनु पूर्वां प्रसितिं अनु आयत— आसन फैलाकर अन्नकी तैयारी करनेवाले प्रियमेधाने- जिनको यज्ञ करना प्रिय है उन्होंने पुराने घरकी पुरानी रीतिके अनुसार कर्म करना प्रारंभ किया। पूर्व पद्धतिके अनुसार यज्ञ करना शुरू किया।

२० यः चर्षणीनां राजा आभिरुः रथेभिः याता विश्वासां पृतनानां तरुता ज्येष्ठः वृत्रहा गृणे— लोगोंका राजा प्रगति करनेवाला रथमें बैठकर जानेवाला सब शत्रुओंका पराभव करनेवाला सबसे श्रेष्ठ और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र है। उसकी स्तुति की रही है।

२१ अवसे ते इन्द्रं शुंभय— अपनी सुरक्षाके लिये उस इन्द्रकी स्तुति कर।

२२ यस्य द्विधातरि द्विता— जिसके धारण करनेमें दो गुण हैं। शत्रुको दूर करना और अपना संरक्षण करना।

२३ वृधास्तः वज्रः हस्ताय प्रति धायि— सुन्दर वज्र वह हाथमें लेता है।

२४ सदावृधं विश्वगूर्त अप्सरस पृतनासु ओजस अधूर्ष तं इन्द्रं कर्मणा न किः मशत्— सदा बढनेवाले सर्वदा स्तुत्य जो कर्म करनेवाले शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य जिसमें है जिस जिसको सब दृश्य नाश कर भी अपने प्रयत्नसे पर नहीं सकता।

२५ अषाळ्हं उग्रं पृतनासु सासहिं यहीं उद् अयन्— अजेय उग्रतर युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्रकी सभी स्तुतियां हो रही है।

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् । पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१५॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१६॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ १७ ॥
नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥ १८ ॥
अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ १९ ॥
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ २० ॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २१ ॥ (५ ३)

करते हैं जिससे (अस्य सुचितं अर्यं चित् पतये) इसके शुभ अर्थको प्राप्त करनेके लिये और (दावने आवर्त यन्ति) दान देनेके लिये सबको इधर प्रेरित करते हैं ॥ १४ ॥ (ऋ. ८।६९।१७)

(वृक्त बर्हिषः) जिन्होंने आसन फैलाये हैं (हित-प्रयसः) हविको जिन्होंने स्थापन किया है अथवा हितकर प्रयत्न जिनके हैं ऐसे (प्रियमेधासः) प्रियमेधोंने (प्रत्नस्य ओकसः अनु) इसके पुराने घरके अनुकूल (पूर्वां प्रयतिं अनु आशत) पूर्व यज्ञविधिको प्राप्त किया ॥ १५ ॥ (ऋ. ८।६९।१८)

(यः चर्षणीनां राजा) जो मनुष्योंका राजा है (अध्रिगुः) जो आगे बढता है, (रथेभिः याता) रथोंसे जो जाता है (विश्वासां पृतनानां तरुता) सारी शत्रुसेनाओंको जीतनेवाला (यः वृत्रहा ज्येष्ठः गृणे) जो वृत्रको मारनेवाला श्रेष्ठ है उसकी स्तुति की जाती है ॥ १६ ॥ (ऋ. ८।७०।१)

हे पुरुहन्मन्! (अवसे तं इन्द्रं शुम्भ) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रकी स्तुति कर। (यस्य विधर्तरि द्विता) जिसकी धारक शक्तिमें दोनों प्रकारकी व्यवस्था है (दिवे महः सूर्यः न) जैसा द्युलोकमें सूर्य है उस तरह (दर्शतः वज्रः) दर्शनीय वज्र (हस्ताय प्रति धायि) जिसने हाथमें लिया है ॥ १७ ॥ (ऋ. ८।७०।२)

(यः चकार) जिसने यह किया है, उस (सदावृधं) सदा वृद्धि करनेवाले (विश्वगूर्तं) सबसे प्रशंसित (ऋभ्वसं) बडा कार्य करनेवाले (धृष्णु ओजसं) जिसकी पराक्रम करनेवाले (अ धृष्टं) निडर, (तं इन्द्रं) उस इन्द्रका (यज्ञैः कर्मणा) यज्ञोंसे अथवा कर्मसे (न किः नशत्) कोई भी नाश नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ (ऋ. ८।७०।३)

(अ-षाळ्हं उग्रं) अजेय उग्र (पृतनासु सासहिं) युद्धोंमें जीतनेवाला (यस्मिन् महीः उरुज्रयः) जिसमें बडी बडी स्तुतियाँ की जाती हैं (जायमाने) जिसके जन्मके समय (धेनवः सं अनोनवुः) धेनुओंकी वाणियोंने स्तुतियाँ की हैं (द्यावः क्षामः अनोनवुः) द्यौ और पृथिवीने जिसकी स्तुति की ॥ १९ ॥ (ऋ. ८।७०।४)

२०-२१ देखो अथर्व २०।८१।१-२ (ऋ. ८।७०।५-६)

इस सूक्तमें नीचे लिखे वर्णन विशेष मननीय हैं—

१ अर्चत प्रार्चत धृष्णु पुरं न अर्चत— उपासना करो स्तुति करो जिसकी अजेय किलेके समान उस जिसकी इन्द्रकी स्तुति करो।

२ पुत्रकाः अर्चन्तु— छोटे बालक भी अर्चना करें।

[सूक्त ९४]

(ऋषिः — १-११ कृष्णः। देवता — इन्द्रः।)

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान्।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम्।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥

---

७ हे इन्द्र ! त्वं बलात् सहसः ओजसः अधि जातः— हे इन्द्र ! तू बल सामर्थ्य और साहसके कर्म करनेके लिये उत्पन्न हुआ है।

८ वृषन् ! त्वं वृषा असि— हे बलवान् इन्द्र ! तू बलवान् है।

९ त्वं वृत्र हा असि— तू वृत्रको मारनेवाला है।

१० अन्तरिक्षं वि अतिरः। ओजसा द्यां उत् अस्तभ्नाः— तूने अन्तरिक्ष फैलाया है और द्युको ऊपर स्थिर किया है।

११ हे इन्द्र ! त्वं वज्रं ओजसा शिशान सजोषं अर्कं बाह्वोः बिभर्षि— हे इन्द्र ! तूने अपने वज्रको बलसे तीक्ष्ण किया और अपने मित्र सूर्यके समान तेजस्वी वज्रको बाहुओंमें धारण किया है।

१२ हे इन्द्र ! त्वं विश्वा जातानि ओजसा अभिभूः— हे इन्द्र ! तू सब उत्पन्न हुए प्राणियोंका पराभव अपने सामर्थ्यसे करता है।

१३ विश्वाः भुवः आभवः — तू सब स्थानोंको घेर कर रहा है।

(सूक्त ९४)

(स्वपतिः इन्द्रः) धनका स्वामी इन्द्र (मदाय आ यातु) आनन्द प्राप्त करनेके लिये यहां आवे। (यः धर्मणा तूतुजानः तुविष्मान्) जो धर्मानुसार त्वरासे कर्म करनेवाला और बलवान् है। (अपारेण महता वृष्ण्येन) अपार बड़े बलसे (विश्वा सहांसि) सब सामर्थ्योंको वह (अति प्रत्वक्षाणः) बहुत तीक्ष्ण बना देता है ॥ १ ॥ (ऋ. १०।४४।१)

हे (नृपते) मनुष्योंके स्वामी ! (ते रथः सु-स्थामा) तेरा रथ उत्तम दृढ है। (ते हरी सुयमा) तेरे घोडे उत्तम स्वाधीन रहनेवाले हैं। (गभस्तौ वज्रः मिम्यक्ष) तेरे हाथमें वज्र रहता है। हे राजन् ! (सुपथा शीभं अर्वाङ् याहि) उत्तम मार्गसे सत्वर हमारे पास इधर आ। (पपुषः ते वृष्ण्यानि वर्धाम) पीनेकी इच्छा करनेवाले तेरे बलका हम वर्धन करेंगे ॥ २ ॥ (ऋ. १०।४४।२)

(उग्रासः तविषासः इन्द्रवाहः) उग्र शक्तिवाले इन्द्रको ले जानेवाले (सधमादः) साथ रहनेसे हर्षसे भरे घोडे (एनं नृपतिं उग्रं वज्रबाहुं) इस मनुष्योंके पालक उग्र वज्रके समान बाहुवाले (प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्मं) तीक्ष्ण बलवान् सच्चे बलवाले (ईं अस्मत्रा आ वहन्तु) इस इन्द्रको हमारे पास ले आवें ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।४४।३)

(द्रोणसाचं सचेतसं) पात्रमें रहनेवाले बुद्धिवर्धक (ऊर्जः स्कम्भं पतिं) बलके आधारस्तंभ जैसे सबके पालक सोमरसके पास (धरुणे एवा आ वृषायसे) उसके आधार स्थानमें तू वेगसे जाता है (ओजः कृष्व) बल धारण कर (त्वे सं गृभाय) तुझमें बलका ग्रहण कर (यथा केनिपानां इनः वृधे असि असः) जिस तरह बुद्धिमानोंका राजा उनके संवर्धनके लिये यत्न करता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।४४।४)

[सूक्त ९३]

(ऋषिः — १-३ प्रगाथः ४-८ देवजामयः । देवता — इन्द्रः ।)

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६ ॥
त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ॥ ८ ॥ (६०१)

(सूक्त ९३)

(स्तोमाः त्वा उत् मदन्तु) हमारे स्तोत्र तुम्हें आनंदित करें। हे (अद्रि-वः) वज्रधारी इन्द्र! (राधः कृणुष्व) दान देनेका विचार कर। (ब्रह्मद्विषः अव जहि) ज्ञानका द्वेष करनेवालोंको मार डाल ॥ १ ॥ (८।६३।१)

(अराधसः पणीन् पदा नि बाधस्व) दान न देनेवाले पणियोंको पांवसे कुचल (महान् असि) तू बड़ा है। (कः चन त्वा प्रति नहि) कोई तेरे बराबर नहीं है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६३।२)

हे इन्द्र! (त्वं सुतानां ईशिषे) तू सोमरसोंका स्वामी है और (त्वं असुतानां) तू रस न निकाले सोमका भी स्वामी है, (त्वं जनानां राजा) तू प्रजाजनोंका राजा है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६३।३)

(ईङ्खयन्तीः अपस्युवः) चलनेवाली तथा प्रयत्नशील [जलधाराएं] (इन्द्रं उपासते) इन्द्रकी उपासना करती हैं। (सुवीर्यं भेजानासः) उसके उत्तम पराक्रममें भाग लेती हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. १।११।१)

हे इन्द्र! (त्वं बलात् सहसः ओजसः अधि जातः) तू बल साहस और सामर्थ्यके लिये उत्पन्न हुआ है। हे (वृषन्) बलिष्ठ इन्द्र! (त्वं वृषा इत् असि) तू निःसंदेह बलवान् है ॥ ५ ॥ (ऋ. १।१५३।१)

हे इन्द्र! (त्वं वृत्रहा असि) तू शत्रुको मारनेवाला है। (अन्तरिक्षं वि अतिरः) तूने अन्तरिक्षको फैलाया है। (ओजसा द्यां उत् अस्तभ्नाः) सामर्थ्यसे द्युलोकको स्थिर किया है ॥ ६ ॥ (ऋ. १।१५३।१)

हे इन्द्र! (त्वं) तू (ओजसा वज्रं शिशानः) बलसे वज्रको तीक्ष्ण करता है (सजोषसं अर्कं बाह्वोः बिभर्षि) और अपने प्रिय तेजस्वी वज्रको बाहुओंसे धारण करता है ॥ ७ ॥ (ऋ. १।१५३।४)

हे इन्द्र! (त्वं विश्वा जातानि ओजसा अभिभूः असि) तू सब जन्मधारि प्राणियोंका अपनी शक्तिसे पराभव करनेवाला है, (सः विश्वा भुवः आभवः) वह तू सब स्थानोंको घेर कर रहा है ॥ ८ ॥ (ऋ. १।१५३।५)

इस सूक्तके नीचे दिये वचन मनन करने योग्य हैं—

१ हे अद्रिवः! राधः कृणुष्व— हे वज्रधारी! दान देनेका विचार कर।

२ ब्रह्मद्विषः अव जहि— ज्ञानके द्वेष करनेवालोंको मार।

३ अराधसः पणीन् पदा नि बाधस्व— दान न देनेवाले कंजूस पणियोंको पांवसे कुचल डाल।

४ महान् असि। कः चन त्वा प्रति नहि— तू बड़ा है। कोई भी तेरे समान नहीं है।

५ त्वं जनानां राजा— तू लोगोंका स्वामी है।

६ ईङ्खयन्तीः अपस्युवः इन्द्रं उपासते सुवीर्यं भेजानासः— गतिमान प्रयत्नशील लोग इन्द्रकी उपासना करते हैं और इससे वे उत्तम वीर्य प्राप्त करते हैं।

[सूक्त ९५]

(ऋषिः — १ गृत्समदः २-४ सुदाः पैजवन ।। देवता — इन्द्रः ।)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
सा ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

---

१ यः स्वपतिः इन्द्रः सनया तृतुजानः तुविष्मान्— जो स्वयं पालक अपने स्वभावसे त्वरासे कार्य करनेवाला और बलवान् है।

२ अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा सहांसि अति प्रवक्षाव— अपार बड़े सामर्थ्यसे सब बलोंको अधिक प्रबल करता है।

३ हे नृपते ! ते रथः सुस्पामा ते हरी सुयमा— हे मानवोंके पालक ! तेरा रथ सुदृढ और तेरे घोडे इधारे मनाव हुए चलनेवाले हैं।

४ गभस्तौ वज्रः मिम्यक्ष— तेरे हाथमें वज्र है।

५ उमासः नविपास सधमादः इन्द्रवाहः वृषभ वज्रबाहुं नृपतिं मत्सुम्भस वृषभ सत्यशुष्मं अस्माका बहन्तु— सब बलवान् साथ आनंदमें रहनेवाल इन्द्रके वाहक वे तरुण और वज्रधारी मनुष्य पालक तीक्ष्ण बलवान् सच्चे साहस बाले इन्द्रको हमारे पास ले आवें।

६ अभूर्धि असि आ गमत्— धन हमारे पास आ जावे।

७ त्वं ईशिषे— तू स्वामी है।

८ आशीर्भ सु शासिष— आशीर्वाद उत्तम आशीर्वाद दो।

९ अवस्यामि पुरूरा अकृण्वत— वह चलनेवाले पुरुषार्थ कर्मोंमें किये थे।

१० ये यजिर्या नायं आरहु न घोकुः तौ कल्पयः ऊर्मा स्पर्धिवास्ते— जो बड़को बोधपर चढ नहीं सकते- को स्व नहीं चर सकते- वे पानी आगमें ही रहते हैं।

११ ये दायमे सरित ते पुरुरपि भोजना वयुनामि सास्ति— वा दान देते हैं उनको बहुत उपभोग मिलनेके धर्म प्राप्त होते हैं। दान देनवाले उपभोग प्राप्त करते हैं।

१२ भजान् रेजमान् गिरीन् अधारयत्— जिसने हिलनेवाले पर्वत और मैदान स्थिर किये। पहले भूचाल होते थे। पीछेस भूमि शान्त हुई और पर्वत भी स्थिर हुए।

१३ द्यौ कम्पत् । अन्तरिक्षाणि कोपयत् । समा चीने चिदस्ये विस्कभायति— द्युलोक गर्जना करता था अन्तरिक्ष क्षुभित हुए थे। जिसे धारा पृथिवीका स्तम्भ किया गया। पहिले यह सब आदेश थे पश्चात् स्थिर हुए।

१४ शफारुजः आरुजासि— दुःख देनेवालोंको दूर दुःख देता है।

(सूक्त ९५)

(तुविशुष्मा महिषः) बडे सामर्थ्यवाले महावली इन्द्र ने (यवाशिरं सोमं) जौके आटेसे मिलाया सोम (त्रिकद्रुकेषु अपिबत् तृपत्) तीन पात्रोंमसे पिया और वह तृप्त हुआ (विष्णुना यथा अवशत्) जो विष्णुने अपनी इच्छानुसार (सुतं) निचोड़ा था। (महि कर्म कर्तवे) बडा काम करनेके लिये (सः ईं ममाद) वह इन्द्र आनंदित हुआ। (महां उरुं एनं सत्यं देवं इन्द्रं) बडे महिमावाले इस सत्य इन्द्र देवको (सत्यः इन्दुः देवः सश्चत्) सच्चा सोम देव प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ (ऋ. २।२२।१)

(अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये (पुरोरथं शूषं प्र सु अर्चत उ) उसके रथको आगे बढानेवाला सामर्थ्य स्तोत्र गाओ। (अभीके सङ्गे लोककृत् चित् उ) समीपके युद्धमें स्थान बनानेवाला (समत्सु वृत्रहा) युद्धोंमें शत्रुका मारनेवाला (अस्माकं चोदिता बोधि) इन्द्र हमारा प्रेरक हो। (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याका नभन्तां) अन्य शत्रुओंकी धनुष्यपरकी डोरियां टूट जांय ॥ २ ॥ (ऋ. १०।१३३।१)

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥
पृथक्प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥
गिरींरज्रान्रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥ (९१९)

(वसूनि अस्मे आ गमन् हि) धन हमारे पास आ जाय। (स्वाशिषं सु शंसिषं) यह आशीर्वाद मैं उत्तम रीतिसे मांगता हूं। (सोमिनः भरं आ याहि) सोमयाग करनेवालेके यज्ञमें आओ। (त्वं ईशिषे) तू स्वामी है। (सः अस्मिन् बर्हिषि आ सत्सि) वह तू इस आसनपर बैठ। (धर्मणा तव पात्राणि अनाधृष्या) नियमसे तेरे पात्र दूसरा कोई ले नहीं सकता ॥ ५ ॥ (ऋ. १।१४४५)

(प्रथमा देवहूतयः पृथक् प्रायन्) हमारी पहिली प्रार्थनाएं देवोंके पास पृथक् पृथक् गयी हैं। (श्रवस्यानि दुष्टरा अकृण्वत) उन्होंने यश प्राप्त करनेके लिये दुस्तर कठिन कर्म किये थे। (ये यज्ञियां नावं आरुहं न शेकुः) जो यज्ञकी नौका पर चढनेमें समर्थ नहीं हुए (ते केपयः ईर्मा एव न्यविशन्त) वे पापी ऋणमें ही पडे हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. १।१४४६)

(एव एव अपरे दूढ्यः अपाक् सन्तु) इसी प्रकार दूसरे दुर्बुद्धिवाले नीचे ही रहेंगे (येषां दुर्युजः अश्वाः आयुयुज्रे) जिनके कठिनतासे जोडे जानेवाले घोडे जोते जाते हैं। (इत्था ये प्राक् उपरे दावने सन्ति) इस प्रकार जो दूसरे दान देनेके लिये आगे होते हैं (यत्र पुरूणि भोजना वयुनानि सन्ति) वहां बहुत भोग प्राप्त करनेके कर्म होते हैं ॥ ७ ॥ (ऋ. १।१४४७)

(अज्रान् रेजमानान् गिरीन् अधारयत्) जिसने कांपते मेघों और पर्वतोंको स्थिर किया (द्यौः क्रन्दत्) द्युलोकको गर्जनेवाला बनाया और (अन्तरिक्षाणि कोपयत्) अन्तरिक्षोंको प्रकुपित किया। (समीचीने धिषणे वि स्कभायति) मिले हुए द्यौ और पृथिवीको पृथक् स्थिर किया। (वृष्णः पीत्वा मदे उक्थानि शंसति) बलवर्धक सोम पीकर वह आनंदमें स्तोत्र कहता है ॥ ८ ॥ (ऋ. १।१४४८)

(इमं ते सुकृतं अङ्कुशं) इस तेरे अच्छे बनाये अंकुश स्तोत्रको (बिभर्मि) मैं धारण करता हूं। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (येन शफारुजः आरुजासि) जिससे दुःख देनेवाले दुष्टोंको तू दुःख देता है। (अस्मिन् सवने ते ओक्यं अस्तु) इस स्तोत्रमें तेरा निवास हो हे (मघवन्) इन्द्र! (सुते इष्टौ) सोमयज्ञमें और इष्टिमें (आभगः बोधि) सेवनीय भाग जो है उसे समझ ले ॥ ९ ॥ (ऋ. १।१४४९)

१०–११ देखो अथर्ववेद २०।१७।१०–११

इस सूक्तमें नीचे लिखे इन्द्रके वर्णन मननीय हैं—

[सूक्त ९५]

(ऋषिः — १ गृत्समदः २-४ सुदाः पैजवन ।। देवता — इन्द्रः ।।)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

---

¹ यः सत्पतिः इन्द्रः चमसः वृत्तुजानः तुवि प्यात्— जो सर्व पालक अपने सामर्थ्यसे त्वराके कार्य करने वाला और बलवान है।

² अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा सहांसि मति प्रत्यक्षमः— अपार बडे सामर्थ्यसे सब बलोंको अधिक ग्रस्त करता है।

³ हे वृपते ! ते रथः सुरपाशा ते हरी वृषणा— हे मानवोंके पालक ! तेरा रथ सुदृढ और तेरे घोडे हमारे यनके सुख बलवाले हैं।

⁴ वमस्तौ वज्रः मिन्यह— तेरे हाथमें वज्र है।

⁵ उभासः नविपास सधमाद्‌ इन्द्रवाहः उभ नववाहं नृपतिं मत्वासहं वृषभ सत्यशुष्म अस्मभ्य मा गमन्तु— उम बलवान् साथ आनंदमें रहनेवाले इन्द्रके घोडे उम्बीर बलवान् मनुष्य पालक तीक्ष्ण बलवान् सच्चे साहस वाले इन्द्रको हमारे पास ले आवें।

⁶ वसूनि अस्मे आ गमन्— धन हमारे पास आ जावे।

⁷ त्वं ईशिषे— तू स्वामी है।

⁸ आशिषं तु शासिष— आशीर्वाद उत्तम आशीर्वाद हीं।

⁹ अपामासि वृत्रता अकृपवत— बध करनेवाले वृत्रार पर्व उत्पन्न किये थे।

¹⁰ ये पाशिनो नार्व आरुह न चोक्रुः ते कपपः ईर्मा न्यविशन्त— जो यज्ञकी नौकापर चढ नहीं सकते- कि यज्ञ नहीं कर सकते- वे पापी ऋणमें ही रहते हैं।

¹¹ ये दावने सञ्चि ते पुरूणि भोजना वसुमान्ति सश्चि— जो दान देते हैं उनको बहुत उपभोग मिलनेके पर्व प्राप्त होते हैं। दान देनवाले उपभोग प्राप्त करते हैं।

¹² अच्युतान् रजमान् गिरीन् अधारयत्— जिसने हिलनेवाले पर्वत और मैदान स्थिर किये। पहिले भूचाल होते थे। पीछेसे भूमि शान्त हुई और पर्वत भी स्थिर हुए।

¹³ द्यौ कन्दत्। अन्तरिक्षाणि कोपयत्। क्षमी चीने विपथे विरकमायति— पृथ्वी गर्जना करता था अन्तरिक्ष कुपित हुए थे। मित्र धारा पृथिवीको स्तब्ध किया गया। पहिले यह सब अस्थिर थे पश्चात् स्थिर हुए।

¹⁴ दुष्कारकः आदशासि— दुःख देनेवालोंको तू दुःख देता है।

(सूक्त ९)

(तुविशुष्मः महिषः) बडे सामर्थ्यवाले महाबली इन्द्र ने (यवाशिरं सोमं) जौके आटसे मिश्रित सोम (त्रिकद्रुकेषु अपिबत् तृपत्) तीन पात्रोंमेंसे पिया और वह तृप्त हुआ (विष्णुना यथा अवशत्) जो विष्णुने अपनी इच्छानुसार (सुतं) निचोडा था। (महि कर्म कर्तवे) बडा काम करनेके लिये (सः ईं ममाद) वह इन्द्र आनंदित हुआ। (महां उरुं एनं सत्य देव इन्द्रं) बडे महिमा- वाले इस सच्चे इन्द्र देवता (सत्यः इन्दुः देवः सश्चत्) सच्चा सोम देव प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ (ऋ. २।२२।१)

(अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये (पुरोरथं शूषं प्र सु अर्चत च) उसके रथको आगे बढानेवाला बलवर्धक स्तोत्र गाओ। (अभीके संगे लोककृत् चित् च) समीपके युद्धमें स्थान बनानेवाला (समत्सु वृत्रहा) युद्धोंमें शत्रुको मारनेवाला (अस्माकं चोदिता बोधि) इन्द्र हमारा प्रेरक हो। (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याका नभन्तां) अन्य शत्रुओंकी धनुष्यपरकी डोरियां टूट जांय ॥ २ ॥
(ऋ. १०।१३३।१)

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥ (४११)

[सूक्त ९६]

(ऋषिः — १-५ पूरणः; ६-१० यक्ष्मनाशनः; ११-१६ रक्षोहा; १७-२३ विवृहा; २४ प्रचेताः। देवता - १-५ इन्द्रः; ६-१० यक्ष्मनाशनम्; ११-१६ गर्भसंस्रावः; १७-२३ यक्ष्मनाशनम्; [redacted] दुःस्वप्ननाशनम्।)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥

(त्वं सिन्धून् अवासृजः) तूने नदियोंको बहाया। (अहिं अधराचः अहन्) अहिको मार कर नीचे गिराया। (इन्द्र! अशत्रुः जज्ञिषे) हे इन्द्र! तू शत्रुरहित उत्पन्न हुआ है। तू (विश्वं वार्यं पुष्यसि) सब स्वीकार करने योग्य धनको परिपुष्ट करता है। (तं त्वा परि ष्वजामहे) उस तुझको हम आलिंगन देते हैं। शत्रुओंकी धनुष्योंकी डोरियां टूट जांय ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।१३३।२)

(नः विश्वाः अरातयः) हमारे सब शत्रुओं (अर्यः धियः वि षु नशन्त) और शत्रुकी बुद्धियोंका नाश कर। (शत्रवे वधं अस्ता असि) शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला तू है, हे इन्द्र! (यः नः जिघांसति) जो [redacted] मारना चाहता है (या ते रातिः वसु ददिः) जो तेरा दान है वह धन देता है। शत्रुओंके धनुष्योंकी डोरियां टूट जांय ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१३३।३)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये वर्णन मननीय हैं—

१ महि कर्म कर्तवे स हि ममाद— बडे कर्म करनेके लिये वह आनंदित होता है।

२ अस्मै इन्द्राय पुरोरथं बृहत् प्र अर्चत— इस इन्द्रके लिये रथ आगे बढे ऐसा स्तोत्र गाओ।

३ समीके संगे लोककृत्— समीपके युद्धमें वह हमारे लिये स्थान बना देता है।

४ समत्सु वृत्रहा— युद्धोंमें शत्रुको वह मारता है।

५ अस्माकं बोधिता— हमारा वह प्रेरक है, हमें कर्मकी प्रेरणा वह देता है।

६ अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां— शत्रुओंके धनुष्योंपरकी डोरियां टूट जांय।

७ अहिं अधराचः अहन्— शत्रुको नीचे गिराकर मारा।

८ इन्द्रः अशत्रुः जज्ञिषे— इन्द्र शत्रुरहित हुआ है।

९ विश्वं वार्यं पुष्यसि— सब स्वीकारने योग्य धनको बढाता है।

१० नः विश्वाः अरातयः अर्यः धियः वि षु नशन्त— हमारे सब शत्रु तथा शत्रुता करनेवाली सब बुद्धियां विनष्ट हो जांय।

११ शत्रवे वधं अस्ता असि— शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाले हो।

१२ यः नः जिघांसति— जो हमें मारता है उसका नाश कर।

१३ ते रातिः वसु ददिः— तेरा दान धन देता है।

(सूक्त ९६)

(तीव्रस्य अभिवयसः अस्य पाहि) इस तीव्र रसको पी। (सर्वरथा हरी इह वि मुञ्च) सारे रथोंके घोडे यहां छोड। हे इन्द्र! (अन्ये यजमानासः त्वा मा नि रीरमन्) दूसरे यजमान तुझे न रमाएं और (इमे सुतासः तुभ्यं) ये रस तेरे लिये हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १०।१६०।१)

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ २ ॥
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३ ॥
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४ ॥
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १० ॥

(तुभ्यं सुताः) तेरे लिये ये सोमरस तैयार किये हैं (तुभ्यं उ सोत्वासः) तेरे लिये ही आगे रस निकालने हैं। (श्वात्र्याः गिरः त्वां आ ह्वयन्ति) शीघ्रता करनेवाली हमारी स्तुतियां तुझे बुलाती हैं। हे इन्द्र! (इदं अद्य सवनं जुषाणः) इस सवनको स्वीकार करता हुआ (विश्वस्य विद्वान्) सबका ज्ञानी तू (इह सोमं पाहि) यहां सोम पी ॥ २ ॥ (ऋ. १० ।१६० ।२)

(यः देवकामः) जो देवभक्त (उशता मनसा सर्वहृदा) अभिलाषायुक्त मनसे और सब हृदयके भावसे (अस्मै सोमं सुनोति) इस इन्द्रके लिये सोमरस निकालता है, (इन्द्रः तस्य गाः न परा ददाति) इन्द्र उसकी गौओंको दूर नहीं करता और (अस्मै प्रशस्तं चारुं इत् कृणोति) इसके लिये सब कुछ उत्तम प्रशंसनीय और सुन्दर बनाता है ॥ ३ ॥ (ऋ. १० ।१६० ।३)

(एषः अस्य अनुस्पष्टः भवति) वह इस इन्द्रके लिये अनुकूल हो जाता है (यः अस्मै रेवान् न सोमं सुनोति) जो इसके लिये धनवानके समान सोमरस निकालता है। (मघवा अरत्नौ तं निः दधाति) इन्द्र अपने हाथोंमें उसको धारण करता है। वह (अनानुदिष्टः ब्रह्मद्विषः हन्ति) आज्ञाके बिना ही ब्रह्मद्वेषियोंको मारता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १० ।१६० ।४)

(अश्वायन्तः गव्यन्तः) घोडोंको और गौओंको चाहनेवाले और (वाजयन्तः) बल चाहनेवाले हम (त्वा उपगन्तवै उ हवामहे) तेरे पास आनेके लिये तुझे बुलाते हैं। (ते नवायां सुमतौ आभूषन्तः) तेरी नयी उत्तम मतिमें सुभूषित होते हुए, हे इन्द्र! (त्वा शुनं हुवेम) तुझ सुखसे बुलाते हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. १० ।१६० ।५)

६-९ देखो अथर्व ३।११।१-४ (ऋ. १० ।१६१।१-४)
१० देखो अथर्व ३।११।५ (ऋ. १० ।१६१।५)

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः । अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये । अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् । जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये । योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥

(रक्षोहा अग्निः) राक्षसोंको मारनेवाला अग्नि (ब्रह्मणा संविदानः) हमारे स्तोत्रके मिलकर (यः अमीवा दुर्णामा ते गर्भं योनिं आशये) जो दुर्णाम रोग तेरे गर्भ और स्थानमें है (इतः बाधताम्) यहांसे उसको विनाश करे ॥ ११ ॥ (ऋ. १०।१६२।१)

(यः दुर्णामा अमीवा) जो दुष्ट नामवाला रोग (गर्भं योनिं आशये) गर्भमें तथा योनिमें रहता है (अग्निः ब्रह्मणा सह) अग्नि स्तोत्रके साथ मिलकर (क्रव्यादं निः अमीनशत्) उस मांसभक्षक रोगको दूर करे ॥ १२ ॥ (ऋ. १०।१६२।२)

(यः ते पतयन्तं हन्ति) जो तेरे जीव करते हुए गर्भको मारता है (यः निषत्स्नुं सरीसृपम्) जो स्थिर रहेको जो हिलते हुएको (जातं यः ते जिघांसति) जो तेरे उत्पन्न हुएको मारता है (तं इतः नाशयामसि) उसको यहांसे नाश करते हैं ॥ १३ ॥ (ऋ. १०।१६२।३)

(यः ते ऊरू विहरति) जो तेरे ऊरुओंको अलग अलग करता है (दम्पती अन्तरा शये) दम्पतीके मध्यमें सोता है (योनिं यः अन्तरा आरेळिह) योनिको अन्दरसे जो खाता है । (तं इतो नाशयामसि) उसको यहांसे नाश करते हैं ॥ १४ ॥ (ऋ. १०।१६२।४)

(यः त्वा भ्राता पतिः भूत्वा) जो तुम भाई या पति होकर (जारः भूत्वा निपद्यते) या जार बनकर प्राप्त होता है (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी प्रजाको मारना चाहता है (तं इतो नाशयामसि) उसको यहांसे विनाश करते हैं ॥ १५ ॥ (ऋ. १०।१६२।५)

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥ २३ ॥
अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर । परो निरृत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥ (९४०)

॥ इति अष्टमोऽनुवाकः ॥८॥

[सूक्त ९७]

(ऋषिः — १-३ कलिः । देवता — इन्द्रः ।)

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥
कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ३ ॥ (९४१)

[सूक्त ९८]

(ऋषिः — १-२ शंयुः । देवता — इन्द्रः ।)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

(यः त्वा तमसा स्वप्नेन मोहयित्वा) जो तुझे स्वप्न या अन्धेरेसे मोहित करके (निपद्यते) प्राप्त होता है (यः ते गर्भं जिघांसति) जो तेरी प्रजाको मारना चाहता है (तं इतः नाशयामसि) उसको यहांसे विनष्ट करते हैं ॥ १९ ॥
(ऋ. १० ।१६२।६)

१७-२२ देखो अथर्व २।३३।१-७ (ऋ. १० ।१६३।१-६)

हे (मनसः पते अपेहि) हे मनके स्वामी पाप दूर जा (अपक्राम परः चर) वापस जा दूर चला जा (परः निर्ऋत्या आचक्ष्व) दूर जाकर निर्ऋतिसे कह कि (जीवतः मनः बहुधा) जीते पुरुषका मन बहुत प्रकारका है ॥ २४ ॥
(ऋ. १० ।१६४।१)

॥ यहां अष्टम अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ९७)

(वयं एनं वज्रिणं) हमने इस वज्रधारी इन्द्रको (इदा ह्यः) आज और कल (इह अपीपेम) पिलाया था (तस्मै उ अद्य) उसके लिये आज (समना सुतं भर) समान रस निचोड कर लाता हूं। (नूनं श्रुते भूषत) निःसन्देह यशस्वीको भूषित करो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६६।७)

(उरा-माथिः वृकः चित्) भेडोंको मारनेवाले भेडिये के समान (अस्य वारणः) इसका निवारक भी (वयुनेषु आ भूषति) अपने मार्गोंमें अपने आपको सजाता है। हे इन्द्र! (सः नः इमं स्तोमं जुषाणः) वह तू हमारे इस स्तोत्रका सेवन करनेकी इच्छासे (प्र आ गहि) आ ॥ २ ॥
(ऋ. ८।६६।८)

(कत् उ नु अस्य इन्द्रस्य) कौनसा भला इस इन्द्रका (पौंस्यं अकृतं अस्ति) वीर कर्म किया हुआ नहीं है (केन श्रोतमेन) किस सुनाने योग्य स्तोत्रसे (न उ नु कं शुश्रुवे) वह विख्यात नहीं हुआ है (वृत्रहा जनुषः परि) वृत्रको मारनेवाला इन्द्र जन्मसे ही विख्यात है ॥ ३ ॥
(ऋ. ८।६६।९)

(सूक्त ९८)

(वाजस्य साता कारवः) अन्नके लाभके इच्छुक स्तोता-हम- (त्वां इत् हि हवामहे) तुझे बुलाते हैं। हे इन्द्र! (त्वां सत्पतिं) तुझ उत्तम स्वामीको (वृत्रेषु) घेरनेवाले

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥ (६८५)

[सूक्त ९९]

(ऋषिः — १-२ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥ (६८७)

[सूक्त १००]

(ऋषिः — १-३ नृमेधः । देवता — इन्द्रः ।)

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

शत्रुओंके होनेपर (नरः त्वां) वीर पुरुष तुझको (अर्वतः काष्ठासु) घुडदौडकी सीमाओंमें बुलाते हैं ॥ १ ॥

(ऋ. ६।४६।१)

हे (चित्र वज्रहस्त) आश्चर्यमय वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र ! हे (अद्रिवः) वज्र धारण करनेवाले ! (धृष्णुया महः स्तवानः) अपनी धर्षक शक्तिसे बडा स्तुति किया हुआ (सः त्वं नः) वह तू हमारे लिये (गां अश्वं रथ्यं सत्रा सं किर) गौ घोडा रथमें जोतने योग्य सदा दे (जिग्युषे वाजं न) विजयी वीरके लिये जैसा धन मिलता है ॥ २ ॥

(६।४६।२)

१ कारवः वाजस्य सातौ — स्तोता धनकी इच्छा करनेवाले होते हैं। वाज — बल अन्न धन ऐश्वर्य।

२ वृत्रेषु त्वां सत्पतिं हवामहे — घेरनेवाले शत्रु जैसे वैरी पडनेपर सहाय्यार्थ तुझे बुलाते हैं। क्योंकि तू उत्तम पालन करनेवाला है।

३ नरः त्वां सत्पतिं अर्वतः काष्ठासु — वीर पुरुष तुझ उत्तम पालकको घुडदौडकी सीमामें बुलाते हैं। क्योंकि तुम्हारे घोडे अच्छे होते हैं घुडदौडमें वे प्रथम स्थानमें आवेंगे।

४ चित्र वज्रहस्त अद्रिवः — हे विलक्षण वज्रधारी वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र।

५ गां अश्वं रथ्यं सत्रा सं त्वं नः सं किर — गौ घोडा रथमें जोतने योग्य हमें दे दो।

६ जिग्युषे वाजं न — विजयी वीरको धन मिलता है। विजय होने पर शत्रुका धन लूटा जाता है वह विजयी वीरको प्राप्त होता है। वीर विजय मिलनेपर शत्रुका धन लूटा करते हैं।

(सूक्त ९९)

(आयवः पूर्वपीतये) मनुष्योंने प्रथम सोम पीनेके लिये हे इन्द्र ! (त्वा स्तोमेभिः अभि समस्वरन्) तेरी स्तुति स्तोत्रोंसे की है। (समीचीनासः ऋभवः समस्वरन्) परस्पर प्रेम रखनेवाले ऋभुओंने तथा स्तोतृ गान किया। (रुद्राः पूर्व्यं गृणन्त) रुद्रोंने तुझ पुराण पुरुषकी स्तुति की है ॥ १ ॥

(ऋ. ८।३)

(इन्द्रः) इन्द्रने (विष्णवि अस्य सुतस्य मदे) यज्ञमें इस सोमरसके हर्षमें (वृष्ण्यं शवः वावृधे इत्) अपना वीरता युक्त बल बढाया। (अद्य अस्य तं महिमानं) आज इसके उस महिमाकी (पूर्वथा) पूर्वकी तरह (आयवः अनु स्तुवन्ति) मनुष्य स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

(ऋ. ८।३।८)

(सूक्त १००)

हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (अध त्वा महः कामान्) अब तेरे पास हम अपनी बडी कामनाएं (उप ससृज्महे हि) भेजते हैं। (उदभिः यन्तः उदा इव) जैसे जलप्रवाहोंसे जलप्रवाह चलते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९८।७)

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥ (९५०)

[सूक्त १०१]

(ऋषिः — १-३ मेध्यातिथिः । देवता — अग्निः ।)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥ (९५१)

[सूक्त १०२]

(ऋषिः — १-३ विश्वामित्रः । देवता — अग्निः ।)

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥ २ ॥
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥ (९५२)

(यव्याभिः आपः न) जैसा नदियोंसे जलप्रवाह बढता है उस तरह है (शूर अद्रिवः) वीर वज्रधारी इन्द्र ! (वावृध्वांसं त्वा दिवेदिवे) बढनेवाले तुझे प्रतिदिन (ब्रह्माणि अभि वर्धयन्ति) हमारे स्तोत्र बढाते हैं ॥ २ ॥
(ऋ. ८।९३।८)

(इषिरस्य) प्रिय इन्द्र देवके (गाथया) मन्त्रसमूहके साथ (उरुयुगे रथे) चौडे जुओंवाले रथमें (वचो युजा इन्द्रवाहा हरी) वचनसे जुडनेवाले इन्द्रके रथको खींचनेवाले दो घोडे (युञ्जन्ति) जोते जाते हैं ॥ ३ ॥
(ऋ. ८।९८।९)

(सूक्त १०१)

(अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले (विश्व-वेदसं) सब धनों-ज्ञानोंके स्वामी (होतारं दूतं) देवोंको बुलानेवाले दूत (अग्निं वृणीमहे) अग्निको हम चुनते हैं ॥ १ ॥
(ऋ. १।१२।१)

(विश्पतिं) प्रजाओंके स्वामी (हव्यवाहं पुरुप्रियं) हवनीय के जानेवाले बहुतोंका प्रिय (अग्निं अग्निं) अग्नी अग्निको हम (हवीमभिः सदा हवन्त) स्तोत्रपाठोंसे सदा बुलाते हैं ॥ २ ॥
(ऋ. १।१२।२)

हे अग्ने ! (जज्ञानः) प्रकट होते ही तू (वृक्तबर्हिषे) आसन फैलानेवाले यजमानके लिये (देवान् इह आ वह) देवोंको यहां ले आ । (नः ईड्य होता असि) हमारा स्तुति योग्य देवोंको बुलानेवाला तू ही है ॥ ३ ॥
(ऋ. १।१२।३)

१ यज्ञस्य सुक्रतुः— यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाला।

२ विश्व वेदाः— सब धनोंसे युक्त । सब ज्ञानी।

३ विश्पतिः— प्रजाओंका पालक।

४ पुरुप्रियः— बहुतोंको प्रिय। बहुतोंको प्रिय लगना।

५ देवान् इह आ वह— देवोंको यहां ले आ। विद्वानोंको यहां ले आ। देव शब्दमें ज्ञानी विद्वानोंका व्यवहारस्थान समझना।

(सूक्त १०२)

(ईळेन्यः) स्तुतिके योग्य (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य (तमांसि तिरः दर्शतः) अन्धकारको दूर करके स्वयं प्रकट दीखनेवाला (वृषा) बलवान् अग्नि (इध्यते) प्रदीप्त होता है ॥ १ ॥
(ऋ. ३।२७।१३)

(वृषः अग्निः समिध्यते) बलिष्ठ अग्नि प्रदीप्त होता है (देववाहनः अश्वः न) देवोंको ले जानेवाले घोडेकी तरह (हविष्मन्तः तं ईळते) हविवाले यजमान उसकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥
(ऋ. ३।२७।१४)

हे (वृषन् अग्ने) बलवान् अग्ने ! (वृषणः वयं) बलिष्ठ बननेवाले हम (त्वा वृषणं) तुझ बलवान्को (बृहत् दीद्यतं) और अधिक प्रकाशमानको (समिधीमहि) प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥
(ऋ. ३।२७।१५)

[सूक्त १०३]

(ऋषिः — १ सुदीतिपुरुमीळ्हौ २-३ भर्गः । देवता — अग्निः ।)

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १ ॥
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥ (५९९)

[सूक्त १०४]

(ऋषिः — १ २ मेध्यातिथिः ३ ४ नृमेधः । देवता — इन्द्रः ।)

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥

---

१ ईळ्यः नमस्यः दर्शतः कृपा तमांसि तिरः— स्तुत्य नमस्कार योग्य दर्शनीय बलवान् अन्धकारको दूर करनेवाला अग्नि है । इस गुणोंसे युक्त मनुष्य बने ।

२ वृषणः वयं वृषणं त्वा वृहत् दीद्यतं समिधीमहि— बलवान बननेकी इच्छावाले हम तुझ बलवान् और बडे तेजस्वीको चमकाते हैं । बलवान् बननेकी इच्छावाले बलवान् तेजस्वीको ही अपने साथ रखें ।

(सूक्त १०३)

(अवसे) अपनी सुरक्षाके लिये (शीर-शोचिषं) तीव्र प्रकाशवाले (अग्निं) अग्निकी (गाथाभिः ईळिष्व) गाथाओंसे स्तुति कर । हे (पुरुमीळ्ह) बहुतों द्वारा स्तुति किए ! (अग्निं राये) धनके लिये अग्निकी स्तुति कर हे (नरः) मनुष्यो ! (सुदीतये श्रुतं अग्निं) उत्तम प्रकाश के लिये विख्यात अग्निकी स्तुति करो यह हमारा (छर्दिः) घर ही है ॥ १ ॥ (ऋ. ८। ७१।१४)

हे अग्ने ! (अग्निभिः आ याहि) अग्नियोंके साथ आ । (त्वा होतारं वृणीमहे) तुझे हम होता करके चुनते हैं । (त्वां यजिष्ठं) तुझ यजनकर्ताको (बर्हिः आसदे) आसनपर बैठनेके लिये (प्रयता हविष्मती) हम हविवाली स्रुचा (त्वां आ अनक्तु) तुझे घीसे युक्त करे ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६०।१)

हे (सहसः सूनो अंगिरः) बलके पुत्र अंगिरा ! (अध्वरे स्रुचः) यज्ञमें स्रुचाएं (त्वा अच्छ हि चरन्ति) तेरे लिये समीपसे विचरती हैं । हम (ऊर्जः नपातं) बलको न गिरानेवाले (घृतकेशं) तेजस्वी किरणवाले (यज्ञेषु पूर्व्यं) यज्ञोंमें पहिले (ईं अग्निं ईमहे) इस अग्निकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६।१२)

(सूक्त १०४)

हे (पुरूवसो) बहुत धनवान् इन्द्र ! (या मम इमाः गिरः) जो मेरी ये स्तुतियां हैं वे (त्वा उ वर्धन्तु) तुझे बढावें । (पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः) अग्निके समान तेजस्वी शुद्ध ज्ञानियोंने (स्तोमैः अभि अनूषत) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति की है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३।३)

(अयं) यह इन्द्र (ऋषिभिः सहस्रं सहस्कृतः) ऋषियोंके द्वारा सहस्रगुणा अपने बलसे बढाया गया (समुद्र इव पप्रथे) समुद्रके समान फैला है (सः अस्य महिमा सत्यः) वह इसकी महिमा सत्य है । (यज्ञेषु विप्रराज्ये शवः गृणे) यज्ञोंमें विप्रोंके राज्यमें इसकी शक्तिकी स्तुति की जाती है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।३।४)

[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible]
॥ ४ ॥ [illegible]

[[illegible] १०५]

([illegible])

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ४ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ५ ॥ [illegible]

[illegible]

[सूक्त १०६]

(ऋषिः — १-३ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)

तव॒ त्यदि॑न्द्रि॒यं बृ॒हत् तव॒ शुष्म॑मु॒त क्रतु॑म् । वज्रं॑ शिशाति धि॒षणा॒ वरे॑ण्यम् ॥ १ ॥
तव॒ द्यौरि॑न्द्र॒ पौंस्यं॑ पृथि॒वी व॑र्धति॒ श्रवः॑ । त्वामापः॒ पर्व॑तासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥
त्वां विष्णु॑र्बृ॒हन् क्षयो॑ मि॒त्रो गृ॑णाति॒ वरु॑णः । त्वां शर्धो॑ मद॒त्यनु॒ मारु॑तम् ॥ ३ ॥ (५७१)

[सूक्त १०७]

(ऋषिः — १-३ वत्सः, ४-१२ बृहद्दिवः, १३-१५ कुत्सः । देवता — इन्द्रः ।)

सम॑स्य म॒न्यवे॒ विशो॒ विश्वा॑ नमन्त कृ॒ष्टयः॑ । स॒मु॒द्राये॑व॒ सिन्ध॑वः ॥ १ ॥
ओज॒स्तद॑स्य तित्विष उ॒भे यत्स॒मव॑र्तयत् । इन्द्र॒श्चर्मे॑व॒ रोद॑सी ॥ २ ॥
वि चि॑द्वृ॒त्रस्य॒ दोध॑तो॒ वज्रे॑ण श॒तप॑र्वणा । शिरो॑ बिभेद वृ॒ष्णिना॑ ॥ ३ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ त्वं प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि— तू युद्धोंमें सब शत्रुओंका सामना करके उनको हराता है।

२ अशस्ति-हा विश्व तूः— दुष्कीर्तिको दूर करनेवाला और सब शत्रुओंको तोडनेवाला है।

३ त्वं तरुष्यतः तूर्वः— विनाशक शत्रुओंको मारनेवाला है।

४ क्षोणी ते तुरयन्तं शुष्मं अनु ईयतुः— द्यावा पृथिवी अर्थात् सब विश्व तेरे विजयी बलके अनुकूल होकर चलते हैं।

५ ते मन्यवे विश्वाः स्पृधः श्नथयन्त— तेरे क्रोधसे सब शत्रु शिथिल बनते हैं।

६ वृत्रं तूर्वसि— घेरनेवाले शत्रुको तू मारता है।

७ यः ऊर्जो भर्तारं प्रहेतारं, अप्रहितं आशुं जेतारं हतारं रथीतमं अतूर्तं तुग्र्यावृधं— अपने संरक्षणके लिये अन्न देनेवाले, किसीसे प्रेरित न होनेवाले, शीघ्र विजय करनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, किसीसे पराजित न होनेवाले, बलवान इन्द्रको अपने सहायार्थ प्राप्त करो।

वीरोंमें ये गुण देखने चाहिए।

(सूक्त १०६)

(तव त्यत् बृहत् इन्द्रियं) तेरा वह बडा बल, (तव शुष्मं उत क्रतुं) तेरा सामर्थ्य और कर्मशक्ति (वरेण्यं वज्रं) तेरे श्रेष्ठ वज्रका (धिषणा शिशाति) हमारी बुद्धि वर्णन करती है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१५।७)

हे इन्द्र! (द्यौः तव पौंस्यं) द्यु तेरे बलको (पृथिवी श्रवः वर्धति) पृथिवी यशको बढा रही है। (आपः पर्वतासः च) जलप्रवाह और पर्वत (त्वां हिन्विरे) तुझे उत्साहित कर रहे हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१५।८)

(बृहन् क्षयः विष्णुः) बडा आश्रय दाता विष्णु, मित्र और वरुण (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति गाते हैं। (मारुतं शर्धः) मरुतोंका समुदाय (त्वां अनुमदति) तेरे साथ आनन्दसे रहता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१५।९)

(सूक्त १०७)

(अस्य मन्यवे) इसके क्रोधके सामने (विश्वाः विशः कृष्टयः) सब प्रजाजन सब कृषक (सं नमन्त) अच्छी तरह नम्र होकर रहते हैं। (सिन्धवः समुद्राय इव) नदियां समुद्रके सामने जैसी झुकती हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६।४)

(तत् अस्य ओजः तित्विषे) वह इसका सामर्थ्य प्रकट हुआ (यत् उभे रोदसी चर्म इव इन्द्रः समवर्तयत्) जब दोनों द्यावा पृथिवीको चर्मके समान इन्द्रने लपेट लिया ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६।५)

(दोधतः वृत्रस्य शिरः) कांपनेवाले वृत्रका सिर (वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण) बलवान सौ धारोंवाले वज्रसे (चित् वि बिभेद) तोडके टुकडे कर डाला ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६।६)

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ ५ ॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ६ ॥
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्दुरेवासः कशोकाः ॥ ७ ॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ८ ॥
नि तद्दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ९ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन्पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ १० ॥
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद्विश्वमर्णवत्तपस्वान् ॥ ११ ॥
एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥ १२ ॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान्प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद्दुरितानि शुक्रः ॥ १३ ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १४ ॥
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ १५ ॥ (१८९)

---

* १४ देखो अथर्व ५।२।१ १२ १३।२।३४-३५ (ऋ. १।११५।१; ...)

(सूर्यः) सूर्य (रोचमानां उषसं देवीं) चमकती हुई देवी (पश्चात् अभ्येति) पीछे जाता है (मर्यः योषां न) जैसा मनुष्य स्त्रीके पीछे जाता है। (यत्र देवयन्तः नरः) जिस समय देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य (भद्राय भद्रं) कल्याण करनेके लिये कल्याण करनेवाले कर्म (युगानि वितन्वते) सत्कर्मोंको करते हैं ॥ १५ ॥ (ऋ. १।११५।२)

[सूक्त १०८]

(ऋषिः — १-३ नृमेधः। देवता — इन्द्रः।)

त्वं न॑ इन्द्रा भ॑र॒ ओजो॑ नृ॒म्णं श॑तक्रतो विचर्षणे । आ वी॒रं पृ॑तना॒षह॑म् ॥ १ ॥

त्वं हि नः॑ पि॒ता व॑सो॒ त्वं मा॒ता श॑तक्रतो ब॒भूवि॑थ । अधा॑ ते सु॒म्नमी॑महे ॥ २ ॥

त्वां शु॑ष्मिन्पुरुहूत वाज॒यन्त॒मुप॑ ब्रुवे शतक्रतो । स नो॑ रास्व सु॒वीर्य॑म् ॥ ३ ॥ (९८९)

[सूक्त १०९]

(ऋषिः — १-३ गोतमः। देवता — इन्द्रः।)

स्वा॒दोरि॒त्था वि॑षू॒वतो॒ मध्वः॑ पिबन्ति गौ॒र्यः॑ ।
या इन्द्रे॑ण स॒याव॑री॒र्वृष्णा॒ मद॑न्ति शो॒भसे॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १ ॥

ता अ॑स्य पृशना॒युवः॒ सोमं॑ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
प्रि॒या इन्द्र॑स्य धे॒नवो॒ वज्रं॑ हिन्वन्ति॒ साय॑कं॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ २ ॥

ता अ॑स्य॒ नम॑सा॒ सहः॑ सपर्यन्ति॒ प्रचे॑तसः ।
व्र॒तान्य॑स्य सश्चिरे पु॒रूणि॑ पू॒र्वचि॑त्तये॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ ३ ॥ (९९१)

(सूक्त १०८)

हे इन्द्र ! (त्वं नः ओजः आ भर) तू हमारे लिये सामर्थ्य भर दे। हे (विचर्षणे शतक्रतो) कुशल सैकडों कार्य करनेवाले इन्द्र ! (नृम्णं) वीरत्व भी हमारे पास भर दे। (पृतना-सहं वीरं आ भर) शत्रुओंको जीतनेवाला वीर पुत्र भी हमें दे ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९८।१०)

हे (वसो) निवासक इन्द्र ! (त्वं हि नः पिता) तू हमारा पिता है। हे शतक्रतो ! (त्वं माता बभूविथ) तू हमारी माता हुई है। (अधा ते सुम्नं ईमहे) अब हम तुझसे सुख मांगते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९८।११)

हे (शुष्मिन् पुरुहूत शतक्रतो) बलवान बहुतों द्वारा बुलाये गये सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वां वाजयन्तं उपब्रुवे) तुझ बलवानके पास मेरी प्रार्थना है कि (सः नः सुवीर्यं रास्व) वह तू हमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति दे ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९८।१२)

(सूक्त १०९)

(गौर्यः) गौवें (विषूवतः स्वादोः मध्वः) सोम स्वादु मधुर रस (इत्था पिबन्ति) इस तरह पीती हैं। (याः वृष्णा इन्द्रेण सयावरीः) जो बलवान इन्द्रके साथ गमन करनेवाली (शोभसे मदन्ति) शोभाके लिये आनन्दित होती हैं वा (स्वराज्यं अनु वस्वीः) स्वराज्यके लिये बसती हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १।८४।१०)

(ताः पृश्नयः) वे चितकबरी गौवें (पृशनायुवः) स्पर्श करनेकी इच्छा करती हुई (सोमं श्रीणन्ति) सोमके साथ मिलती हैं। (इन्द्रस्य प्रियाः धेनवः) इन्द्रकी प्रिय गौवें (सायकं वज्रं हिन्वन्ति) शत्रुका नाश करनेवाले वज्रको प्रेरित करती हैं जो अपने स्वराज्यके लिये बसती हैं ॥ २ ॥ (ऋ. १।८४।११)

(ताः प्रचेतसः) वे ज्ञानी (नमसा सहः) नमस्कारके साथ (अस्य सपर्यन्ति) इसकी शक्तिका सत्कार करती हैं। (अस्य पुरूणि व्रतानि) इसके बहुतसे व्रतोंको (पूर्वचित्तये सश्चिरे) मुख्य ऐश्वर्यके लिये अनुसरती हैं जो अपने स्वराज्यके लिये बसती हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. १।८४।१२)

इन मंत्रोंमें आलंकारिक वर्णन है—

१ गौर्यः स्वादोः मध्वः पिबन्ति— गौवें मधुर सोमरस पीती हैं। सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है।

२ वृष्णाः इन्द्रेण सयावरीः— बलवान् इन्द्रके साथ जाती हैं। सोमरसमें गोदुग्ध मिलने पर वह रस इन्द्र पीता

[सूक्त ११२]

(ऋषिः — १-३ सुकक्षः । देवता — इन्द्रः ।)

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ अ॒भि सू॑र्य । सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑ ॥ १ ॥
यद्वा॑ प्रवृद्ध सत्पते॒ न म॑रा॒ इति॒ मन्य॑से । उ॒तो तत्स॒त्यमित्तव॑ ॥ २ ॥
ये सोमा॑सः परा॒वति॒ ये अ॑र्वा॒वति॑ सुन्वि॒रे । सर्वां॒स्ताँ इ॑न्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥ (७०१)

[सूक्त ११३]

(ऋषिः — १-२ भर्गः । देवता — इन्द्रः ।)

उ॒भयं॑ शृ॒णव॑च्च न॒ इन्द्रो॑ अ॒र्वागि॒दं वचः॑ ।
स॒त्राच्या॑ म॒घवा॒ सोम॑पीतये धि॒या शवि॑ष्ठ॒ आ ग॑मत् ॥ १ ॥
तं हि स्व॒राजं॑ वृष॒भं तमोज॑से धि॒षणे॑ निष्टत॒क्षतुः॑ ।
उ॒तोप॒मानां॑ प्रथ॒मो नि षी॑दसि॒ सोम॑कामं॒ हि ते॒ मनः॑ ॥ २ ॥ (७०३)

[सूक्त ११४]

(ऋषिः — १-२ सौभरिः । देवता — इन्द्रः ।)

अ॒भ्रा॒तृ॒व्यो अ॒ना त्वमना॑पिरिन्द्र ज॒नुषा॑ स॒नाद॑सि । यु॒धेदा॑पि॒त्वमि॑च्छसे ॥ १ ॥
न॒की रे॒वन्तं॑ स॒ख्याय॑ विन्दसे॒ पीय॑न्ति ते सुरा॒श्वः॑ ।
य॒दा कृ॒णोषि॑ नद॒नुं समू॑ह॒स्यादित्पि॒तेव॑ हूयसे ॥ २ ॥ (७०५)

(सूक्त ११२)

(वृत्रहन्) हे शत्रुके मारनेवाले ! हे सूर्य ! (यद् अद्य कत् च अभि उद् अगाः) जो आज तू किसी तरह उदय हुआ है हे इन्द्र ! (तद् सर्वं ते वशे) वह सब तेरे वशमें है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९३।४)

(यद् वा) अथवा (प्रवृद्ध सत्पते) हे बढे सज्जनोंके पालक ! (न मरै इति मन्यसे) मैं नहीं मरूंगा ऐसा मानता है (उतो तत् तव सत्यं इत्) सो सचमुच वह तेरा सत्य मानना है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९३।५)

(ये सोमासः परावति) जो सोमरस दूर हैं (ये अर्वावति सुन्विरे) जो निकट निकाले हैं। हे इन्द्र ! (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सबके पास तू जाता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९३।६)

(सूक्त ११३)

(उभयं) दोनों बातें हैं (इन्द्रः अर्वाक् इदं नः वचः शृणवत् च) एक तो इन्द्र पास आकर इस हमारे वचनको सुनेगा और दूसरा (सत्राच्या धिया) निश्चित पूर्ण बुद्धिसे (शविष्ठः मघवा) बलवान् इन्द्र (सोमपीतये आ गमत्) सोमरस पीनेके लिये आवेगा ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६१।१)

(धिषणे) द्यौ और पृथिवीने (तं वृषभं स्वराजं) उस बलवान् स्वतंत्र शासकको (तं ओजसे) उसके बल करनेके लिये उस इन्द्रको (निष्टतक्षतुः) बनाया। (उत उपमानां प्रथमः) तू उपमा देने योग्योंमें पहिला होकर (नि षीदसि) बैठता है (ते मनः सोमकामं हि) तेरा मन सोमकी इच्छा करनेवाला है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६१।२)

(सूक्त ११४)

(अ-भ्रातृव्यः) न तेरा कोई शत्रु है (अ-नाः) न कोई नेता है हे इन्द्र ! (त्वं अनापिः) तेरा कोई मित्र भी नहीं (जनुषा सनाद् असि) जन्मसे तू सदा ऐसा ही है (युधा इत् आपित्वं इच्छसे) युद्धसे तू मित्रत्व चाहता है। जो तुझे युद्धसे हैं उनका तू मित्र होता है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।२१।१३)

(रेवन्तं सख्याय नकि विन्दसे) धनवान्‌को मित्रताके लिये तू नहीं प्राप्त करता (ते सुराश्वः) तेरे सुरा पीनेवाले लोग (पीयन्ति) निन्दा होते हैं, (यदा नदनुं

[सूक्त ११५]
(ऋषिः — १-३ वत्सः । देवता — इन्द्रः ।)

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ २ ॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुरृषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ (७०८)

[सूक्त ११६]
(ऋषिः — १-२ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव । वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १ ॥
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् । सकृत्सु ते महता शूर राधसा अनु स्तोमं मुदीमहि ॥२॥ (७१०)

[सूक्त ११७]
(ऋषिः — १-२ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

इन्द्रिये) जब तू आनन्द करता है तब (भ्रातृ इव सम् इसि) भाई के सदृश [illegible] होता है तब (पिता इव हूयसे) पिता के समान बुलाया जाता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।२१।१४)

(सूक्त ११५)

(अहम् इत् हि) मैंने निश्चय से (पितुः परि) पिता से (ऋतस्य मेधां जग्रभ) सत्यनिष्ठ बुद्धि ग्रहण किया है। (अहं सूर्य इव अजनि) और मैं सूर्य के समान प्रकट हुआ हूँ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६।१०)

(अहं प्रत्नेन मन्मना) मैं पुराने विचार के अनुसार (कण्ववत् गिरः शुम्भामि) कण्व के समान अपनी वाणी को सुशोभित करता हूँ। (येन इन्द्रः शुष्मं इत् दधे) जिससे इन्द्र बल धारण करता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६।११)

हे इन्द्र! (ये त्वां न तुष्टुवुः) जिन्होंने तेरी स्तुति नहीं की (ये च ऋषयः तुष्टुवुः) और जिन ऋषियोंने स्तुति की है (मम सुष्टुतः इत् वर्धस्व) मुझसे स्तुत किया हुआ तू बढ ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६।१२)

(सूक्त ११६)

(निष्ट्या इव) [illegible] की तरह (त्वदरणा इव) [illegible] तरह हे इन्द्र! (मा भूम) हम न हों। हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र! (प्रजहितानि वनानि न) छोड हुए वन की तरह (दुरोषासः अमन्महि) दुःख जलने से पत्तोंकी तरह हम न हों [illegible] हम अपनेको समझते हैं ॥ १ ॥ (८।१।१३)

हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले! (अनाशवः अनुग्रासः) स्फूर्ति से कार्य न करनेवाले न उग्र (अमन्महि इत्) हम अपने आपको समझते हैं। हे (शूर) वीर इन्द्र! (ते महता राधसा) तेरे बडे धनसे (सकृत्) एक बार ही (स्तोम) तेरे स्तावक (अनु मुदीमहि) अनुकूल रहकर हम आनंद पाते रहे हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१।१४)

(सूक्त ११७)

हे इन्द्र! (सोमं पिब) सोम पी। (त्वा मन्दतु) तुझे वह आनंदित करे। हे (हर्यश्व) भूरे रंग के घोडेवाले इन्द्र! (यं ते अद्रिः सुषाव) जिसे तेरे लिये पत्थर ने कूट कर निकाला है। (सुयतः अर्वा न) बांधे हुए घोडे की तरह (सोतुः बाहुभ्यां) रस निकालनेवाले के बाहुओं से निकाला है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।२२।१)

(यः ते मदः युज्यः चारुः अस्ति) जो तेरा [illegible] सुन्दर मद है। हे (हर्यश्व) भूरे रंग [illegible] (येन वृत्राणि हंसि) जिससे तू शत्रुओं को मारता है। (प्रभूवसो इन्द्र) हे बहुत धनवाले इन्द्र! (सः त्वा ममत्तु) वह तुझे आनंदित करे ॥ २ ॥ (ऋ. ७।२२।२)

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥ (७११)

[सूक्त ११८]

(ऋषिः — १-२ भर्गः ३-४ मेध्यातिथिः। देवता — इन्द्रः।)

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥
पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ३ ॥
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ४ ॥ (७१५)

[सूक्त ११९]

(ऋषिः — १ आयुः २ श्रुष्टिगुः। देवता — इन्द्रः।)

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत। पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (इमां मे वाचं) मेरी इस स्तुतिको (सु बोध) उत्तम रीतिसे जान। (यां प्रशस्तिं ते वसिष्ठः अर्चति) जिस तेरी प्रशंसाको वसिष्ठ उच्चारता है (इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व) इन स्तोत्रोंको साथ बैठकर आनंद करनेके समय सेवन कर ॥३॥ (ऋ. ७।२२।३)

(सूक्त ११८)

हे (शचीपते इन्द्र) शक्तिके स्वामी इन्द्र! (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब संरक्षक शक्तियोंसे (सु शग्धि) हमें समर्थ बनाओ। (भगं न) भाग्यके पीछे जानेके समान हे (शूर) वीर इन्द्र! (त्वा यशसं वसुविदं) तुझ यशस्वी और धनदाताके (हि अनु चरामसि) अनुसार ही हम चलते हैं ॥१॥ (ऋ. ८।६१।५)

(अश्वस्य पौरः) तू घोडोंको बहुत संख्यामें रखनेवाला (गवां पुरुकृत्) गौओंको बहुत संख्यामें रखनेवाला है। हे देव! तू (हिरण्ययः उत्सः असि) सोनेका स्रोत है। (न किः त्वे दानं परिमर्धिषत्) तेरे दानको कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। (यत् यत् यामि) जो जो मैं मांगता हूं (तत् आ भर) वह मुझे भर दे ॥२॥ (ऋ. ८।६१।६)

(देवतातये इन्द्रं इत्) यज्ञके लिये इन्द्रको (अध्वरे प्रयति इन्द्रं) यज्ञ प्रारंभ होनेपर इन्द्रको (समीके) युद्धमें (इन्द्रं हवामहे) इन्द्रको हम बुलाते हैं। (धनस्य सातये इन्द्रं) धनके दानके लिये इन्द्रको हम (वनिनः हवामहे) स्तोतागण बुलाते हैं ॥३॥ (ऋ. ८।३।५)

(इन्द्रः मह्ना शवः रोदसी पप्रथत्) इन्द्रने अपनी महिमासे और शक्तिसे द्यौ और पृथिवीको फैलाया है। (इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया। (इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे) इन्द्रमें सब भुवनोंको नियममें रखा है (इन्द्रे सुवानास इन्दवः) इन्द्रमें सोमरस पहुंचते हैं ॥४॥ (ऋ. ८।३।६)

(सूक्त ११९)

(पूर्व्यं मन्म अस्तावि) पुराना स्तोत्र पढा गया (इन्द्राय ब्रह्म वोचत) इन्द्रके लिये स्तोत्र पढो। (ऋतस्य पूर्वीः बृहतीः अनूषत) यज्ञकी प्राचीन स्तुतियां गायी गयी हैं। (स्तोतुः मेधाः असृक्षत) स्तोताकी बुद्धियोंसे स्तोत्र उत्पन्न हुए हैं ॥१॥ (ऋ. ८।५२।९)

शुम्भवो मधुमन्त घृतश्चुत विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥ (७१९)

[सूक्त १२०]

(ऋषिः — १-२ देवातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥ (७२१)

[सूक्त १२१]

(ऋषिः — १-२ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥ (७२३)

(शुम्भवः विप्रासः) [illegible] (घृतश्चुत मधु मानृचुः) [illegible] । (अस्मे रयिः पप्रथे) हमारे लिये धन [illegible] (अस्मे [illegible]) हमारे लिये [illegible] है (अस्मे सुवानासः इन्दवः) [illegible] है ॥ २ ॥
(ऋ ८।५।११)

[1] घृतश्चुत मर्क मानृचुः— [illegible] है ।

(सूक्त १२०)

[illegible] (यत् नृभिः) [illegible] (प्राक् [illegible]) [illegible] (सिमा प्रशर्ध) [illegible] (नृषूतः) [illegible] (अस्यानवे तुर्वशे असि) [illegible] ॥ १ ॥
(ऋ ८।४।१)

(रुमे [illegible]) [illegible]

(सचा मादयसे) [illegible] हे इन्द्र ! (स्तोमवाहसः कण्वासः) [illegible] (ब्रह्मभिः आ यच्छन्ति) [illegible] (आ गहि) [illegible] ॥ २ ॥
(ऋ ८।४।२)

(सूक्त १२१)

हे इन्द्र ! (अदुग्धा धेनवः इव) [illegible] (अस्य जगतः तस्थुषः [illegible]) [illegible] (स्वर्दृशम् ईशानम्) [illegible] (त्वा अभि नोनुमः) [illegible] ॥ १ ॥ (ऋ ७।३२।२२)

(त्वावान् अन्यः न) [illegible] (न दिव्यः न पार्थिवः) [illegible] (न जातः न जनिष्यते) [illegible] इन्द्र ! (मघवन्) [illegible] (अश्वायन्तः गव्यन्तः) [illegible] (वाजिनः) [illegible] हवामहे [illegible] ॥ २ ॥
(ऋ [illegible])

[सूक्त १२२]

(ऋषिः — १-३ शुनःशेपः । देवता — इन्द्रः ।)

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

आ घ त्वावान्त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ (७११)

[सूक्त १२३]

(ऋषिः — १-२ कुत्सः । देवता — सूर्यः ।)

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ १ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ २ ॥ (७१८)

[सूक्त १२४]

(ऋषिः — १-३ वामदेवः, ४-६ सुवेदाः । देवता — इन्द्रः ।)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

(सूक्त १२२)

(सधमादे) साथ रहनेवाली (तुविवाजाः) बहुत बलवाली (नः रेवतीः इन्द्रे) हमारी धनयुक्त स्तुतियां इन्द्रके विषयमें हों (क्षुमन्तः) वे हमें अन्न देनेवाली हों और (याभिः मदेम) जिससे हमें आनन्द हो ॥ १ ॥ (ऋ. १।३०।१३)

हे (धृष्णो) शत्रुका घर्षण करनेवाले इन्द्र! (त्वावान्) तेरे जैसा (त्मना आप्तः) स्वयं मित्र बनकर (स्तोतृभ्यः इयानः) स्तोताओंके पास जानेवाला (चक्र्योः अक्षं न) चक्रोंके अक्षके समान धन (आ ऋणोः) देता है ॥ २ ॥ (ऋ. १।३०।१४)

हे (शतक्रतो) सैकडों कार्य करनेवाले इन्द्र! (जरितॄणां कामं दुवः) स्तोताओंकी कामनाओं और सेवाओंको (यत् आ ऋणोः) तू पूर्ण करता है (शचीभिः अक्षं न) शक्तियोंके साथ चक्रका अक्ष जैसा स्थिर रहता है ॥ ३ ॥ (ऋ. १।३०।१५)

(सूक्त १२३)

(सूर्यस्य तत् देवत्वं) सूर्यका वह देवत्व है (तत् महित्वं) और वह उसका महत्व है कि जो (कर्तोः मध्या) कार्यके मध्यमें (विततं सं जभार) फैले हुए किरणजालको समेट लेता है। (यदा इत् सधस्थात् हरितः अयुक्त) जब वह अपने स्थानसे घोडोंको जोडता है (रात्री वासः सिमस्मै तनुते) तब रात्री सबके लिये एक वस्त्र फैला देती है ॥ १ ॥ (ऋ. १।११५।४)

(मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे) मित्र और वरुणके देखनेके लिये (सूर्यः द्योः उपस्थे तत् रूपं कृणुते) सूर्य द्युके समीप रूप बनाता है। (अस्य रुशत् पाजः अनन्तं अन्यत्) इसका प्रकाशमय अनन्त रूप एक है और (अन्यत् कृष्णं) दूसरा रूप अन्धकार है जो (हरितः सं भरन्ति) किरणें अर्थात् इसके घोडे भर देते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. १।११५।५)

(सूक्त १२४)

(चित्रः ऊती सदावृधः सखा) वह विलक्षण रक्षण करनेवाला सदा बढनेवाला मित्र इन्द्र (कया नः आ भुवत्) किस शक्तिके साथ हमारे समीप आ जायगा? (कया शचिष्ठया वृता) किस सामर्थ्यसे युक्त होकर हमारे समीप आ जायगा ॥ १ ॥ (ऋ. ४।३१।१)

[illegible] । १ ।
[illegible] । २ ।
[illegible] ।
[illegible] । ४ ।
[illegible] ।
[illegible] । ५ ।
[illegible] ।
[illegible] । ६ ।

[[illegible]]

[illegible]

[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]

[illegible]

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ५ ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ७ ॥ (७७१)

[सूक्त १२६]

(ऋषिः — १-२३ वृषाकपिरिन्द्राणी च । देवता — इन्द्रः ।)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥

हे (शुभस्पती अश्विनौ) शुभ कर्म करनेवाले अश्विदेवो ! (युवं सुरामं सचा विपिपाना) तुम दोनोंने उत्तम आनंद देनेवाले सोमरसको पीकर (आसुरे नमुचौ कर्मसु इन्द्रं आवतम्) असुर शुभ नमुचिके मारनेके कर्ममें इन्द्रकी सहायता की ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१३१।४)

(पितरौ पुत्रं इव) मातापिता जैसे पुत्रकी रक्षा करते (उभा अश्विना) दोनों अश्विदेव (काव्यैः दंसनाभिः इन्द्रं आवथुः) बुद्धियों और कर्मोंसे इन्द्रकी रक्षा करते हैं। (यत् सुरामं शचीभिः व्यपिबः) जब उत्तम आनंद देनेवाला रस अपनी शक्तियोंसे पिया। तब हे (मघवन्) इन्द्र ! (सरस्वती त्वा अभिष्णक्) सरस्वतीने तेरी सेवा की ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।१३१।५)

६, ७ इनको अथर्व ७।९१।१; ७।९२।१

(सूक्त १२६)

इन्द्राणीने (सोतोः वि असृक्षत हि) सोमका रस निकालना छोड दिया। (इन्द्रं देवं न अमंसत) इन्द्रका देव भी नहीं माना। (यत्र वृषाकपिः अमदत्) जहां वृषाकपिने आनंद प्राप्त किया। (यः पुष्टेषु मत्सखा) जो पुष्टोंमें मेरा स्वामी सखा है वह (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ (ऋ. १०।८६।१)

हे इन्द्र ! (परा हि धावसि) तू दूर भागता है। (अति व्यथिः वृषाकपेः) अति व्यथा लेकर वृषाकपिके पास तू जाता है। (अन्यत्र सोमपीतये) दूसरे स्थानपर सोम पीनेके लिये (नो अह प्र विन्दसि) नहीं मिलता। (विश्वस्मात् उत्तरः इन्द्रः) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ (ऋ. १०।८६।२)

(अयं हरितः मृगः वृषाकपिः) इस हरे पशु जैसे वृषाकपिने (किं त्वां चकार) तुझे क्या किया है (यस्मै अर्यः वा) जिसके लिये श्रेष्ठके समान (पुष्टिमत् वसु इरस्यसि इत् उ) पुष्ट करनेवाला धन तू देता है। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।८६।३)

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥
न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८ ॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९ ॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १० ॥

हे इन्द्र! (त्वं) तू (यं इमं वृषाकपिं) जिस इस कपि को (प्रियं अभिरक्षसि) प्रिय मानकर सुरक्षित रखता है। (वराहयुः श्वा) सूअरको चाहनेवाला कुत्ता (अस्य कर्णे जम्भिषत्) इसके कानको पकडे। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥
(ऋ. १०।८६।४)

(मे प्रिया तष्टानि) मेरे लिए बनके तैयार किये पदार्थ (कपिः व्यक्ता व्यदूदुषत्) इस वृषाकपिने स्पष्ट रीतिसे बिगाड दिये (अस्य शिरः नु राविषं) इसका सिर मैं काटूंगी, (दुष्कृते सुगं न भुवं) दुराचारीको सुख करके रखी नहीं बनूंगी। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥
(ऋ. १०।८६।५)

(न स्त्री मत् सुभसत्तरा) कोई स्त्री मुझसे अधिक सौभाग्यवती नहीं है (न सुयाशुतरा भुवत्) न अधिक मेरेसे सुख है (न मत् प्रति च्यवीयसी) न मुझसे अधिक प्रत्युत्तर देनेवाली (न सक्थी उद्यमीयसी) न कोई अधिक उत्साही है। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥
(ऋ. १०।८६।६)

(उवे अम्ब सुलाभिके) हे माता हे उत्तम लाभवाली! (यथा इव अङ्ग भविष्यति) जिस तरह है वैसा होगा।
हे (अम्ब) हे माता! (मे भसत्) मेरा ऊरु (मे सक्थि मे शिरः) मेरी जांघ और मेरा सिर (वि हृष्यति इव) तेजस्वी हो रहा है। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥
(ऋ. १०।८६।७)

हे (सुबाहो) उत्तम बाहुवाली (स्वङ्गुरे) उत्तम अंगुलियोंवाली उत्तम हाथवाली (पृथुष्टो) विशाल बालोंवाली (पृथुजाघने) पुष्ट जंघावाली (शूरपत्नि) वीरकी पत्नी! (नः वृषाकपिं किं अभ्यमीषि) हमारे वृषाकपि पर तू क्या क्रोध करती है? (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥
(ऋ. १०।८६।८)

(अयं शरारुः) यह घातपात करनेवाला वृषाकपि (मां अवीरां इव अभिमन्यते) मुझे अवीरा करके मानता है (उत अहं वीरिणी) पर मैं वीर पुत्रोंवाली (इन्द्रपत्नी) इन्द्रकी पत्नी (मरुत्सखा) मरुतोंके साथ रहती हूं। (वि०) इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ (ऋ. १०।८६।९)

(नारी पुरा) स्त्री पुराने समयसे (संहोत्रं समनं वाव गच्छति स्म) उत्तम यज्ञ और संग्राममें जाती है। (ऋतस्य वेधा) सत्यका विधान करनेवाली (वीरिणी इन्द्रपत्नी महीयते) वीर पुत्रोंको जन्म देने

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ११ ॥
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १२ ॥
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १३ ॥
उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥
वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥
न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

वाली इन्द्रपत्नीकी प्रशंसा की जाती है। (वि०) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ (ऋ. १०।८६।११)

(इन्द्राणीं आसु नारिषु) इन्द्राणीको इन स्त्रियोंमें (अहं सुभगां अश्रवं) मैंने सौभाग्यवाली करके सुना है। (अस्याः अपरं चन) इसका विशेष यह है कि (अस्याः पतिः जरसा न मरते) इसका पति बुढापेसे मरता नहीं। (वि०) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ (ऋ. १०।८६।११)

हे (इन्द्राणि) इन्द्राणि ! (अहं वृषाकपेः सख्युः ऋते) मैं मित्र वृषाकपिके बिना (न रारण) रमता नहीं। (यस्य इदं प्रियं अप्यं हविः देवेषु गच्छति) जिसकी यह प्रिय और पवित्र हवि देवोंमें जाती है। (वि०) सबसे अधिक श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १२ ॥ (ऋ. १०।८६।१२)

(रेवति सुपुत्रे आत् उ सुस्नुषे) हे धनवाली उत्तम पुत्रोंवाली उत्तम स्नुषावाली (वृषाकपायि) वृषाकपिकी पत्नी ! (इन्द्रः काचित्करं उक्षणः प्रियं ते हविः घसत्) इन्द्र सुखकारी बैलोंका प्रिय ऐसे तेरे हविको खावे। (वि०) सबसे अधिक श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १३ ॥ (ऋ. १०।८६।१३)

(पंचदश) पंद्रह पकानेवाले (उक्ष्णः विंशतिं साकं मे पचन्ति) बीस सोमके बैलोंको एक साथ मेरे लिये पकाते हैं। (उत अहं अद्मि) और मैं उसको खाता हूं, (पीव इत्) उससे पुष्ट बनता हूं (मे उभा कुक्षी पृणन्ति) मेरी दोनों कोखें भरती हैं। (वि०) सबसे अधिक श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १४ ॥ (ऋ. १०।८६।१४)

(तिग्मशृङ्गः वृषभः न) तीखे सींगोंवाला बैल जैसे (यूथेषु अन्तः रोरुवत्) यूथोंमें गर्जना करता है वैसे हे इन्द्र ! (मन्थः ते हृदे शं) सोमरस तेरे हृदयको आनन्द देवे (यं ते भावयुः सुनोति) जिसको तेरे लिये उपासक भावयुक्ततासे रस निकालता है। (वि०) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ (ऋ. १०।८६।१५)

(यस्य सक्थ्या अन्तरा) जिसका जंघाओंके मध्यमें (कपृत् रम्बते) लिंग लटकता रहता है (स न ईशे) वह सामर्थ्यवान् नहीं होता (स इत् ईशे) वही समर्थ होता है (यस्य निषेदुषः रोमशं विजृम्भते) जिसके सोनेपर रोमोंवाला लिंग खडा होता है। (वि०) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ (ऋ. १०।८६।१६)

(न स ईशे) वह समर्थ नहीं होता (यस्य निषेदुषः रोमशं विजृम्भते) जिसके सोनेपर रोमवाला खडा है (स:

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥
अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १९ ॥
धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥
यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥ (७१४)

[illegible]) बड़ा [illegible] होता है (यस्य [illegible]) [illegible] । (वि०) सबसे अधिक [illegible] इन्द्र है ॥ १७ ॥
(ऋ० ८। १७)

हे [illegible] (अयं वृषाकपिः) [illegible] (परस्वन्तं हतं विदत्) [illegible] (असिं सूनां नवं चरुं आत् इधस्य आचितं अनः) [illegible] । (वि०) सबसे अधिक [illegible] है ॥ १८ ॥
(ऋ० ८। १८)

(दासं आर्यं विचिन्वन्) [illegible] (विचाकशत् अयं एमि) [illegible] (पाकसुत्वनः अभि पिबामि) [illegible] । (वि०) [illegible] ॥ १९ ॥
(ऋ० ८। १९)

(धन्व च यत् कृन्तत्रं च) [illegible] (कति स्वित् ता वि योजना) [illegible] (नेदीयसः गृहान्) [illegible] (वि०) [illegible] ॥ २० ॥
(ऋ० ८। २०)

हे (वृषाकपे) [illegible] (पुनः एहि) [illegible] (सुविता कल्पयावहै) [illegible] (यः एषः स्वप्ननंशनः) [illegible] (पथा पुनः अस्तं एषि) [illegible] । (वि०) सबसे अधिक [illegible] है ॥ २१ ॥
(ऋ० ८। २१)

हे वृषाकपे ! हे इन्द्र ! (यत् उदञ्चः) [illegible] (गृहं आजगन्तन) [illegible] (क्व स्यः पुल्वघः मृगः) [illegible] (जनयोपनः) [illegible] । (वि०) सबसे [illegible] है ॥ २२ ॥
(ऋ० ८। २२)

(पर्शुः ह नाम मानवी) [illegible] (साकं विंशतिं ससूव) [illegible] (भद्रं भल त्यस्या अभूत्) [illegible] (यस्याः उदरं आमयत्) [illegible] । (वि०) [illegible] ॥ २३ ॥
(ऋ० ८। २३)

[illegible]

॥ अथ कुन्तापसूक्तानि ॥

[सूक्त १२७]

(खिलानि)

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते । षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥ १
उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश । वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥ २
एष ऋषये मामहे शतं निष्कान्दश स्रजः । त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३
वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः । ओष्ठे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४
प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते । अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥ ५
प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् । देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥ ६
राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति । वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥ ७
परिच्छिन्नः क्षेममकरोत्तम आसनमाचरन् । कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥ ८
कतरत्त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् । जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९

(सूक्त १२७)

हे (जनाः) लोगो ! (इदं उप श्रुत) यह सुनो ! (नराशंस स्तविष्यते) मनुष्यका स्तोत्र गाया जायगा । हे कौरम ! (रुशमेषु) रुशमोंमें (षष्टिं सहस्रा नवतिं च) साठ हजार और नब्बे (आ दद्महे) हमने लिये हैं ॥ १ ॥

(यस्य द्विर्दश प्रवाहणः वधूमन्तः) जिसके बीस ऊंट बहुओंवाले रथके चलानेवाले हैं (रथस्य वर्ष्माः) रथकी चोटियां (दिव उपस्पृशः ईषमाणाः) द्युको स्पर्श करनेकी इच्छा करती हुई (नि जिहीडते) चमकती हैं ॥ २ ॥

(एषः) इसने (मामहे ऋषये) मामह ऋषिको (शतं निष्कान्) सौ निष्क (दश स्रजः) दस मालाएं (त्रीणि शतानि अर्वतां) तीनसौ घोडे (गोनां दश सहस्रा) दस हजार गौवें दीं ॥ ३ ॥

हे (रेभ) स्तुति करनेवाले ! (वच्यस्व वच्यस्व) बोल बोल । (पक्वे वृक्षे शकुनः न) जैसा पके हुए वृक्षपर पक्षी बोलता है । (ओष्ठे जिह्वा चर्चरीति) होठोंमें जिह्वा चर्चरी चलती है (भुरिजोः क्षुरः न) जैसे दोनोंके बीच छुरा चले ॥ ४ ॥

(वृषा गावः इव) बैल और गायोंकी तरह (रेभासः मनीषा प्र ईरते) स्तोतागण स्तुतिको प्रेरित करते हैं । (एषाम् अमा उत पुत्रकाः) इनके पुत्र घरमें (गाः इव आसते) गौवें जैसे रहती हैं समान रहते हैं ॥ ५ ॥

हे (रेभ) स्तोता ! (वसुविदं गोविदं) धन देनेवाले और गौवें देनेवाले (धियं प्र भरस्व) स्तोत्रको भेंट कर (इमां वाचं देवत्रा श्रीणीहि) इस स्तोत्रको देवताओंके साथ पावन कर । (अस्ता वीरः इषुं न) बाण फेंकनेवाला वीर जैसा बाण फेंकता है ॥ ६ ॥

(विश्वजनीनस्य वैश्वानरस्य) सब लोगोंका हित करनेवाले, सब लोगोंके शासक (परिक्षितः राज्ञः) परिक्षित राजाकी (सुष्टुतिं आ सुनोत) उत्तम स्तुतिको सुनो (यः देवः मर्त्यान् अति) जो देवकी तरह मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

(परिक्षित् उत्तमं आसनं आचरन्) परिक्षित उत्तम राजसिंहासन पर बैठकर (नः क्षेमं अकरोत्) हमारा कल्याण किया । (कौरव्यः कुलायं कृण्वन्) कौरव्य अपना घर बनाता हुआ (पतिः जायया वदति) पति अपनी स्त्रीसे कहता है ॥ ८ ॥

(कतरत् ते आ हराणि) क्या वस्तु तेरे लिये लाऊं (दधि मन्थां परि श्रुतं) दही, मट्ठा या रस (परिक्षितः राज्ञः राष्ट्रे) परिक्षित राजाके राष्ट्रमें (जायाः पतिं वि पृच्छति) स्त्री पतिसे पूछती है ॥ ९ ॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् । जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥
इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् । ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥ ११ ॥
इह गावः प्र जायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥
नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत् । मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥
उप नर नोनुमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥ (७१८)

[सूक्त १२८]

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः । सूर्यं चामू रिशादसस्तद्देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥
यो जाम्या अप्रथयस्तद्यत्सखायं दुधूर्षति । ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥
यद्भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः । तद्विप्रो अब्रवीदुदग् तद्गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥
यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः । धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

(यव पक्व बिल पथः) पका हुआ जौ जो बिल पर [illegible] हुआ है (इव इव अभि प्र जिहीते) अर्थात् वह [illegible] सभी ओर जाता है। (परिक्षित राज्ञः राष्ट्रे) परीक्षित राजा के राष्ट्र में (स जन भद्रं एधते) वह मनुष्य [illegible] [illegible] करता है ॥ १० ॥

(इन्द्र कारुं अबूबुधत्) इन्द्र [illegible] जगाता कि (उत्तिष्ठ जनं वि चर) उठ और [illegible] में जा। (मम उग्रस्य इत् चर्कृधि) मुझ वीर— इन्द्र— की स्तुति कर (सर्वः अरिः ते इत् पृणात्) सब [illegible] तुझे [illegible] पूर्ण करेंगे ॥ ११ ॥

(इह गावः प्रजायध्वं) यहाँ गायें बढ़ें (इह अश्वाः) यहाँ [illegible] (इह पूरुषाः) यहाँ पुरुष बढ़ें। (इह सहस्रदक्षिणः पूषा अपि नि षीदति) यहाँ हजार [illegible] पूषा भी बैठा है ॥ १२ ॥

हे इन्द्र! (इमाः गावः मा रिषन्) ये गायें हानि न [illegible]। (आसां गोपतिः मा उ रिषत्) इनका [illegible] [illegible] न [illegible]। हे इन्द्र! (आसां अमित्रयुः जनः) [illegible] [illegible] हमारा [illegible] न [illegible] (स्तेन मा ईशत) चोर [illegible] [illegible] न [illegible] ॥ १३ ॥

(सूक्तेन वचसा नर वयं नोनुमसि) सूक्त [illegible] [illegible] स्तुति करते हैं (वयं भद्रेण वचसा) हम [illegible] [illegible] से स्तुति करते हैं। (अ [illegible] [illegible] गिरः) हमारी स्तुतियों को [illegible] [illegible] इच्छा कर (कदाचन न रिष्येम) हमारा [illegible] कभी न हो ॥ १४ ॥

(सूक्त १२८)

(यः सभेयो विदथ्यः) जो सभा के योग्य और [illegible] [illegible] (अथ सुत्वा यज्वा पूरुषः) जो [illegible] [illegible] [illegible] करनेवाला पुरुष है उसको (अमुं रिशादसं सूर्यं) और [illegible] [illegible] सूर्य को (तत् देवाः प्राक् अकल्पयन्) देवों ने आगे [illegible] बनाया है ॥ १ ॥

(यः जाम्या अप्रथयत्) जो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। (तत् यत् सखायं दुधूर्षति) जो मित्र [illegible] [illegible] है (यत् ज्येष्ठः अप्रचेताः) जो ज्येष्ठ [illegible] को [illegible] [illegible] है (तत् अधराक् इति आहुः) [illegible] [illegible] कहते हैं ॥ २ ॥

(यत् भद्रस्य पुरुषस्य दाधृषिः पुत्रः भवति) जिस [illegible] पुरुष का पुत्र [illegible] है (तत् उदग् विप्रः अब्रवीत्) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करता है (तत् काम्यं वचः गन्धर्वः) वह [illegible] [illegible] [illegible] करता है ॥ ३ ॥

(य पणिः रघुजिष्ठ्यः) जो [illegible] [illegible] [illegible] (यः च देवान् अदाशुरिः) जो देवों को [illegible] (शश्वतां धीराणां अहं तत् अपाक् इति शुश्रुम) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ॥ ४ ॥

ये च देवा अयज्वन्तायो ये च पराददिः । सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवानो वि रप्शते ॥ ५ ॥
यानाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः । अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥
य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः । सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥
अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः । अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ८ ॥
सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः । सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ९ ॥
परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥
वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥
यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः । विरूपः सर्वस्मा आसीत्सह यक्षाय कल्पते ॥ १२ ॥
त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविम् । त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥ १३ ॥

(ये च देवा अयज्वन्तः) जो देवोंका यजन करते हैं। और (ये च पराददिः) जो दान देते हैं। (सूर्यः दिवं इव गत्वाय) वे सूर्य द्युलोकमें जाकर (मघवानः वि रप्शते) धनवान् होकर बडे होते हैं ॥ ५ ॥

(यः अनाक्ताक्षः) जिसके आंखोंमें अंजन लगाया नहीं है (अनभ्यक्तः) अंगपर जिसने उबटना लगाया नहीं (अमणिः अहिरण्यवान्) जिसके शरीरपर रत्न नहीं है शरीरपर सोना भी नहीं (अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रः) जो ब्राह्मणका पुत्र होनेपर भी ब्रह्मा नहीं है (ताः ह ताः) ये सब (कल्पेषु संमिताः) कल्पोंमें समान रीतिसे एकजीव-माने गये हैं ॥ ६ ॥

(यः आक्ताक्षः) जिसके आंखोंमें अंजन है (सुभ्यक्तः) जिसके शरीरपर उत्तम उबटना लगा है (सुमणिः) जिसके शरीरपर रत्न है (सुहिरण्यवान्) जिसके शरीरपर सोना है (ब्रह्मणः पुत्रः सुब्रह्मा) ब्राह्मणका पुत्र होनेपर जो उत्तम ब्रह्म हुआ है (ताः ह ताः कल्पेषु संमिताः) ये सारे कल्पोंमें तुल्य- रूपसे मानी गयी हैं ॥ ७ ॥

(वेशन्ताः अप्रपाणाः) तालाब जिसमें पीनेका पानी नहीं है (रेवान् अप्रतिदि च यः) धनवान होनेपर भी जो दाता नहीं है (कल्याणी कन्या अयभ्या) सुन्दर भी कन्या अगम्य है (ताः ह ताः कल्पेषु संमिता) ये सारे कल्पोंमें समान मानी गयी हैं ॥ ८ ॥

(वेशान्ताः सुप्रपाणाः) तालाब पाने योग्य पानीसे भरे हैं (रेवान् सुप्रतिदिः च यः) धनवान होनेपर जो उत्तम दान देता है (कल्याणी कन्या सुयभ्या) सुन्दर कन्या होनेपर जो सुगम्य है (ताः ह ताः कल्पेषु संमिता) ये सब कल्पोंमें समान मानी हैं ॥ ९ ॥

(महिषी परिवृक्ता) जो पटरानी त्यागी हुई है (स्वस्त्या च अयुधिंगमः) स्वस्थ होनेपर भी जो युद्धमें जाता नहीं (अनाशुः अश्वः अयामी) जो तेज घोडा नहीं या चलने वाला नहीं (ताः ह ता कल्पेषु संमिता) ये कल्पोंमें समान माने हैं ॥ १० ॥

(वावाता च महिषी) प्रिय पटरानी (स्वस्त्या च युधिंगमः) स्वस्थ होनेपर जो युद्धमें जाता है (आशुः अश्वः सुयामी) उत्तम चलनेवाला घोडा (ताः ह ताः कल्पेषु संमिता) ये सब कल्पोंमें समान हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! (यत् अदः दाशराज्ञे वि गाहथाः) जो तू दाशराज्ञ युद्धमें घुस गया था वह (मानुषं) वह मानुष कर्म तूने किया था। (सर्वस्मै विरूपः आसीत्) सबके लिये वह आदरणीय था। (सः ह यक्षाय कल्पते) वह [illegible] करनेके लिये समर्थ होता है ॥ १२ ॥

(त्वं वृषाक्षुं) तू बलवान् विजय कमाता है हे (मघवन्) इन्द्र ! (मर्य) मानवोंका हित करनेवाले ! (रविं नम्रं अकरः) तूने रविको नम्र बनाया (त्वं रौहिणं व्यास्यः) तूने रोहिणके टुकडे किये (वृत्रस्य शिरः वि अभिनत्) तूने उसका सिर काटा ॥ १३ ॥

यः पर्वतान्व्यदधाद्यो अपो व्यगाहथाः । इन्द्रो यो वृत्रहा महान् तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥१४॥
पृष्ठं धावन्तु हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् । स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥
युक्त्वा श्वेता औचैः श्रवसं हर्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वतम् स देवानां बिभ्रदिन्द्रं महीयते ॥ १६ ॥ (७१४)

[सूक्त १२९]

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥ प्रतीपं प्रातिसुत्वनम् ॥ २ ॥
तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥ हरिक्निके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥ ५ ॥ क्वाहतं परास्यः ॥ ६ ॥
यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥ परि त्रयः ॥ ८ ॥
पृदाकवः ॥ ९ ॥ शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥
अयमिहागतो अर्वा ॥ ११ ॥ स इच्छकं सघाघते ॥ १२ ॥
गोमयाद् गोगतिरिव ॥ १३ ॥ पुंसा कुक्षे किमिच्छसि ॥ १४ ॥
पल्वौ व्रीहियवा इति ॥ १५ ॥ व्रीहियवा अथा इति ॥ १६ ॥
अजगार इवाविकाः ॥ १७ ॥ अश्वस्य वारो गोशफर्म ते ॥ १८ ॥
श्येनपर्णी सा ॥ १९ ॥ अनामयोपजिह्विका ॥ २० ॥ (८१४)

(यः पर्वतान् व्यदधात्) जिसने पर्वतोंको बनाया (यः अपः व्यगाहथाः) जो जलप्रवाहोंमें घुस गया। (इन्द्रः यः महान् वृत्रहा) इन्द्र जो बडा वृत्रको मारने वाला है हे इन्द्र! (तस्मात् ते नमः अस्तु) इसलिये तुझे नमस्कार है ॥ १४ ॥

(हर्योः पृष्ठं धावन्तं) इसके दोनों घोडोंके आगे दौडने वाले (औच्चैःश्रवसं अब्रुवन्) उच्चैःश्रवासे कहा है (स्वस्ति अश्व) कल्याणकारी अश्व! (जैत्राय सुस्रजं इन्द्रं आ वह) विजयके लिये माला पहने इन्द्रको ले आ ॥ १५ ॥

(श्वेता युक्त्वा) श्वेत घोडियोंको जोतकर (हर्योः दक्षिणं) दो घोडोंके दक्षिण भागमें (औच्चैःश्रवसं युञ्जन्ति) उच्चैःश्रवाको जोतते हैं। (देवानां पूर्वतमं इन्द्रं बिभ्रत् सः) देवोंमें श्रेष्ठ इन्द्रको धारण करके वह (महीयते) बडा कहा जाता है ॥ १६ ॥

(सूक्त १२९)

(एताः अश्वाः) ये घोडियां (प्रतीपं प्राति-सुत्वनं) प्रतीप प्रातिसुत्वनकी ओर (आ प्लवन्ते) दौडती हैं ॥ १-२ ॥

(तासां एका हरिक्निका) उनमेंसे एक कम मूती है हे हरिक्निके! (किं इच्छसि) तू क्या चाहती है? ॥ ३-४ ॥

(साधुं हिरण्ययं पुत्रं) उत्तम सुनहरी पुत्रको। (क्व आहतं परास्यः) कहां उसको दूर फेंक दिया? ॥ ५-६ ॥

(यत्र अमूः तिस्रः शिंशपाः) जहां वे तीन शीशमके वृक्ष हैं (परि त्रयः) तीनोंके पास? ॥ ७-८ ॥

(पृदाकवः) सांप (शृङ्गं धमन्तः आसते) सींग फूंकते रहते हैं ॥ ९-१० ॥

(अयं अर्वा इह आगतः) यह घोडा यहां आया है (सः इत् छकं संघाघते) वह गोबरसे जाना जाता है ॥ ११-१२ ॥

(गोमयात् गोगतिः इव) गोबरसे बैलका मार्ग जैसा जाना जाता है (पुंसां कुक्षे किं इच्छसि) मनुष्योंके कुक्षमें रहकर तू क्या करना चाहती है? ॥ १३-१४ ॥

(पल्वौ व्रीहियवौ इति) पके हैं चावल और जौ। (व्रीहियवा अथा इति) चावल और जौ का ॥ १५-१६ ॥

(अजगारः अविका इव) अजगर जैसा भेडोंको। (अश्वस्य वारः ते गोशफः च) घोडेका बाल और बैलका खुर देता है ॥ १७-१८ ॥

(श्येनपर्णी सा) वह बाज पक्षीके पंखोंवाली है

१९ (अथर्व भाष्य काण्ड २०)

[सूक्त १३०]

को अर्यबहुलिमा इषूणि ॥ १ ॥ को असिक्न्याः पयः ॥ २ ॥
को अर्जुन्याः पयः ॥ ३ ॥ कः कार्ष्ण्याः पयः ॥ ४ ॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥ ५ ॥ कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥ ६ ॥
यवा नोप तिष्ठन्ति कुक्षिम् ॥ ७ ॥ अकुप्यन्तः कुपायकः ॥ ८ ॥
अमणिको मणित्सकः ॥ ९ ॥ देव त्वा प्रति सूर्यम् ॥ १० ॥
एनी हरिक्निका हरिः ॥ ११ ॥ प्रदुदुदुर्मघा प्रति ॥ १२ ॥
शृंग उत्पन्ने ॥ १३ ॥ मा त्वाभि सखा नो विदत् ॥ १४ ॥
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥ इरा वेदुमयं दत् ॥ १६ ॥
अथो इयमियमिति ॥ १७ ॥ अथो इयमिति ॥ १८ ॥
अथोऽश्वा अस्थूरि नौ भवन् ॥ १९ ॥ उपयिका शलाकका ॥ २० ॥ (८१२)

[सूक्त १३१]

आ मिनोति वि मिंयते ॥ १ ॥ तस्य अर्त निर्भञ्जनम् ॥ २ ॥
वरुणो याति वसुभिः ॥ ३ ॥ शतं वायोरमीशवः ॥ ४ ॥

(अलाबमयोपकिकिका) यह तौंबीसे बननेवाली है ॥ १९-२ ॥

(सूक्त १३०)

(इमा इषूणि कः अपाहरत्) कौन इन इषुके भेदोंको ले गया ? (कः अर्यः बहुलिमा इषूणि) किस आर्यने बहुत इषु धारण किये ? (कः असिक्न्याः पयः) कौन काली गायके दूधको ले गया ॥ १-२ ॥

(कः अर्जुन्याः पयः) कौन श्वेत गायके दूधको और (कः कार्ष्ण्याः पयः) कौन काली गायके दूधको ले गया ? ॥ ३-४ ॥

(एतं पृच्छ) इसको पूछ। (कुह पृच्छ) कहां पूछ। (कुहाकं पक्वकं पृच्छ) कहां पके फलको पूछ ॥ ५-६ ॥
(यथा कुक्षिं न उपतिष्ठन्ति) जो पेटमें नहीं जाते। (कुपायकाः अकुप्यन्तः) बुरे रक्षक क्रुद्ध होते हैं ॥ ७-८ ॥
(अमणिकाः मणित्सकाः) मणिसे रहित और मणिसे सहित (देव त्वा प्रति सूर्ये) सूर्यके सामने देवत्व ॥ ९-१० ॥

(एनी हरिक्निका हरिः) चितकबरी हरिक्निका और भूरे रंगवाली। (प्रदुदुदु मघा प्रति) धनके प्रति हरिके पास दौडे ॥ ११-१२ ॥

(शृंगे उत्पन्ने) सींग उत्पन्न होने पर (मा त्वा अपि नः सखा विदत्) तुझे नहीं हमारा मित्र जाने ॥ १३-१४ ॥

(वशायाः पुत्रं आ यन्ति) वशाके पुत्रके प्रति आते हैं (इरा वेदुं अमयत्) अन्नने देवको दिया ॥ १५-१६ ॥

(अथो इयं इयं इति) यह यह है ऐसा कहा (अथो इयं) और यह यह ॥ १७-१८ ॥

(अथो अश्वा अस्थूरि न भवन्) तब हमारे घोडे पुष्ट नहीं हुए। (शलाकका इयविका) शलाका इतनी ही है ॥ १९-२० ॥

(सूक्त १३१)

(आमिनोति वि मिंयते) जो फेंकता है, उसके टुकडे होते हैं (तस्य अर्त निभञ्जनम्) उसका नाश करो ॥ १-२ ॥

(वरुणः याति वसुभिः) वरुण वसुओंके साथ जाता है। (वायोः शतं अभीशवः) वायुकी सौ रश्मियाँ हैं ॥ ३-४ ॥

शतमश्वा हिरण्ययाः ॥ ५ ॥ शतं रथ्या हिरण्ययाः ॥ ६ ॥
शतं कुथा हिरण्ययाः ॥ ७ ॥ शतं निष्का हिरण्ययाः ॥ ८ ॥
अहुल कुश वर्त्तक ॥ ९ ॥ शफेन इव ओहते ॥ १० ॥
आय वनेनती जनी ॥ ११ ॥ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥ १२ ॥
इदं मह्यं मदूरिति ॥ १३ ॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठन्ति ॥ १४ ॥
पाकबलिः ॥ १५ ॥ शकबलिः ॥ १६ ॥
अश्वत्थः खदिरो धवः ॥ १७ ॥ अरदुपरमः ॥ १८ ॥
शयो हत इव ॥ १९ ॥ व्याप्तः पूरुषः ॥ २० ॥
अदूहमित्यां पूषकम् ॥ २१ ॥ अत्यर्धर्च परस्वतः ॥ २२ ॥
दौव हस्तिनो दृती ॥ २३ ॥ (८५४)

[सूक्त १३२]

आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥ अलाबुकं निखातकम् ॥ २ ॥
कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥ तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥ उग्रं वनिषदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥ क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥ ९ ॥ यदीयं हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥

देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥ पर्यागारं पुनः पुनः ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥ हिरण्यमित्येकमब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वे वा यशः शवः ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डा वा हनत् ॥ १६ ॥ ८७०

[सूक्त १३३]

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः। दुन्दुभिमाहननाभ्याम्।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृतः पुरुषाद् दृतेः। कोशबिले। न वै० ॥ २ ॥
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे। रज्जुनि ग्रन्थेर्दानम्। न वै० ॥ ३ ॥
उत्तानायां शयानायां तिष्ठन्ती वाव गूहति। उपानहि पादम्। न वै० ॥ ४ ॥
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहति। उत्तराञ्जनीमांसन्याम्। न वै० ॥ ५ ॥
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे। उत्तराञ्जनीं वर्मण्याम्। न वै० ॥ ६ ॥ (८७६)

[सूक्त १३४]

इहेत्था प्रागपागुदगधरागासमा उदमिर्येथा। अलाबूनि ॥ १ ॥
इहेत्था प्रागपागुदगधरागासमा उदमिर्येथा। वत्साः प्रुषन्त आसते। पुषातकानि ॥ २ ॥

(देवी हनत् कुह हनत्) देवीने बजाया कहां बजाया (परि-आगारं पुनः पुनः) पुनः पुनः घरके चारों ओर ॥ ११-१२ ॥

(त्रीणि उष्ट्रस्य नामानि) ऊंटके तीन नाम हैं, (हिरण्यं इति एकः अब्रवीत्) सोना एक है ऐसा एकने कहा ॥ १३-१४ ॥

(द्वे वा यशः शवः) दो यश और बल ये हैं, (नील-शिखण्डः वा हनत्) नीले मुकुटवाला बजायेगा ॥ १५-१६ ॥

(सूक्त १३३)

(तौ द्वौ किरणौ विततौ) वे दो किरण फैले हैं (पुरुषः तौ आ पिनष्टि) पुरुष उनको पीसता है (दुन्दुभिं आहननाभ्यां) ढोलको बजानेसे हे कुमारि! (न वै तत् तथा) वह वैसा नहीं है कुमारि! (यथा मन्यसे) जैसा तू मानती है ॥ १ ॥

(ते मातुः द्वौ किरणौ) तेरी माताके दो किरण पकडे हैं (पुरुषात् दृतेः निवृतः) पुरुषसे चाम पकडा गया है। (कोशबिले) खजाना और बिल ॥ २ ॥

(निगृह्य द्वौ कर्णकौ) दोनों कानोंको पकड कर (मध्यमे निरायच्छसि) मध्यमें निकाल देता है। (रज्जुनि ग्रन्थेः दानं) रस्सीमें ग्रंथी देना ॥ ३ ॥

(उत्तानायां शयानायां) खडे या सोनेके लिये (तिष्ठन्ती वाव गूहति) ठहरती है या गुप्त रखती है। (उपानहि पादं) जूतेमें पांव ॥ ४ ॥

(श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां) प्रेमवाली, स्नेह करनेवालीमें (श्लक्ष्णं एव अव गूहति) प्रेम ही गुप्त रखती है। (उत्तराञ्जनीं मांसन्यां) ॥ ५ ॥

(अवश्लक्ष्णं इव भ्रंशत्) गुप्त प्रेमके समान भ्रष्ट होता है (ह्रदे अन्तः लोम अति) हृदयमें अन्दर लोम होनेके समान। (उत्तराञ्जनीं वर्मण्यां) ॥ ६ ॥

(सूक्त १३४)

(इह इत्था) यहां इस तरह (प्राक् अपाक् उदक् अधराक्) पूर्व पश्चिम उत्तर और दक्षिणमें (आसत) बैठे हैं (यथा उदमिः) जैसे पानीसे तथा (अलाबूनि) तूंबिये ॥ १ ॥

(वत्साः पुरुषन्त आसते) बच्चे दही और घीको (पुषातकानि) छिडकते हुए बैठते हैं ॥ २ ॥

इहेत्था प्रागपागुदगधराग्रारासता उदर्मिर्यथा । स्थालीपाको विलीयते । अश्वत्थपलाशम् ॥ ३ ॥
इहेत्था प्रागपागुदगधराग्रारासता उदर्मिर्यथा । मा वै स्पृष्टा विलीयते । त्रिपुट् ॥ ४ ॥
इहेत्था प्रागपागुदगधराग्रारासता उदर्मिर्यथा । उष्णे स्वादे न लीप्सेयाः । यमसः ॥ ५ ॥
इहेत्था प्रागपागुदगधराग शिंशिशुः शिशिस्वते । पिपीलिकावटः ॥ ६ ॥ (८०)

[सूक्त १३५]

भुगित्यभिगतः । श्वा ॥ १ ॥ शलित्यपक्रान्तः । पर्णशदः ॥२॥ फलित्यभिष्ठितः । गाशफः ॥३॥
वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर । सुसत्यमिद् गवामस्त्य प्र खुद ॥ ४ ॥
पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोथामो दैव । होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥ ५ ॥
आदित्या ह जरितराङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितर्न प्रत्यायस्तामु ह जरितर्न प्रत्यगृभ्णन् ॥ ६ ॥
तां ह जरितर्नः प्रत्यायन् तामु ह जरितः प्रत्यगृभ्णन् ।
अहा नेत सन्नविचेतनानि जज्ञा नेत सन्नपुरोगवासः ॥ ७ ॥
उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः । उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥ ८ ॥
आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेलते इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥
देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् । युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥
त्वमिन्द्र शर्म रिणा हव्यं पारावतेभ्यः । विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते । श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहु ॥ १२ ॥
अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया । इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥ (८१)

[सूक्त १३६]

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् । मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥
यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् । विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥
यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेवपद्यते । वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥ ३ ॥
यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः । सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥

(स्थालीपाको विलीयते) [illegible]
१ (अश्वत्थ-पलाश) [illegible] ॥ ३ ॥
(मा वै स्पृष्टा मीयते) [illegible]
१ (त्रिपुट्) [illegible] ॥ ४ ॥
(उष्णे स्वादे न लीप्सेयाः) [illegible]
[illegible] (यमसः) [illegible] ॥ ५ ॥
(शिंशिशुः शिशिस्वते पिपीलिकावटः) [illegible] ॥ ६ ॥

महानग्न्यंतृपद् विमुक्तः क्रुदमा नासरन् । शक्ति कनीना सुंद मध्यम सक्थुर्यतम् ॥ ५ ॥
महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् । यथा तव वनस्पते निघ्नन्ति तथैवेति ॥ ६ ॥
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः । यथैव ते वनस्पते पिप्पिन्ति तथैवेति ॥ ७ ॥
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः । यथा वयो विदाह्यस्वर्गे नमः पदान्ते ॥ ८ ॥
महानग्न्युप ब्रूते स्वस्त्याबेशित पसः । इत्थ फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्प भजेमहि ॥ ९ ॥
महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति । अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१०॥
महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति । इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ ११ ॥
सुदेवस्त्वा महानग्नी वि बाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुशित पीवरी नशद् यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १२ ॥
वशा दग्धा विनाङ्गुरिं प्रसूयते वर्तकरम् । महान् वै भद्रो बिल्वो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १३ ॥
विदेवस्त्वा महानग्नि वि बाधत महत साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्यं कृत्वा प्र धावति ॥ १४ ॥
महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः । महाँ अभिक्तो बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥
य कुमारी पिङ्गलिका कशित पीवरी लभेत् । तैलकुण्डा दिवाकुष्ठं रदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥१६॥ (१११)

॥ इति कुन्तापसूक्तानि ॥

[सूक्त १३७]

(ऋषिः — १ शिरिम्बिठिः २ बुधः; ३ वामदेवः; ४–६ ययातिः; ७–११ तिरश्चीराङ्गिरसा। द्युतानो वा १२–१४ सुकक्षः । देवता — १ अलक्ष्मीनाशनम्, २ इन्द्रः; ३ दधिक्राः। ४–६ सोमः पवमानः; ७–१४ इन्द्रश्च ।)

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः । हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥
कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥ २ ॥

(सूक्त १२७–१३६)

[सूचना — ये सूक्त अत्यंत क्लिष्ट और गूढ हैं। अतः इनका अर्थ यहां देना आवश्यक है। जो विद्वान् इनको अच्छी तरह समझ सकते हैं। व इनका अर्थ स्पष्टीकरणके साथ लिखकर भेजेंगे तो बडी कृपा होगी।]

॥ यहां कुन्तापसूक्तानि समाप्त ॥

(सूक्त १३७)

(मण्डूरधाणिकी) पीले वाल धारनेवाली (यत् ह उरः प्राची अजगन्त) जब विस्तृत तीचे आगे भगी (बुद्बुदयाशवः सर्वे इन्द्रस्य शत्रवः हता) बुद्बुदों समान इन्द्रके सब शत्रु मारे गये ॥ १ ॥

(ऋ. १ ।१५५।४)

हे (नरः) मनुष्यो ! (क-पृत्) इस सुखसे पूर्ण है। (वाजसातये) अन्नके दानके लिये (क-पृथं उद्दधातन) सुखदाता इसको उठाओ (चोदयत) प्रेरित करो, (खुदत) आनंदित करो (निष्टिग्र्यः पुत्रं) अदितिके पुत्रको (ऊतये) सुरक्षाके लिये (आच्यावय) नीचे लाओ

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः । पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७ ॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ ८ ॥
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९ ॥
त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १० ॥

(सखायः) बाबा करनेवालोंसे सुरक्षाके लिये (इह इन्द्रं सोमपीतये) यहां इन्द्रको साम पीनेके लिये ले आओ ॥ २ ॥ (ऋ. १।१।११२)

(जिष्णोः वाजिन दधिक्राव्णः अश्वस्य) विजयी बलवान् दही जैसे सफेद घोडेकी स्तुति (अकारिष) की। (नः मुखा सुरभि करत्) हमारे मुखोंको सुगंधित करे (प्र आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुओंको बढावे ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।३९।६)

(मधुमत्तमाः सोमाः) मीठे सोमरस (मन्दिनः इन्द्राय सुतासः) व आनन्द देनेवाले रस इन्द्रके लिये निचोडे हैं। वे (पवित्रवन्तः अक्षरन्) छाननीसे छाने गये (वः मदाः देवान् गच्छन्तु) तुम्हारे वे आनंद देनेवाले रस देवोंको पहुंचें ॥ ४ ॥ (ऋ. ९।१०१।४)

(इन्दुः इन्द्राय पवते) सोम इन्द्रके लिये छाना जाता है (इति देवास अब्रुवन्) ऐसा देवोंने कहा है। (वाचस्पतिः सर्वस्य ईशानः) वाणीका पति सबका स्वामी (ओजसा) अपनी शक्तिसे (मखस्यते) यज्ञकी पूर्ति करता है ॥ ५ ॥ (ऋ. ९।१०१।५)

(सहस्रधारः समुद्रः) सहस्र धाराओंवाला समुद्र (वाचं ईङ्खयः) वाणीका प्रेरक (रयीणां पतिः) धनोंका स्वामी (सोमः) सोमरस (इन्द्रस्य सखा) इन्द्रका मित्र (दिवे दिवे पवते) प्रतिदिन छाना जाता है ॥ ६ ॥ (ऋ. ९।१०१।६)

(दशभिः सहस्रैः) दस हजारों सैनिकोंके साथ (इयानः कृष्णः) जानेवाला काला (द्रप्सः) सोमरस (अंशुमतीं अवातिष्ठत्) अंशुमतीके पास ठहरा। (शच्या धमन्तं) शक्तिके साथ धौंकनेवाले उसकी (आवत्) रक्षा की। (नृमणा) वीर मनवाले इन्द्रने (स्नेहितीः अप अधत्त) शत्रुओंको परे किया ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।९६।१३)

(अंशुमत्याः नद्यः) अंशुमती नदीके (उपह्वरे विषुणे चरन्तं) तटपर विषम मार्गमें चलनेवाले (द्रप्सं अपश्यं) सोमको मैंने देखा। (नभः न कृष्णं) काले मेघकी तरह (अवतस्थिवांसं) नीचे रहनेवालेको है (वृषणः) बलवान् वीरो! (आजौ युध्यत) आप युद्धमें युद्ध करो (वः इष्यामि) ऐसा आपके विषयमें मैं चाहता हूं ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।९६।१४)

(अध) अनंतर (द्रप्सः) सोमरसने (तित्विषाणः) तेजस्वी होकर (अंशुमत्या उपस्थे) अंशुमतीके समीप (तन्वं अधारयत्) अपने रूपको धारण किया। (इन्द्रः) इन्द्रने (बृहस्पतिना युजा) बृहस्पतिके साथ रहकर (अभ्या चरन्तीः अदेवीः विशः) युद्ध करनेवाली आसुरी सेनाका (ससाहे) पराभव किया ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।९६।१५)

हे इन्द्र! (त्वं जायमान) तू जन्मते ही (त्यत् सप्तभ्यः अशत्रुभ्यः) उन सात जिनके शत्रु नहीं थे उन शत्रुओंके लिये (शत्रुः अभवः) शत्रु हुआ। (गूळ्हे

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥ ११ ॥
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२ ॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ १३ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४ ॥ (९१५)

[सूक्त १३८]

(ऋषिः — १-३ वत्सः । देवता — इन्द्रः ।)

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥ (९१८)

[सूक्त १३९]

(ऋषिः — १-५ शशकर्णः । देवता — अश्विनौ ।)

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे । प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी अजनयिन्द्र) तुम ने द्यावा पृथ्वीको तुमने प्राप्त किया । (विभुमद्रूपः भुवनेभ्यः रणं धाः) व्यापक भुवनोंको आनंद दिया ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९६।१६)

हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (त्वं ह त्यत् अप्रतिमानं ओजः) तूने उस अप्रतिम शक्तिको प्रकट किया जिस समय (धृषितः वज्रेण जघन्थ) धर्षक होकर वज्रसे शत्रुको मारा । (त्वं शुष्णस्य वधत्रैः अवातिरः) तूने शस्त्रोंसे शुष्णको मारा । (त्वं शच्या इन्द्र गाः अविन्दः) तूने अपनी शक्तिसे गौओंको प्राप्त किया ॥ ११ ॥
(ऋ. ८।९६।१७)

(महे वृत्राय हन्तवे) बडे वृत्रको मारनेके लिये (तं इन्द्रं वाजयामसि) उस इन्द्रको हम सामर्थ्यशाली बनाते हैं । (स वृषा वृषभः भुवत्) वह बलवान् इन्द्र अधिक बलवान् बने ॥ १२ ॥ (ऋ. ८।९३।७)

(सः इन्द्रः दामने कृतः) वह इन्द्र दानके लिये तैयार किया है (ओजिष्ठः स मदे हितः) वह शक्तिमान आनंद में रखा है (द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः) वह तेजस्वी स्तुत्य और सोमके योग्य है ॥ १३ ॥ (ऋ. ९३।८)

(गिरा वज्रः न संभृतः) स्तुतिसे वह वज्रके समान तैयार हुआ है (सबलः अनपच्युतः) वह बलवान् और कभी पराजित न होनेवाला है (ऋष्वः अस्तृतः ववक्ष) महान् और न हारनेवाला भार उठाता है ॥ १४ ॥
(ऋ. ८।९३।९)

(सूक्त १३८)

(यः इन्द्रः ओजसा महान्) जो इन्द्र अपनी शक्तिसे महान् है, (वृष्टिमान् पर्जन्य इव) वृष्टि करनेवाले मेघके समान वह है (वत्सस्य स्तोमैः वावृधे) वत्सके स्तोत्रोंसे वह बढा हुआ है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६।१)

(ऋतस्य पिप्रतः प्रजां) सत्यके पालक इन्द्रको (विप्राः ऋतस्य वाहसा) विप्र सत्यके स्तोत्रके साथ (यत् वह्नयः प्र भरन्त) जब ऋत्विज अग्निके समान तेजस्वी हवि देते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६।२)

(कण्वाः इन्द्रं) कण्वोंने इन्द्रको (स्तोमैः यज्ञस्य साधनं यत् अक्रत) स्तोत्रोंसे यज्ञको पूर्ण करनेवाला बनाया है (आयुधं जामि ब्रुवत) शस्त्रको वे मित्र कहते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६।३)

(सूक्त १३९)

हे (अश्विना) अश्विनो ! (युवं वत्सस्य अवसे) तुम दोनों वत्सकी रक्षाके लिये (नूनं आ गन्तं) निश्चय आओ । (अस्मै) इसके लिये (अवृकं पृथु छर्दिः) हिंसकोंसे रहित बडा घर (प्र यच्छतं) दे दो । (याः अरातयः युयुतं) जो शत्रु हों उनको दूर हटाओ ॥ १ ॥
(ऋ. ८।९।१)

यदन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥ २ ॥
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते । अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥
यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् । तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ (९१७)

[सूक्त १४०]

(ऋषिः — १- शशकर्णः । देवता — अश्विनौ ।)

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ १ ॥
आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया । आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥
आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना । आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि । यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥
यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५ ॥ (९१८)

हे अश्विदेवो ! (यत् अन्तरिक्षे) जो अन्तरिक्षमें (यत् दिवि) जो द्युलोकमें (यत् पञ्च मानुषान् अनु) जो पांचों मानवोंमें है (तत् नृम्णं धत्तं) वह वीरता कर्म हममें रखो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९।१२)

हे अश्विदेवो ! (ये विप्रासः) जो ब्राह्मण (वां दंसांसि) आपके कर्मोंका (परिमामृशुः) ध्यानमें करते हैं (एव इत) वैसा ही (काण्वस्य वा बोधत) कण्वका स्मरण रखो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९।१३)

हे अश्विदेवो ! (वां अयं घर्मः) आपका यह यज्ञ (स्तोमेन परि षिच्यते) स्तोत्रसे सींचा गया है हे (वाजिनीवसू) बलके स्वामी ! (अयं मधुमान् सोमः) यह मीठा सोम है (येन वृत्र चिकेतथः) जिससे शत्रुको पहचानते हो ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९।१४)

हे (पुरुदंससा अश्विना) अद्भुत कर्म करनेवाले अश्विदेवो ! (यत् अप्सु) जो जलोंमें (यत् वनस्पतौ) जो वनस्पतिमें (यत् ओषधिषु) जो औषधियोंमें (कृतं) किया (तेन मा अविष्टं) उसके द्वारा मेरी रक्षा करो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९।१५)

(सूक्त १४०)

हे (नासत्या) अश्विदेवो ! (यत् भुरण्यथः) जो तुम पुष्टि करते हो (यत् वा देव भिषज्यथः) अथवा जिससे हे देवो ! तुम चिकित्सा करते हो (अयं वत्सः) यह वत्स (मतिभिः वां न विन्धते) स्तोत्रोंसे आपको नहीं प्राप्त करता क्योंकि (हविष्मन्तं हि गच्छथः) हवि देनेवालेकी ओर ही तुम जाते हो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९।१६)

(ऋषिः अश्विनोः स्तोमं) ऋषिने अश्विनोंका स्तोत्र (वामया नूनं आ चिकेत) शुद्ध बुद्धिसे निश्चयपूर्वक ज्ञान किया है । (मधुमत्तमं घर्मं सोमं) अत्यन्त मीठे यज्ञीय सोमको (अथर्वणि आ सिञ्चात्) अथर्वापर सिंचन करो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९।१७)

हे अश्विदेवो ! (रघुवर्तनिं रथं) शीघ्र चलनेवाले रथ पर (नूनं आ तिष्ठाथः) निश्चयपूर्वक बैठो (नभः न) मेघोंके समान (मम इमे स्तोमाः) मेरे ये स्तोत्र (वां आ चुच्यवीरत) आपको इधर लावें ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९।१८)

हे (नासत्या अश्विना) सत्य अश्विदेवो ! (यत् अद्य वां उक्थैः आचुच्युवीमहि) जो आज हम तुम्हें स्तोत्रोंसे इधर लाते हैं (यत् वा वाणीभिः) अथवा जो वाणियोंसे (एव इत् काण्वस्य बोधतं) वैसा ही कण्वको जानो ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९।१९)

(यत् वां कक्षीवान्) जैसे तुम्हें कक्षीवान्ने (उत यत् व्यश्वः ऋषिः) अथवा जैसे व्यश्व ऋषिने (यत् वां दीर्घतमा जुहाव) जैसे आपको दीर्घतमाने बुलाया था (यत् वां पृथी वैन्यः) जैसे आपको पृथी वैन्यने (सादनेषु एव इत्) यज्ञोंमें बुलाया था हे अश्विदेवो ! (अत

[सूक्त १४१]

(ऋषिः — १-५ शशकर्णः । देवता — अश्विनौ ।)

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा । वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥ २ ॥

यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये । यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता । इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥४॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ ५ ॥ (९४१)

[सूक्त १४२]

(ऋषिः — १-६ शशकर्णः । देवता — अश्विनौ ।)

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः । व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि । प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

वत्सेयों) मेरे ही यहां आनेके लिये आओ ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९।११)

(सूक्त १४१)

(छर्दिष्पा) गृहरक्षक (उत नः परस्पा) अथवा हमारा शत्रुओंसे रक्षण करनेवाले (जगत्पा उत नः तनूपा) पशुओंके रक्षक और हमारे शरीरोंके रक्षक बनकर (आ यात) आओ । (तोकाय तनयाय) पुत्र-पौत्रोंके रक्षणके लिये (वर्तिः आ यात) हमारे घर आओ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९।११)

हे अश्विनो ! (यत् इन्द्रेण सरथं याथः) यदि तुम इन्द्रके साथ एक रथपर जाते हो (यत् वा वायुना समोकसा भवथः) या वायुके साथ एक घरमें रहनेवाले होते हो (यत् आदित्येभिः) यदि आदित्यों और (ऋभुभिः सजोषसा) ऋभुओंके साथ एक कार्यमें लगते हो (यत् वा विष्णोः विक्रमणेषु तिष्ठथः) किंवा विष्णुके विक्रमोंमें ठहरे हो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९।१२)

हे अश्विदेवो ! (यत् अद्य अहं) यदि आज मैं तुम्हें (वाजसातये हुवेय) शक्तिका लाभ करनेके लिये बुलाता हूं (यत् पृत्सु तुर्वणे सहः) जो लडाइयोंमें विजय करनेवाला साहस है (तत् अश्विनोः अवः श्रेष्ठं) वह अश्विदेवोंका श्रेष्ठ रक्षक बल है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९।१३)

हे अश्विनो ! (नूनं आ यातं) निश्चयसे आओ । (वां इमा हव्यानि हिता) आपके लिये हव्य रखे हैं । (इमे सोमासः) ये सोम (तुर्वशे अधि) तुर्वशमें (इमे यदौ) ये यदुमें (अथ कण्वेषु वां) और कण्वोंमें तुम्हारे लिये हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९।१४)

हे (नासत्या) अश्विदेवो ! (यत् पराके अर्वाके भेषजं अस्ति) जो दूर या पास औषध है हे (प्रचेतसा) विशाल हृदयवालो ! (तेन) उससे (विमदाय वत्साय) विमद और वत्सके लिए (छर्दिः यच्छतं) घर दो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९।१५)

(सूक्त १४२)

(देव्या) उप देवीके साथ (अश्विनोः वाचा साकं) अश्विदेवोंकी स्तुतिके साथ (अहं प्र अभुत्स्यु) मैं जगा। हे (देवि) हे उषा ! (मतिं रातिं मर्त्येभ्यः) स्तुति और दान मानवोंके लिये (वि आवः) तुमने खोल दिया है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९।१६)

हे (सूनृते महि देवी उषः) सुंदर बडी देवी उषा ! (अश्विना प्र प्र बोधय) अश्विनोंको जगा दो । हे (यज्ञ होतः) यज्ञके होता ! (मदाय आनुषक् प्र) आनंदके लिए साथ साथ जगा दो (श्रवः बृहत्) यह बडा यश है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९।१७)

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे । आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः । यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥ (९४९)

[सूक्त १४३]

(ऋषिः — १ ७ पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ, ८ वामदेव ९ मध्यातिथिर्मेधातिथी । देवता — अश्विनौ ।)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥

(यत् उषः) जब हे उषा! तू (भानुना यासि) अपनी चमकके साथ जाती है (सूर्येण सं रोचसे) सूर्यके साथ चमकती है तब (अश्विनोः अयं रथः) अश्विनोंका यह रथ (नृपाय्यं वर्तिः आ याति) मनुष्योंका रक्षण करनेवाले घर पर आता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९।१८)

(यदा पीतासः अंशवः) जब सोमरस पीते हैं (गावः ऊधभिः दुह्रे न) गौवें जैसी अपने दुग्धाशयसे दूध देती हैं (देवयन्तः अश्विना) देवोंके भक्त अश्विनोंकी (यद् वा वाणीः प्र अनूषत) जब वाणियां स्तुति करती हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९।१९)

हे (प्रचेतसा) विशेष ज्ञानी अश्विदेवो! (द्युम्नाय प्र) यशके लिये (शवसे प्र) बलके लिये (नृषाह्याय प्र) शत्रुका पराभव करनेके लिये (शर्मणे दक्षाय प्र) सुखके लिये और चतुराईके लिये हमें सहायता दो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९।२०)

हे अश्विदेवो! (यद् नूनं) जब निश्चयसे तुम (धीभिः पित्रोः योनौ आ निषीदथः) बुद्धियोंके साथ पिताके घरमें बैठते हो (उक्थ्या) हे स्तुतिके योग्य अश्विदेवो! (यद् वा सुम्नेभिः) जब उत्तम मनोभावनाओंके साथ रहते हो ॥ ६ ॥

(सूक्त १४३)

हे अश्विदेवो! (गोः संगतिं) किरणोंको इकट्ठा करने वाले (पृथुज्रयं वां तं रथं) तुम्हारे विस्तृत वेग रथको (वयं अद्य आ हुवेम) हम आज बुलाते हैं। (यः वन्धुरायुः सूर्यां वहति) जो रथ उत्तम आसन देनेवाला सूर्याको ले जाता है। वह रथ (गिर्-वाहसं) स्तुतियोंसे चलनेवाला (पुरुतमं वसूयुं) बड़ा और धनसे भरा रहता है ॥ १ ॥ (ऋ. ४।४४।१)

हे अश्विदेवो! (युवं देवता) तुम देवता होनेके कारण और (दिवः नपाता) द्युलोकको न गिरानेवाले होनेके कारण (शचीभिः तां श्रियं वनथः) अपनी शक्तियोंसे उस शोभाको प्राप्त करते हो। (पृक्षः युवोः वपुः अभि सचन्ते) अन्न तुम्हारे शरीरके साथ मिलता है। (यत् ककुहासः वां रथे वहन्ति) जब घोडे तुम्हें रथमें ले जाते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ४।४४।२)

(कः रातहव्यः वां अद्य आ करते) कौन हवि देनेवाला आज तुम्हें इधर बुलाता है? (ऊतये वा) अपनी सुरक्षाके लिये (वा अर्कैः सुतपेयाय) अथवा स्तोत्रोंके द्वारा सोमरस पीनेके लिये बुलाता है? (ऋतस्य पूर्व्याय वनुषे) यज्ञके पुराने भक्तके लिये हे अश्विदेवो! (नमो येमानः आ ववर्तत्) नमस्कार करते हुए अब तुम्हें इधर बुलाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।४४।३)

हे (नासत्या) अश्विदेवो! (पुरुभूः) बहुत स्थानपर होनेवाले! (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णके रथसे (इमं यज्ञं

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ८ ॥
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ९ ॥ (९५८)

॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥ ॥ इति विंशं काण्डं समाप्तम् ॥ ॥ अथर्ववेदसंहिता समाप्ता ॥

मन्त्रसंख्या—
प्रथमादेकोनविंशतिकाण्डसमाप्तिपर्यन्तं—५०१९
विंशतितमकाण्डस्य— ९५
सर्वयोगः ५९७७

उप यातं) इस यज्ञके पास आओ। (सोम्यस्य मधुनः पिबाथ) मधुर सोमरस पीओ। (विधते जनाय रत्नं दधथः) भक्तजनके लिये रत्न दो ॥ ४ ॥ (ऋ. ४।४३।४)

(दिवः पृथिव्याः अच्छ) द्युलोक अथवा पृथिवीपरसे (हिरण्ययेन सुवृता रथेन) सुवर्णमय अच्छे घूमनेवाले रथसे (नः आ यातं) हमारे पास आओ। (अन्ये देवयन्तः) अन्य देवभक्त (वां मा नियमन्) तुम्हें न रोकें। (यत् पूर्व्या नाभिः) जब पूर्व संबंध (वां सं ददे) हमसे तुम्हारा हुआ है ॥ ५ ॥ (ऋ. ४।४३।५)

हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विनो ! (अस्मे उभयेषु) हम दोनोंमें (पुरुवीरं बृहन्तं रयिं) बहुत वीर पुत्रोंसे युक्त बडा धन (नु मिमाथां) दो। हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (नरः यत् वां स्तोमं आवन्) नरोंने तुम्हारी स्तुति की है। (आजमीळ्हासः सधस्तुतिं अग्मन्) अजमीढोंने भी साथ स्तुति की है ॥ ६ ॥ (ऋ. ४।४३।६)

हे (वाजरत्ना) बलसे रत्न प्राप्त करनेवाले अश्विदेवो ! (इह इह यत् वां समना पपृक्षे) यहां जब सभी मैंने तुम्हारी स्तुति की। (सा इयं अस्मे सुमतिः) वह हमारे लिये उत्तम बुद्धि सिद्ध हुई है। (युवं जरितारं उरुष्यतं ह) तुम स्तोताकी रक्षा करो। हे (नासत्या) अश्विदेवो ! (कामः युवद्रिक् श्रितः) हमारी इच्छा तुम्हारे आश्रयमें रही है ॥ ७ ॥ (ऋ. ४।४३।७)

(ओषधीः द्यावः आपः मधुमतीः) औषधि द्यु और जल हमारे लिये मधुर हों। (नः अन्तरिक्षं मधुमत् भवतु) हमारे लिये अन्तरिक्ष मीठासे भरा हो। (क्षेत्रस्य पतिः नः मधुमान् अस्तु) खेतका स्वामी हमारे लिये मधुरतासे परिपूर्ण हो। (अ-रिष्यन्तः एनं अनु चरेम) विनष्ट न होते हुए हम इसका अनुसरण करें ॥ ८ ॥ (ऋ. ४।४३।८)

हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां तत् कृतं पनाय्यं) आपका किया वह कर्म प्रशंसनीय है (वृषभः दिवः रजसः पृथिव्याः) बलयुक्त द्यु अन्तरिक्ष और पृथिवीके (गविष्टौ ये सहस्रं शंसाः) युद्धोंमें भी आपकी सहस्रों प्रशंसाएं हुई हैं (सर्वान् तान् पिबध्यै उप यात इत्) उन सबके पास सोमरस पीनेके लिये आओ ॥ ९ ॥ (ऋ. ४।४३।९)

॥ यहां नवम अनुवाक समाप्त ॥
॥ बीसवां काण्ड समाप्त ॥
॥ अथर्ववेद समाप्त ॥